ACKNOWLEDGEMENT

We sincerely express our gratitude to **“Shree Vitrag Sat-Sahitya Prakashak Trust, Bhavnagar”** from where we have sourced **“Pravachan Sudha Part-09”**.

“Shree Vitrag Sat-Sahitya Prakashak Trust, Bhavnagar” have taken due care, However, if you find any error, for which we request all the reader to kindly inform us at info@vitragvani.com or to **“Shree Vitrag Sat-Sahitya Prakashak Trust, Bhavnagar”.**

ॐ

श्री वीतरागाय नमः

प्रवचन सुधा

भाग – 9

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव विरचित प्रवचनसार परमागम
पर हुए परमपूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के गुजराती
प्रवचनों का हिन्दी अनुवाद
(गाथा 201 से 231 तक)

अनुवादक

देवेन्द्रकुमार जैन
बिजौलियाँ – भीलवाड़ा (राज.)

प्रकाशक :

वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट
भावनगर (सौराष्ट्र)

प्रथमावृत्ति : 1000 प्रति

न्यौछावर राशि : 25 रुपये

प्रकाशक एवं प्राप्ति स्थान :

- **वीतराग सत् साहित्य प्रसारक ट्रस्ट**
  श्री सत्सुख प्रभावक ट्रस्ट
  580, जूनी माणेकवाड़ी, भावनगर-364001
  फोन : (0278) 423207/2151005
- **गुरु गौरव**
  श्री कुन्दकुन्द कहान जैन साहित्य केन्द्र
  पूज्य सोगानीजी मार्ग, सोनगढ़
- **तीर्थधाम मंगलायतन**
  अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216, (महामायानगर) उ.प्र.
- **श्री खीमजीभाई गंगर (मुम्बई) :** (022) 26161591
  श्री डोलरभाई हेमाणी (कोलकाता) : (033) 24752697
  अमी अग्रवाल (अहमदाबाद):(079) 25450492, 9377148963

टाइपसैटिंग :
विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़
vivekapal78@gmail.com

मुद्रण व्यवस्था :
भगवती ऑफसेट
15-सी, वंशीधर मिल कम्पाउण्ड
बारडोलपुरा, अहमदाबाद

प्रकाशकीय

श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत पञ्च परमागमों में प्रवचनसार शास्त्र द्वितीय श्रुतस्कन्ध के सर्वोत्कृष्ट आगमों में से एक है। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य की महिमा दर्शानेवाले अनेक शिलालेख आज भी विद्यमान हैं। उनके द्वारा लिखित शास्त्र, साक्षात् गणधरदेव के वचनों जितने ही प्रमाणभूत माने जाते हैं।

महाविदेहक्षेत्र में विद्यमान त्रिलोकनाथ वीतराग सर्वज्ञ परमदेवाधिदेव श्री सीमन्धर भगवान की प्रत्यक्ष दिव्यदेशना सुनकर, भरतक्षेत्र में आकर भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने अनेक शास्त्रों की रचना की है। जिनशासन के अनेक मुख्य सिद्धान्तों के बीज इस प्रवचनसार शास्त्र में विद्यमान है। पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी इस ग्रन्थ के प्रवचनों में फरमाते हैं – प्र + वचन + सार। प्र अर्थात् दिव्यवचन। जो दिव्यध्वनि – तीन लोक के नाथ परमात्मा की दिव्यध्वनि, जो ओमध्वनि है – वह यहाँ कहते हैं। अत: यह प्रवचनसार ग्रन्थ है, वह भगवान श्री सीमन्धरस्वामी के दिव्य सन्देश ही हैं। तीन विभाग में विभाजित हुए इस ग्रन्थ में वस्तुस्वरूप को समझाते हुए मूलभूत सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ है। जो मुमुक्षु जीव को महामिथ्यात्वरूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिये दिव्यप्रकाश समान ही है।

महामिथ्यात्व से प्रभावित इस दुषम काल में ऐसे सर्वोत्कृष्ट परमागमों के सिद्धान्त समझने की सामर्थ्य अज्ञानी जीवों में कहाँ थी ? परन्तु भरतक्षेत्र के अहो भाग्य से तथा भव्यजीवों के उद्धार के लिये इस मिथ्यात्व के घोर तिमिर को नष्ट करने के लिये एक दिव्यप्रकाश हुआ! वह है कहान गुरुदेव!! पूज्य गुरुदेवश्री इस काल का एक अजोड़ रत्न हैं! जिन्होंने स्वयं के ज्ञान प्रवाह द्वारा गूढ़ परमागमों के रहस्य समझाये। जिनके घर में आगम उपलब्ध थे, उन्हें भी आगम समझने की शक्ति नहीं थी, ऐसे इस दुषम काल में पूज्य गुरुदेवश्री के परम प्रभावनायोग से घर-घर में मूलभूत परमागमों के स्वाध्याय की प्रणाली शुरु हुई। द्रव्य-गुण-पर्याय, उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य, निश्चय-व्यवहार, उपादान-निमित्त इत्यादि अनेकानेक वस्तुस्वरूप को स्पष्ट करते हुए सिद्धान्तों का पूज्य गुरुदेवश्री ने प्रकाश किया है।

प्रशममूर्ति पूज्य बहिनश्री चम्पाबेन के वचनानुसार 'पूज्य गुरुदेवश्री इस काल का एक अचम्भा ही हैं।' पूज्य गुरुदेवश्री को श्रुत की लब्धि थी। पञ्चम काल में निरन्तर अमृत झरती

गुरुदेवश्री की वाणी भगवान का विरह भुलाती है। इत्यादि अनेकानेक बहुमान सूचक वाक्य पूज्य गुरुदेवश्री की असाधारण प्रतिभा को व्यक्त करते हैं।

ऐसे भवोदधि तारणहार, निष्कारण करुणाशील, अध्यात्ममूर्ति पूज्य गुरुदेवश्री ने अनेक मूल परमागमों पर प्रवचन प्रदान करके दिव्य अमृतधारा बरसायी है। उन अनेक शास्त्रों में से एक प्रवचनसार जैसे गूढ़ परमागम पर पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन प्रकाशित करने का महान सौभाग्य वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट को प्राप्त हुआ है। प्रवचनसार शास्त्र पर पूज्य गुरुदेवश्री के कुल 274 प्रवचन हुए हैं। मूल परमागम तीन अधिकारों में विभाजित है। उनमें अन्य अधिकारों के विभाग भी किये गये हैं जो प्रवचनसार शास्त्र की अनुक्रमणिका में दिये गये हैं। तद्नुसार 274 प्रवचनों को समाहित करने के लिये कुल ग्यारह भागों में प्रकाशित किया जायेगा। इस नवे भाग में कुल 19 प्रवचन हैं। जिसमें गाथा-201 से 231 तक का समावेश होता है। ये गाथाएँ चरणानुयोगसूचक चूलिका के आचरण-प्रज्ञापन अन्तराधिकार में समाहित होती हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ के स्वाध्याय में सरलता रहे, तदर्थ मूल सूत्रकार श्रीमद् भगवत् कुन्दकुन्दाचार्यदेव की प्राकृत गाथायें, सूत्र टीकाकार आचार्य भगवान श्रीमद् भगवत् अमृतचन्द्राचार्यदेव की तत्त्वप्रदीपिका टीका तथा श्रीमद् भगवत् जयसेनाचार्यदेव की तात्पर्यवृत्ति टीका संस्कृत में दी गयी है। तदुपरान्त तीर्थधाम मङ्गलायतन द्वारा प्रकाशित प्रवचनसार परमागम के हरिगीत दिये गये हैं। साथ ही हिन्दी टीका भी समायोजित की गयी है।

समादरणीय सिद्धान्तनिष्ट जिनवाणी रहस्यज्ञ पूज्यभाईश्री शशिभाई के मार्गदर्शन में इससे पहले प्रवचन नवनीत भाग 1-4 प्रकाशित किये गये हैं। उसी अनुसार इन प्रवचनों के संकलन में भी पूर्ण सावधानी रखकर पूज्य गुरुदेवश्री की वाणी अक्षरश: सलामत रहे तथा भावों का प्रवाह भी यथावत् रहे, यह प्रयास किया गया है। पूज्य गुरुदेवश्री के सभी प्रवचन प्रकाशित हों ऐसी भाईश्री की भावना थी। तद्र्थ सभी प्रवचन कम्प्यूटर में पुस्तकाकाररूप आ जायें ऐसी भी उनकी शोध चलती थी। यह बात उनकी पूज्य गुरुदेवश्री के प्रति भक्तिभावना को प्रदर्शित करती है। इसलिए इस भावना का अनुसरण करके यह कार्य किया जा रहा है। अत: इस प्रसंग पर उनके उपकार का स्मरण करके उनके चरणों में वन्दन करते हैं।

वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट की नीति अनुसार इन प्रवचनों को सर्व प्रथम ओडियो कैसेट से अक्षरश: लिखा जाता है। तत्पश्चात् इन प्रवचनों का कैसेट सुनते-सुनते सम्पादन किया जाता है। वाक्य रचना को पूर्ण करने के लिये कोष्ठक भी भरा जाता है। जहाँ-जहाँ व्यक्तिगत सम्बोधन किया गया है अथवा व्यक्तिगत बात की गयी है वह इसमें नहीं ली गयी है। पूर्णरूप से

प्रवचन तैयार होने के बाद एक बार अन्य मुमुक्षु द्वारा उन्हें कैसेट के साथ मिलान किया जाता है। जिससे किसी भी प्रकार की भूल न रह पाये। इसके फलस्वरूप प्रवचन सुधा, भाग-9 प्रकाशित करते हुए हमें अत्यन्त हर्ष होता है।

इन प्रवचनों के प्रकाशन में जिन-जिन मुमुक्षुओं का सहयोग प्राप्त हुआ है, उनका भी यहाँ आभार प्रदर्शित करते हैं। प्रस्तुत प्रवचन ग्रन्थ का हिन्दी रूपान्तरण एवं एक बार पुनः सी.डी. प्रवचन से मिलान करने के लिये पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन, बिजौलियाँ (राजस्थान) का आभार व्यक्त करते हैं।

प्रस्तुत ग्रन्थ की सुन्दर टाईप सेटिंग के लिये विवेककुमार पाल, विवेक कम्प्यूटर्स, अलीगढ़ तथा सुन्दर मुद्रण कार्य के लिये मैसर्स भगवती आफसेट का आभार व्यक्त करते हैं।

इन प्रवचनों के प्रकाशन में प्रमादवश या अजागृतिवश कोई क्षति रह गयी हो तो सर्व जिनेन्द्र भगवान से, आचार्य भगवन्तों से, जिनवाणी माता से तथा सर्व सत्पुरुषों से शुद्ध अन्तःकरणपूर्वक क्षमा चाहते हैं।

अन्ततः इन प्रवचनों की दिव्यदेशना को अन्तर में ग्रहण करके। सभी जीव शीघ्र आत्महित को प्राप्त करें - ऐसी भावना के साथ। विराम लेते हैं।

ट्रस्टीगण

वीतराग सत्साहित्य प्रसारक ट्रस्ट

भावनगर

अनुक्रमणिका

क्रम संख्या	गाथा नम्बर	प्रवचन नम्बर	पृष्ठ संख्या
१	२०१, २०२	२०१	५
२	२०२	२०२	२७
३	२०२–२०४	२०५	४५
४	२०४–२०६	२०६	६८
५	२०४–२०६	२०७	८१
६	२०५–२०७	२०८	१०५
७	२०७	२०९	१२८
८	२०८–२०९	२१०	१४८
९	२०८–२१२	२११	१६५
१०	२१२–२१४	२१२	१८७
११	२१४–२१५	२१३	२०७
१२	२१६–२१७	२१४	२२८
१३	२१८	२१५	२४९
१४	२१८–२२०	२१६	२६७
१५	२२१–२२२	२१७	२९३
१६	२२३		३०९
१७	२२४		३१४
१८	२२५		३२१
१७	२२८	२२१	३४४
१८	२२९–२३०	२२२	३६३
१९	२३१	२२३	३८८

श्री सद्‌गुरुदेव-स्तुति

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु कहान तुं नाविक मळ्यो।

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना।
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां।

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिद्‌घन विषे कांई न मळे।

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयु 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
- रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां-अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा।

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं।

(स्त्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं, - मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

आत्मार्थी मुमुक्षु के लिए पूज्य गुरुदेवश्री का सन्देश

वीतराग वाणी का तात्पर्य : स्व-सन्मुखता

- आत्मा, परद्रव्य का कर्ता या भोक्ता नहीं - ऐसा बताकर परद्रव्य का कर्ता-भोक्तापना छुड़ाकर, स्व-सन्मुखता कराना है।

- विकार का कर्ता कर्म नहीं है - ऐसा कहकर कर्माधीन दृष्टि छुड़ाना है।

- विकार का कर्ता कर्म है, जीव नहीं है; कर्म व्यापक होकर विकार करता है - ऐसा कहकर एक समय के उपाधिभाव से भेदज्ञान कराकर, द्रव्य पर दृष्टि कराना है।

- तत् समय की योग्यता से जो विकार होनेवाला था, वही हुआ है - ऐसा कहकर एक समय के विकार का लक्ष्य छुड़ाकर, दृष्टि को द्रव्य पर लगाना है।

- विकार भी जो क्रमबद्ध में था, वही हुआ है - इस कथन से क्रमबद्धपर्याय के स्वकाल का सत् परिणमन व विकार का अकर्तापना बताकर, ज्ञातास्वभाव की दृष्टि कराना है।

- निर्मलपरिणाम भी क्रमबद्ध हैं - ऐसा कहकर शुद्धपर्याय के एक अंश का लक्ष्य छुड़ाकर, त्रिकाली ध्रुव का लक्ष्य कराना है।

- पर्याय का कर्ता परद्रव्य नहीं है - ऐसा कहकर पर से दृष्टि हटाकर स्वद्रव्य में लगाना है।

- पर्याय का कर्ता स्वद्रव्य भी नहीं है, पर्याय अपने षट्कारक से स्वतन्त्र होती है - इस प्रकार पर्याय की स्वतन्त्रता बताकर, उसका लक्ष्य छुड़ाकर, दृष्टि को द्रव्य-सन्मुख कराना है।

- विकार या निर्मलपर्याय का कर्ता ध्रुव द्रव्य नहीं है, पर्याय ही पर्याय का कर्ता है। ध्रुव द्रव्य, बन्ध-मोक्ष परिणाम का कर्ता भी नहीं है - ऐसा बताकर पर्याय की सन्मुखता छुड़ाकर, ध्रुव की सन्मुखता कराना है।

ॐ

नमः श्री सिद्धेभ्यः

प्रवचन सुधा

(प्रवचनसार प्रवचन)

भाग - ९

- ३ -

चरणानुयोगसूचक चूलिका

(आचरण प्रज्ञापन)

गाथा - २०१

अथ परेषां चरणानुयोगसूचिका चूलिका।

तत्र -

द्रव्यस्य सिद्धौ चरणस्य सिद्धिः
द्रव्यस्य सिद्धिश्चरणस्य सिद्धौ।
बुद्ध्वेति कर्माविरताः परेऽपि
द्रव्याविरुद्धं चरणं चरन्तु।। १३।।

इति चरणाचरणे परान् प्रयोजयति

`एस सुरासुरमणुसिंदबंदिदं धोदघाइकम्ममलं। पणमामि बहुमाणं तित्थं धम्मस्स कत्तारं। । सेसे पुण तित्थयरे ससव्वसिद्धे विसुद्धसब्भावे। समणे य णाणदंसण-चरितत्ततववीरियायायरे। ते ते सव्वे समगं समगं पत्तेगमेव पत्तेगं। वंदामि य वट्टंते अरहंते माणसे खेत्ते।।'

एवं पणमिय सिद्धे जिणवरवसहे पुणो पुणो समणे।
पडिवज्जदु सामण्णं जदि इच्छदि दुक्खपरिमोक्खं।।२०१।।

एवं प्रणम्य सिद्धान् जिनवरवृषभान् पुनः पुनः श्रमणान्।
प्रतिपद्यतां श्रामण्यं यदीच्छति दुःखपरिमोक्षम्।।२०१।।

यथा ममात्मना दुःखमोक्षार्थिना, `किच्चा अरहंताणं सिद्धाणं तह णमो गणहराणं। अज्झावयवरग्गाणं साहूणं चेव सव्वेसिं।। तेसिं विसुद्धदंसणणाणपहाणासमं समासेज्ज। उवसंपयामि सम्मं जत्तो णिव्वाणसंपत्ती।।' इति अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसाधूनां प्रणतिवन्दनात्मक-नमस्कारपुरःसरं विशुद्धदर्शनज्ञानप्रधानं साम्यनाम श्रामण्यमवान्तरग्रन्थसन्दर्भोभयसम्भावितसौस्थित्यं स्वयं प्रतिपन्नं, परेषामात्मापि यदि दुःखमोक्षार्थी तथा तत्प्रतिपद्यताम्। यथानुभूतस्य तत्प्रति-पत्तिवर्त्मनः प्रणेतारो वयमिमे तिष्ठाम इति।।२०१।।

कार्य प्रत्यत्रैव ग्रन्थः समाप्त इति ज्ञातव्यम्। कस्मादिति चेत्। `उवसंपयामि सम्मं' इति प्रतिज्ञासमाप्तेः। अतःपरं यथाक्रमेण सप्ताधिकनवतिगाथापर्यन्तं चूलिकारूपेण चारित्राधिकार-व्याख्यानं प्रारभ्यते। तत्र तावदुत्सर्गरूपेण चारित्रस्य संक्षेपव्याख्यानम्। तदनन्तरमपवादरूपेण तस्यैव चारित्रस्य विस्तरव्याख्यानम्। ततश्च श्रामण्यापरनाममोक्षमार्गव्याख्यानम्। तदनन्तरं शुभोपयोग-व्याख्यानमित्यन्तराधिकारचतुष्टयं भवति। तत्रापि प्रथमान्तराधिकारे पञ्च स्थलानि। `एवं पणमिय सिद्धे' इत्यादिगाथासप्तकेन दीक्षाभिमुखपुरुषस्य दीक्षाविधानकथनमुख्यतया प्रथमस्थलम्। अतःपरं `वदसमिदिंदिय' इत्यादि मूलगुणकथनरूपेण द्वितीयस्थले गाथाद्वयम्। तदनन्तरं गुरुव्यवस्थाज्ञापनार्थ `लिंगग्गहणे' इत्यादि एका गाथा, तथैव प्रायश्चितत्तकथनमुख्यतया `पयदिम्हि' इत्यादि गाथाद्वयमिति समुदायेन तृतीयस्थले गाथात्रयम्। अथाचारादिशास्त्रकथितक्रमेण तपोधनस्य संक्षेपसमाचारकथनार्थं `अधिवासे व' इत्यादि चतुर्थस्थले गाथात्रयम्। तदनन्तरं भावहिंसाद्रव्यहिंसापरिहारार्थ `अपयत्ता वा चरिया' इत्यादि पञ्चमस्थले सूत्रषट्कमित्येकविंशतिगाथाभिः स्थलपञ्चकेन प्रथमान्तराधिकारे समुदायपातनिका। तद्यथा - अथासन्नभव्यजीवांञ्चारित्रे प्रेरयति - **पडिवज्जदु** प्रतिपद्यतां स्वीकरोतु। किम्। **सामण्णं** श्रामण्यं चारित्रम्। यदि किम्। **इच्छादि अदि दुक्खपरिमोक्खं** यदि चेत् दुःखपरिमोक्षमिच्छति। स कः कर्ता। परेषामात्मा। कथं प्रतिपद्यताम्। **एवं** एवं पूर्वोक्तप्रकारेण `एस

सुरासुरमणुसिंद' इत्यादिगाथापञ्चकेन पञ्चपरमेष्ठिन-नमस्कारं कृत्वा ममात्मना दुःखमोक्षार्थिनान्यैः पूर्वोक्तभव्यैर्वा यथा तच्चारित्रं प्रतिपन्नं तथा प्रतिपाद्यताम्। किं कृत्वा पूर्वम्। **पणमिय** प्रणम्य। कान्। **सिद्धे** अञ्जनपादुकादिसिद्धिविलक्षण-स्वात्मोपलब्धिसिद्धिसमेतसिद्धान्। **जिणवरवसहे** सासादनादिक्षीणकषायान्ता एकदेशजिना उच्यन्ते, शेषाश्चानागारकेवलिनो जिनवरा भण्यन्ते, तीर्थंकरपरमदेवाश्च जिनवरवृषभा इति, तान् जिनवरवृषभान्। न केवलं तान् प्रणम्य, **पुणो पुणो समणे** चिच्चमत्कारमात्रनिजात्म-सम्यक्श्रद्धानज्ञानानुष्ठानरूपनिश्चयरत्नत्रयाचरणप्रतिपादन-साधकत्वोद्यतान् श्रमणशब्दवाच्यानाचार्यो-पाध्यायसाधूंश्च पुनः पुनः प्रणम्येति। किंच पूर्वं ग्रन्थप्रारम्भकाले साम्यमाश्रयामीति शिवकुमारमहाराजनामा प्रतिज्ञां करोतीति भणितम्, इदानीं तु मात्मना चारित्रं प्रतिपन्नमिति पूर्वपरविरोधः। परिहारमाह-ग्रन्थप्रारम्भात्पूर्वमेव दीक्षा गृहीता तिष्ठति, परं किंतु ग्रन्थकरणव्याजेन क्वाप्यात्माने भावनापरिणतं दर्शयति, क्वापि शिवकुमारमहाराजं, क्वाप्यन्यं भव्यजीवं वा। तेन कारणेनात्र ग्रन्थे पुरुषनियमो नास्ति, कालनियमो नास्तीत्यभिप्रायः।। २०१।।

अब, दूसरों को चरणानुयोग की सूचक चूलिका[१] है।

[उसमें प्रथम श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव, श्लोक के द्वारा अब इस – आगामी गाथा की उत्थानिका करते हैं।]

[अर्थ –] द्रव्य की सिद्धि में चरण की सिद्धि है, और चरण की सिद्धि में द्रव्य की सिद्धि है – यह जानकर, कर्मों से (शुभाशुभभावों से) अविरत दूसरे भी, द्रव्य से अविरुद्ध चरण (चारित्र) का आचरण करो।

– इस प्रकार (श्रीमद् भगवत्कुन्दकुन्दाचार्यदेव इस आगामी गाथा के द्वारा) दूसरों के चरण (चारित्र) के आचरण करने में युक्त करते (जोड़ते) हैं।

[अब गाथा के प्रारम्भ करने से पूर्व उसकी सन्धि के लिये श्री अमृतचन्द्राचार्यदेव ने पंच परमेष्ठी को नमस्कार करने के लिए निम्न प्रकार से ज्ञानतत्त्व–प्रज्ञापन अधिकार की प्रथम तीन गाथाएँ लिखी हैं—

एस सुरासुरमणुसिंदवंदिदंधोदघाइकम्ममलं।
पणमामि वड्ढमाणं तित्थं धम्मस्स कत्तारं॥

१. **चूलिका = जो शास्त्र में नहीं कहा गया है, उसका व्याख्यान करना, अथवा कहे गये का विशेष व्याख्यान करना या दोनों का यथायोग्य व्याख्यान करना।**

सेसे पुण तित्थयरे ससव्वसिद्धे विसुद्धसब्भावे।
समणे य णाणदंसणचरित्ततववीरियायारे॥
ते ते सव्वे समगं समगं पत्तेगमेव पत्तेगं।
वंदामि य वट्टंते अरहंते माणुसे खेत्ते॥]

[अब, इस अधिकार की गाथा प्रारम्भ करते हैं :-]

इस रीत प्रणमी सिद्ध, जिनवर-वृषभ, मुनि को पुनि-पुनि।
श्रामण्य अंगीकृत करो, अभिलाष जो दुःख-मुक्ति की॥

अन्वयार्थ - **[यदि दुःखपरिमोक्षम् इच्छति]** यदि दुःखों से परिमुक्त होने की (छुटकारा पाने की) इच्छा हो तो, **[एवं]** पूर्वोक्त प्रकार से (ज्ञानतत्व-प्रज्ञापन की प्रथम तीन गाथाओं के अनुसार) **[पुनः पुनः]** बारम्बार **[सिद्धान्]** सिद्धों को, **[जिनवरवृषभान्]** जिनवरवृषभों को (अरहन्तों को) तथा **[श्रमणान्]** श्रमणों को **[प्रणम्य]** प्रणाम करके, **[श्रामण्यं प्रतिपद्यताम्]** (जीव) श्रामण्य को अंगीकार करो।

टीका - जैसे, दुःखों से मुक्त होने के अर्थी मेरे आत्मा ने - 'किच्चा[१] अरहंताणं सिद्धाणं तह णमो गणहराणं। अज्झावयवग्गाणं साहूणं चेव सव्वेसिं॥ तेसिं विसुद्धदं-सणणाणपहाणासमं समासेज्ज। उवसंपयामि सम्मं जत्तो णिव्वाणसंपत्ती॥' इस प्रकार अरहन्तों, सिद्धों, आचार्यों, उपाध्यायों तथा साधुओं को प्रणाम-वन्दनात्मक[२] नमस्कारपूर्वक विशुद्धदर्शनज्ञानप्रधान[३] साम्यनामक श्रामण्य को - जिसका इस ग्रन्थ में कहे हुए (ज्ञानतत्त्व-प्रज्ञापन और ज्ञेयतत्त्वप्रज्ञापन नामक) दो अधिकारों की रचना द्वारा सुस्थितपना हुआ है। उसे स्वयं अंगीकार किया, उसी प्रकार दूसरों का आत्मा भी, यदि दुःखों से मुक्त होने का अर्थी (इच्छुक) हो तो, उसे अंगीकार करे। उस (श्रामण्य) को अंगीकार करने का जो यथानुभूत[१] मार्ग है, उसके प्रणेता हम यह खड़े हैं॥ २०१॥

---

१. यह, ज्ञानतत्वप्रज्ञापन की चौथी और पाँचवीं गाथाएँ हैं।

२. नमस्कार प्रणाम - वन्दनमय है।

३. विशुद्धदर्शनज्ञानप्रधान = जिसमें विशुद्ध दर्शन और ज्ञान प्रधान है ऐसा। [साम्य नामक श्रामण्य में विशुद्ध दर्शन और ज्ञान प्रधान है।]

प्रवचन नं. २०१ ज्येष्ठ कृष्ण १३, गुरुवार, १२ जून १९६९

यह 'प्रवचनसार' 'चरणानुयोग अधिकार'। आचार्य महाराज 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव', 'अमृतचन्द्राचार्यदेव' कहते हैं, अरे जीवों! जो दु:खों से मुक्त होने का इच्छुक हो, दु:ख से मुक्त होने की अभिलाषा, भाव हो तो उसे अंगीकार करो, श्रमणपना अंगीकार करो। उस श्रमण को अंगीकार करने का... यहाँ चरणानुयोग अधिकार है न! सम्यग्दर्शन अर्थात् सम्यग्ज्ञान, स्व-अनुभव सहित की बात है।

प्रश्न - इसमें लिखा है?

समाधान - लिखा है न, पीछे आयेगा, शब्दश: आयेगा। जिसे ज्ञानज्योति प्रगट हुई है, (ऐसा आयेगा)। विदाई में उसे मांगेगे। मेरी ज्ञानज्योति मेरे से प्रगट हुई है, उसे मांगते हैं। 'चरणानुयोग' का-व्यवहार का अधिकार है न!

ओ...हो...! संसार के दु:ख से, संसारदु:ख अर्थात ? मिथ्यात्व और राग-द्वेष का जो दु:ख है, उस दु:ख से मुक्त होने का भाव है (तो) साधुपना अंगीकार करो। उसे पहले जानना तो पड़े कि उसकी विधि कैसी है? श्रामण्य अंगीकार करने का जो यथानुभूत मार्ग है, जैसा हमने अनुभव किया है, देखो! हमारे अनुभव में आया है कि मुनिपना ऐसा है। छठवें गुणस्थान में आनन्द की भूमिका, प्रचुर स्वंसवेदन की दशा हमें हुई है, यथानुभूत है और अनुभूति की है; और उस क्षण में ऐसी दशा में पंच महाव्रत आदि का या पंचाचार का विकल्प कैसा है-वह हमारी निश्चय अनुभूतिसहित व्यवहार को हम जानते हैं। यह हमारा यथानुभूत मार्ग, **उसके प्रणेता...** देखो! उसे कहनेवाले, लो आया! प्रणेता - उसे कहनेवाले।

(कोई) कहे कि आत्मा कह सकता नहीं न? वह व्यवहार का चरणानुयोग की कथनपद्धति में ऐसा आता ही है। प्रणेता अर्थात् हमारा भाव, साधुपने का हमको अनुभव है, छठवें गुणस्थान में आनन्द और प्रचुर संवेदन कितना है, यह हमें प्रगट है; और उस भूमिका में पंच आचारादि का विकल्प ऐसा है, यह भी हमें पता है। उसके प्रणेता, अनुभव किया है, ऐसे हम उसे कहते हैं, ऐसा कहते हैं। ऐसा मुनिपना नहीं है और मुनिपने की बात करते हैं - ऐसा नहीं।

१. यथानुभूत = जैसा (हमने) अनुभव किया है वैसा।

प्रणेता – कहनेवाले **हम यह खड़े हैं।** है? **हम यह खड़े हैं।** आ ऊभा! हमारी गुजराती भाषा में (ऐसा है)। आ...हा...! इस मार्ग का अनुभव कैसा है, यह हमें ज्ञात है। उसे कहनेवाले हम खड़े हैं। अब, तुम सुनो! ऐसा कहते हैं। समझ में आया? भगवान कहते हैं और हमने सुना है तो कहते हैं – ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। भगवान ऐसा कहते थे कि साधुपना ऐसा था – ऐसे नहीं। हमारे अनुभव में आया है। वीतरागपरिणति छठवें गुणस्थान में कैसी (होती) है, यह हमें वर्तमान (में) प्रगट है। उस पूर्वक हम विकल्प से इस शास्त्र को कहना चाहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया?

श्वेताम्बर में तो ऐसा आता है,.... 'गौतम' कहते हैं कि हे 'सुधर्म!' अथवा 'सुधर्मस्वामी' कहते हैं कि 'जंबू'! भगवान ने ऐसा कहा था, ऐसा तुम्हें हम कहते हैं – ऐसा आता है।....हे आयुष्यवन्त आत्मा! मैंने (ऐसा) सुना है।....भगवन्त ऐसा कहते थे, ऐसा हम तुम्हें कहते हैं। यहाँ ऐसा नहीं है। भगवान ऐसा कहते थे, (वही) हम कहते हैं – ऐसा नहीं। देखो! पद्धति, शैली। वह श्वेताम्बर के 'आचारांग' की शैली का पहला शब्द है। सारा पूरा अकेला व्यवहार प्रधान कथन है।

यह तो निश्चय की अनुभूतिसहित प्रचुर स्वसंवेदन (में आकर कहते हैं)। वह 'समयसार' की पाँचवीं गाथा में आया है। हमारा यह वैभव कैसे प्रगट हुआ है? 'समयसार' (की) पाँचवीं गाथा में आया न? यह तो 'प्रवचनसार' है। पाँचवीं गाथा में (आया है)। प्रचुर स्वसंवेदन से जिसका जन्म है, ऐसा है। देखो! संस्कृत टीका। 'समयसार' की बात है, हाँ! यह 'समयसार' है न? देखो! प्रचुर है।

देखो! **उसकी मुद्रा से...** देखो! **सुन्दर आनन्द है, उसकी मुद्रा से युक्त प्रचुरस्वसंवेदनस्वरूप स्वसंवेदन से निज वैभव का जन्म हुआ है।** है? देखो! आहा...हा...! कहते हैं, **निरन्तर झरता हुआ....** भगवान आनन्द का पर्वतस्वरूप, उसकी अन्तर में हमारी दृष्टि और रमणता इतनी प्रगट हुई है कि **निरन्तर झरता हुआ....** हमारे शुद्ध स्वभाव में से निरन्तर आनन्द झरता है। अतीन्द्रिय आनन्द का झरना बहता है। झरना समझते हैं? पर्वत में से पानी (गिरता है, उसे झरना कहते हैं)। ऐसे भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का डुंगर – पर्वत, उसे हम स्पर्श करके, हमारी दशा में अतीन्द्रिय... अतीन्द्रिय आनन्द का झरना अन्तर (में) बहता है।

प्रश्न – कौन से गुणस्थान में ऐसा होता है ?

समाधान – छठा। 'समयसार' पाँचवीं गाथा में ऐसा (कहा) है, यहाँ नहीं। वह पाँचवीं गाथा (है)।

निरन्तर झरता.... है न ? संस्कृत में भी है, देखो ! **अनवरतस्यंदिसुन्दरानंदमुद्रितामंद-संविदात्मकस्वसंवेदनजन्मा** यह संस्कृत का वाक्य है। समझ में आया ? कहनेवाले हम कौन हैं ? और कैसी दशा में हम है, उसका वर्णन करते हैं। आ...हा... ! भगवान कहते हैं, (उसे) हम कहते हैं, ऐसी बात नहीं।

कहते हैं कि हमें निरन्तर आत्मा स्वाद में आता है। ओ...हो...हो... ! अतीन्द्रिय आनन्द भगवान ! सम्यग्दर्शनपूर्वक छठवें गुणस्थान में चारित्रदशा है तो चौथे और पाँचवें (गुणस्थान में) जो आनन्द आता है, उससे विशेष आनन्द छठवें में आता है। **स्वाद में आता हुआ जो सुन्दर आनन्द....** दुनिया कल्पना से स्वर्ग का सुख मानती है, वह तो जहर, दुःख है। यह तो सुन्दर आनन्द (है)। रागरहित अनाकुल प्रभु आत्मा के आनन्द का वेदन। उसकी मुद्रा (अर्थात्) छाप है। सुन्दर आनन्द की छाप है ? किसमें ?

प्रचुरस्वसंवेदनस्वरूप स्वसंवेदन से... प्रचुर-स्वसंवेदनस्वरूप स्वसंवेदन से। हमारे आनन्द में आत्मा का संवेदन (है)। देखो ! यह मुनि की भूमिका ! **प्रचुरस्वसंवेदनस्वरूप स्वसंवेदन...** ऐसे **निज वैभव का जन्म हुआ है।** हमारे आत्मा के आनन्द का वैभव प्रगट हुआ है। यह वैभव (है)। धूल का वैभव, वह वैभव नहीं। मिट्टी-धूल, बँगला-हजीरा (वह कोई वैभव नहीं है)। समझ में आया ? आ...हा... !

हमारा निज वैभव, जिसमें अनाकुल आनन्द की मुद्रा – छाप है, रजिस्टर (ट्रेडमार्क) है। रजिस्टर है, ऐसा कहते हैं। देखो ! मुद्रा पोस्ट में नहीं होती ? छाप लगाते हैं न ? ऐसे हमारे वेदन में आनन्द की छाप है। सुन्दर आनन्द की छाप है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

प्रश्न – सातवें गुणस्थान की बात है न ?

समाधान – अरे... ! छठवें की बात है। यह विकल्प है, उस समय की तो बात है। लिखते समय विकल्प है, फिर भी आत्मा का आनन्द तो वहाँ झरता है और वेदन में है ही। निरन्तर ! विकल्प हो। हो तो हो, विकल्प भिन्न है। आहा...हा... ! समझ में आया ? ऐसे

(निज) **वैभव से जन्म हुआ है।** वह यहाँ कहते हैं, देखो!

मुमुक्षु – सुन्दर आनन्द की छापवाली दशा है।

पूज्य गुरुदेवश्री – मुद्रा – छाप है। सुन्दर आनन्द (की) जिसमें मुद्रा – छाप पड़ी है। रजिस्टर किया है। हमारा आनन्द हमारे पास वेदन में है, ऐसा रजिस्टर कर दिया। समझ में आया? आहा...हा...! देखो तो सन्तों की कथन की पद्धति!

यहाँ कहते हैं, **यथानुभूत मार्ग है....** यथानुभूत मार्ग है। **उसके प्रणेता हम यह खड़े हैं।** यह खड़े हैं, आ ऊभा! हमारी गुजराती भाषा में (ऐसा कहते हैं)।

प्रश्न – प्रणेता अर्थात्?

समाधान – कहनेवाला। ऐसे प्रणेता – कहनेवाले हम खड़े हैं। आहा...हा...! समझ में आया? मात्र बात करते हैं, ऐसा नहीं – ऐसा कहते हैं। मात्र कथन करनेवाले हैं – ऐसा नहीं। आहा...हा...!

प्रणेता हम यह खड़े हैं। हिन्दी में ऐसा लेना है। 'खड़े हुए हैं' उसके बजाय 'खड़े हैं' इतना चाहिए। खड़े हैं, बस खड़े हैं। 'हुए हैं', उसके बदले 'खड़े हैं' (ऐसा होना चाहिए)। भाषा बराबर ठीक नहीं है। 'यह खड़े हैं।' (ठीक है)। 'खड़े हुए हैं' क्या? है। मार्ग जैसा है, ऐसा हमको अनुभव है और उसी मार्ग की हम कथनी करते हैं। यथानुभूत – हमारे अनुभव में हमारी दशा (है) और उस दशा में विकल्प कैसा है? समझ में आया? आहा...हा...! देखो तो सही, चरणानुयोग (अधिकार की) शुरुआत करने में इतनी बात करते हैं।

छठवें गुणस्थान की भूमिका में हमें कितनी दशा, अनुभव है यह हमको (प्रगट) है। और उस समय में विकल्प की दशा, व्यवहार कैसा है, यह भी हमें ख्याल है, हम जानते हैं। समझ में आया? वह यथानुभूत अनुभूत मार्ग तुम्हें कहते हैं। बस, वह पहली गाथा (पूरी) हुई।

गाथा - २०२

अथ श्रमणो भवितुमिच्छन् पूर्वं किं किं करोतीत्युपदिशति -

आपिच्छ बंधुवग्गं विमोचिदो गुरुकलत्तपुत्तेहिं।
आसिज्ज णाणदंसणचरित्ततववीरियायारं।।२०२।।

आपृच्छय बन्धुवर्गं विमोचितो गुरुकलत्रपुत्रैः।
आसाद्य ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारम्।।२०२।।

यो हि नाम श्रमणो भवितुमिच्छति स पूर्वमेव बन्धुवर्गमापृच्छते, गुरुकलत्रपुत्रेभ्य आत्मानं विमोचयति, ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचारमासीदति। तथाहि-एवं बन्धुवर्गमापृच्छते, अहो इदंजनशरीरबन्धुवर्गवर्तिन आत्मानः, अस्य जनस्य आत्मा न किञ्चनापि युष्माकं भवतीति निश्चयेन यूयं जानीत; तत आपृष्टा यूयं; अयमात्मा अयोद्भिन्नज्ञानज्योतिः आत्मानमेवात्मनो-ऽनादिबन्धुमुपसर्पति। अहो इदंजनशरीरजनकस्यात्मन्, अहो इदंजनशरीरजनन्या आत्मन्, अस्य जनस्यात्मा न युवाभ्यां जनितो भवतीति निश्चयेन युवां जानीतं; तत इममात्मानं युवां विमुञ्चतं; अयमात्मा अद्योद्भिन्नज्ञानज्योतिः आत्मानमेवात्मनोऽनादिजनकमुपसर्पति। अहो इदंजनशरीररमण्या आत्मन्, अस्य जनस्यात्मानं न त्वं रमयसीति निश्चयेन त्वं जानीहि; तत इममात्माने विमुञ्च; अयमात्मा अद्योद्भिन्नज्ञानज्योतिः स्वानुभूतिमेवात्मनोऽनादिरमणीमुपसर्पति। अहो इदंजनशरीरपुत्रस्यात्मन्, अस्य जनस्यात्मनो न त्वं जन्यो भवसीति निश्चयेन त्वं जानीहि; तत इममात्मानं विमुञ्च; अयमात्मा अद्योद्भिन्नज्ञानज्योतिः आत्मानमेवात्मनोऽनादिजन्यमुपसर्पति। एवं गुरुकलत्रपुत्रेभ्य आत्मानं विमोचयति। तथा अहो कालविनयोपधानबहुमानानिह्नवार्थव्यञ्जन-तदुभयसम्पन्नत्वलक्षणज्ञानाचार, न शुद्धस्यात्मस्त्वमसीति निश्चयेन जानामि, तथापि त्वां तावदासीदामि यावत्त्वत्प्रसादात् शुद्धमात्मानमुपलभे। अहो निःशंकितत्वनिःकाङ्क्षितत्व - निर्विचिकित्सत्वनिर्मूढदृष्टित्वोपबृंहणस्थितिकरणवात्सल्यप्रभावनालक्षण-दर्शनाचार, न शुद्धस्यात्मन-स्त्वमसीति निश्चयेन जानामि, तथापि त्वां तावदासीदामि यावत् त्वत्प्रसादात् शुद्धमात्मानमुपलभे। अहो मोक्षमार्गप्रवृत्तिकारणपञ्चमहाव्रतोपेतकायवाङ्मनोगुप्तीर्या-माषैषणादाननिक्षेपणप्रतिष्ठापनसमिति-लक्षणचारित्राचार, न शुद्धस्यात्मनस्त्वमसीति निश्चयेन जानामि,

तथापि त्वां तावदासीदामि यावत्त्वत्प्रसादात् शुद्धमात्मानमुपलभे। अहो अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यान-रसपरित्यागविविक्त-शय्यासनकायक्लेशप्रायश्चित्तविनयवैयावृत्यस्वाध्याय-ध्यानव्युत्सर्गलक्षणतपआचार, न शुद्धस्यात्मन-स्त्वमसीति निश्चयेन जानामि, तथापि त्वां तावदासीदामि यावत् त्वत्प्रसादात् शुद्धमात्मानपुलभे। अहो समस्तेतराचारप्रवर्तकस्वशक्त्यनिगूहलक्षणवीर्याचार, न शुद्धस्यात्मनस्त्वमसीति निश्चयेन जानामि, तथापि त्वां तावदासीदामि यावत्त्वत्प्रसादात् शुद्धमात्मानुपलभे। एवं ज्ञानदर्शन-चारित्र-तपोवीर्याचारमासीदति च।।२०२।।

अथ श्रमणो भवितुमिच्छन्पूर्वं क्षमितव्यं करोति-'उवट्ठिदो होदि सो समणो' इत्यग्रे षष्ठगाथायां यद्वयाख्यानं तिष्ठति तन्मनसि घृत्वा पूर्वं किं कृत्वा श्रमणो भविष्यतीति व्याख्याति- **आपिच्छ** आपृच्छय पृष्ठा। कम्। **बंधुवग्गं** बन्धुवर्गं गोत्रम्। ततः कथंभूतो भवति। **विमोचिदो** विमोचितस्त्यक्तो भवति। कैः कर्तृभूतैः। **गुरुकलत्तपुत्तेहिं** पितृमातृकलत्रपुत्रैः। पुनरपि किं कृत्वा श्रमणो भविष्यति। **आसिज्ज** आसाद्य आश्रित्य। कम्। **णाणदंसणचरित्ततववीरियायारं** ज्ञानदर्शन-चारित्रतपोवीर्याचारमिति। अथ विस्तरः-अहो बन्धुवर्गपितृमातृकलत्रपुत्राः, अयं मदीयात्मा सांप्रतमुद्भिन्नपरमविवेकज्योतिस्सन् स्वकीयचिदानन्दैकस्वभावं परमात्मानमेव निश्चयनयेनानादिबन्धुवर्गं पितरं मातरं कलत्रं पुत्रं चाश्रयति, तेन कारणेन मां मुञ्चत यूयमिति क्षमितव्यं करोति। ततश्च किं करोति। परमचैतन्यमात्रनिजात्मतत्त्वसर्वप्रकारोपादेयरुचिपरिच्छित्ति-निश्चलानुभूतिसमस्तपरद्रव्येच्छा-निवृत्तिलक्षणतपश्चरणस्वशक्त्यनवगूहनवीर्याचारूपं निश्चयपञ्चाचारमा-चारादिचरणग्रन्थकथित-तत्साधकव्यवहारपञ्चाचारं चाश्रयतीत्यर्थः। अत्र यद्गोत्रादिभिः सह क्षमितव्यव्याख्यानं कृतं तदत्रातिप्रसंगनिषेधार्थम्। तत्र नियमो नास्ति। कथमिति चेत्। पूर्वकाले प्रचुरेण भरतसगररामपाण्डवादयो राजान एव जिनदीक्षां गृह्णन्ति, तत्परिवारमध्ये यदा कोऽपि मिथ्यादृष्टिर्भवति तदा धर्मस्योपसर्गं करोतीति। यदि पुनः कोऽपि मन्यते गोत्रसम्मतं कृत्वा पश्चातपश्चरणं करोमि तस्य प्रचुरेण तपश्चरणेन नास्ति, कथमपि तपश्चरणे गृहीतेऽपि यदि गोत्रादिममत्वं करोति तदा तपोधन एव न भवति। तथाचोक्तम् - 'जो सकलणयररज्जं पुव्वं चइऊण कुणइ य ममतिं। सो णवहि लिंगधारी संजमसारेण णिस्सारो'।। २०२।।

अब, श्रमण होने का इच्छुक पहले क्या-क्या करता है, उसका उपदेश करते हैं-

बन्धुओं से ले विदा, गुरु-पत्नि-पुत्र से छूटके।
दृग-ज्ञान-तप-चारित्र, वीर्याचार अंगीकृत करे॥

अन्वयार्थ - (श्रामण्यार्थी) **[बन्धुवर्गम् आपृच्छ्य]** बन्धुवर्ग से विदा माँगकर

[गुरुकलत्रपुत्रैः विमोचितः] बड़ों से, स्त्री और पुत्र से मुक्त किया हुआ **[ज्ञानदर्शनचारित्रतपोवीर्याचाराम् आसाद्य]** ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार को अंगीकार करके.........

टीका – जो श्रमण होना चाहता है, वह पहले ही बन्धुवर्ग से (सगेसम्बन्धियों से) विदा माँगता है, गुरुजनों (बड़ों) से, स्त्री और पुत्रों से अपने को छुड़ाता है, ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार तथा वीर्याचार को अंगीकार करता है। वह इस प्रकार है:—

बन्धुवर्ग से इस प्रकार विदा लेता है – अहो! इस पुरुष के शरीर के बन्धुवर्ग में प्रवर्तमान आत्माओ! इस पुरुष का आत्मा किंचित्मात्र भी तुम्हारा नहीं है – इस प्रकार तुम निश्चय से जानो। इसलिए मैं तुमसे विदा लेता हूँ। जिसे ज्ञानज्योति प्रगट हुई है, ऐसा यह आत्मा, अपने आत्मारूपी अपने अनादिबन्धु के पास जा रहा है।

अहो! इस पुरुष के शरीर के जनक (पिता) के आत्मा! अहो! इस पुरुष के शरीर की जननी (माता) के आत्मा! इस पुरुष का आत्मा तुम्हारे द्वारा जनित (उत्पन्न) नहीं है, ऐसा तुम निश्चय से जानो। इसलिए तुम इस आत्मा को छोड़ो। जिसे ज्ञानज्योति प्रगट हुई है, ऐसा यह आत्मा, आज आत्मारूपी अपने अनादिजनक के पास जा रहा है। अहो! इस पुरुष के शरीर की रमण (स्त्री) के आत्मा! तू इस पुरुष के आत्मा को रमण नहीं कराता, ऐसा तू निश्चय से जान। इसलिए तू इस आत्मा को छोड़। जिसे ज्ञानज्योति प्रगट हुई है, ऐसा यह आत्मा आज अपनी स्वानुभूतिरूपी अनादि-रमणी के पास जा रहा है। अहो! इस पुरुष के शरीर के पुत्र आत्मा! तू इस पुरुष के आत्मा का जन्य (उत्पन्न किया गया – पुत्र) नहीं है, ऐसा तू निश्चय से जान। इसलिए तू इस आत्मा को छोड़। जिसे ज्ञानज्योति प्रगट हुई है, ऐसा यह आत्मा आज आत्मारूपी अपने अनादि जन्य के पास जा रहा है – इस प्रकार बड़ों से, स्त्री से और पुत्र से अपने को छुड़ाता है।

(यहाँ ऐसा समझना चाहिए कि जो जीव मुनि होना चाहता है, वह कुटुम्ब से सर्व प्रकार से विरक्त ही होता है। इसलिए कुटुम्ब की सम्मति से ही मुनि होने का नियम नहीं है। इस प्रकार कुटुम्ब के भरोसे रहने पर तो यदि कुटुम्ब किसी प्रकार से सम्मति ही नहीं दे तो मुनि ही नहीं हुआ जा सकेगा। इस प्रकार कुटुम्ब को सम्मत करके ही मुनित्व के

धारण करने का नियम न होने पर भी, कुछ जीवों के मुनि होने से पूर्व वैराग्य के कारण कुटुम्ब को समझाने की भावना से पूर्वोक्त प्रकार के वचन निकलते हैं। ऐसे वैराग्य के वचन सुनकर, कुटुम्ब में यदि कोई अल्पसंसारी जीव हो तो वह भी वैराग्य को प्राप्त होता है।)

(अब निम्न प्रकार से पंचाचार को अंगीकार करता है—)

(जिस प्रकार बन्धुवर्ग से विदा ली, अपने को बड़ों से, स्त्री और पुत्र से छुड़ाया) उसी प्रकार - अहो काल, विनय, उपधान, अनिह्नव, अर्थ, व्यंजन और तदुभयसम्पन्न ज्ञानाचार! मैं यह निश्चय से जानता हूँ कि तू शुद्धात्मा का नहीं है; तथापि मैं तुझे तब तक अंगीकार करता हूँ जब तक कि तेरे प्रसाद से शुद्धात्मा को उपलब्ध कर लूँ। अहो निःशंकितत्व, निकांक्षितत्व, निर्विचिकित्सत्व, निर्मूढदृष्टित्व, उपबृंहण, स्थितिकरण, वात्सल्य, और प्रभावनास्वरूप दर्शनाचार! मैं यह निश्चय से जानता हूँ कि तू शुद्धात्मा का नहीं है, तथापि तुझे तब तक अंगीकार करता हूँ जब तक कि तेरे प्रसाद से शुद्धात्मा को उपलब्ध कर लूँ। अहो, मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति के कारणभूत, पंचमहाव्रतसहित काय-वचन-मनगुप्ति और ईर्या-भाषा-एषण-आदाननिक्षेपण-प्रतिष्ठापनसमितिस्वरूप चारित्राचार! मैं यह निश्चय से जानता हूँ कि तू शुद्धात्मा का नहीं है, तथापि तुझे तब तक अंगीकार करता हूँ जब तक कि तेरे प्रसाद से शुद्धात्मा को उपलब्ध कर लूँ। अहो अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन, कायक्लेश, प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्गस्वरूप तपाचार! मैं यह निश्चय से जानता हूँ कि तू शुद्धात्मा नहीं है, तथापि तुझे तब तक अंगीकार करता हूँ जब तक तेरे प्रसाद से शुद्धात्मा को उपलब्ध कर लूँ! अहो समस्त इतर (वीर्याचार के अतिरिक्त अन्य) आचार में प्रवृत्ति करानेवाली स्वशक्ति के अगोपनस्वरूप वीर्याचार! मैं यह निश्चय से जानता हूँ कि तू शुद्धात्मा का नहीं है, तथापि तुझे तब तक अंगीकार करता हूँ, जब तक कि तेरे प्रसाद से शुद्धात्मा को उपलब्ध कर लूँ - इस प्रकार ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार तथा वीर्याचार को अंगीकार करता है।

(सम्यग्दृष्टि जीव अपने स्वरूप को जानता है - अनुभव करता है और अपने को

अन्य समस्त व्यवहारभावों से भिन्न जानता है। जब से उसे स्व-पर का विवेकस्वरूप भेदविज्ञान प्रगट हुआ था, तभी से वह समस्त विभावभावों का त्याग कर चुका है और तभी से उसने टंकोत्कीर्ण निजभाव अंगीकार किया है। इसलिए उसे न तो त्याग करने को रहा है और न कुछ ग्रहण करने को – अंगीकार करने को रहा है। स्वभावदृष्टि की अपेक्षा से ऐसा होने पर भी, वह पर्याय में पूर्वबद्ध कर्मों के उदय के निमित्त से अनेक प्रकार के विभावभावरूप परिणमित होता है। इस विभावपरिणति को पृथक् होती न देखकर वह आकुल-व्याकुल भी नहीं होता और वह सकल विभावपरिणति को दूर करने का पुरुषार्थ किये बिना भी नहीं रहता। सकल विभावपरिणति से रहित स्वभावदृष्टि के बलस्वरूप पुरुषार्थ से गुणस्थानों की परिपाटी के सामान्य क्रमानुसार उसके प्रथम अशुभपरिणति की हानि होती है, और फिर धीरे-धीरे शुभपरिणति भी छूटती जाती है। ऐसा होने से वह शुभराग के उदय की भूमिका में गृहवास का और कुटुम्ब का त्यागी होकर, व्यवहाररत्नत्रयरूप पंचाचार को अंगीकार करता है। यद्यपि वह ज्ञानभाव से समस्त शुभाशुभ क्रियाओं का त्यागी है, तथापि पर्याय में शुभराग नहीं छूटने से वह पूर्वोक्त प्रकार से पंचाचार को ग्रहण करता है।) ॥ २०२ ॥

प्रवचन नं. २०१ का शेष — **ज्येष्ठ कृष्ण १३, गुरुवार, १२ जून १९६९**

अब, श्रमण होने का इच्छुक पहले क्या-क्या करता है, उसका उपदेश करते हैं – साधु होनेवाले की दशा कैसी है और कैसे-कैसे वह प्रार्थना आदि, विदा माँगता है, वह बात करते हैं।

आपिच्छ बंधुवग्गं विमोचिदो गुरुकलत्तपुत्तेहिं।
आसिज्ज णाणदंसणचरित्ततववीरियायारं।। २०२।।

२०२ है न?

बन्धुओं से ले विदा, गुरु-पत्नि-पुत्र से छूटके।
दृग-ज्ञान-तप-चारित्र, वीर्याचार अंगीकृत करे॥

(पहले शब्दार्थ लेते हैं।) **श्रमणार्थी** (अर्थात्) साधुपना, चारित्र का, आनन्द का अर्थी। **बन्धुवर्गम् आपृच्छय बंधुवर्ग से विदा माँगकर..... बड़ों से....** अपने से बड़े हैं उससे। जिसे स्त्री, पुत्रादि हो उसे। सभी को ऐसा नहीं (होता) किन्तु बड़े हैं उससे। जिसे गुरुजन हों (बड़े सदस्य हों) और बड़ों के अलावा जिसे स्त्री, पुत्रादि हैं। सब लेने हैं न? बड़ों से और स्त्री। सामान्य बात में सब आता है। और स्त्री, पुत्र से मुक्त होता हुआ। **ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार और वीर्याचार को अंगीकार करके....** लो!

अब टीका। **जो श्रमण होना चाहता है,....** साधु चारित्रवन्त! आनन्दकन्द केवलज्ञान का कारणरूप साधुपद। ओ...हो...हो....! समझ में आया? साधुपद (अभी भले) न हो परन्तु कैसा लेना है, उसे पहले जानना तो पड़े या नहीं? समझ में आया? 'चारित्रमोह वश लेश न संयम, जजे है....' और चारित्र की भावना हमेशा रहती है। उसमें है न वह? चारित्र की भावना। उसमें थोड़ा है। संयम धार न सके परन्तु सम्यग्दर्शन, अनुभव हैं तो संयम लेने की चटापटी है। समझ में आया? ले न सके।

'ऋषभदेव' भगवान भी ८३ लाख पूर्व संयम ले नहीं सके। ८३ लाख पूर्व! तीर्थंकर, तीन ज्ञान के स्वामी, क्षायिक समकित (लेकर) आये हैं तो भी ८३ लाख पूर्व पर्यन्त (संयम नहीं ले सके)। एक पूर्व में ७० लाख करोड़, ५६ हजार करोड़ वर्ष व्यतीत हो जायें। ऐसे ऐसे ८३ लाख पूर्व पर्यन्त संयम भले नहीं ले सके परन्तु भावना में तो सम्यग्दृष्टि को (ऐसा ही होता है कि) अहो....! मेरा पुरुषार्थ कब जागे और मैं चारित्र लूँ, स्वरूप में आनन्द में रहूँ। ऐसी भावना (रहती है)। चारित्र का अर्थ वह है – चरना, आनन्द में चरना, रमना, लीन होना – ऐसी भावना तो सम्यग्दृष्टि को, (चारित्र) न ले सके, फिर भी भावना तो होती है। किन्तु भावना का अर्थ ऐसा नहीं (है) कि भावना करे, इसलिए तुरन्त (चारित्र) हो ही जाए। तो भावना (है), ऐसा है नहीं। समझ में आया?

तीर्थंकर जैसे, जिसे निश्चित है कि हमारी इस भव में मुक्ति है, मुक्ति है, अन्तिम अवतार है, हम तीर्थंकर हैं, फिर भी अरबों-अरबों वर्ष तक संयम लेने की भावना न हुई। प्रगट होने की भावना (की बात है), साधारण भावना है। यहाँ तो सहज पुरुषार्थ की गति अन्तर में से आवे, तब वह चीज (होती) है। ऐसे कोई हठ से ले लेवे तो वह ऐसी कोई चीज है नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, **जो श्रमण होना चाहता है, वह पहले ही बन्धुवर्ग (सगे-सम्बन्धियों से) विदा माँगता है,....** चरणानुयोग (की) व्यवहार की बात है न! (इसलिए) ऐसा कहते हैं। आगे तो कहेंगे, विदा नहीं भी माँगे। (राग) छूट जाये, वे नहीं दे तो क्या करे? समझ में आया? किन्तु साधारण बंधारण में विदा माँगते हैं कि हम साधु (होना चाहते हैं), हमारी भावना है। आप आज्ञा दो, हमें छोड़ दो। यहाँ तो अभी चरणानुयोग की बात है न!

बन्धुवर्ग से (सगे-सम्बन्धियों से) विदा माँगता है, गुरुजनों (बड़ों) से, स्त्री और पुत्रों से अपने को छुड़ाता है,... छुड़ाया ही है। राग से भी छूटा ही है परन्तु चरणानुयोग में ऐसी बात है। माता! हमें छोड़ो। समझ में आया? माता! अब फिर से माता नहीं करेंगे, माता! जनेता! हम साधुपना / चारित्र अंगीकार करना चाहते हैं। (हमें) छोड़ो। मैं फिर माता नहीं करूँगा, हाँ! मैं फिर माता नहीं करूँ – ऐसा कौल-करार करने की आज्ञा माँगता हूँ, माँ! आ...हा...हा...! यह तो अन्तर (परिणति) सहित की बात है न! कहाँ अकेले कथन की बात है। समझ में आया? वह आयेगा, देखो!

अपने को छुड़ाता है,.... और फिर **ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार तथा वीर्याचार को अंगीकार करता है।** देखो! है विकल्प; यह विकल्प के ज्ञानाचारादि हुए। व्यवहार की बात है न! ऐसा अंगीकार करते हैं। पाँच प्रकार के आचार विकल्प से अंगीकार करते हैं – ऐसा कहने में आता है। **वह इस प्रकार है :-**

बन्धुवर्ग से इस प्रकार विदा लेता है – अहो! इस पुरुष के शरीर के बन्धुवर्ग में प्रवर्तमान आत्माओं! देखो! वैराग्य के वचन हैं न! अहो....! **इस पुरुष के शरीर के....** शरीर के, हाँ! हमारे आत्मा के साथ आप का कोई सम्बन्ध है नहीं। आहा...हा...! **शरीर के बन्धुवर्ग में प्रवर्तमान आत्माओं!** हम तो तुमको – आत्मा को हम कहते हैं। समझ में आया? आ...हा....! **इस पुरुष के शरीर के बन्धुवर्ग में प्रवर्तमान आत्माओं! इस पुरुष का आत्मा किंचित्मात्र भी तुम्हारा नहीं है,....** इस पुरुष का आत्मा, यह आत्मा जो अन्दर है, वह **किंचित्मात्र भी तुम्हारा नहीं है,....** समझ में आया?

इस प्रकार तुम निश्चय से जानो। वैराग्य के वचन ऐसे निकलते हैं। स्पष्टीकरण करेंगे। भावार्थ में स्पष्टीकरण करेंगे। ओ...हो...! **इस प्रकार तुम निश्चय से जानो।** मेरे

आत्मा का और तुम्हारे आत्मा में कुछ सम्बन्ध है नहीं। हमारे आत्मा और तुम्हारे (बीच) कोई सम्बन्ध है नहीं। **इसलिए मैं तुमसे विदा लेता हूँ।** आहा...हा...! समझ में आया ? मैं विदा लेता हूँ, हाँ! मैं जाता हूँ। मैं अपने वनवास में अपना चारित्र लेकर जाऊँगा। ऐसे विदा लेता हूँ, माता! गुरुजनों को ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

जिसे ज्ञानज्योति प्रगट हुई है.... भाषा देखो! मुझे, जिसे अर्थात् मुझे। **ज्ञानज्योति प्रगट हुई है....**

प्रश्न – मालूम पड़ता होगा ?

समाधान – यह क्या (कहते हैं) ? मालूम नहीं पड़े ? ज्ञानज्योति स्वसंवेदन से, अनुभव से आनन्द, ज्ञानज्योति मुझे प्रगट हुई है। रागादि विकल्प से पर – भिन्न। रागादि विकल्प से भिन्न भगवान, मेरा चिदानन्दघन प्रभु, ऐसी ज्ञानज्योति शक्तिरूप तो है, (वह) पर्याय में प्रगट हुई है – ऐसा कहते हैं। आ...हा...! समझ में आया ? ऐसे सम्यग्दृष्टि और सम्यग्ज्ञानी हैं, वे मुनिपना लेना चाहते हैं। जिसे सम्यग्दर्शन, ज्ञान नहीं है, वह मुनिपना ले, वह मुनिपना व्यवहार से भी है नहीं। आ...हा...हा...!

अहो...! **जिसे...** अर्थात् मुझे। **ज्ञानज्योति प्रगट हुई है, ऐसा यह आत्मा....** देखो! कुछ लोग कहते हैं कि सम्यग्दर्शन हुआ या सम्यग्ज्ञान हुआ, वह ज्ञात नहीं होता। (**श्रोता** – वह तो केवली होवे, तब पता पड़े)। केवलज्ञानी हो, तब मालूम पड़े, अरे... भगवान! आत्मा अनुभव में जाग्रत हो और ज्ञात न हो, वह क्या अज्ञानी है ? समझ में आया ?

जिसे अन्तर का अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन ज्ञान के साथ आवे, ऐसी ज्ञानज्योति प्रगट हुई, वह मालूम न पड़े (ऐसा कहकर) अभी बहुत गड़बड़ी चलाते हैं। निश्चय सम्यग्दर्शन का पता नहीं पड़ता। बस! देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा रखो और ले लो व्रत, नियम, साधुपना ले लो। क्रियाकाण्ड, चारित्र ले लो अथवा प्रतिमा ले लो। वह मार्ग प्रभु का नहीं, भाई! वह वीतराग का मार्ग नहीं। समझ में आया ? अरे...! जिसे ज्ञानज्योति चैतन्यबिम्ब प्रभु! देह से भिन्न भगवान, राग से भिन्न भगवान, ऐसी ज्योति हमको प्रगट हुई है – ऐसा मैं आत्मा (हूँ), ऐसा कहते हैं।

ऐसा यह आत्मा.... देखो! **ऐसा यह आत्मा....** आ...हा...! अन्धा होकर भान

नहीं और मैं चारित्र लेना चाहता हूँ, ऐसा नहीं। आहा...हा... ! मैं ज्ञाता-दृष्टा ही हूँ, मैं राग नहीं। विकल्प व्यवहार जो पंचाचार लेना चाहता हूँ, वह मेरा स्वरूप नहीं - ऐसा मैं जानता हूँ। ऐसा अभी कहेंगे, देखो ! बहुत अलौकिक रचना है ! मैं (कि) **जिसे ज्ञानज्योति प्रगट हुई है...** स्वसंवेदन में आत्मा आनन्दस्वरूप का अनुभव हुआ है, वह मेरे ख्याल में, प्रतीत में, अनुभव में है। मैं नहीं जानता, ऐसा नहीं। मैं नहीं जानता, ऐसा नहीं। मैं अपने अनुभवसहित चारित्र अंगीकार करना चाहता हूँ - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

श्वेताम्बर में तो ऐसा कहे कि उसे द्रव्य समकित (दो)। फिर चारित्र दो। द्रव्यसमकित (अर्थात्) देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा। जाओ! वह भी (उसके) माने हुए देव-गुरु-शास्त्र। ऐसा उन लोगों में बहुत है। हमको मानो, देव-गुरु-शास्त्र (को मानो) बस, हम व्यवहार समकित का आरोप देते हैं और चारित्र अंगीकार कर लो। आहा...हा... ! देखो ! दिगम्बर सन्तों की धर्म प्रणालिका। समझे ? धर्म की प्रणालिका, परम्परा की रीत। ऐसा वह सत्य... सत्य मार्ग है। आहा...हा... ! समझ में आया ? अरे... प्रभु ! बन्धुवर्गों, गुरुजनों ! मेरे आत्मा को तो चैतन्यज्योति प्रगट (हुई है ऐसा) प्रगट आत्मा **आज अपने आत्मारूपी अपने अनादिबन्धु के पास जा रहा है।** देखो ! विकल्प के पास नहीं कहा।

अपने आत्मारूपी अपने अनादिबन्धु.... अनाकुल आनन्दकन्द भगवान, वह हमारा बन्धु है; तुम बन्धु नहीं (हो)। हमारा सलाहकार भाईबन्धु(-दोस्त) हमारी दशा है। आहा...हा... ! अहो... ! आज अपने आत्मारूपी अपने अनादि बन्धु, अनादि बन्धु मेरा स्वभाव तो अनादि से ऐसा आनन्दकन्द अनादि से है, उसके पास हम जाते हैं। शुद्ध चिदानन्द की शक्तिरूप परमात्मा (है), वहाँ हमारी पर्याय झुकती है। आहा...हा... ! देखो ! चरणानुयोग की कथनी भी कितनी है ! निश्चयसहित व्यवहार का दिगम्बर सन्तों की प्रणालिका, अनादि सन्तों की चीज ऐसी कहते हैं। उसमें कोई घर की गड़बड़ है नहीं। आहा...हा... !

अपने आत्मारूप अपने अनादिबन्धु के पास जा रहा है। जा रहा है। निश्चित ही, मैं मेरे स्वरूप के समीप जा रहा हूँ - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? मैं अंगीकार करता हूँ परन्तु चारित्र होगा या नहीं ? ऐसा नहीं है, भाई ! ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! मेरा

भगवान, ज्ञानज्योति तो मुझे प्रगट हुई है तो अब मेरे स्वरूप (के) समीप में स्थिर होने मैं जा रहा हूँ। आ...हा...! समझ में आया? मुर्दे को उठा लेते हैं, श्मशान में ले जाते हैं, मैं विदा लेकर चला जाता हूँ। मैं तो वनवास में चला जाता हूँ, अपना आनन्दस्वरूप बन्धु, उसके समीप में जा रहा हूँ। समीप में जा रहा हूँ। राग थोड़ा है तो जा रहा हूँ। आहा...हा...!

'दूर कां प्रभु दौड़ तुं, मारे रमत रमवी नथी' मुझे अब राग की क्रीड़ा करनी नहीं है, प्रभु! मेरा आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसके समीप मुझे जाना है। देखो! अन्तर सम्यग्दर्शन, ज्ञानपूर्वक अन्तर में समीप में जाना और पर के साथ विदा लेने की यह पद्धति है। आहा...हा...! समझ में आया?

मुमुक्षु - व्यवहार भी अलग प्रकार का है।

पूज्य गुरुदेवश्री - ओ...हो...! अलौकिक! वीतरागमार्ग की शैली! निश्चय अनुभव सहित का व्यवहार कैसा होता है (वह) अलौकिक बात है, भाई! यह तो मोक्ष का मार्ग है। यह तो वीतरागी पन्थ में-अन्तर में जाना है। आहा...हा...!

कहते हैं, अरे...! अपने अनादि बन्धु के पास जा रहा हूँ। मुझ में भान तो हुआ है, मैं ज्ञानानन्द हूँ, उसके समीप क्रीड़ा करने जाता हूँ। राग का खेल अब मुझे नहीं चाहिए। आहा...हा...! समझ में आया? देखो! फिर कहेंगे, व्यवहार कहेंगे। लेकिन मैं तो मेरा अनादि आनन्द के समीप जा रहा हूँ। फिर पाँच आचार की व्यवहार की बात करेंगे, परन्तु मैं उसके समीप जाता हूँ, ऐसा नहीं; मैं तो मेरे आनन्द के समीप जाता हूँ। आहा...हा...! यह बात है। आहा...हा...!

मुमुक्षु - वही सच्चा ज्ञान है।

पूज्य गुरुदेवश्री - वही सच्चे आनन्द और ज्ञानसहित के राग की मन्दता का व्यवहार उसे होता है। आहा...हा...! समझ में आया?

मुमुक्षु - स्वरूप में स्थिरता...

पूज्य गुरुदेवश्री - स्वरूप में चरणम्, चारित्र, स्वरूप आचरण आता है न? पहले आता है, आ गया। स्वरूपे चरणम् चारित्र।

चारित्तं खलु धम्मो सातवीं गाथा में आता है न ! यह 'प्रवचनसार' है न ! देखो ! सातवीं (गाथा) है, देखो ! सातवीं गाथा।

'चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो॥ ७॥'

चारित्तं खलु धम्मो देखो ! चारित्र – स्वरूप में रमणता / अनुभव, सम्यग्दर्शन सहित, वह धर्म (है)। **जो सो समो** (अर्थात्) उसे समभाव कहो, शुद्ध उपयोग कहो, वीतरागभाव कहो, निर्विकल्प उपयोग कहो। समझ में आया ? **मोहक्खोहविहीणो** मोह अर्थात् मिथ्यात्व और क्षोभ अर्थात् (अस्थिरतारूप) चारित्र, उससे रहित **विहीणो परिणामो अप्पणो हु समो** समरस अपना परिणाम (हो), उसका नाम चारित्र है। समरस – वीतरागरस में सराबोर ! आहा...हा... !

पुरणपोली होती है न ? पुरणपोली ! पुरणपोली को क्या कहते हैं ? पुरणपोली घी में डालते हैं, फिर उसे निकालते हैं, तब रसखस होती है। ऐसा कहते हैं कि हमारा आत्मा समरस से सराबोर हो जाता है। ऐसे चारित्र को हम धर्म कहते हैं, उसे समभाव कहते हैं, शुद्ध उपयोग कहते हैं। उसमें – अर्थ में है, देखो ! **स्वरूप में चरण करना (रमना) सो चारित्र है।** स्वरूपे चरणं। स्वरूप तो पहले भान (में) है। आनन्दकन्द ज्ञानानन्द में अनुभव, सम्यग्दर्शन तो हुआ। ऐसे चरना, रमना चारित्र (है)।

स्वसमय में प्रवृत्ति करना.... देखो भाषा! स्वसमय में (प्रवृत्ति करना) वह चारित्र की व्याख्या (की)। **स्वसमय में प्रवृत्ति करना (अपने स्वभाव में प्रवृत्ति करना) ऐसा इसका अर्थ है।** देखो ! यह छठवें–सातवें (गुणस्थान की) बात चलती है। आहा...हा... ! लो, स्वसमय सिद्ध को होता है, अभी नहीं (ऐसा अज्ञानी कहते हैं)। अरे.... भगवान ! क्या करें ? इसका अर्थ भी लोग दूसरा करते हैं। यह तो तेरहवें गुणस्थान में होता है। अरे... ! यहाँ तो सातवें गुणस्थान की बात, छठवें गुणस्थान में विकल्प से बात करते हैं।

मुमुक्षु – हमें ऐसा प्रगट हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री – प्रगट हुआ है, ऐसा चारित्र है, वह बात हम तुम्हें करते हैं। देखो !

यही वस्तु का स्वभाव होने से धर्म है। लो, यह चारित्र ही धर्म है। सम्यग्दर्शन, अनुभव सहित की स्वरूप में लीनता, आनन्दकन्द में रमणता, (होना) वही धर्म है। **शुद्ध चैतन्य का प्रकाश करना यह इसका अर्थ है।** धर्म की व्याख्या (यह है)। शुद्ध चैतन्य का प्रकाश होना, यह धर्म है। यह धर्म की व्याख्या है। समझ में आया? आहा...हा...! भगवान आत्मा! चैतन्यप्रकाश हुआ अन्दर में! शुद्ध चैतन्य का, शुद्ध चैतन्य के प्रकाश की रमणता प्रगट हुई, वह धर्म का अर्थ है।

वही यथावस्थित आत्मगुण होने से साम्य है। उसे ही चारित्र कहो, उसे धर्म कहो, उसे साम्य कहो। **(विषमतारहित सुस्थित आत्मा का गुण होने से) साम्य है और साम्य, दर्शनमोहनीय तथा चारित्रमोहनीय के उदय से उत्पन्न होनेवाले समस्त मोह और क्षोभ के अभाव के कारण अत्यन्त निर्विकार ऐसा जीव का परिणाम है।** वह तो जीव का वीतरागी परिणाम है। गुण तो त्रिकाल है, द्रव्य त्रिकाल है। उसमें रमण करती जो वीतरागी परिणति है, वह परिणाम है। उस परिणाम को चारित्र कहो, धर्म कहो, स्वरूप में रमणता कहो, चैतन्य का प्रकाश कहो, वह है। समझ में आया?

साधुपद कैसा है – ऐसा उसे पहले ज्ञान में प्रतीत तो करना चाहिए या नहीं? समझ में आया? संवर, निर्जरा की दशा नव तत्त्व की श्रद्धा में आती है, तो संवर, निर्जरा की दशा मुनि को कैसी होती है, उसकी प्रतीत करने की बात करते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु – उनको भी धीरे-धीरे हुआ होगा, एकदम कहाँ हुआ होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री – एकदम अन्तर्मुहूर्त में हो गया। क्या है? धीरे-धीरे की व्याख्या क्या? कषाय मन्द करते... करते... करते होगा, ऐसा है? शुभराग मन्द करते-करते होगा ऐसा है? शुभराग तो राग है। भगवान आत्मा अपना अनुभव हुआ तो उसमें एकदम रागरहित स्वरूप में रमण करना और उपयोग में शुद्ध उपयोग होना, उसका नाम चारित्र और धर्म है। यह पंचम काल के सन्त कहते हैं। जिनकी जाति सप्तम गुणस्थान का अनुभव है, साम्यभाव का अनुभव है, चारित्र का अनुभव है, वे कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया? लो।

(यहाँ कहते हैं), हम अपने अनादि बन्धु के पास (जा रहे हैं)। भगवान आत्मा

अपना आनन्द (है), वह हमारा अनादि बन्धु है। शान्ति, वीतरागभाव, वह हमारा अनादि बन्धु है। आहा...हा... ! उसके पास जा रहा हूँ। **जा रहा है।** कौन ? आत्मा जा रहा है, ऐसा कहते हैं न! **ऐसा यह आत्मा आज अपने आत्मारूपी अपने अनादिबन्धु के पास जा रहा है।** ऐसे। आहा...हा... !

'उत्तराध्ययन' में चौदहवाँ अध्ययन है। उस समय जब उसकी व्याख्या चले, तब 'बोटाद' में पहले से सभा में हजार-हजार आदमी आते थे। यह तो पैंतालीस साल पहले की बात है। पैंतालीस वर्ष! उसमें एक श्लोक आता है। ब्राह्मण के दो पुत्र हैं, उन्हें जातिस्मरण हुआ है। 'उत्तराध्ययन' सूत्र है न, उसमें ऐसा चौदहवाँ अध्ययन है। उन्हें जातिस्मरण हुआ है, फिर (वे) माता-पिता के पास आज्ञा माँगते हैं। उसमें एक श्लोक आया है।

'अजैव धम्मम् पडिवज्ज्यामो, जहीपुवनाम पुनम भवानो, अणागयमेव य थिर्तिची,श्रद्धा खममे, विण ऐ तु रागं' यह शैली वहाँ (है), मेरी प्रति राग छोड़ो। इस श्लोक का अर्थ करते (थे)। समझ में आाय ? उस समय 'बोटाद' सम्प्रदाय में दीक्षित थे न! (जब) यह श्लोक आता था, उस समय तो हजार-हजार, पन्द्रह सौ आदमी सभा में होते थे। पचास वर्ष पहले की बात है। उस समय इतनी धुन चलती थी कि लोग तो ऐसा कहे कि महाराज के पास केवलज्ञान घुमता है! लोगों को बहुत प्रेम था न! लोगों को अभी साधुपना क्या है, उसकी खबर नहीं परन्तु तत्त्व की बात ऐसी थोड़ी बात आती थी।

ब्राह्मण के दो पुत्र थे, वे माता-पिता के पास आज्ञा लेते हैं। 'अजैव धम्मम् पडिवज्जयामो,....' हे माता! हम आज धर्म अंगीकार करनेवाले हैं। 'जहीपुवनाम पुनम भवानो' माता! हम कौल-करार करते हैं कि जो चारित्र अंगीकार करके माता! हम दूसरा भव करेंगे नहीं। 'जहीपुवनाम पुनम भवानो' हे माता! दूसरी माता अब हम करेंगे नहीं। ऐ...ई.... !

''अजैव धम्मम्....' यह धर्म आया न ? भाई! चारित्र। 'अजैव धम्मम् पडिवज्जयामो,' पडिवज्जयामो समझे ? (अर्थात्) अंगीकार करते हैं, अंगीकार करते हैं। माता! आज मैं चारित्ररूपी धर्म को अंगीकार करता हूँ। 'जहीपुवनाम पुनम भवानो' माता! हम कोलकरार करते हैं कि जो चारित्र अंगीकार करके हम दूसरा भव करेंगे नहीं, दूसरी माता हम करेंगे नहीं। माता!

'अणागयमेव य थितिंची' जनेता! संसार में रुलते। 'अणागयमेव' कौन-सी चीज प्राप्त नहीं हुई है? अनन्त बार सब चीज प्राप्त हुई, एक चारित्र प्राप्त नहीं हुआ। 'अणागयम' अर्थात् अणप्राप्त। 'अणागयम' का अर्थ (यह है)। 'अणागयमेव य थितिंची' माता! अनन्त संसार में कोई संसारी चीज प्राप्त नहीं हुई, ऐसा कुछ रहा नहीं। 'अणागयमेव य थितिंची, श्रद्धा खममे' श्रद्धा करो माता! 'श्रद्धा खममे, विण ऐ तु रागं' माता! हमारे प्रति का विकल्प – राग को छोडो। हम तो मुनिपना लेकर वनवास में चलेंगे।

मुमुक्षु – हमें ज्ञानज्योति प्रगट हुई है, ऐसा नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री – वह नहीं है। वह वहाँ है ही नहीं, वह चीज ही उसमें है नहीं। श्वेताम्बर की शैली में वह चीज ही नहीं है।

मुमुक्षु – बाहर का वैराग्य आया।

पूज्य गुरुदेवश्री – वैराग्य आया, बस! (मूल) चीज तो है नहीं। हम ज्ञानज्योति को प्राप्त हुए हैं, इसलिए वनवास जाते हैं, वह बात ही नहीं है। श्वेताम्बर (या) किसी व्यक्ति प्रति का हमें कोई काम नहीं है, लेकिन श्वेताम्बर धर्म निकला, वह सनातन दिगम्बर में से, अकाल में रह नहीं पाये तो (दिगम्बर में से) निकला है। समझ में आया? वास्तव में तो मिथ्यात्वभाव से निकला है। आहा...हा...! ऐसी बात कहाँ है?

मेरे में ज्ञानज्योति प्रगट हुई है, माता! अब मैं मेरा चारित्र अंगीकार करूँगा। मैं अब फिर से भव नहीं करूँगा, माता! समझ में आया? ये तो यहाँ है, देखो! आ...हा...! **अपने आत्मारूपी अपने अनादिबन्धु...** देखो! **अपने आत्मारूपी अपने अनादिबन्धु...** (कहा है)। हमारा आनन्द और ज्ञानस्वभाव, उसकी ज्योति तो प्रगट हुई है परन्तु समीप में जाकर वस्तु की रमणता हम प्रगट करेंगे, इसलिए मैं जा रहा हूँ। समझ में आया? आहा...हा...! धन्य वह दिन, धन्य वह काल और धन्य पल है न वह!! चारित्र... आ...हा...हा...! ओ...हो...हो...! चारित्र अर्थात् वीतरागता; वीतरागता अर्थात् केवलज्ञान की तैयारी!! आ...हा...हा...! बापू! चारित्र किसे कहें? समझ में आया? वह बाहर के क्रियाकाण्ड, वह चारित्र है ही नहीं।

(आगे कहते हैं) **अहो! इस पुरुष के जनक (पिता) के आत्मा!** पिता के पास

जाता है, अहो! इस पुरुष के शरीर के पिता, हाँ! हमारे आत्मा के पिता तुम नहीं। अहो! **अहो! इस पुरुष के जनक (पिता) के आत्मा! अहो! इस पुरुष के शरीर की जननी (माता)!** शरीर की जननी (है), हमारी जननी है नहीं। हम आत्मा की तुम माता भी नहीं और आत्मा के तुम पिता भी नहीं। आहा...हा...! शरीर को निमित्त से माता-पिता कहते हैं। आत्मा किसी का पुत्र नहीं, आत्मा किसी की माता नहीं और आत्मा किसी माता का पुत्र है नहीं। आ...हा...!

कहते हैं हे माता के आत्मा! और पिता का पहले आया। **इस पुरुष का आत्मा....** यह मेरा आत्मा, अन्दर पुरुष का आत्मा **तुम्हारे द्वारा जनित (उत्पन्न) नहीं है,....** आहा...हा...! हे शरीर के माता-पिता! यह आत्मा तुम्हारे से उत्पन्न नहीं हुआ है। आत्मा तुम्हारे से उत्पन्न नहीं हुआ कि तुम हमारे जननी और जनक हो, ऐसा है नहीं। जननी और जनक तुम हमारे आत्मा के तो हो नहीं, माता! आ...हा...हा...! समझ में आया?

इस पुरुष का आत्मा तुम्हारे द्वारा जनित (उत्पन्न) नहीं है, ऐसा तुम निश्चय से जानो। हमारा भगवान आत्मा अनादि-अनन्त सनातन सत्य ऐसा अपने से ही है। तुम्हारे से उत्पन्न हुआ, ऐसा है नहीं। **इसलिए तुम इस आत्मा को छोड़ो।** लो, ठीक! व्यवहार कथन है। आत्मा को छोड़ो, माता! पिता! अब प्रेम छोड़ो। हमारा प्रेम तो मर गया है। आ...हा...हा...! समझ में आया? जो तुम विनती करते हो कि रहो... रहो। किन्तु वह विनती सुननेवाला राग तो हमारा मर गया है। समझ में आया?

'शान्तिनाथ' पुराण है न, पुराण! उसमें आता है। छियानवें हजार स्त्री थी और वे चक्रवर्ती थे। तब (उन्हें कहते थे), प्रभु! थोड़ी देर रहो। (तो कहते हैं), अरे... स्त्रियों! मैं तुम्हारे राग के कारण रहा था, ऐसा न समझो। मेरे में इतना राग था, इस कारण से मैं रहा था। तुम्हारी प्रार्थना सुननेवाला हमारा राग तो मर गया है। बाल खींचों (तो भी हम रुकनेवाले नहीं)। छियानवें हजार स्त्रियाँ बाल खींचती थी। अरे...! स्वामी नाथ! शरणभूत चले जाते हो, हमारा क्या होगा? समझ में आया? कुछ नजर तो करो, हमारे साथ कितने वर्ष रहे। स्त्रियों को कहते हैं, अरे... स्त्री! तुम्हारी प्रार्थना के कारण हमारा राग था, ऐसा नहीं। हमारी कमजोरी से राग आया था तो तुम्हारे संग में हमारे राग के कारण से रहा था।

अब हमारा राग तो मर गया है। मुर्दे को जिन्दा रखना, ऐसा होता नहीं। तेरी बात सुनने का हमारा राग तो मर गया है। आ...हा...हा... ! हम तो हमारा वीतरागभाव प्रगट करने को हम चारित्र अंगीकार करते हैं। आ...हा...हा... ! आहा...हा... ! समझ में आया ?

अरे... ! **तुम इस आत्मा को छोड़ो। जिसे ज्ञानज्योति प्रगट हुई है, ऐसा यह आत्मा... जिसे ज्ञानज्योति प्रगट हुई है ऐसा यह आत्मा आज आत्मारूपी अपने अनादिजनक के पास जा रहा है।** आत्मा अपने अनादि जनक, ऐसे दोनों ले लेना। 'जनक' शब्द एक पड़ा है (लेकिन) दोनों से ले लेना। हमारा आत्मा अनादि-अनन्त आनन्दकन्द, हमारी निर्मल पर्याय का जनक तो वह है। भगवान आत्मा, अनन्त आनन्द और वीतरागभाव से भरा पड़ा प्रभु है। हमारी निर्मल वीतरागी पर्याय का जन्म देनेवाला तो आत्मा है, उसके पास हम जाते हैं। ओ...हो... ! **आज आत्मारूपी अपने अनादि जनक के पास जा रहा है।** आज जा रहा है, आज ही जा रहा है। बाद में (जाएगा), वह प्रश्न नहीं।

प्रश्न – वर्तमान में मुनि इत्यादि के माता-पिता बनाते हैं, वह क्या है ?

समाधान – अभी तो क्षुल्लकपना है ही कहाँ ? सम्यग्दर्शन कहाँ है ? माता-पिता कहाँ है ? सब बात (झूठ है)। माता-पिता के पास आज्ञा माँगते हैं। माता-पिता बनाये और फिर आज्ञा ले।

यह तो वस्तु वैराग्य, सम्यग्दर्शन हुआ है, आत्मानुभव हुआ है और माता-पिता उपस्थित है, उसके लिए बात है। बनाना बनाना है नहीं। बाहर में महोत्सव करने की सब व्यवहार की बातें हैं। ओ...हो... !

मुमुक्षु – सहज परिणमन हो रहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री – वह सहज है। वह तो आगे कहेंगे। वह तो (आज्ञा) माँगते हैं, बाकी इच्छा न हो (तो भी) चले जाते हैं। माता-पिता की आज्ञा के बिना भी चले जाते हैं। उसमें क्या ? वह रुके ? वैराग्य अन्दर से प्रस्फुटित हो गया है। अन्दर से कहीं चैन पड़ता नहीं। आत्मा के आनन्द के सिवा कहीं चैन पड़ता नहीं। आनन्द में से बाहर निकलना सुहाता नहीं। आहा...हा... ! ऐसा आनन्द प्रगट हुआ है, बाद की बात है। समझ में आया ? आहा...हा... ! विकल्प आता है, वह भी थकान लगती है। ऐसे आत्मा की बात चलती है।

आ...हा... ! विश्रामस्थान परमात्मा ! अपना वीतरागभाव प्रगट हुआ है। प्रगट हुआ है तो विशेष प्रगट करने की चारित्र दशा, उसकी बात चलती है।

वह माता-पिता की बात कही। (अब कहते हैं), **अहो! इस पुरुष के शरीर की रमणी (स्त्री)...** देखो ! **शरीर की रमणी...** हमारे आत्मा को रमण करा सकती हो, ऐसी तुम्हारी ताकत है नहीं। आहा...हा... ! **इस पुरुष के शरीर की रमणी (स्त्री) के आत्मा!** रमणी के आत्मा ! उसको - आत्मा को कहते हैं न ! **तू इस पुरुष के आत्मा को रमण नहीं कराता,...** भगवान आत्मा को तुम रमण कराते नहीं। शरीर जड़ मिट्टी के साथ रमण करते थे, हमारे आत्मा के साथ तुम्हारा रमण नहीं था। **इस पुरुष के आत्मा को रमण नहीं कराता, ऐसा तू निश्चय से जान।** निश्चय से तुम नक्की करो, ऐसा कहते हैं। उसमें ऐसा आया था न, 'अणयमेव य थितिंची, श्रद्धा खममे,' श्रद्धा करो, माता ! प्राप्त नहीं हुई ऐसी कोई चीज रही नहीं। चारित्र प्राप्त नहीं हुआ, रह गया है, उसे हम अंगीकार करेंगे। समझ में आया ?

फिर कोई ऐसा कहते हैं, बहुत (आज्ञा) माँगते हैं, फिर आज्ञा देते हैं, तो माता-पिता कहते हैं, बेटा ! चले जाओ। जिस रास्ते पर तुम जा रहे हो, हमें भी वह रास्ता (प्राप्त) हो। माता-पिता कहते हैं, जाओ भाई ! आत्मा का कल्याण करने को जाते हो, हमारी आज्ञा है। वह तो ठीक किन्तु जिस मार्ग पर (चलकर) आनन्द में जाते हो, वह मार्ग हमें भी (प्राप्त) हो, ऐसी हमारी भावना है। समझ में आया ? आहा...हा... !

(यहाँ) कहते हैं कि हे शरीर को रमणता करानेवाली स्त्री ! इस आत्मा को तुम रमण नहीं करा सकते। **रमण नहीं कराता, ऐसा तू निश्चय से जान। इसलिए तू इस आत्मा को छोड़।** हे शरीर में रहनेवाला आत्मा ! हमारे प्रति का प्रेम छोड़ दे। **जिसे ज्ञानज्योति प्रगट हुई है....** हमारे आत्मा में हमारा आनन्द, चैतन्य का भाव प्रगट हुआ है। हमारा अनुभव, आत्मा कैसा है - यह अनुभव हमको हो गया है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

जिसे ज्ञानज्योति प्रगट हुई है, ऐसा यह आत्मा... देखो ! **ऐसा यह आत्मा आज अपनी स्वानुभूतिरूपी अनादि-रमणी के पास जा रहा है।** देखो ! आ...हा...हा... ! यहाँ तो राग की बात नहीं ली है, भाई ! बाद में व्यवहार की (बात) कहेंगे। किन्तु हमें जाना

तो है हमारे स्वरूप में। बीच में पाँच आचारादि का राग आयेगा, किन्तु हमें जाना है अन्दर में। आ...हा...हा...! समझ में आया? हमारा भगवान आत्मा अनादि, **स्वानुभूतिरूपी अनादि-रमणी...** स्व-अनुभव तो हमारे स्वभाव में अनादि का पड़ा है। ऐसे स्व की ओर हम जाते हैं। समझ में आया?

आज.... आज, ऐसा (कहते हैं)। बाद में जाएँगे, ऐसा नहीं। जाएँगे - ऐसा नहीं कहते हैं, देखो! आज वैराग्य हुआ है, आज आज्ञा दो तो फिर दो-पाँच दिन के बाद हम वैराग्य अंगीकार करेंगे (-ऐसा नहीं कहा है)। आ...हा...! माता! अथवा स्त्री, इस शरीर को रमण करानेवाली, प्रेम छोड़ दे। हमारे आनन्दरूपी अनुभूति हमारी रमणी (है), उसके पास हम जा रहे हैं। ओ...हो...हो...! चरणानुयोग की पद्धति में भी कितनी अनुभवसहित की वैराग्य दशा! राग के अभाव की रमणता करने की कितनी भावना है, देखो! आ...हा...हा...! वह तो कहा न कि हम प्रणेता यह खड़े - खड़े! मुनिपने की दशा हमारे पास है और उसके साथ व्यवहार विकल्प की कितनी मर्यादा आती है, वह हमारे अनुभव में है, हमारे ज्ञान में है, वह तुम्हें कहेंगे। आहा...हा...!

आज अपनी स्वानुभूतिरूपी अनादि-रमणी के पास जा रहा है। अहो! इस पुरुष के शरीर के पुत्र के आत्मा! लो, हो उसकी बात है न; न हो उसकी (बात कहाँ है?) सभी को थोड़े ही होता है? नकली स्त्री बनाये? कि स्त्री नहीं है तो उसकी आज्ञा ले। (**श्रोता** - कोई ब्रह्मचारी हो)। **पूज्य गुरुदेवश्री** - हाँ, ब्रह्मचारी हो, उसमें क्या है? माता-पिता हो तो उसके पास जाये, भाई हो तो भाई के पास जाये।

मुमुक्षु - न हो तो बनाये।

पूज्य गुरुदेवश्री - न हो तो बनाये कहाँ से आया? यह तो होता है, जिसे हो (उसकी बात है)। सबको ऐसा होता नहीं। किसी ने स्त्री के साथ शादी की हो, पुत्र हुआ हो तो (भी आज्ञा ले के), हे **इस पुरुष के शरीर के पुत्र के आत्मा! तू इस पुरुष के आत्मा का अन्य (उत्पन्न किया गया - पुत्र) नहीं है,....** तुम हमारे पुत्र नहीं। आत्मा के पुत्र तुम नहीं। आ...हा...हा...! आ...हा...! **ऐसा तू निश्चय से जान।** निश्चय से जान, ऐसा (कहते हैं)।

इसलिए तू इस आत्मा को छोड़। जिसे ज्ञानज्योति प्रगट हुई है, ऐसा यह आत्मा आज आत्मारूपी अपने अनादिजन्य के पास जा रहा है। हमारा आत्मा अन्दर आनन्द की प्रजा उत्पन्न करे, ऐसा हमारा आत्मा (है), उसके पास जा रहा है। आ...हा...हा...! हमारी निर्मल पर्याय के पास जा रहा है। समझ में आया? **इस प्रकार बड़ों से, स्त्री से और पुत्र से अपने को छुड़ाता है।** अब, उसकी विधि (कहेंगे)। क्यों ऐसा कहा, उसकी थोड़ी बात कोष्ठक में है (वह कल लेंगे)।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. २०२ **ज्येष्ठ कृष्ण १४, शुक्रवार, १३ जून १९६९**

'प्रवचनसार' 'चरणानुयोगसूचक चूलिका' (अधिकार)। २०२ गाथा चलती है, देखो! क्या कहते हैं कि अपना आत्मा, जिसको अन्तर ज्ञानज्योति का प्रगट होना हुआ है, अपना स्वभाव शुद्ध चैतन्यघन (का अनुभव हुआ)। ज्ञानज्योति प्रगट हुई। अनादि (से)अस्तिरूप से तो है ही, परन्तु अन्तर्मुख दृष्टि से अन्तर में आनन्दादि की जो शक्ति थी, उसका अनन्त गुण का अनुभव होने से, वर्तमान अवस्था में अनन्त गुण का आनन्दादि (का) अंश प्रगट हुआ है। उसको ज्ञानज्योति प्रगट हुई – ऐसा कहने में आता है। वह अब मुनिपना लेना चाहता है। ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव, अपना स्वरूप का आनन्द अनुभव होने के बाद मुनिपना लेना चाहते हैं तो कुटुम्ब से विदा माँगते हैं। वह बात कल आ गई। समझ में आया? वह व्यवहार कहने में आया। वह कहते हैं, देखो! कोष्टक में है न!

(यहाँ ऐसा समझना चाहिए कि जो जीव मुनि होना चाहता है....) भगवान आत्मा चारित्रपना, आनन्दपना, स्वसंवेदन (की) उग्र दशा प्रगट करना, परिणमन करना चाहता है, **(वह कुटुम्ब से सर्व प्रकार से विरक्त ही होता है)।** विरक्त ही होता है अर्थात् विरक्त ही है। कुटुम्ब के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। राग के साथ सम्बन्ध नहीं। सम्यग्दर्शन हुआ। अपना आत्मा आनन्दधाम, ऐसा अनुभव में आया तो विकल्प जो है उसके साथ सम्बन्ध है नहीं, तो कुटुम्ब के साथ तो सम्बन्ध है ही नहीं। समझ में आया?

(इसलिए कुटुम्ब की संमति से ही मुनि होने का नियम नहीं है)। कुटुम्ब विदा दे और आज्ञा दे तो ही मुनि होना, ऐसा कोई नियम नहीं, ऐसा कोई निश्चय नहीं (है)। **(इस प्रकार कुटुम्ब के भरोसे पर तो, यदि कुटुम्ब किसी प्रकार से संमति ही नहीं दे तो मुनि ही नहीं हुआ जा सकेगा)।** ओ...हो... ! अपने आनन्द की सावधानी में जागृत तो हुआ, विशेष जागृत करके जहाँ टटोलकर के आत्मा की शान्ति की दशा प्रगट करनी है तो विदा न दे और आज्ञा न दे तो रुक जाये ? समझ में आया ? अपना स्वरूप आनन्द की धारा प्रगट करने को, कुटुम्ब की आज्ञा का कोई प्रतिबन्ध नहीं। चला जाता है। समझ में आया ? मृत्यु के समय पूछता है कि अब मैं जाऊँ! मेरी आयुष्य पूरी हुई है तो मैं जाऊँ, आज्ञा दो। (ऐसा पूछता) है ? वैसे यहाँ आज्ञा ही है। पर के प्रति मोह मर गया तो आज्ञा ही है, ऐसा कहना है। आहा...हा... !

भगवान आत्मा ! मुनि होने से पहले जहाँ आत्मा की दशा का अनुभव हुआ है तो राग और व्यवहार के विकल्प के साथ भी सम्बन्ध है नहीं, तो कुटुम्ब के साथ तो सम्बन्ध बहुत दूर रहा। आगे आएगा। मेरा स्वरूप तो आनन्द शुद्ध चैतन्य है। ध्रुव वस्तु भगवान आत्मा मैं हूँ - ऐसा वेदन में - अनुभव में आनन्द की दशा में स्वसंवेदन अपने से हुआ, तो राग से सम्बन्ध नहीं (रहता) तो कुटुम्ब से कैसे सम्बन्ध हो ?

(इस प्रकार कुटुम्ब को संमत करके ही मुनित्व के धारण करने का नियम न होने पर...) ऐसा नियम है नहीं। परन्तु **(कुछ जीवों के मुनि होने से...)** कोई जीवों को ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है। **(पूर्व वैराग्य के कारण कुटुम्ब को समझाने की भावना से पूर्वोक्त प्रकार के वचन निकलते हैं)।** वचन भी निकलते हैं, वचन करते नहीं। आहा...हा... ! ऐसा वैराग्य का वचन निकलता है, ऐसा कहते हैं। माता, पिता, शरीर की रमानेवाली स्त्री, पुत्र (होते हैं तो) ऐसे वचन निकलते हैं, माता ! हमें आज्ञा दो। हमारा स्वरूप-आराधन करने में हम तत्पर होते हैं। **(पूर्वोक्त प्रकार के वचन निकलते हैं। ऐसे वैराग्य के वचन सुनकर, कुटुम्ब में यदि कोई अल्पसंसारी जीव हो तो वह भी वैराग्य को प्राप्त होता है)।** ऐसे वैराग्य के वचन से कुटुम्ब में से कोई निकले, इस कारण से ऐसे वचन निकलते हैं। वैराग्य के वचन निकलते हैं; वचन के कर्ता है नहीं और पर का प्रतिबन्ध का भाव भी उसे है नहीं। देखो ! शैली कितनी ऊँची है !! समझ में आया ?

विवेकी धर्मात्मा मुनि होना चाहते हैं तो ऐसे वैराग्य के वचन निकले। कोई समझ जाये तो। आत्मा के ज्ञान सहित, अनुभव सहित कोई मुनि होना चाहते हो तो हो जाये। नहीं तो उसका कोई प्रतिबन्ध नहीं (है) कि (कुटुम्ब) आज्ञा दे तो ही होना। आ...हा... ! 'हम परदेसी पंछी साधु, आ रे देश के नाहीं रे... हम परेदसी पंछी साधु, आ रे देश के नाहीं रे... स्वरूप साधन पूर्ण करी जाशुं स्वदेश मंझार रे... हम परदेसी पंछी साधु...' वैराग्यसहित ऐसा कहते हैं, कोई निकले तो निकलो। नहीं तो अपना तो स्वरूप (साधन) होता है। यह निश्चय सहित व्यवहार कैसा होता है, उसकी बात है। आहा...हा... !

मुमुक्षु – ....

पूज्य गुरुदेवश्री – आदरणीय की बात है नहीं। आता है, उसको व्यवहारनय से अंगीकार करता हूँ – ऐसा कहने में आता है। चरणानुयोग की पद्धति (ऐसी है)। ऐसा बीच में आता है। देखो !

(अब निम्न प्रकार से पंचाचार को अंगीकार करता है-) यह पंचाचार व्यवहार की बात है। देखो ! **(जिस प्रकार बन्धुवर्ग से विदा ली, अपने को बड़ों से, स्त्री और पुत्र से छुड़ाया) उसी प्रकार – अहो काल,....** ज्ञान के आठ आचार हैं। यह व्यवहार आचार (है)। निश्चय आचार तो है ही। समझ में आया ? तब ऐसा व्यवहार आचार आता है परन्तु व्यवहार आचार से कथन किया है। 'जयसेनाचार्यदेव' की टीका में है, भाई ! समझ में आया ? निश्चय सम्यग्ज्ञान का आचार तो अपने आनन्द में, एकाकार ज्ञान में लीन हो जाना, वह निश्चय ज्ञानाचार है। वही वास्तव में ज्ञानाचार है परन्तु साथ में ऐसा विकल्प व्यवहार का आता है। कैसा (विकल्प आता है) ?

अहो काल,.... काल में काल में स्वाध्याय करना। काल में काल में स्वाध्याय करना, अकाल में (स्वाध्याय करना) नहीं, ऐसा विकल्प आता है। समझ में आया ? **काल, विनय,....** विनय करना। देव का, गुरु का, शास्त्र का विनय करना, ऐसा विकल्प आता है, उसे ज्ञानाचार व्यवहार कहने में आता है। है बन्ध का कारण, परन्तु चरणानुयोग की पद्धति में ऐसा कहेंगे कि हे आचार ! मैं जानता हूँ कि तुम मेरे शुद्ध स्वरूप से भिन्न हो। हमारा शुद्ध स्वरूप तुम नहीं, वह कहेंगे परन्तु तुम्हारे प्रसाद से जब तक मैं पूर्णता प्राप्त न करूँ, तब तक तेरा निमित्तपना मेरे ज्ञानाचार में होता है। आहा...हा... !

विनय, उपधान,.... उपधान का अर्थ दो होता है। एक तो जो धारी हुई वस्तु हो उसको भूलना नहीं। यहाँ व्यवहार है न? कोई शास्त्र का, तत्त्व का भाव धारा हो, उसको भूलना नहीं, वह भी एक उपधान, ज्ञान का आचार व्यवहार कहने में आता है। अथवा ज्ञानाचार में वह जब तक ज्ञान की आराधना करने में वर्तता है, तब कोई चीज की प्रतिज्ञा (होती है कि)ऐसी चीज मैं तब तक नहीं खाऊँ। समझ में आया? ऐसी कोई प्रतिज्ञा उपवास, एकासन, रस का त्याग इत्यादि–ऐसा विकल्प, ज्ञान आराधना में व्यवहार में ऐसा आये बिना रहता नहीं।

बहुमान,.... ज्ञानी का बहुमान करना, ज्ञान का बहुमान करना। ज्ञान और ज्ञानी का बहुमान। ओ...हो...! ऐसा व्यवहार / विकल्प अनुभवपूर्वक (आता है)। पहले तो कहा। समझे? सर्व प्रकार से विरक्त ही है। सम्यग्दर्शन हुआ तो विकल्प से तो विरक्त ही है। श्रद्धा और अनुभव की अपेक्षा से (विरक्त ही है) परन्तु चारित्र की पर्याय में मन्दता के कारण जो राग आता है तो ऐसा आचार अंगीकार करता हूँ – ऐसा व्यवहारनय से कहने में आता है। आ...हा...! समझ में आया?

अनिह्नव,.... जिस शास्त्र से ज्ञान हुआ हो या जिस विद्यागुरु से ज्ञान हुआ, उस गुरु को नहीं छिपाना। 'हम ही हमारे से समझे' ऐसा कहने से निह्नव (दोष) होता है, ज्ञान की चोरी होती है। समझ में आया? समझ हो 'समयसार' से और कहे कि 'मैं तो श्वेताम्बर का भगवतीसूत्र पढ़ता था, उसमें से मुझे ज्ञान हुआ है।' समझ में आया?

मुमुक्षु – .....

पूज्य गुरुदेवश्री – .....अपने शास्त्र में भी कहा नहीं है? पहले ना कहते थे। समझ में आया?

यह शास्त्र पढ़ने से मुझे ज्ञान हुआ है और इस विद्यागुरु से मुझे ज्ञान हुआ है, ऐसा यदि छिपाये तो निह्नव (अर्थात्) ज्ञान का चोर है। तो उसके व्यवहार में ठिकाना नहीं। समझ में आया? निश्चय तो होता ही नहीं।

अनिह्नव,... निह्नव नहीं, चोरी नहीं करनी, छिपाना नहीं, गुप्त रखना नहीं। समझ में आया? **अर्थ, व्यंजन और तदुभय....** जो भगवान का शास्त्र है, सिद्धान्तगुरु का अथवा

आचार्य का (शास्त्र है), उसका अर्थ जैसा है, वैसा लगाना। अपनी कल्पना से अर्थ लगाना नहीं। समझ में आया? और शब्द, व्यंजन अर्थात् शब्द, व्यंजन अर्थात् शब्द। जैसा शब्द शास्त्रों में है, ऐसा ही शब्द (का) उच्चारण बराबर करना। समझ में आया? उच्चारण तो जड़ की पर्याय है, परन्तु समझने में उसके भाव में ऐसी बात है, विकल्प ऐसा है, इतनी बात है। समझ में आया? और कदाचित् वह शब्द न भी हो। 'शिवभूति' (मुनि)! शब्द ही नहीं था, व्यंजन नहीं था, अर्थ था। आनन्दस्वरूप (आत्मा)! जैसे छिलका भिन्न है, वैसे विकल्प छिलके जैसा भिन्न है, मेरी चीज आनन्दकन्द भिन्न है। मेरी चीज आनन्दकन्द भिन्न है, बस! ऐसा अर्थ समझकर अन्दर में उतर गये। सम्यग्दृष्टि तो थे, मुनि तो थे (और) ऐसे (अन्दर) उतर गये तो केवलज्ञान हो गया। समझ में आया? कोई शब्द, शास्त्र पढ़ा हो तो ही केवलज्ञान हो, ऐसा है नहीं परन्तु जहाँ व्यवहार से बात करते हो तो उसकी शुद्धि व्यवहार से, शब्द की शुद्धि रखनी। न हो तो भाव की शुद्धि रखनी।

तदुभय.... और शब्द दोनों का बराबर आचार करना। वह ज्ञानाचार है, लो! वह विकल्प है परन्तु अपना स्वरूप शुद्ध धातु, उसका अनुभव होने पर भी, जब तक वीतरागता न हो, तब निश्चय ज्ञान की रमणता के साथ ऐसा व्यवहार का विकल्प, व्यवहार आता है उसका यहाँ ज्ञान कराते हैं। कल आया था न? ये प्रणेता रहे। प्रणेता हम यह खड़े हैं। ऐसी चीज ही होती है, वह हमको अनुभव में आनन्द में और विकल्प ऐसा है, हमारे ख्याल में है। समझ में आया? ओ...हो...! व्यवहार के साथ निश्चय की सन्धि (करते हैं), बहुत अलौकिक! अकेला व्यवहार हो तो वहाँ वह व्यवहार कहने में आता ही नहीं और अकेला निश्चय हो तो केवलज्ञान हो जाये। जब तक साधक है तो निश्चय अन्दर ज्ञानाचार सम्यग्दर्शन सहित है तो वहाँ ऐसे विकल्प का भाव आये बिना रहता नहीं, क्योंकि साधक है, पूर्ण साध्य - सिद्धपद हुआ नहीं। साधक है, इतना विकल्प है। वह तो बाधक है। है तो (विकल्प) बाधक परन्तु यहाँ चरणानुयोग है (तो) ऐसा कहते हैं। देखो, आगे कहेंगे।

मैं यह निश्चय से जानता हूँ... देखो! **मैं यह निश्चय से जानता हूँ कि तू शुद्धात्मा का नहीं....** ज्ञान का आठ आचार - विकल्प (आता है वह) मेरे आत्मा का

नहीं, मेरा स्वरूप नहीं। वह विकल्प आता है। काल, विनय इत्यादि (विकल्प आता है)। जानता हूँ, भगवान! (वह विकल्प) मेरी चीज नहीं। शुद्धात्मा की चीज अशुद्ध विकल्प नहीं। **तथापि....** अब चरणानुयोग की शैली (से) कहते हैं। **मैं तुझे...** आठ विकल्प की अपेक्षा से कहते हैं। **मैं तुझे तब तक अंगीकार करता हूँ....** तब तक, वहाँ तक मैं (अंगीकार) करता हूँ, **जब तक मैं तेरे प्रसाद से....** भाषा देखो! राग के प्रसाद से मेरी पूर्णता हो, ऐसा चरणानुयोग के कथन में आता है। आहा...हा...!

मुमुक्षु – राग से लाभ.....

पूज्य गुरुदेवश्री – लाभ है नहीं परन्तु व्यवहारनय से कहा तो 'ऐसा है नहीं'। वस्तु तो ऐसी है, भाई! विकल्प है सो जहर है। आत्मा अमृतस्वरूप, अतीन्द्रिय अमृत का पिण्ड प्रभु, उसमें जो विकल्प उठते हैं, वह तो जहर है, अमृत को लूटनेवाले हैं परन्तु व्यवहारनय से जब कथन करने में आये तो निश्चय के अनुभव सहित, वह निमित्त मेरा है नहीं, ऐसा मैं प्रथम से जानता हूँ, परन्तु तेरे निमित्त के प्रसाद से जब तक मैं पूर्ण न हो जाऊँ, तब तक तुझे अंगीकार करता हूँ। छोड़ना तो चाहता हूँ परन्तु मैं अभी मेरी छोड़ने की भावना कम है। समझ में आया? श्रद्धा में छोड़ने की है, स्थिरता में नहीं है। आ...हा...! देखो! चरणानुयोग की पद्धति ऐसी है। यह चरणानुयोग चूलिका है न?

मैं तो शुद्धात्मा का (हूँ)। **मैं यह निश्चय से जानता हूँ कि...** ज्ञानाचार के जो आठ विकल्प हैं, वह मेरा स्वरूप नहीं, मेरी चीज में तू नहीं, मुझे तू लाभदायक भी नहीं। परन्तु 'तो भी' ऐसा है न? **तथापि...** तो भी **मैं तुझे तब तक अंगीकार...** देखो! व्यवहार को अंगीकार करता हूँ, (– ऐसा कहते हैं)। भाई! व्यवहारनय से ऐसे राग का मैं आश्रय करता हूँ, ऐसा राग है – ऐसा जानता हूँ। व्यवहारनय से ऐसा कहते हैं। निमित्त का कथन हूँ।

मुमुक्षु – जानना प्रयोजनवान है।

पूज्य गुरुदेवश्री – जाना हुआ प्रयोजन है, परन्तु व्यवहारन में 'अंगीकार करता हूँ' ऐसा कहने में आता है। शैली ऐसी है, भाई! निश्चय सहित व्यवहार, भगवान परमात्मा ने कहा, वह अलौकिक है। समझ में आया?

कहते हैं, **मैं तुझे तब तक अंगीकार करता हूँ, जब तक कि तेरे प्रसाद से... देखो! शुद्धात्मा को उपलब्ध कर लूँ।** मैं जब तक वीतरागता कर लूँ, तब तक तेरा निमित्तपना मेरे पास है – ऐसा व्यवहार से साधक कहते हैं।

प्रश्न – अंगीकार करने की बात आयी तो...

समाधान – स्थिरता नहीं, राग (है)। व्यवहारनय की बात है न! ज्ञानाचार की स्वरूप की स्थिरता तो है ही। निर्विकल्प शान्ति का वेदन निश्चय ज्ञानाचार तो है ही, उसके साथ यह विकल्प ऐसा है कि तेरे प्रसाद से पूर्ण न हो जाऊँ, तब तक तुझे अंगीकार करता हूँ अथवा तुम जानने योग्य हो, ऐसा मैं जानता हूँ। वह निश्चय से कथन है। तुम जानने योग्य हो ऐसा मैं जानता हूँ, यह निश्चय (है) परन्तु व्यवहारनय के कथन में तुझे अंगीकार करता हूँ, ऐसा कहने में आता है। आ...हा... ! बहुत विवाद, भाई! निश्चय और व्यवहार का विवाद।

भगवान तो निरालम्बी तत्त्व है न! उसको आलम्बन कैसा ? विकल्प का आलम्बन कैसा ? समझ में आया ? ७३ गाथा में चला था न ? तुम थे ? सम्यग्दर्शन होने से पहले ऐसा निर्णय करते हैं कि जितना व्यवहार, विकल्प जो है वह सदा, स्वयं उस रूप मैं नहीं परिणमूं – ऐसी मेरी चीज है; ऐसा तो सम्यग्दर्शन होने से पहले निर्णय करते हैं। मेरा है ही नहीं, वह कहा है। वहाँ तो मैं उस रूप परिणमूं – ऐसा मैं हूँ ही नहीं। स्वयं सदा रागादि विकल्प मेरा है अथवा (उसरूप) परिणमूं – ऐसा मैं हूँ नहीं। निश्चय का स्वरूप का अनुभव में ऐसी चीज है। व्यवहार का कथन जब चलता हो तो यह कहते हैं कि तुझे अंगीकार करता हूँ। तेरे प्रसाद से, मैं तुम को छोड़कर शुद्धात्म पूर्ण वीतराग न होऊँ, तब तक तेरा आश्रय मुझे व्यवहार से है, इतना। है तो हेयबुद्धि। जानता हूँ। उसको अंगीकार करते हैं, ऐसा व्यवहारनय से कहा। अरे... ! विवाद... विवाद। निश्चय-व्यवहार की विवाद। 'बनारसीदास' ने कहा न ? साधक-साधक। ....ऐसा लिया है। समझ में आया ? यह वाद-विवाद का विषय नहीं, प्रभु! यह तो अलौकिक बात है। जिसको आत्मा का कल्याण करना हो तो उसकी विधि यह है। समझ में आया ? बचाव करे कि देखो! व्यवहार के प्रसाद से आता है कि नहीं ? ऐसा कहा है न! व्यवहार के प्रसाद से निश्चय होगा, देखो! लिखा है। देखो!

मुमुक्षु – ......

पूज्य गुरुदेवश्री – बहुत लोग लिखते हैं। जैनदर्शन का तत्त्व, भगवान का तो विरोध हो जाये। एक ओर ऐसा कहे कि व्यवहार से मैं परिणम सकूँ – ऐसी मैं चीज ही नहीं। सदा स्वयं स्वामी होकर व्यवहार का विकल्प का परिणमन करूँ, वह मेरी चीज ही नहीं। विकल्प से मैं परिणमूँ – ऐसा हो जाये तो दृष्टि विपरीत हो गई। कठिन बात है। ऐसी चीज है। वाद-विवाद से (पार नहीं आता)। (कोई कहे कि) आओ, चर्चा करते हैं। चर्चा करते समय शास्त्र की बात सामने रखे।

मुमुक्षु – ....

पूज्य गुरुदेवश्री – लिखा है न! लेकिन कौन-से नय का कथन है? कौन-से नय का कथन है? वह आया या नहीं? 'द्रव्यसंग्रह' में आया है। शब्दार्थ, आगमार्थ, अन्यार्थ, नयार्थ, तात्पर्य। ऐसे एक-एक गाथा को पाँच-पाँच प्रकार से समझना। कौन-से नय का कथन है? (ऐसे) प्रत्येक गाथा, प्रत्येक वाक्य (को इस प्रकार) समझना। 'पंचास्तिकाय' में, 'समयसार' में 'जयसेनाचार्यदेव' की टीका में (ऐसा आता) है। हो, हर जगह है। पाँच बोल – शब्दार्थ, नयार्थ, आगमार्थ, अन्य मतार्थ, तात्पर्य। भावार्थ – तात्पर्य। प्रत्यके वाक्य में कहा है और वाक्य में बाद में उसे छुड़ाने की बुद्धि है। अन्दर बुद्धि भी छोड़ने की है परन्तु व्यवहार से बीच में आता है।

वास्तव में विकल्प का ज्ञान करना, ऐसा भी नहीं है। तो विकल्प अंगीकार करूँ वह तो व्यवहार का कथन है। व्यवहार ज्ञान करे क्या? अपना स्वरूप शुद्ध चैतन्य है, उसको ज्ञेय बनाकर जहाँ अपना भान हुआ तो राग का ज्ञान तो स्व-पर प्रकाशक अपने ज्ञान के साथ में उत्पन्न हो जाता है। समझ में आया? परन्तु व्यवहार से ऐसा कहने में आता है। रागादि आया वह जाना हुआ प्रयोजनवान है। जाना हुआ प्रयोजनवान है, आदरणीय प्रयोजनवान है नहीं। यहाँ कहते हैं कि आदरणीय है। वस्तु तो जैसी है वैसी रहेगी। दुनिया कल्पना करे इसलिए अर्थ दूसरा हो जाएगा?

मुमुक्षु – ऐसा लिखा है शास्त्र में।

पूज्य गुरुदेवश्री – ऐसा ही कहा है। तत्प्रसाद कहा न! व्यवहार से कहा कि तेरे प्रसाद से। निश्चय से कहा कि तेरे प्रसाद से नहीं। दो नय का कथन है। वस्तु तो ऐसी है,

भाई ! 'सद्गुरु कहे सहज का धन्धा, वाद-विवाद करे सो अन्धा।' अरे... ! तुझे मालूम नहीं, बापू ! भाई !

आत्मा की रमणता, चिदानन्द स्वभाव की जागृति जहाँ अन्तर के अनुभव में हुई, पीछे उसकी योग्यता-अनुसार वहाँ ऐसा विकल्प आता है। समझ में आया ? उसको व्यवहारनय के कथन में (इस प्रकार कहने में आता है)। अध्यात्मदृष्टि में तो जो विकल्प उठा है, वह तो असद्भूतनय का विषय है, भाई ! आहा...हा... ! जितना विकल्प ख्याल में आता है, वह तो असद्भूत उपचार का कथन है, झूठे नय का कथन है। आहा...हा... ! समझ में आया ? उसी समय ख्याल में नहीं आनेवाला, उपयोग में नहीं होनेवाला, वह भी असद्भूत अनुपचार है। आ...हा... ! समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं कि मुझे विकल्प आया और मैंने अंगीकार किया, ऐसा कहता हूँ। वह व्यवहारनय से (कहते) हैं। चरणानुयोग की कथन की पद्धति ऐसी होती है। समझ में आया ? और ऐसा होता या नहीं ? ऐसा होता है, उस समय ऐसा विकल्प आता है; आये बिना रहता नहीं। (नहीं आये तो) वीतराग हो जाये। आता है तो लाभदायक है, ऐसा यहाँ कहना नहीं है परन्तु है तो निमित्त का कथन से ऐसा आया कि तेरे प्रसाद से मैं पूर्ण नहीं हो जाऊँ, तब तक मेरी भूमिका में तुम हो। बस ! इतनी बात है। समझ में आया ? वह ज्ञान के आचार की बात कही।

अब कहते हैं, **अहो निःशंकितत्व,...** यह व्यवहार की बात है, हाँ! निश्चय निःशंकत्व तो आत्मा के अनुभव में रमणता (वह है)। शंका नहीं ही कि मैं पुण्य हूँ या (नहीं) ? निःशंक परिणमन (है), निर्भय परिणमन, निर्भय अन्तर के आनन्द की परिणमन दशा, उसको निश्चय निःशंकत्व कहते हैं। जो निर्विकल्प और शुद्ध है। समझ में आया ? ऐसे निःशंकत्व के साथ सम्यग्दर्शन में निःशंकत्व वीतरागी पर्याय के साथ यह निःशंकत्व जो उत्पन्न होता है, वह विकल्प है। समझ में आया ?

निःशंकत्व - तत्त्व में शंका नहीं। शंका ही नहीं। वस्तु त्रिकाल अखण्डानन्द में शंका नहीं; इसलिए निःसन्देह अन्तर अनुभव है, वह निश्चय निःशंक है और व्यवहार - भगवान ने कहे हुए तत्त्व, उसमें शंका नहीं। समझ में आया ? निःशंकपना, वह विकल्प है, व्यवहार है।

निकांक्षितत्व,... आत्मा में पुण्य की भी इच्छा नहीं - ऐसी वीतराग की परिणति, उसका नाम निश्चय सच्चा निकांक्षित्व कहते हैं परन्तु उस निश्चय निकांक्षित तत्त्व की पर्याय के साथ विकल्प जो उठते हैं, (उसमें) कोई अन्य धर्म की इच्छा नहीं। समझ में आया ? ऐसा निकांक्षितत्त्व - निकांक्षपना है तो विकल्प, है तो शुभराग, है बन्ध का कारण। समझ में आया ? आये बिना रहता नहीं। राग पड़ा है न, राग। वीतराग हुआ नहीं।

निर्विचिकित्सत्व.... अन्तर में स्वभाव में ग्लानि नहीं। ओ...हो...हो...! ऐसा स्वभाव... ऐसा स्वभाव! ऐसा अन्दर में अरुचि नहीं। शुद्ध आनन्द का परिणमन को निश्चय निर्विचिकित्सा कहते हैं। व्यवहार में मुनियों की दशा देखकर ग्लानि नहीं (होनी)। निर्विचिकित्सा - चिकित्सा नहीं कि यह क्यों ? ऐसा क्यों ? ऐसा भाव होता नहीं। वह है विकल्प, है शुभराग, समकित का आचार, परन्तु व्यवहारनय से उसको अंगीकार करता हूँ, ऐसा कहने में आया है। कठिन बात, भाई! व्यवहार को साधन कहा है न ? यहाँ प्रसाद कहा न! साधक कहा है, कारण कहा है। 'छहढाला' में नहीं कहा ? नियत हेतु व्यवहार परन्तु वह 'छहढाला' में कहा नहीं ? कि निश्चय मोक्षमार्ग है, वह सत्यार्थ है, कहा नहीं ? सत्यार्थ वह है तो व्यवहार असत्यार्थ है कहा, फिर तुम्हें क्या कहना है ?

मुमुक्षु - यहाँ सहकारी कारण....

पूज्य गुरुदेवश्री - सहकारी कारण का अर्थ, यहाँ तो असत्यार्थ ऐसा सिद्ध करना है। सहकारी कारण तो निमित्तरूप से। लेकिन यहाँ तो सत्यार्थ कहा तो व्यवहार असत्यार्थ हुआ, ऐसा साथ में है। जब निश्चय सत्यार्थ मोक्षमार्ग है तो व्यवहार असत्यार्थ है - ऐसा उसमें से निकला। असत्यार्थ को हेतु और कारण कहने में आता है, इतनी बात है। समझ में आया ? कठिन, भाई! जिसको अन्दर वीतरागता रुचति नहीं उसको अनादि से राग रुचता है तो जहाँ-तहाँ से राग (से) लाभ होगा, लाभ होगा - ऐसा निकालते हैं। ऐसी बात है, भाई!

निर्विचिकितस्व,... पना है न ? **निर्मूढदृष्टित्व,....** भगवान आत्मा अपने स्वरूप में उद्यम करके आनन्द आनन्द विशेष आता है परन्तु विशेष आगे बढ़ते नहीं तो घबराते नहीं। घबराते नहीं। अन्तर स्वरूप में तो आनन्द हूँ। मेरी ध्रुव चीज आनन्दकन्द है। ऐसा

निश्चय निर्मूढ़त्व तो यह है। मुझे भव नहीं, भव का भाव नहीं। मेरे कितने भव होंगे? ऐसा सम्यग्दृष्टि को होता नहीं। निर्मूढत्व है। मैं तो भगवान आत्मा सहजानन्द वीतरागमूर्ति हूँ। उसमें मूढ़ता, मूंझवण, घबराहट है नहीं। इतना करते-करते विशेष प्रगट होता है। पुरुषार्थ की कमी है तो वे घबराते नहीं। थोड़ा उसमें आयेगा। आकुल-व्याकुल नहीं होता। है न? विभावपरिणति को पृथक् होती न देखकर। देखो! अन्दर में है। पीछे अर्थ में (है)। **विभावपरिणति को पृथक् होती न देखकर वह आकुल-व्याकुल भी नहीं होता....** है अन्दर में? हिन्दी है न, ३९७ पन्ने पर बीच में है। चौथी पंक्ति है। **पृथक् होती न देखकर वह आकुल-व्याकुल भी नहीं होता...** राग छूटा न हो तो भी ज्ञानी आकुल-व्याकुल नहीं होते और राग होता (है उसे) आदरणीय मानते नहीं। आहा...हा...! समझ में आया?

उपबृंहण,... निश्चय से तो अपनी शुद्धि बढ़ती जाती है। सम्यग्दृष्टि को अपने स्वरूप का अनुभव होने से वास्तव में तो शुद्धि बढ़ती ही जाती है। समझ में आया? वह उसका उपबृंहण है। बाहर में उपबृंहण - विकल्प से धर्म की प्रभावना आदि (की) वृद्धि करनी। वृद्धि करना अथवा अधर्म को गोपीत करना। दो अर्थ है न! दो अर्थ है। दो बात है। दोष का अभाव करना, व्यवहार दोष, हाँ! और दोष को गोपित करना। इसलिए दो अर्थ हुए। दोष को गोपित करना अर्थात् दोष होने नहीं देना। उपबृंहण का दूसरा अर्थ है। उपगूहन उसमें से निकलता है।

स्थितिकरण,... समकिती को स्वरूप भगवान आत्मा की स्थितिकरण तो अन्दर निरन्तर होता ही है। धर्मी जीव (को) चौथे गुणस्थान से अपना स्थितिकरण तो कायम है परन्तु व्यवहार में स्थितिकरण, अपने में कुछ ऐसा हो जाए, चारित्र आदि में स्थितिकरण का ऐसा विकल्प आता है और दूसरा कोई स्थिति से भ्रष्ट होता हो तो विकल्प आता है। धर्म की स्थिति करने को दूसरे को भी कहते हैं।

वात्सल्य,.... भगवान आत्मा का जैसा प्रेम है, ऐसा धर्मी को राग के प्रति प्रेम नहीं। जिसे अपना भगवान आत्मा आनन्द के प्रति प्रेम है, प्रेम शब्द का अर्थ एकाकार है, ऐसा राग के साथ प्रेम नहीं है। वह निश्चय से वात्सल्य है। व्यवहार से वात्सल्य देव-गुरु-

शास्त्र का प्रेम करना, (वह वात्सल्य है)। समझ में आया ? आया न, आचार्य, उपाध्याय, साधु का वात्सल्य। 'समयसार'! समझ में आया ? व्यवहार से धर्म का अथवा धर्म को धारण करनेवाले का वात्सल्य। गौ अपने बच्चे के प्रति जैसे वात्सल्य करती है, ऐसा धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि जीव मुनि हो तो दूसरे के प्रति ऐसा धर्मात्मा हो तो उसको प्रेम व्यवहार से वात्सल्य आता है। समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि ज्ञानसहित अनुभवी चारित्रवन्त, ऐसा मुनि देखकर उसे वात्सल्य होता है। समझ में आया ? विकल्प (आता है), है व्यवहार। निश्चय वात्सल्य, स्वरूप में स्थिर होना वह है।

और प्रभावना... निश्चय प्रभावना। प्र (अर्थात्) विशेषरूप से अन्तर में शुद्धता की वृद्धि होना, वह निश्चय प्रभावना है। वीतराग परिणति की वृद्धि होना, वह निश्चय प्रभावना है परन्तु उस भूमिका में प्रभावना का विकल्प (आता है)। देव-गुरु-धर्म की प्रभावना हो, वृद्धि हो - ऐसा विकल्प आता है। पर का होना, न होना अपने आधीन नहीं। ये आठ व्यवहार दर्शनाचार है।

मैं यह निश्चय से जानता हूँ.... देखो! टीका। मैं यह निश्चय से जानता हूँ कि **तू शुद्धात्मा का नहीं है,....** समकित का आठ आचार शुद्धात्मा का नहीं। (लोग) अपनी दृष्टि (अनुसार) जहाँ अंगीकार करना हो तो उसको पकड़ ले। ....वहाँ समझते नहीं। पहले निश्चय की यह बात कही है, फिर वयवहार की बात कही है। पहले यह बात कही है फिर व्यवहार की बात कही है। **मैं यह निश्चय से जानता हूँ कि तू शुद्धात्मा का नहीं है,...** नि:शंकादि आठ प्रकार के विकल्प व्यवहार उठते हैं, वे मेरी चीज नहीं, शुद्धात्मा की चीज नहीं। आहा...हा... !

तथापि... तो भी **तुझे तब तक अंगीकार करता हूँ जब तक कि तेरे प्रसाद से...** (अर्थात्) निमित्त से **शुद्धात्मा को उपलब्ध कर लूँ।** मैं वीतराग पूर्ण हो जाऊँ, तब तक तुम मेरे पास निमित्तपने हो। व्यवहार अंगीकार करता हूँ - ऐसा कहने में आता है। समझ में आया ? व्यवहार है, नहीं है - ऐसा नहीं। है, परन्तु वह निमित्तरूप से है। निश्चय से आदरणीय नहीं। व्यवहार से आदरणीय, अंगीकार करने योग्य है - ऐसा कहने में आया है। निश्चय-व्यवहार की कथनी में इतनी गड़बड़ हो गई है कि वास्तविक तत्त्व में विवाद

(करते हैं)। अपना बचाव करने को जहाँ-तहाँ (कहते हैं), व्यवहार से लाभ होता है, व्यवहार से लाभ होता है। देखो! ये व्यवहार से लाभ हुआ परन्तु वह तो निश्चय आनन्द का अनुभव तो है ही। उसके साथ मुनि को दर्शनाचार निश्चय तो है। उसके साथ विकल्प आता है, उसको व्यवहार से दर्शनाचार कहा। तुम मेरे नहीं, तथापि पूर्ण वीतरागता की प्राप्ति मुझे न हो, तब तक तुझे अंगीकार करता हूँ। ऐसा व्यवहार से कथन करने में आता है। कहो, समझ में आया या नहीं? यह भाषा तो सरल है।

मुमुक्षु - अंगीकार करने को कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री - अंगीकार कहा न? व्यवहार जानने के योग्य रहा। व्यवहार से अंगीकार (करना अर्थात्) जानने योग्य (है)। व्यवहार में से भी निश्चय निकालना या नहीं?

प्रश्न - दो में से क्या करना?

समाधान - एक को जानना, एक का आदर करना - ऐसा जानना। वह भी व्यवहार से कहने में आता है। निश्चय से आदरने योग्य है ही नहीं परन्तु व्यवहारनय से आता है, अस्ति है; व्यवहार नहीं है - ऐसा नहीं। (फिर भी आता) है तो उसे अंगीकार किया - ऐसा कहने में आता है। विकल्प है न, जब तक वीतराग न हो तो ऐसा भाव आता है। आहा...हा...! सर्वज्ञ परमेश्वर, गुरु (का) बहुमान आये बिना रहे नहीं। उससे मेरे में (कुछ) होता नहीं। स्वद्रव्य में परद्रव्य से कुछ होता नहीं। ऐसा जानते हुए भी पूर्ण वीतरागता प्राप्त न हो तो, तब तक ऐसा राग विकल्प व्यवहार आता है, उसको अंगीकार करते हैं - ऐसा कहने में आता है; और तुम्हारे प्रसाद से, अर्थात् जब तक तुम हो, तब तक मेरी पूर्णता नहीं। तुम्हारा अभाव होकर मैं पूर्णता करूँ, तब तक तुम हो; तो अंगीकार करता हूँ - ऐसा कहने में आया। आहा...हा...! समझ में आया? क्या व्यवहार का विकल्प साथ में लेकर वीतरागता होती है?

मुमुक्षु - ख्याल रखता है।

पूज्य गुरुदेवश्री - ख्याल रखता है कि राग है। है, ऐसा ख्याल रखता जाता है।

मुमुक्षु - ......

पूज्य गुरुदेवश्री – है न, ख्याल क्या ? है। है, उसका नाम जानना। व्यवहार से आदरना – ऐसा कहने में आता है। ऐसा है, भाई ! चरणानुयोग की पद्धति ऐसी है। समझ में आया ? निमित्त से प्रधान कथन है, निमित्तप्रधान कथन है परन्तु निमित्तप्रधानता से लाभ है – ऐसा नहीं है। (लाभ हो तो तो) विरोध आ जाए। वीतराग के वचन में विरोध आ जाये।

आज सबेरे नहीं आया था ? हम कहते थे न कि रागादि परिणाम पुद्गल का है, ऐसा कहा था और एक ओर कहे कि वह पुद्गल का नहीं, तेरा है। क्या आया था ? भाई ! सुन तो सही, प्रभु ! पुद्गल का कहा था, वह स्वभाव की दृष्टि में अपना नहीं, उस अपेक्षा से कहा था। तेरा परिणाम तेरे से उत्पन्न होता है, इसलिए तेरा है – ऐसा कहा था। समझ में आया ? पहले तुम पुद्गल का कहो, जीव का कहो। पहले तो पुद्गल का कहते आये हो। जीव का नहीं, जीव का नहीं। चौदह मार्गणा पुद्गल का परिणाम, संयम लब्धिस्थान पुद्गल का परिणाम, चौदह गुणस्थान पुद्गल का परिणाम, चौदह जीवस्थान पुद्गल का परिणाम कहते हैं। समझ में आया ? वहाँ तुम पुद्गल का परिणाम कहो और (दूसरी जगह) आत्मा (कहते हो)। जीव का कहो तो वहाँ विरोध आता है। पुद्गल का कहो। जो चीज पर की है, उसका फल अपने को क्यों भोगना पड़े। राग का फल दुःख तो अपने को भोगना पड़ता है। तो पर का परिणाम अपने को दुःखदायक हो – ऐसा होता ही नहीं। इसलिए राग अपना है तो दुःख होता है। स्वभाव की दृष्टि से अपना नहीं। निकालने योग्य है तो पुद्गल का परिणाम कहने में आया है। ऐसा यहाँ समझना।

ऐसे पहले दो लिया न ? **मैं यह निश्चय से जानता हूँ कि तू शुद्धात्मा का नहीं है,....** पहले वह बात कही, बाद में वह बात है। **तथापि तुझे जब तक अंगीकार करता हूँ जब कि तेरे प्रसाद से शुद्धात्मा को उपलब्ध...** अर्थात् केवलज्ञान प्राप्त न हो। मेरी पूर्ण दशा वीतराग न हो (तब तक) वह आये बिना रहता नहीं। ....वह आता है या नहीं ? व्यवहारनय ....खेद है, बीच में व्यवहारनय आये बिना रहता नहीं। मेरी बलजोरी चले तो व्यवहार... 'हंत' क्या तुम्हारी भाषा में कहते हैं ? इसमें आता है न ? देखूँ नहीं। भाषा ली है। 'परम अध्यात्म तरंगिणी' में लिया है। लो, वही गाथा आयी। देखो !

'हम पण्डित जयचन्द्रजी के अर्थ से सहमत है। क्योंकि व्यवहारनय को हेय माना

है।' (एक विद्वान ऐसा लिखते हैं)। 'इसलिए हन्त शब्द से ग्रन्थकार ने यहाँ खेद प्रगट किया है। शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति के पहले, उसकी प्राप्ति के लिये हमें जबरन व्यवहारनय का अवलम्बन करना पड़ता है। यदि हमारा बस चलता (तो) बिना व्यवहार के आलम्बन के ही शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति हो जाती तो हम व्यवहारनय की ओर झाँककर भी नहीं देखते।' यह 'परम अध्यात्म तरंगिणी' है। कलश है न? कलश! कलश का अर्थ है। 'हंत' देखो, हंत है न? '....' मेरा चले तो व्यवहार को झांककर भी देखूँ। क्या करे? बीच में ऐसा विकल्प आये बिना रहता नहीं।

मुमुक्षु – कोई न आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री – तीर्थंकर को भी आता है। मुनि होते हैं तो (आता है)। आता है, परन्तु वह लाभदायक है नहीं। निमित्त से कथन (आते हैं)। प्रसाद से लाभ हो, (ऐसा कहा वह) निमित्त से कथन है। (निश्चय में) ऐसा है नहीं। 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' के सातवें अध्ययन में दो नय का कथन है। बहुत अपूर्व है! निश्चयाभासी और व्यवहाराभासी। दोनों का एक साथ कथन बहुत (अद्भूत है)। शास्त्र का रहस्य अन्तर से खोला है। समझ में आया?

पहले तो हमने कहा था न, (संवत) १९८४ की साल। हमने पहले १९८२ में पढ़ा था। ४३ वर्ष हुए। 'मोक्षमार्ग प्रकाशक'! बाद में सातवाँ अध्याय लिख लिया। हम पुस्तक रखते नहीं। कौन उठाये? विहार करते थे न। स्थानकवासी में (थे तब) पाँच-छह हजार कोस चले थे। छह-सात हजार कोस! विहार करते थे (तब) साथ में कुछ रखते नहीं (थे)। (उस वक्त) सातवाँ अध्याय शीशपेन से लिख लिया। १९८४ की साल में, 'बगसरा' है वहाँ (लिखा था)। ओ...हो...! बात तो सत्य में यही है। सारे सातवें अध्याय में जैनदर्शन का मर्म भर दिया है। समझ में आया? १९८४, कितने वर्ष हुए? ४१ हुए। ४१ वर्ष (पहले) लिखा हुआ सातवाँ अध्याय मेरे पास है। ....४१ वर्ष पहले का पुराना कागज है। आहा...हा...!

(किसी ने) कहा, दो मार्ग हैं, भ्रम में पड़ा है, भगवान! मार्ग तो एक ही है न! यहाँ व्यवहार कहा न! वह मार्ग है नहीं, परन्तु आता है, उसे जानने योग्य है, उसको व्यवहारनय

से 'तेरे प्रसाद से मुझे प्राप्त हो' ऐसा कहने में आया है। आहा...हा...! आप के प्रताप से आत्मा जानने में आया, लो! समझ में आया?

मुमुक्षु – आपने आत्मा दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री – इसमें नहीं (आता)? 'आत्मसिद्धि' में ऐसा आता है। 'श्रीमद्' की 'आत्मसिद्धि' है न! 'वह तो प्रभु ने ही दिया, वर्तु चरणाधीन' ऐसा पहला पद है? 'क्या प्रभु चरण निकट धरूँ?' शिष्य ने जब समकित पाया तो 'आत्मसिद्धि' में गुरु को कहते हैं। 'आत्मसिद्धि' है न! देखिये! उसमें ऐसा श्लोक लिया है, 'क्या प्रभु चरण निकट धरूँ? आत्मा से सब हीन, वह तो प्रभु ने ही दिया वर्तु चरणाधीन' ऐसा निमित्त से बहुमान से ऐसा कथन करने में आता है। आत्मा कोई किसी को दे सकता है? ऐसा बहुमान का विकल्प आये बिना रहता नहीं। समझ में आया? परन्तु समझते हैं... पहले कोई ये प्रश्न करते थे, तुम गुरु के पास ऐसा कहो कि तुम्हारे से मिला। अन्दर ऐसा मानो कि तुम्हारे से मिला नहीं। यह तो माया हुई। बहुत वर्ष पहले ऐसा प्रश्न हुआ था। 'ईसरी' में प्रश्न आया था। समझ में आया? यहाँ हमारे पास तो हिन्दुस्तान में बहुत प्रश्न आये न! आप कहते हो कि निमित्त से लाभ नहीं, निमित्त से लाभ नहीं, गुरु से लाभ नहीं। गुरु के पास कहो कि आप के प्रताप से मुझे भान हुआ। आप नहीं होते तो (मुझे नहीं मिलता)। मन में ऐसा समझे कि मेरे से हुआ है; बाहर में ऐसा कहो कि तुम्हारे से हुआ। यह तो कपट हुआ। ऐसा नहीं है, प्रभु!

उसका अर्थ है, प्रभु! हमारी चीज हमारे पास आपने बता दी। मैंने देखी तो आपने बताई – ऐसा कहने में आता है। ऐसा व्यवहार का कथन है। व्यवहार ऐसा ही है।

मुमुक्षु – छल.....

पूज्य गुरुदेवश्री – छल... छल आया है न! 'पुरुषार्थसिद्धियुपाय' में आया है। छल का ऐसा है कि थोड़ा पकड़कर बड़ा मान लेना। है, सब है। 'पुरुषार्थसिद्धियुपाय' में बहुत लिया है। व्यवहारनय की थोड़ी पकड़ आ जाये, छल पकड़कर आये। परन्तु वास्तव में तो बाद में व्यवहार रहता नहीं है, तो वहाँ तो उसे कबूल करना पड़े कि व्यवहार मेरा नहीं। 'पुरुषार्थसिद्धियुपाय' में लिया है। समझ में आया? वह गाथा है न! आ...हा...हा...!

यहाँ कहते हैं, अरे...! **तुझे तब तक अंगीकार करता हूँ जब तक कि तेरे प्रसाद से शुद्धात्मा को उपलब्ध कर लूँ।** पूर्ण की बात है, हाँ! अनुभव तो है ही। शुद्धात्मा पूर्ण को प्राप्त कर लूँ, तब तक तेरा तुझे आधार है। दो (बात हुई)।

अहो, मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति के कारणभूत,.... कारणभूत कहो या निमित्तभूत कहो (एकार्थ है)। निश्चय से तो व्रत ऐसा है, अपने स्वरूप के आनन्द में लीन हो जाना, इसका नाम व्रत है। 'द्रव्यसंग्रह' में आता है न? भाई! (एक भाई ने संवत्) १९९२ में प्रश्न किया था। ३५वीं गाथा है, ३५।

वदसमिदीगुत्तीओ धम्माणुपेहा परीसहजओ य।
चारित्तं बहुभेया णायव्वा भावसंवरविसेसा॥ ३५॥

यह प्रश्न (एक भाई ने) १९९२ की साल में पूछा था। देखो! निश्चयनय से विशुद्ध ज्ञान, दर्शनरूप स्वभाव का धारक निज आत्मतत्त्व, उसकी भावना से उत्पन्न सुखरूपी अमृत, उसके आस्वाद के बल से सम्पूर्ण शुभ-अशुभ रागादि विकल्प से रहित होना, सो व्रत है। वह व्रत है। निश्चय व्रत, हाँ! शुभ-अशुभ रागादि विकल्प से रहित (होना), वह व्रत है।

व्यवहार से, अब व्यवहार से (कहते हैं)। पहले (निश्चय) कहकर बाद में (व्यवहार व्रत कहते हैं)। उस निश्चयव्रत को साधनेवाला। साधनेवाला लिखा (वह तो) निमित्त है। **हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह के आजीवन त्याग-लक्षणरूप पाँच प्रकार के व्रत हैं।** लो! समझ में आया? एक-एक गाथा में प्रत्येक नय उतारी है। दो बात साथ में करते हैं।

कहते हैं, **अहो, मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति के कारणभूत,...** निमित्तभूत, हाँ! मोक्षमार्ग तो अपना निश्चय है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि वीतराग पर्याय मोक्षमार्ग है। उसमें प्रवृत्ति के निमित्तभूत **पंच महाव्रतसहित काय-वचन-गुप्ति और ईर्या-भाषा-ऐषणा-आदाननिक्षेपण-प्रतिष्ठापनसमितिस्वरूप चारित्रासार!** तेरह हो गये न, तेरह? पंच महाव्रत, पाँच समिति और तीन गुप्ति। तेरह हुए। तेरह प्रकार का व्यवहार है। व्यवहार है, वह विकल्प है। अहिंसा व्रत, वह भी एक विकल्प है। सत्य व्रत भी एक विकल्प - राग

है। अचौर्य भी एक राग है। शरीर से आजीवन ब्रह्मचर्य पालना, वह भी एक विकल्प – राग है। अपरिग्रह – नग्नपने रहूँ, वह भी एक विकल्प राग है। इन पंच महाव्रत को राग भाव कहते हैं और तीन गुप्ति। अशुभ से रहित, हाँ! तीन गुप्ति का अर्थ व्यवहारगुप्ति.... व्यवहारगुप्ति। निश्चयगुप्ति नहीं। निश्चयगुप्ति तो शुभाशुभ (भाव) रहित (होकर अन्दर में) स्थिर हो जाना। व्यवहार गुप्ति अशुभ से रहित शुभ में आना, वह व्यवहारगुप्ति (है)। निश्चय अनुभव है, सम्यग्दर्शन है, सम्यक् आनन्द है, वीतराग परिणति है; उसके साथ में अशुभ से रहित शुभ में आना, उसे व्यवहार गुप्ति कहने में आता है। वह विकल्प है।

ईर्या (अर्थात्) देखकर चलना। वह विकल्प है, हाँ! चलने, फिरने की क्रिया जड़ की है, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है। अन्दर प्रमाद न हो, ऐसा विकल्प। भाषा – विचार के बोलना, ऐसा विकल्प। ऐषणा – उसके लिए बनाया हुआ भोजन लेना नहीं। ऐषणा – ऐसे स्वरूप की अन्तर ऐषणा और अनुभव होने के बाद उसमें ऐसे मुनिव्रत धारण (करने में) ऐसी ऐषणा का विकल्प आता है। मेरे लिए बना हो, (वह आहार लेना नहीं)। ४२-४३ दोष रहित आहार ले। उसमें कोई भी दोष हो तो आहार (लेना नहीं)। ऐसा तो व्यवहार विकल्प आये बिना रहता नहीं। निर्दोष आहार ऐषणा से लूँ – ऐसा विकल्प है। है बन्ध का कारण। (परन्तु) आये बिना (रहता नहीं)।

ऐसे आदान-निक्षेपणप्रतिष्ठापन समिति। कोई वस्तु लेने-रखने में प्रमादरहित शुभ विकल्प। वह शुभ विकल्प है, चारित्राचार है। **मैं निश्चय से जानता हूँ कि तू शुद्धात्मा का नहीं है,...** लो! पंच महाव्रत, तीन गुप्ति और पाँच समिति – तेरा स्वरूप मेरा नहीं। वह विशेष आयेगा, लो! (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

नोट – प्रवचन क्रमांक २०३ और २०४ सी.डी. में उपलब्ध नहीं होने से, वे प्रवचन पुस्तक में समावेश नहीं किये जा सके हैं।

प्रवचन नं. २०५ आषाढ़ शुक्ल १, सोमवार, १६ जून १९६९

(प्रवचनसार, २०२ गाथा चल रही है)। **ऐसा होने से वह शुभराग के उदय की भूमिका में...** पहले सम्यग्दर्शन और अनुभव तो हुआ है, बाद की बात है। समझ में आया? अपने दृष्टि (को) ध्रुव पर करके सम्यक् अनुभव का परिणमन हुआ है। दृष्टि ने सारे ध्रुव का कब्जा कर लिया है। अनन्त आनन्द की खान, अनन्त ज्ञान, शान्ति की खान को दृष्टि ने अन्तर में अनुभव में पकड़ लिया है। समझ में आया? तो सारे स्वद्रव्य का स्वामी हो गया। सम्यग्दृष्टि वस्तु का स्वामी हो गया। ऐसी दृष्टि में तो कहते हैं कि वह राग, पुण्य-पाप के विकल्प का तो त्याग ही है। उसे कोई त्याग करना बाकी रहा नहीं। दृष्टि की अपेक्षा से कोई त्याग करना है, ज्ञान की अपेक्षा से कोई त्याग करना है, ऐसा है नहीं। ओ...हो...हो...! मार्ग ऐसा है, देखो! समझ में आया?

शुभराग के उदय की भूमिका में गृहवास का और कुटुम्ब का त्यागी... होता है। शुभराग है न, तो गृहवास में अपना पीछा छुड़ावे अथवा विदा लेते हैं कि आज्ञा दो। माता-पिता, स्त्री आदि हो, (उससे विदा लेता है)। **और व्यवहाररत्नत्रयरूप...** अपने में निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञाता-दृष्टापना अनुभव में आ गया। फिर शुभराग आया है, कर्म का सम्बन्ध है, उस कारण से शुभराग है। उसमें **व्यवहाररत्नत्रयरूप पंचाचार को अंगीकार करता है।** वह शुभराग है। ज्ञान का पाँच आचार, दर्शन का आठ, चारित्र का तेरह, तप का बारह, वीर्य - पुरुषार्थ का नौ (आचार)। ऐसे पंचाचार व्यवहार से अंगीकार करता है। बहुत सूक्ष्म बात। समझ में आया?

मुमुक्षु - अंगीकार करता नहीं और कहते हैं अंगीकार करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री - अंगीकार करता नहीं, त्याग ही है। परन्तु व्यवहार से अंगीकार करता है कि उस भूमिका में राग की मन्दता का प्रकार वर्तता है। उस अपेक्षा से अंगीकार करता है - ऐसा कहने में आया है। आहा...हा...! जब से अनुभव हुआ, सम्यग्दर्शन, अनुभव (हुआ) तब से राग का त्याग ही है। राग मेरा है और मैं राग (का) आचरण करूँ, ऐसी दृष्टि है नहीं। ओ...हो...! मार्ग तो देखो, भाई! समझ में आया?

मुनि होता है (तो) कैसी दशा में होता है ? (यह समझाते हैं)। उसी तरह पंचम गुणस्थान में प्रतिमाधारी होता है। पहली प्रतिमा से लेकर ग्यारहवीं प्रतिमा। वह तो पंचम गुणस्थान की दशा है न। अन्तर में अनुभव में राग - विकल्प, प्रतिमा का विकल्प आता है, उसका तो दृष्टि (और) ज्ञान में त्याग ही है। आहा...हा... ! क्योंकि राग पर है और स्व निज भाव जो शुद्ध आनन्द परिपूर्ण कृतकृत्य (है), उसके भाव को अंगीकार किया है और रागमात्र - चाहे तो तीर्थंकरगोत्र का बन्धभाव आवे, चाहे तो तेरह प्रकार के चारित्र का विकल्प हो, सब (का) दृष्टि और ज्ञान में तो त्याग - हेय ही है। हेयरूप ज्ञेय है। समझ में आया ? फिर भी पूर्ण वीतराग नहीं है तो थोड़ा शुभराग आता है तो उस राग में कहते हैं कि पंचाचार अंगीकार करते हैं अथवा उस समय ऐसा भाव आया, उसे अंगीकार करता है - ऐसा कहने में आता है परन्तु निश्चय अनुभव और निश्चय सम्यग्दर्शन, निश्चय सम्यग्ज्ञान, निश्चय सम्यक् स्वरूपरमणता, आनन्द की चारित्रदशा ऐसा निश्चय प्रतपन, उग्र पुरुषार्थ में अन्तर स्वभाव की शोभा और आनन्द की वृद्धि है, उस समय में ये पंच व्यवहार आचार कहने में आता है। समझ में आया ?

यद्यपि वह ज्ञानभाव से समस्त शुभाशुभ क्रियाओं का त्यागी है... देखो ! ज्ञान तो उसे परज्ञेय रूप से जानता है और निज त्रिकाल भाव को स्वज्ञेय रूप से जानता है। समझ में आया ? भगवान चैतन्यबिम्ब कृतकृत्य निज परिपूर्ण भाव, उसके अनुभव में तो वही मेरा भाव है, रागादि मेरा भाव नहीं - ऐसा ज्ञान में तो त्याग ही है। समझ में आया ?

प्रश्न - उसको अपना माने तो क्या हर्ज है ?

समाधान - मिथ्यादर्शन है, दूसरी कोई हरकत नहीं। पंचाचार - राग को अपना माने तो मिथ्यात्व भाव है। क्योंकि आत्मा में वह राग है नहीं, स्वभाव में है नहीं और द्रव्य-गुण (का) पर्याय में आश्रय किया तो पर्याय में भी है नहीं। राग बिल्कुल भिन्न है। आहा...हा... ! ऐसी चीज है, भगवान ! लोग फिर उलझन में आते हैं न ? अज्ञान में (दीक्षा) ले ले, फिर क्या करना ? ऐसे उलझन में आ जाते हैं। समझ में आया ? ऐसे उलझन में आते हैं।

एक (साधु) आये थे। बहुत साल हुए। वे ९५ कहते हैं (लेकिन) ९५ (साल) तो नहीं हुए होंगे। 'पालीताना' से चलकर आये थे। दो दिन (यहाँ) रहे। 'इन्दौर' में

चातुर्मास था। अब करना क्या? आप कहते हो तो हम मुनि है नहीं और द्रव्यलिंगी भी है नहीं। स्पष्ट कहा था। बहुत पहले से वे कहते थे। क्या करना क्या? करो, निर्णय करो। और क्या करना? उन्होंने बेचारे ने ऐसे कहा था, हाँ! ऐसा ही कहा था, लोग भी बैठे थे। भावलिंग तो है नहीं, द्रव्यलिंग है नहीं तो हमारे पाप का उदय (है) कि नग्नवेश में आ गये। क्या करना? छूटे नहीं, छोड़ा जा सके नहीं, भाव है नहीं। ऐसी उलझन पंचम काल में अज्ञान में आ जाती है।

'मोक्षमार्ग प्रकाशक' में लिया है न कि वर्तमान परिणाम के भरोसे व्रत ले लेना नहीं। उसका निभाव होता है या नहीं? द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव है या नहीं? ऐसा विचार करके, सम्यग्दृष्टि बहुत विचार करके अपनी स्थिरता है या नहीं? अनुभव होने पर भी (इतना विचार करते हैं)। ऐसी बात है, भाई! मार्ग कोई सहज स्वरूप है।

सहजात्मस्वरूप भगवान आत्मा! निष्क्रिय, राग की क्रिया से पार है। ऐसी चीज की जहाँ दृष्टि हुई, अनुभव हुआ, आनन्द का वेदन आया तो आनन्द क्या है? राग का विकल्प दुःख है, त्याज्य है। समझ में आया? आहा...हा...! (शुभाशुभ) **क्रियाओं का त्यागी है....** शुभाशुभ परिणाम का सम्यग्दृष्टि (को) सम्यग्ज्ञान में तो त्याग ही है। त्याग न हो और ग्रहण करे तो वह मिथ्यादृष्टि है। फिर भी विकार करे, क्यों किया? ऐसा (लोग) कहते हैं। इसका स्पष्टीकरण करते हैं। समझ में आया? ज्ञान में तो विकल्पमात्र, गुणी-गुण का भेद, गुणी-गुण का भेद का विकल्प भी ज्ञान में त्याज्य है। आहा...हा...! ऐसी दृष्टि में त्याग होने पर भी शुभराग आता है तो शुभराग को अंगीकार किया - ऐसा व्यवहारनय से कहने में आया है। ऐसी बात है, भाई! समझ में आया?

साधुपद कैसा - उसको समझना पड़ेगा या नहीं? देव कैसे होने चाहिए? गुरु कैसे चारित्रवन्त होने चाहिए? धर्म कैसा होना चाहिए? शास्त्र कैसा होना चाहिए? ऐसी यथार्थ दृष्टि में उसको आना तो चाहिए न? ऐसे-ऐसे मान ले (तो) मानो (वह तो) अनादि से मानते हैं।

यहाँ तो कहते हैं कि अनुभव में 'अनुभव रत्नचिन्तामणि, अनुभव है रसकूप, अनुभव मारग मोक्ष को, अनुभव मोक्षस्वरूप' अनुभव - अपने निज स्वरूप के अनुभव

बिना जंगल में जैसे रोझ वर्तते हैं, रोझ समझते हैं ? हरण... रोझ ! और गाँव में कुत्ता बसता है, ऐसा है। 'दीपचन्दजी' तो ऐसा कहते हैं। ऐ...ई... ! आ...हा... ! अपने निज स्वरूप का अनुभव नहीं, सम्यग्दर्शन नहीं, सम्यग्ज्ञान नहीं, वह चाहे तो वन में बसो तो हरणतुल्य रोझ समान है और गाँव में बसो तो कुत्ते समान है। वस्तु का भान नहीं। आ...हा... ! इतना 'दीपचन्दजी' ने कहा है। 'अनुभव प्रकाश' ! समझ में आया ? और 'बनारसीदास' कहते हैं, अनुभववाला प्राणी चाहे तो जंगल में रहो, चाहे तो गाँव में रहो... समझ में आया ? अन्तर में दृष्टि और ज्ञान में तो सब का त्याग ही है। वह 'बनारसीदास' ने लिया है। चाहे रहो घर में, चाहे रहो वन में। उदास है। ओ...हो...हो... ! सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान क्या चीज है ? और कैसे प्राप्त होती है ? उसकी खबर नहीं और ऐसे ही मान ले, और ऐसे सम्यग्दर्शन बिना व्रत ले लिए, प्रतिमा धारण कर ली, दो-चार, पाँच, सात, आठ और ग्यारह (प्रतिमा तक ले ले)। विशेष न हो तो (हमारे मुमुक्षु) कहते हैं कि विशेष न हो तो विशेष ले ले, परन्तु क्या करे ग्यारह से ज्यादा है नहीं। बारहवीं, तेरहवीं (प्रतिमा) है नहीं। कुछ खबर नहीं न ! प्रतिमा किसको कहते हैं ? भाई !

अन्तर में आनन्द की शान्ति का शेरड़ा... शेरड़ा (को) क्या कहते हैं ? धार ! आनन्द की धारा ! (शेरडा) काठियावाड़ी भाषा है। आहा...हा... ! झरना ! आनन्द... आनन्द... आनन्द... जिसके पास शुभभाव भी दुःख लगे, दुःख लगे, जहर लगे। आहा...हा... ! समझ में आया ? भगवान का स्मरण और शास्त्र के वाँचन का विकल्प भी जिसके आगे दुःख लगे। ऐसी चीज का भान हुआ, फिर कहते हैं कि राग का तो त्याग है ही। (राग में) दुःख है, दुःख है।

अनन्त आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा ! दृष्टि में तो उसको परिणमन हो गया। आहा...हा... ! अब कोई बात, राग त्यागना है - ऐसा रहा नहीं। दृष्टि और ज्ञान में तो त्याग ही है, परन्तु स्वरूप में स्थिरता नहीं, (इसलिए) ऐसा शुभराग प्राप्त हो जाता है। मुनि को अशुभराग तो है नहीं। समझ में आया ? शुभराग हो, उसको ऐसा कहते हैं कि त्याग है, फिर भी अंगीकार करते हैं - ऐसा कहने में आया है। ऐसी बात है। आहा...हा... ! ऐसा मार्ग है, प्रभु !

तथापि पर्याय में शुभराग नहीं छूटने से... देखो! पर्याय में शुभराग नहीं छूटने से **वह पूर्वोक्तप्रकार से पंचाचार को ग्रहण करता है।** पर्याय में राग छूटता नहीं। पुरुषार्थ की कमी है। कमी (है ऐसा) कहने का अधिकार किसको है ? कि जिसे पुरुषार्थ चिदानन्द अखण्ड पूर्ण दृष्टि में आया है। समझ में आया ? पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान, पूर्ण दर्शन, पूर्ण शान्ति, ऐसा सम्यग्दर्शन में जिसको पूर्ण आनन्दादि पूर्ण स्वरूप अनुभव में आया है, उस दृष्टि से राग की मन्दता (है और पुरुषार्थ की) कमी है – ऐसा जानने में आता है परन्तु वस्तु की खबर नहीं और मुझे राग की मन्दता है और उससे राग आता है, (ऐसा नहीं)। मन्दता किसकी अपेक्षा से ? समझ में आया ? भगवान परिपूर्ण आनन्दकन्द पुरुषार्थ का पिण्ड है, ऐसा अनुभव में आया, उसके साथ मिलाते हैं तो राग मन्द आता है, वह मेरी कमजोरी है। वह त्रिकाल की जोर की अपेक्षा से राग की कमजोरी मानने में आती है। आहा...हा...! सबलता का भान हुआ, उस अपेक्षा से निर्मलता ख्याल में आती है। सबलता का ख्याल नहीं और मेरी निर्बलता है (– ऐसा कहे तो) ऐसी वस्तु है नहीं। आहा...हा...! समझ में आया ? वस्तु ऐसी है। लो! २०२ गाथा (पूरी) हुई।

गाथा - २०३

अथातः कीदृशो भवतीत्युपदिशति -

समणं गणिं गुणड्ढं कुलरूववयोविसिट्ठमिट्ठदरं।
समणेहिं तं पि पणदो पडिच्छ मं चेदि अणुगहिदो।। २०३।।

श्रमणं गणिनं गुणाढ्यं कुलरूपवयोविशिष्टमिष्टतरम्।
श्रमणैस्तमपि प्रणतः प्रतीच्छ मां चेत्यनुगृहीतः।। २०३।।

ततो हि श्रामण्यार्थी प्रणतोऽनुगृहीतश्च भवति। तथाहि-आचरिताचारित-समस्तविरतिप्रवृत्ति-समानात्मरूपश्रामण्यत्वात् श्रमणं, एवंविधश्रामण्याचरणाचारणप्रवीणत्वात् गुणाढ्यं, सकललौकिक-जननिःशङ्कसेवनीयत्वात् कुलक्रमागतक्रौर्यादिदोषवर्जितत्वाच्च कुलविशिष्टं, अन्तरङ्गशुद्धरूपा-नुमापकबहिरङ्गरूपत्वात् रूपविशिष्टं, शैशववार्धक्यकृतबुद्धिविक्लवत्वाभावाद्यौवनोद्रेकविक्रिया-विविक्तबुद्धित्वाच्च वयोविशिष्टं, निःशेषितयथोक्तश्रामण्याचरणाचारण-विषयपौरुषेयदोषत्वेन मुमुक्षुभिरभ्युपगततरत्वात् श्रमणैरिष्टतरं च गणिनं शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भसाधक-माचार्यं शुद्धात्मतत्त्वोप-लम्भसिद्ध्या मामनुगृहाणेत्युपसर्पन् प्रणतो भवति। एवमियं ते शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भसिद्धिरिति तेन प्रार्थितार्थेन संयुज्यमानोऽनुगृहीतो भवति।।२०३।।

अथ जिनदीक्षार्थी भव्यो जैनाचार्यमाश्रयति-**समणं** निन्दाप्रशंसादिसमचित्तत्वेन पूर्वसूत्रोदित-निश्चयव्यवहारपञ्चाचारस्याचरणाचारणप्रवीणत्वात् श्रमणम्। **गुणड्ढं** चतुरशीतिलक्षगुणाष्टादशसहस्र-शीलसहकारिकारणोत्तमनिजशुद्धात्मानुभूतिगुणेनाढ्यं भृतं परिपूर्णत्वाद्गुणआढ्यम्। **कुलरूववयोविसिट्ठं** लोकदुगुंच्छारहितत्वेन-जिनदीक्षायोग्यं कुलं भण्यते। अन्तरङ्गशुद्धात्मानुभूतिज्ञापकं निर्ग्रन्थनिर्विकारं रूपमुच्यते। शुद्धात्मसंवित्तिविनाशका-रिवृद्धबालयौवनोद्रेकजनितबुद्धिवैकल्यरहितं वयश्चेति। तैः कुलरूपवयोभिर्विशिष्टत्वात् कुलरूपवयोविशिष्टम्। **इट्ठदरं** इष्टतरं सम्मतम्। कैः। **समणेहिं** निजपरमात्मतत्त्वभावना-सहितसमचित्तश्रमणैरन्याचार्यैः। **गणिं** एवंविधगुणविशिष्टं परमात्मभावनासाधक-

दीक्षादायकमाचार्यम्। **तं पि पणदो** न केवलं तमाचार्यमाश्रितो भवति, प्रणतोऽपि भवति। केन रूपेण। **पडिच्छ मं** हे भगवन, अनन्तज्ञानादिजिनगुणसंपत्तिकारणभूताया अनादिकालेऽत्यन्तदुर्लभाया भावसहितजिनदीक्षायाः प्रदानेन प्रसादेन मां प्रतीच्छ स्वीकुरु। **चेदि अणुगहिदो** ने केवलं प्रणतो भवति, तेनाचार्येणानुगृहीतः स्वीकृतश्च भवति। हे भव्य, निस्सारसंसारे दुर्लभबोधिं प्राप्य निजशुद्धात्मभावनारूपया निश्चयचतुर्विधाराधनया मनुष्यजन्म सफलं कुर्वित्यनेन प्रकारेणानुगृहीतो भवतीत्यर्थः।।२०३।।

पश्चात् वह कैसा होता है – इसका उपदेश करते हैं—

कुल-रूप-वय से विशिष्ट गणी, अति इष्ट श्रमण गुणाढ्य को।
कर नमन होता अनुग्रहित, कहता मुमुक्षु 'मुझे ग्रहो'॥

अन्वयार्थ – **[श्रमणं]** जो श्रमण है, **[गुणाढ्यं]** गुणाढ्य है, **[कुलरूपवयो विशिष्टं]** कुल, रूप तथा वय से विशिष्ट है, और **[श्रमणैः इष्टतरं]** श्रमणों को अति इष्ट है **[तम् अपि गणिनं]** ऐसे गणी को **[माम् प्रतीच्छ इति]** 'मुझे स्वीकार करो' ऐसा कहकर **[प्रणतः]** प्रणत होता है (प्रणाम करता है) **[च]** और **[अनुग्रहीतः]** अनुगृहीत होता है।

टीका – पश्चात् श्रामण्यार्थी प्रणत और अनुगृहीत होता है। वह इस प्रकार है कि आचरण करने में और आचरण कराने में आनेवाली समस्त विरति की प्रवृत्ति के समान[१] आत्मरूप – ऐसे श्रामण्यपने के कारण जो 'श्रमण' है; ऐसे श्रामण्य का आचरण करने में और आचरण कराने में प्रवीण होने से जो 'गुणाढ्य' है; सर्व लौकिकजनों के द्वारा नि:शंकतया सेवा करनेयोग्य होने से और कुलक्रमागत (कुलक्रम से उत्तर आनेवाले) क्रूरतादि दोषों से रहित होने से जो 'कुलविशिष्ट' है; अन्तरंग शुद्धरूप का अनुमान करानेवाला बहिरंग शुद्धरूप होने से जो 'रूपविशिष्ट' है, बालकत्व और वृद्धत्व से होनेवाली बुद्धिविक्लवता[२] का अभाव होने से तथा यौवनोद्रेक[३] की विक्रिया से रहित बुद्धि होने से जो 'वयविशिष्ट' है; और यथोक्त श्रामण्य का आचरण करने तथा आचरण कराने

---

१. समान = तुल्य, बराबर, एकसा, मिलता हुआ। [विरति की प्रवृत्ति के तुल्य आत्मा का रूप अर्थात् विरति की प्रवृत्ति से मिलती हुई – समान आत्मदशा सो श्रामण्य है।]

२. विक्लवता = अस्थिरता; विकलता।

३. यौवनोद्रेक = यौवन का जोश, यौवन की अतिशयता।

सम्बन्धी पौरुषेय[१] दोषों को नि:शेषतया नष्ट कर देने से मुमुक्षुओं के द्वारा (प्रायश्चितादि के लिए) जिनका बहु आश्रय लिया जाता है, इसलिए जो 'श्रमणों को अति इष्ट' है, ऐसे गणी के निकट – शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धि के साधक आचार्य के निकट – 'शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धिरूप सिद्धि से मुझे अनुगृहीत करो' ऐसा कहकर (श्रामण्यार्थी) जाता हुआ प्रणत होता है। 'इस प्रकार यह तुझे शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धिरूप सिद्धि' ऐसा (कहकर) उस गणी के द्वारा (वह श्रामण्यार्थी) प्रार्थित[२] अर्थ से संयुक्त किया जाता हुआ अनुगृहीत होता है॥ २०३॥

प्रवचन नं. २०५ का शेष **आषाढ़ शुक्ल १, सोमवार, १६ जून १९६९**

पश्चात् वह कैसा है-इसका उपदेश करते हैं— २०३ (गाथा)।

समणं गणिं गुणड्ढं कुलरूववयोविसिट्ठमिट्ठदरं।
समणेहिं तं पि पणदो पडिच्छ मं चेदि अणुगहिदो।।२०३।।

पीछे है न (हरिगीत)?

कुल-रूप-वय से विशिष्ट गणी, अति इष्ट श्रमण गुणाढ्य को।
कर नमन होता अनुग्रहित, कहता मुमुक्षु 'मुझे ग्रहो'॥

'प्रणत होकर' – देखो! शिष्य, गुरु के पास जाता है। महा मुनि भावलिंगी सन्त हैं, उनके पास जाता है। उसको उनकी पहचान है, यह मुनि भावलिंगी सन्त हैं। देखो! इतनी पहचान (है), मुनिपना लेनेवाले को भान है। समझ में आया? मुनिपना लेने को अपना भान है और ये साधु भी भावलिंगी है, ऐसा भान है। ऐसी पहचान होती है। सम्यग्दर्शन में सामने प्राणी की क्या दशा है, उसकी पहचान आ जाती है। समझ में आया?

प्रश्न – किसकी पहचान होती है?

समाधान – उसके दर्शन-ज्ञान-चारित्र की दशा अन्तर की कैसी है, वह प्रकार

१. पौरुषेय = मनुष्य के लिए सम्भवित।
२. प्रार्थित अर्थ = प्रार्थना करके माँगी गई वस्तु।

ख्याल में आ जाता है। 'धवल' में प्रश्न है, उसकी चर्चा हमारे यहाँ हुई थी। 'कुम्भोज'! 'कुम्भोज' में (एक साधु) है न? हम दो दिन गये थे न, तो बराबर प्रवचन सुनते थे। 'समयसार' सुनते थे। दो घण्टा चर्चा हुई थी। (दूसरे विद्वान) भी थे। उन्होंने बुलाया था। (उन्होंने पूछा) उसकी पहचान होती है या नहीं? (हमने कहा) 'धवल' में ऐसा है। देखो! 'सर्वार्थसिद्धि' में ऐसा है। मतिज्ञान, अवग्रह, इहा, अवाय, धारण। वहाँ दूसरी बात है। यह दक्षिणी है या कौन है? ऐसी बात है। 'धवल' में तो ऐसा है कि यह भव्य है या अभव्य है? ऐसा प्रश्न उठाया है।

मतिज्ञान के निर्मलत्वपने में अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा में यह प्राणी भव्य है या अभव्य है? ऐसा विचार उठाया है। मतिज्ञान में उसे ऐसा निर्णय हो जाता है कि यह प्राणी सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्रवन्त है, इसलिए भव्य है। ज्ञान हो गया। ऐसा 'धवल' में है। समझ में आया? वर्तमान में तो ऐसा कहते हैं कि हमें मालूम नहीं पड़े। सामनेवाले का मालूम पड़े नहीं, अपना मालूम पड़े नहीं। ले लो व्रत। अरे... भगवान! अन्धा है। वहाँ बहुत चर्चा हुई थी। दो-दो घण्टा (चर्चा हुई थी)। क्या कहते हैं? 'कुम्भोज'! 'बाहुबली-कुम्भोज'! क्या कहते हैं? 'देशभूषण'! 'देशभूषण' मोक्ष पधारे। 'कुन्थलगिरी'! 'कुन्थलगिरी... कुन्थलगिरी'! 'कुम्भोज' नहीं। 'कुम्भोज' तो हम दो बार गये थे, परन्तु वहाँ नहीं थे। 'कुन्थलगिरी' थे। वहाँ गये थे। 'कुन्थलगिरी' 'देशभूषण' है न? हम गये थे, दो बार 'कुम्भोज' गये। वहाँ बहुत चर्चा हुई थी। बराबर सुनते थे। मार्ग तो दूसरा है। सुनते थे। पीछे वह बात करते थे, पर की (कैसे) खबर पड़े? पर की खबर पड़े। सम्यग्ज्ञानी को पर की भी खबर पड़े। यह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रवन्त हैं, ऐसा उसका वेदन ख्याल में आ जाये। उसके द्वारा भव्य है – ऐसा निर्णय कर लेते हैं। आहा...हा...!

वह कहते हैं, देखो!

कुल-रूप-वय से विशिष्ट गणी, अति इष्ट श्रमण गुणाढ्य को।
कर नमन होता अनुग्रहित, कहता मुमुक्षु 'मुझे ग्रहो'॥

जिसके पास दीक्षा लेना, वे कौन है? उसका उसे भान है। समझ में आया? अपना भी भान है और पर का भी भान है। ऐसा अन्धेअन्ध (नहीं है)। अपनी भी खबर नहीं, कौन

है ? क्या चलता है ? और क्या लेता हूँ ? और पर क्या है, उसकी खबर नहीं, ऐसा नहीं। समझ में आया ? सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान में पर का भी पता लग जाये। उसकी चेष्टा, भाषा बोले, शैली बोले (तो पता) चल जाता है कि यह दूसरी चीज है। समझ में आया ? देखो !

टीका। टीका में अन्वयार्थ का आ जाएगा। **पश्चात...** पश्चात अर्थात् त्यागी हुए। **श्रामण्यार्थी...** श्रमण का अर्थी, मुनिपना का अर्थी। **प्रणत और अनुगृहीत होता है।** गुरु को विनयपूर्वक नमन करते हैं। प्रणत। समझ में आया ? **प्रणत और अनुगृहीत होता है।** गुरु की कृपा से अनुगृहीत हो जाता है। आहा...हा... ! स्वीकार करते हैं। मुनिपना लेने का पात्र है। (फिर) दीक्षा देते हैं। लो ! समझ में आया ? आहा...हा... ! **पश्चात् श्रामण्यार्थी प्रणत और अनुगृहीत होता है।** समकिती है, क्षायिक समकिती भी हो। समझ में आया ? यह पंचम काल है, इसलिए क्षयोपशम समकिती आदि हो। अपना भान है और गुरु की भी खबर है। वहाँ जाकर नमन करता है और अनुगृहीत होता है। उसकी कृपा अंगीकार करते हैं।

वह इस प्रकार है कि आचरण करने में और आचरण कराने में आनेवाली समस्त विरति की प्रवृत्ति के समान आत्मरूप - ऐसे श्रामण्यपने के कारण जो 'श्रमण' है; ऐसे श्रामण्य का आचरण करने में और आचरण कराने में प्रवीण होने से 'गुणाढ्य' है;.... देखो ! देखो, **आचरण करने में....** ज्ञानाचार, दर्शनाचार निश्चयसहित व्यवहार आचरण करने में और **आचरण कराने में....** (अर्थात्) दूसरे को भी निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रादि सहित व्यवहार आचरण कराने में **आनेवाली समस्त विरति की प्रवृत्ति के....** देखो ! समान अर्थात् तुल्य। तुल्य, बराबर, एक सा, मिलता हुआ। **विरति की प्रवृत्ति के समान आत्मरूप....** क्या कहते हैं ? आहा...हा... !

पंच महाव्रत या ज्ञानाचार, दर्शनाचार, चारित्राचार, तपाचार, वीर्याचार; इस प्रकार की शुभ विकल्प की प्रवृत्ति, उसके समान रूप, अन्तर में ऐसी आत्मदशा प्रगट हुई है। समझ में आया ? कैसी सन्धि की है, देखो तो ! विरति की प्रवृत्ति के तुल्य आत्मा का रूप। विरति की प्रवृत्ति से मिलती हुई। (उसके) समान जो आत्मादशा है, सो श्रामण्य है। देखो !

आ...हा...! समझ में आया? सम्यग्दर्शन के आठ आचार, सम्यग्ज्ञान के पाँच आचार इत्यादि, उस प्रकार की जो राग की प्रवृत्ति, विरति है, उसके समानरूप अन्दर में दशा होती है। श्रामण्यपना, सम्यग्दर्शन अर्थात् वीतरागपने (की) पर्याय, विरति के समान वहाँ पर्याय प्रगट हुई है। विरति प्रवृत्ति इतनी है और गुणस्थान नीचे (है), ऐसा होता नहीं। दृष्टि में मिथ्यात्व हो और बाहर में यह प्रवृत्ति हो तो समानरूप नहीं है – ऐसा कहते हैं। वह असमान है। आहा...हा...! समझ में आया? कितनी बात! ओ...हो...हो...!

'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' चरणानुयोग की बात करते हैं तो कहते हैं कि उसकी पर्याय में प्रवृत्ति। है न? **समस्त विरति की प्रवृत्ति....** अशुभ रागादि का अभाव हुआ न? और शुभराग की प्रवृत्ति है। उस **प्रवृत्ति के समान आत्मरूप....** उसके प्रमाण में उसको आत्मदशा, अनुभवदशा, तीन कषाय के अभावादि वीतरागदशा प्रगट है। आ...हा...! शुभभाव विरति न है? उसके समान रूप वीतरागता। पंचाचार का जैसा शुभभाव है, उसके प्रमाण में सामने वीतरागदशा समानरूप है। ऐसे। वह राग की विरति प्रवृत्ति है। राग की प्रवृत्ति है न? अशुभ से निवृत्ति और (शुभ की) प्रवृत्ति है न! उस राग की प्रवृत्ति के अनुकूल वहाँ निवृत्ति (अर्थात्) वीतरागदशा हुई है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहा...हा...! बाहर में प्रवृत्ति शुभ रागादि हो, ऐसे पंचाचार (हो) और अन्दर में वीतरागदशा न हो, वह वस्तु नहीं (है)। उसे वस्तु कहते नहीं, उसे श्रामण्य कहते नहीं। समझ में आया?

बाह्य में नग्न लिंग हो, अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प हो और पंचाचार आदि ये ज्ञानाचार आदि (कहे) वह हो और अन्तर में मिथ्यादृष्टि हो, ऐसी बात नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? निश्चय (से) व्यवहार की समानरूपता नहीं।

मुमुक्षु – यह उत्सर्गमार्ग है।

पूज्य गुरुदेवश्री – नहीं, एक ही मार्ग है। उत्सर्ग क्या? ऐसा कहते हैं कि यह उत्सर्गमार्ग है, परन्तु अपवादमार्ग दूसरा होगा? ये राग, अपवादमार्ग है। पंचाचार है, वही अपवादमार्ग है। परन्तु अपवादमार्ग के अनुकूल उत्सर्गमार्ग, वीतराग की दशा होती है, ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! ऐसी बात है, भाई! ये पंचाचार ही अपवादमार्ग है। वह वीतराग मार्ग है ही नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? परन्तु अपवादमार्ग विकल्प की

दशा, ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि जितना पंचाचार आदि कहा, उस प्रमाण में वहाँ समानरूप आत्मदशा, वीतरागी आनन्दकन्द, छट्ठे-सातवें गुणस्थान में झूलती दशा होती है तो व्यवहार के योग्य, समानरूप कहने में आता है। नहीं तो विसमानरूप है, उसको तो भावश्रमण और द्रव्य, दोनों का मेल है नहीं। भावसाधुपना और द्रव्यक्रिया दो का मेल है नहीं। समझ में आया? कोई ऐसा ले ले कि हमें सम्यग्दर्शन तो है, यह समझना। सम्यग्ज्ञान है और अन्दर में चारित्र भी है परन्तु हमारे व्यवहार में दोष है। जितना व्यवहार है, उतना हम पाल सकते नहीं। (तो) ऐसी बात होती ही नहीं। ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

प्रश्न – पंचम काल की छूट नहीं?

समाधान – पंचम काल क्या? परन्तु काल कहाँ अन्दर लागू पड़ता है? यह पंचम काल की बात है। यह पंचम काल के मुनि कहते हैं। कौन कहते हैं यह? पंचम काल की बात करते हैं या चौथे काल की? सिद्धान्त में कालफेर कहाँ है। देखो! स्पष्ट करने की पूछते हैं।

मुमुक्षु – दो और दो पाँच भी होते होंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री – दो सकता है, (कहीं) दो और दो तीन भी होते होंगे और कहीं दो और दो पाँच होते होंगे – ऐसा है? (ऐसा) मार्ग नहीं भाई! आहा...हा...!

छठे गुणस्थान के योग्य पंचाचार ज्ञानादि के विकल्प है, उसके प्रमाण में सामने वीतरागदशा तीन कषाय का अभाव, ऐसी समानरूप निश्चय की दशा है, तो उसे श्रमण कहने में आता है। नहीं तो उसे श्रमण कहते नहीं। समझ में आया? बाह्य में विषमता हो और अन्दर में सम्यग्दर्शन, ज्ञान सच्चा हो – ऐसा होता नहीं और बाहर में व्यवस्थित व्यवहार आचरण हो और अन्दर में मिथ्यादर्शन हो – ऐसा होता ही नहीं। उसको यहाँ गिनने में आया नहीं। समझ में आया? ओ...हो...! देखो! कितना स्पष्ट करते हैं!

अन्तर में जहाँ पंच आचार के विकल्प की भूमि का त्याग दृष्टि में, ज्ञान में होने पर भी ऐसा भाव आता है तो उस भाव की भूमिका के योग्य ही समानरूप निश्चय में होता है। ऐसी वीतरागदशा तीन कषाय का अभाव, क्षण में छठे-सातवें में झुलती दशा होती है। अभी साधुपद किसे कहते हैं, समझ नहीं, श्रद्धे नहीं, मालूम नहीं। समझ में आया? देव-

गुरु-शास्त्र और देव-गुरु-धर्म किसे कहते हैं, उसकी खबर नहीं और (माने कि) सम्यग्दर्शन हो जाये! समझ में आया? सूक्ष्म बात है। मार्ग वीतराग का ऐसा है। वह कोई नवीन है, ऐसी कोई चीज नहीं। अनादि से मार्ग ऐसा ही चलता है।

कहते हैं कि **आचरण करने में और आचरण कराने में आनेवाली....** व्यवहार की बात है न, भाई! **समस्त विरति की प्रवृत्ति...** विरति की प्रवृत्ति - शुभराग। अशुभ से निवृत्ति है न? पंच महाव्रत, अठाइस मूलगुण (का) विकल्प, उसके प्रमाण में आत्मरूप (अर्थात्) उसके समान सामने वीतरागदशा हो। आहा...हा...! समझ में आया? कोई सम्यग्दृष्टि पंचम गुणस्थानवाले नौवीं ग्रैवेयक जाते हैं। बाह्य में अठाईस मूलगुण की शुद्ध प्रवृत्ति (होती है), समझ में आया? और अन्दर में सम्यग्दर्शन और ज्ञान हो और छठा गुणस्थान न हो, वह बात यहाँ नहीं ली, भाई! यहाँ तो दोनों समान दशा है, उसकी बात लेनी है। समझ में आया?

बाह्य में व्यवहार बराबर शुद्ध (हो)। अठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति भगवान ने जैसा कहा, वैसी शुभभाव की प्रवृत्ति मुनि के (योग्य) बराबर (पालन करता हो) और अन्दर में सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान आदि हो, गुणस्थान छठा न हो। समझ में आया? वह उसके ख्याल में भी है (कि) मेरी भूमिका मुनि की नहीं है। समझ में आया? लेकिन बाह्य में ऐसे शुभभाव की प्रवृत्ति में खण्ड नहीं। अठाईस मूलगुण आदि बराबर पालता है। वही शुक्ल लेश्या से नौवीं ग्रैवेयक चला जाये। समझ में आया? अन्दर मुनिपना है नहीं तो वह समानरूप नहीं रहा। व्यवहार और निश्चय समानरूप नहीं हुआ; इसलिए उसको द्रव्यलिंगी कहते हैं। मिथ्यादृष्टि को भी द्रव्यलिंगी और सम्यग्दृष्टि आदि को भी द्रव्यलिंगी (कहते हैं)। क्योंकि जैसा व्यवहार है, वैसा वहाँ निश्चय है नहीं। आ...हा...! समझ में आया? निश्चय जैसा है, वहाँ ऐसा व्यवहार है ही। वह बात यहाँ ली ही नहीं, भाई!

यहाँ जिसे गुणस्थान योग्य निश्चयदशा प्रगटी है, उसे ऐसा व्यवहार होता है, ऐसा नहीं लिया। वह तो होता ही है। लेकिन ऐसा व्यवहार हो, वहाँ निश्चय ऐसी दशा होती ही है, ऐसे लिया है। चरणानुयोग की कथनी है न! चरण अनुसार द्रव्य है, वह लेना है। ऐसी

दशा... आ...हा...! छठे गुणस्थान में जो विरति की प्रवृत्ति का शुभ राग है, उसके प्रमाण में वहाँ वीतराग दशा निश्चय है, उसे साधुपद कहने में आता है। देखो!

ऐसे श्रामण्यपने के कारण.... ऐसे साधुपने के कारण **जो 'श्रमण' है;...** देखो कितनी स्पष्ट टीका है! ऐसे साधुपने के कारण वह साधु है। समझ में आया? ये तो बाहर से नग्नलिंग हो और उसके लिये आहार आदि लेता हो तो भी कहते हैं कि नग्न तो है न! जय नारायण! उसकी परीक्षा है नहीं। दृष्टि का पता नहीं, तत्त्व का पता है नहीं। समझ में आया? कठिन मार्ग, भाई! वर्तमान में लोगों को ऐसा लगे। दूसरी प्रथा चली है न!

मुमुक्षु – हम से तो अच्छे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री – हमसे अच्छे का क्या अर्थ? बिगड़ा हुआ दूध, छाछ में से जाता है (अर्थात् कुछ काम का नहीं है)। क्या कहा? समझ में नहीं आया? बिगड़ा हुआ दूध मीठी छाछ में से भी जाता है। छाछ समझे न? मट्ठा! क्योंकि मीठी छाद हो तो रोटी (खाने में) चलती है। बिगड़ा हुआ दूध तो छाछ में से भी जाता है। यहाँ वह बात है।

मुमुक्षु – समझ में नहीं आया।

पूज्य गुरुदेवश्री – आहा...हा...! वह तो उन्होंने पूछा, (इसलिए) दृष्टान्त दिया। दूध बिगड़ा हो न, दूध! तो बिगड़े (दूध) के साथ कोई रोटी खाता है? मीठी छाछ हो तो खाते हैं। ऐसे अन्दर में निश्चय और व्यवहार दोनों में बिगड़ा हो, पंचम काल के कारण दोनों में बिगड़ा हो, फिर भी हमारे से अच्छे हैं, ऐसा कोई कहे वह झूठ है। ऐसी व्याख्या है ही नहीं। हमारे से अच्छा है, उसका अर्थ क्या? समझ में आया?

एक आदमी उपवास करके एक बार खाता है अथवा एक कण खाता है और दूसरा एक बार खाता है। तो हमारे से तो अच्छा है, ऐसा है? (मुमुक्षु – नहीं)। नहीं, कहाँ से आया? प्रतिज्ञा लेकर उपवास तोड़ देता है। यह समझने की चीज है। ऐसी चीज है, भाई! ऐसा कठिन काम है, भाई! मार्ग को समझे। सत्य निश्चय-व्यवहार अलौकिक बात है, बापू! इसमें किसी की सिफारिश नहीं चलती। भाई! यह तो मार्ग है। अनन्त तीर्थंकरों का, अनन्त गणधरों का (मार्ग है)। अनन्त इन्द्रों ने स्वीकारी हुई वस्तु की स्थिति है। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। आहा...हा...! देखो न! चरणानुयोग की शैली गजब बात है न!

ऐसे श्रामण्यपने के कारण जो 'श्रमण' है;..... आहा...हा... ! जिसका व्यवहार पंचाचार शुद्ध है, उस प्रमाण में जिसे निश्चय वीतरागदशा भी प्रगट हो गई है, उसे श्रमण कहने में आता है। वास्तव में श्रमण वन्दनीय है, वह कोई अठाईस मूलगुण के विकल्प के कारण वन्दनीय नहीं। वह तो राग है। समझ में आया ? वीतरागीदशा जो हुई है वह वन्दनीय है। समझ में आया ? इसलिए कहते हैं कि इसलिए उसे श्रमण कहने में आया है।

ऐसे श्रामण्य का आचरण करने में... ऐसे श्रामण्य का, देखो ! पंचाचार आदि विरति और अन्दर समानरूप ऐसे। **ऐसे श्रामण्य का आचरण करने में और आचरण कराने में प्रवीण होने से जो 'गुणाढ्य' है....** गुणाढ्य की व्याख्या की। समझ में आया ? ऐसे सन्त होते हैं, मुनि ऐसे होते हैं, मुनि ऐसे होते हैं। उनके पास दीक्षा लेते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? जहाँ-तहाँ सिर झुका दे, उसे खबर नहीं। कितनी बात कही है ! चरणानुयोग की चूलिका ! समझे न ? चूलिका कहा न ? चरणानुयोगसूचक चूलिका, लो ! ओ...हो...हो... ! वह गुणाढ्य की व्याख्या की। ऐसे गुणी मुनि होते हैं। भाषा है न ? **'समणं गणिं गुणड्ढं', 'समणं गणिं गुणड्ढं'** ऐसे पहले पद का अर्थ हुआ। श्रमण ऐसे हैं और गुणी ऐसे गुणाढ्य हैं - आचार्य, जिनके पास दीक्षा लेते हैं वे। ओ...हो...हो... !

सर्व लौकिकजनों के द्वारा निःशंकतया सेवा करने योग्य होने से... देखो ! कैसे हैं मुनि ? **सर्व लौकिकजनों के द्वारा निःशंकतया सेवा करने योग्य...** ऐसी कोई ग्लानि, ऐसी कोई शरीर की क्रिया विरुद्ध है, ऐसा है नहीं। **सर्व लौकिकजनों के द्वारा निःशंकतया सेवा करने योग्य होने से और कुलक्रमागत (कुलक्रम से उतर आनेवाले) क्रूरतादि दोषों से रहित....** जिसका कुल ही ऐसा ऊँचा है कि जिसमें जन्म हुआ था, शान्तपरिणामी जैसी सज्जनता, जिसके कुल में ही सज्जनता थी, ऐसा कहते हैं, देखो ! समझ में आया ? लौकिक नीति भी उसके कुल में बड़ी अच्छी थी, ऐसे में जन्म हुआ, वह मुनि हुआ है। ऐसा मुनि ! समझ में आया ?

सर्व लौकिकजनों के द्वारा निःशंकतया सेवा करने योग्य होने से और कुलक्रमागत (कुलक्रम से उतर आनेवाले) क्रूरतादि दोषों से रहित.... कितनों के कुल (में) जन्म से क्रोध की, मान की, कपट की, लोभ की क्रूर प्रकृति (होती है)। कुल

में ही ऐसा स्वभाव होता है तो उसके पुत्र में वैसा स्वभाव आता है। (यहाँ तो कहते हैं कि) सज्जन पुरुषों के कुल में जिसका जन्म है। आहा...हा...! देखो! समझ में आया? जिसकी माता, जिसके पिता, जिसका **कुलक्रमागत क्रूरतादि दोषों से रहित....** है। क्रूरता नहीं। समझ में आया?

जो कुलविशिष्ट है;.... ऐसे आचार्य कुलविशिष्ट है – ऐसा कहते हैं। गुणाढ्य कहा, दूसरे में कुलविशिष्ट कहा। आ...हा...! जिसके पास दीक्षा लेनी है, उसका शरीर भी ऐसा हो, पुण्यप्रकृति ऐसी हो, लोग देखे तो (ऐसा लगे कि) ओ...हो...! यह उत्तम प्राणी है, उत्तम सज्जन के कुल में उनका जन्म है। ऐसा जिसका लोकाचरण जिसके कुल में ठीक था, उसमें जन्म हुआ हो, उसे कुलविशिष्ट कहते हैं। समझ में आया? कुलविशिष्ट है।

अन्तरंग शुद्धरूप का अनुमान करानेवाला बहिरंग शुद्धरूप होने से जो 'रूपविशिष्ट' है,... देखो! ये रूपविशिष्ट! सुन्दर है, ऐसा नहीं। **अन्तरंग शुद्धरूप का अनुमान करानेवाला...** शुद्ध आनन्द का अनुभव करानेवाला बहिरंग शुद्धरूप है। नग्नपना, पंच महाव्रतादि बाह्य शुद्ध व्यवहार बिल्कुल शुद्ध है। आहा...हा...! पहले व्यवहार से निश्चय यहाँ कहा था; अब यहाँ निश्चय है, वैसा उसका शुभभाव है, ऐसा कहा। ओ...हो...!

मुमुक्षु – बाहर की क्रिया अन्दर का अनुमान कराती है।

पूज्य गुरुदेवश्री – अनुमान करता है। यहाँ वह लेना। पहले बाह्य विरति थी, उस प्रमाण में निश्चय रूप था। यहाँ कहते हैं कि निश्चय के प्रमाण में उसका व्यवहार अच्छा है। देखो!

शुद्धरूप का अनुमान करानेवाला बहिरंग शुद्धरूप होने से जो 'रूपविशिष्ट' है,... बहिरंग में है न! जिसका आचरण बराबर ऐसा शुद्ध निर्दोष है कि शुद्ध आनन्द का अनुभव उन्हें है और शुद्ध मुनि है – ऐसा अनुमान हो जाये। बाहर की क्रिया का ठिकाना नहीं और अन्दर में शुद्ध हो, आनन्द है और दशा ऊँची है – ऐसा होता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? (कोई कहे कि) बाहर में आचरण में तो अनेक प्रकार है, पंचम काल हैं तो एक प्रकार का उदय नहीं, भिन्न-भिन्न (उदय है)। (तो कहते हैं कि) उदय नहीं, वह तो भूमिका के प्रमाण में उसे ऐसी दशा होती ही है। समझ में आया? आहा...हा...!

शुभभाव का उल्लंघन करके दूसरी दशा होती नहीं। भगवान आत्मा! मुनि वीतरागपने है, उसका अनुमान करनेवाला, करानेवाला बाह्य का शुभभाव ऐसी चीज है। समझ में आया? नग्नपना, वीतरागीदशा, बाहर में पंच महाव्रत, अठाईस मूलगुण का विकल्प शुद्ध स्वरूप का अनुमान करानेवाला बाह्यरूप कहने में आया है।

प्रश्न – बहिरंग से शुद्ध का अनुमान होता है?

समाधान – ऐसे अनुमान होता है कि ऐसा है तो अन्दर है ही। अन्दर है ही, उसकी बात करते हैं न! व्यवहार है तो निश्चय है ही, ऐसा यहाँ निश्चय का अनुमान व्यवहार से करते हैं – ऐसा कहते हैं। ऐसा है तो वहाँ निश्चय है ही। समझ में आया? अशुद्ध है ही नहीं। बाहर की शुद्धि बराबर जानते हैं। उसकी दशा छठे गुणस्थान के योग्य जो भूमिका है, वह दशा अन्दर है। समझ में आया? कठिन बात, भाई!

अन्तरंग शुद्धरूप का अनुमान करानेवाला बहिरंग शुद्धरूप होने से जो 'रूपविशिष्ट' है,.... यह रूपविशिष्ट है। सुन्दर रूप है, यह रूपविशिष्ट की व्याख्या की। रंग काला हो तो काला ही हो, उसमें क्या? काले होते हैं, वे सुन्दर नहीं होते? 'नेमिनाथ' भगवान काले थे, सुन्दर थे। रूप अलग बात है, रंग अलग बात है। रंग होने पर भी जिसकी सुन्दरता, कोमलता, जिसके शरीर में बहुत रूप अर्थात् आकृति आदि सुन्दर होती है। समझ में आया? चौबीस तीर्थंकर में पाँच रंग हैं, लेकिन हैं सब सुन्दर। सुन्दर अर्थात् सुन्दर, उसका शरीर शान्त, शान्त (होता है)। काले (रंग में) भी उनका पुण्यप्रताप इतना दिखे, ओ...हो...! उनका अलौकिक पुण्य है! स्वभाव तो वैसा है लेकिन बाहर की क्रिया, शरीर की क्रिया भी ऐसी है। ओ...हो...! यह चरणानुयोग की बात है न, इसलिए ऐसी बात लेते हैं।

गुणाढ्य कि जिनके पास दीक्षा लेनी है, वे आचार्य कैसे हैं? **बालकत्व और वृद्धत्व से होनेवाली बुद्धिविकलवता का अभाव होने से....** देखो! (विकलवता अर्थात्) अस्थिरता और विकलता। बालक जैसे हो (उसे) अस्थिरता बहुत होती है। इसका जिन्हें अभाव है। बालपना और वृद्ध। वृद्ध में भी ऐसी विकलता होती है। समझे? ऐसी विकलता का बाहर में अभाव देखे। उन्हें विकलता होती नहीं और **यौवनोद्रेक की**

विक्रिया से रहित.... यौवन का उद्रेक है (अर्थात्) यौवन का जोश, यौवन की अतिशयता। जवानी का बहुत जोश हो, उसमें विकलता दिखे, ऐसी विकलता होती नहीं। शान्त समुद्र जैसे गम्भीर (होता है), समझ में आया? ऐसी दशा अन्दर में वीतरागता है, उसको ऐसा होता है, उसको निश्चय सहित व्यवहार कहने में आता है। समझ में आया? ऐसा अकेला व्यवहार तो अनन्त बार हुआ। वह व्यवहार कहाँ है? आरोप तो तब लगे न कि जब निश्चय हो तो; निश्चय बिना व्यवहार कहाँ से लागू पड़े? निमित्त भी कहाँ उसका अच्छा है?

यौवनोद्रेक की विक्रिया.... देखो, उसे विक्रिया कहा और पहले बुद्धि की विकलता कही थी। विकलता, अस्थिरता और विकलता। यौवन का जोश, अन्दर से जवानी का जोश हो। एक-एक इन्द्रिय फाट-फाट दिखती हो, ऐसा होता नहीं। शान्त... शान्त... शान्त (होते हैं)। उद्धत वर्ताव नहीं होता। पचीस वर्ष के कोई आचार्य हो, छोटी उम्र के हो। तीन कषाय का अभाव (होता है)।

मुमुक्षु - 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' छोटी उम्र में आचार्य हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री - आचार्य हुए, 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' छोटी उम्र में आचार्य हुए थे। वह तो ऐसी सहज दशा लेकर आते हैं।

जो वयविशिष्ट... कहने में (आते हैं)। वय में खास, अलग। जैसे रूप में अलग, गुण में अलग, वैसे वय में भी खास अलग। **और यथोक्त श्रामण्य का आचरण करने तथा आचरण कराने सम्बन्धी पौरुषेय दोषों को निःशेषतया नष्ट कर देने से....** (पौरुषेय अर्थात्) मनुष्य के लिए सम्भवित। मनुष्य के योग्य जो दोष है, ऐसा दोष उसे होता नहीं। समझे? **श्रामण्य का आचरण करने तथा आचरण कराने सम्बन्धी पौरुषेय दोषों....** मनुष्य का दोष **निःशेषतया नष्ट कर देने से मुमुक्षुओं के द्वारा (प्रायश्चित्तादि के लिये) जिनका बहु आश्रय लिया जाता है....** अपना दोष जिनके समक्ष प्रकाशित करते हैं, ऐसे मुनि ऐसे होते हैं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहा...हा...! ऐसा भाव आया था (ऐसा कहे तो) उसका तिरस्कार न कर दे। शान्त... शान्त... (रहे)। साधारण जनता उनका आश्रय करे। महाराज! हमें हमारी भूमिका प्रमाण में दोष लगा है। ऐसा सरलपने कहे तो शान्तपने सुने। समझ में आया? आ...हा...! **जिनका बहु आश्रय लिया जाता है....** बहुत आश्रय लिया जाता है।

इसलिए जो 'श्रमणों को अति इष्ट' है,.... लो। **विसिट्ठमिट्ठदरं** शब्द है न? अन्तिम शब्द है। **श्रमणों को अति इष्ट है,....** सन्तों को तो प्रिय है। आ...हा...! (वर्तमान में तो) एक भी दिखे नहीं और यहाँ तो कहते हैं कि साधु को प्रिय है। दूसरे भावलिंगी साधु हैं, उनका व्यवहार ऐसा है, उसमें ऐसा आचार हो तो वह उनको इष्ट है। समझ में आाय? लो। अति इष्ट है। अरे...! अति इष्ट, समकिती को तो कोई इष्ट होते नहीं न? यहाँ तो व्यवहार की बात चलती है न? समझ में आया? धर्मी को अपना शुद्ध स्वरूप के अतिरिक्त इष्ट कोई चीज ही नहीं। समझ में आया? राग भी इष्ट नहीं तो पर चीज कहाँ से इष्ट आयी? परन्तु चरणानुयोग में ऐसा शुभराग होता है तो ऐसी चीज हो, उसे इष्ट रूप से व्यवहार लगता है। व्यवहार से इष्ट है। चरणानुयोग की शैली ऐसी है। आ...हा...! **ऐसे गणी के निकट...** देखो!

मुमुक्षु – यहाँ बहु आश्रय लिखा और कहते हैं कि सम्यग्दृष्टि को किसी का आश्रय नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री – सम्यग्दृष्टि को किसी का आश्रय नहीं। यहाँ चरणानुयोग का व्यवहारनय का कथन है न! सम्यग्दृष्टि का तो आत्मा के अतिरिक्त किसी का आश्रय है नहीं। धर्मी को अपना पूर्णानन्द प्रभु के अतिरिक्त किसी का आश्रय है नहीं। वह निश्चय की बात है, यथार्थ की बात है। व्यवहार की बात चले, चरणानुयोग की शैली (चले तब ऐसा कहे कि) सन्तों को बहु आश्रय करने योग्य ऐसे सन्त हैं, ऐसा कहने में आता है। आ...हा...! कहाँ मेल (करना)? बराबर मिलान है। निश्चय ऐसा हो तो ऐसा उसका वयविशिष्ट, कुलविशिष्ट और इष्टतर। सन्तों को इष्टकर है। ऐसा विकल्पवाले को ऐसा मानते हैं।

ऐसे गणी के निकट – शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धि के साधक... देखो! **शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धि के साधक आचार्य के निकट 'शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धिरूप सिद्धि से मुझे अनुगृहीत करो...'** दोनों लिये। एक तो शुद्धात्मतत्त्व उपलब्धि के साधक आचार्य हैं। आचार्य भी शुद्धात्मतत्त्व के साधक है, ऐसा कहते हैं। व्यवहार है परन्तु उसके साधक नहीं। आहा...हा...! है भले विकल्प, परन्तु उसके साधक नहीं। शुद्धात्मतत्त्व परमानन्दमूर्ति प्रभु की उपलब्धि – अनुभव के साधक हैं। आहा...हा...!

देखो ! चरणानुयोग में भी भाषा कैसी है ! शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धि के वे साधक हैं। राग आता है, उसके साधक नहीं। आहा...हा... ! व्यवहार से अंगीकार किया – ऐसा कहने में आया (परन्तु व्यवहार के) साधक नहीं। आहा...हा... ! समझ में आया ?

शुद्धात्मतत्त्व के साधक आचार्य के निकट.... एक बात। शुद्धात्मतत्त्व की प्राप्ति, सिद्धि (के लिए) मुझे कृपा करो। मुझे शुद्धात्म तत्त्व दो। लो, देखो ! ....अरे... ! वह तो दीनता है। पर से माँगना तो दीनता है परन्तु ऐसा व्यवहार विकल्प में आता है तो ऐसा कहते हैं प्रभु ! मुझे भावलिंग दो, नाथ ! मेरी मुक्ति हो, मोक्ष हो – ऐसा साधुपद, अनुभव, मुझे भावलिंग दो। आहा...हा... ! समझ में आया ?

सिद्धि से मुझे... शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धि सिद्धि, मुक्ति, उससे मुझे अनुगृहीत करो। कृपा करो, नाथ ! आहा...हा... ! सुबह ऐसा लिखा हुआ आया। 'सोगानी' में तो ऐसा आये कि (लोग) चिल्लाने लगे। निश्चय का, ध्रुव का जोर बहुत है न ! दूसरे के पास माँगना, सुनना नुकसानदायक, दीनता है। ऐ...ई... देवानुप्रिया ! लिखा है। निश्चय में तो ऐसा आये। व्यवहार में ऐसा भाव आता है, आता है। उसका आग्रह, जोर करे – ऐसा नहीं, हाँ ! जोर तो स्वभाव पर है। समझ में आया ? आ...हा... ! ऐसा व्यवहार आता है, वह जाननेयोग्य है। ओ...हो... !

मुमुक्षु – कथन तो सभी प्रकार आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री – चरणानुयोग की शैली (है), चरणानुयोग में तो ऐसा आये। दूसरे से माँगना दीनता है। क्या तेरे पास नहीं है चीज ? तेरे पास कमी है ? तेरे खजाने में क्या न्यूनता है ? अपूर्णता है ? कि मेरे पास तुम लाने आये हो। वह तो विनय का शब्द है। समझ में आया ? दोनों जाननेयोग्य है। आ...हा...हा... ! देखो न, टीका की कैसी शैली है !

मुमुक्षु – दोनों को जानने की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री – हाँ, जानने की बात हे, वह बात है ?

शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धि के साधक आचार्य हैं और शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धिरूप सिद्धि से मुझे अनुगृहीत करो। आप के पास है, वह चीज मुझे दो, ऐसी चीज हाँ। कौन किसे दे ? परन्तु व्यवहार के विनय में ऐसा भाव आये बिना रहता नहीं। लो !

'मुझे अनुगृहीत करो' ऐसा कहकर (श्रामण्यार्थी) जाता हुआ प्रणत होता है। नमन करता है, झुक जाता है। समझ में आया? व्यवहार से झुक जाय, हाँ! शरीर से झुक जाय, ऐसा कहते हैं। अन्दर में तो है, किन्तु बाहर से **प्रणत होता है।**

अब आचार्य कहते हैं, **'इस प्रकार यह तुझे शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धिरूप सिद्धि' ऐसा कहकर उस गणी के द्वारा (वह श्रामण्यार्थी) प्रार्थित अर्थ से संयुक्त किया जाता....** है। देखो! (प्रार्थित अर्थात्) प्रार्थना करके माँगी गई वस्तु से संयुक्त किया जाता है। ले भाई! चरणानुयोग की शैली निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध को बताते हैं, बस इतना। समझ में आया?

एक (साधु) कहते थे न? वे कहते थे। २००७ की साल में 'फिरोजाबाद' में बहुत (कहते थे)। वृत्तिसम्मेलन हुआ था। वृत्ति सम्मेलन में व्रत लेने का बाध आया था, ऐसा समाचार-पत्र में आया था। वे कहे, ऐसा दो, ऐसा दो, ऐसा दो। कहाँ व्रत है? वृत्ति सम्मेलन नाम ही झूठा है। अभी दर्शन की शुद्धि का ठिकाना नहीं, वहाँ वृत्ति सम्मेलन कहाँ से आया? समझ में आया? वह तो कहता है कि लो भाई! मेरे पास कुछ आया नहीं। क्या दिया तुमने? लो प्रतिमा। मेरे पास कुछ आया नहीं, ऐसा कहते थे। यहाँ रहा था।

कहते हैं कि श्रमण ने जो प्रार्थना की थी, उस **अर्थ से संयुक्त किया जात...** है। लो! जो मांग की थी, उस प्रयोजन से उसकी सिद्धि हो गई। लो भैया! ऐसा हुआ और ध्यान में श्रामण्यपना प्रगट भी हो गया - ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! देखो तो सही। समझ में आया?

शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धिरूप सिद्धि ऐसा (कहकर) उस गणी के द्वारा (वह श्रामण्यार्थी) प्रार्थित अर्थ से... माँगे हुए भाव से। प्रार्थना करके माँगी हुई वस्तु है न! **संयुक्त किया जाता....** है। लो! आचार्य उसे भावलिंग सहित कर देते हैं। उसका अर्थ कि वे अपने ध्यान में अपनी दशा प्रगट करते हैं तो गुणी ने दिया, ऐसा कहने में आता है। आहा...हा...! समझ में आया? देखो! यह दिगम्बर सन्तों की कथनी! ऐसी बाह्य व्यवहार की कथनी भी दूसरे स्थान में होती नहीं। समझ में आया? निश्चय सहित व्यवहार कैसा होता है और व्यवहार की शुद्धि में निश्चय की शुद्धि का अनुमान कराना है, उसकी

यह शैली होती है। दिगम्बर सन्तों के अलावा दूसरे स्थान में है नहीं। व्यवहार का भी ठिकाना नहीं और निश्चय का भी ठिकाना नहीं। आहा...हा...! **अनुगृहीत होता है।** लो! दिया और कृपा हो गई, जाओ! कृपा हो गई। जाओ, मुनिपना तुम को है। देते हैं तो उन्हें प्रगट भी होता है। समझ में आया?

और फिर **वह कैसा होता है, सो उपदेश करते हैं** – २०३ गाथा हो गई न? २०४ गाथा में कहते हैं, देखो! पश्चात क्या होता है, देखो!

णाहं होमि परेसिं ण मे परे णत्थि मज्झमिह किंचि।
इदि णिच्छिदो जिदिंदो जादो जधजादरूपवधरो।।२०४।।

पर का नहीं मैं, पर न मेरा, नहीं मेरा कुछ लोक में।
इस रीत श्रद्धा कर जितेन्द्रिय, सहजरूप धर परिणमे।।२०४।।

उसकी व्याख्या आयेगी। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - २०४

अथातोऽपि कीदृशो भवतीत्युपदिशति-

णाहं होमि परेसिं ण मे परे णत्थि मज्झमिह किंचि।
इदि णिच्छिदो जिदिंदो जादो जधजादरूवधरो।।२०४।।

नाहं भवामि परेषां न मे परे नास्ति ममेह किञ्चित्।
इति निश्चितो जितेन्द्रियः जातो यथाजातरूपधरः।।२०४।।

ततोऽपि श्रामण्यार्थी यथाजातरूपधरो भवति। तथाहि-अहं तावन्न किञ्चिदपि परेषां भवामि, परेऽपि न किञ्चिदपि मम भवन्ति, सर्वद्रव्याणां परैः सह तत्त्वतः समस्तसम्बन्धशून्यत्वात्। तदिह षड्द्रव्यात्मके लोके न मम किञ्चिदप्यात्मनोऽन्यदस्तीति निश्चितमतिः परद्रव्यस्वस्वामिसम्बन्धनिबन्धनानामिन्द्रियनोइन्द्रियाणां जयेन जितेन्द्रियश्च सन् धृतयथानिष्पन्नात्मद्रव्यशुद्धरूपत्वेन यथाजातरूपधरो भवति।।२०४।।

अथ गुरुणा स्वीकृतः सन् कीदृशो भवतीत्युपदिशति-**णाहं होमि परेसिं** नाहं भवामि परेषाम्। निजशुद्धात्मनः सकाशात्परेषां भिन्नद्रव्याणां संबन्धी न भवाम्यहम्। **ण मे परे** न मे संबन्धीनि परद्रव्याणि। **णत्थि मज्झमिह किंचि** नास्ति ममेह किंचित्। इह जगति निजशुद्धात्मनो भिन्नं किंचिदपि परद्रव्यं मम नास्ति। **इदि णिच्छिदो** इति निश्चितमतिर्जातः। **जिदिंदो जादो** इन्द्रियमनोजनितविकल्पजालरहितानन्तज्ञानादिगुणस्वरूपनिजपरमात्मद्रव्याद्विपरीते-न्द्रियनोइन्द्रियाणां जयेन जितेन्द्रियश्च संजातः सन् **जधजादरूवधरो** यथाजातरूपधरः, व्यवहारेण नग्नत्वं यथाजातरूपं, निश्चयेन तु स्वात्मरूपं, तदित्थंभूतं यथाजातरूपं धरतीति यथाजातरूपधरः निर्ग्रन्थो जात इत्यर्थः।।२०४।।

पश्चात् वह कैसा होता है, सो उपदेश करते हैं—

पर का नहीं मैं, पर न मेरा, नहीं मेरा कुछ लोक में।
इस रीत श्रद्धा कर जितेन्द्रिय, सहजरूप धर परिणमे।।२०४।।

अन्वयार्थ - **[अहं]** मैं **[परेषां]** दूसरों का **[न भवामि]** नहीं हूँ **[परे मे न]** पर मेरे नहीं हैं, **[इह]** इस लोक में **[मम]** मेरा **[किंचित्]** कुछ भी **[न अस्ति]** नहीं है — **[इति निश्चितः]** ऐसा निश्चयवान् और **[जितेन्द्रियः]** जितेन्द्रिय होता हुआ **[यथाजातरूपधरः]** यथाजातरूपधर (सहजरूपधारी) **[जातः]** होता है।

टीका - और तत्पश्चात् श्रामण्यार्थी यथाजातरूपधर[१] होता है। वह इस प्रकार - 'प्रथम तो मैं किंचित्मात्र भी पर का नहीं हूँ, पर भी किंचित्मात्र मेरे नहीं हैं, क्योंकि समस्त द्रव्य तत्वतः[२] पर के साथ समस्त सम्बन्ध रहित हैं; इसलिए इस षड्द्रव्यात्मक लोक में आत्मा से अन्य कुछ भी मेरा नहीं है' — इस प्रकार निश्चित मतिवाला (वर्तता हुआ) और परद्रव्यों के साथ स्व-स्वामिसंबंध जिनका आधार है, ऐसी इन्द्रियों और नो इन्द्रियों के जय से जितेन्द्रिय होता हुआ वह (श्रामण्यार्थी) आत्मद्रव्य का यथानिष्पन्न[३] शुद्धरूप धारण करने से यथाजातरूपधर होता है॥२०४॥

प्रवचन नं. २०६ — आषाढ़ शुक्ल ३, मंगलवार, १७ जून १९६९

चरणानुयोग अधिकार है। साधुपना कैसे लिया जाता है और साधुपना किस प्रकार हो सकता है? उसकी बात है। जिसे पहले आत्मदर्शन हुआ हो। समझ में आया? जिसे आत्म-सम्यग्दर्शन (हुआ हो, उसकी बात है) देखो, कहेंगे। **पश्चात् वह कैसा होता है, सो उपदेश करते हैं—** २०४ (गाथा)

णाहं होमि परेसिं ण मे परे णत्थि मज्झमिह किंचि।
इदि णिच्छिदो जिदिंदो जादो जधजादरूपवधरो।।२०४।।

पर का नहीं मैं, पर न मेरा, नहीं मेरा कुछ लोक में।
इस रीत श्रद्धा कर जितेन्द्रिय, सहजरूप धर परिणमे॥२०४॥

क्या कहते हैं? जो कोई साधु होना चाहता है, वह गुरु के पास जाकर, गुरु स्वीकृत

१. यथाजातरूपधर = (आत्मा का) जैसा, मूलभूत रूप है वैसा (सहज, स्वाभाविक) रूप धारण करनेवाला।
२. तत्वतः = वास्तव में; तत्त्व की दृष्टि से; परमार्थतः।
३. यथानिष्पन्न = जैसा बना हुआ है वैसा, सहज, स्वाभाविक।

करते हैं, तब स्वयं अपनी स्थिति प्रसिद्ध करता है। **और तत्पश्चात् श्रामण्यार्थी यथाजातरूपधर होता है।** अर्थात् क्या ? कि आत्मा वीतरागस्वरूप है, उसका स्वभाव ही वीतरागस्वरूप है, ऐसा वीतरागस्वरूप होता है। यथाजात — जैसा उसका स्वभाव है, वैसा प्रगट करता है। यहाँ तो व्यवहारनय से बात है न! नैगम—भाविनैगमनय की बात है। अंगीकार करता है, तब ऐसा नहीं परन्तु ऐसा मैं हूँ और ऐसा अंगीकार करता हूँ - ऐसे भाविनैगम से बात करते हैं। समझ में आया ?

मैं श्रमण का अर्थी-साधु होने का अर्थी। साधु अर्थात् यह बाहर की चीज और बाहर को छोड़े, वह कहीं साधु नहीं। **यथाजातरूपधर...** जैसा मूलभूतस्वरूप सहजस्वभाविकरूप। आत्मा का देह से पृथक्, कर्म से पृथक् और पुण्य-पाप के राग का विकल्प मेल हो, उससे भी पृथक् स्वरूप है, ऐसा वीतरागीस्वरूप धारण करता है। उसे यथाजातरूप कहा जाता है। जैसा स्वरूप है (वैसा धारण करता है)। देखो! आत्मा का वीतरागीस्वरूप है-ऐसा कहते हैं। आहा...! वीतराग स्वभावस्वरूप ही आत्मा है। अन्दर में ऐसा वीतरागभाव धारण करता है।

प्रश्न - पाँचवें गुणस्थान में न ?

समाधान - छठे गुणस्थान में। छठे गुणस्थान की बात है। मुनि होने की योग्यतावाला है। जो मुनि-श्रमण होता है, उसकी बात है। आहा...हा...! लोग आठवें और सातवें ले जाते हैं।

यहाँ तो कहते हैं यथाजात। जैसा स्वरूप भगवान आत्मा, मेल — पुण्य-पाप के राग रहित है वह। कर्म तो जड़ है, इसमें नहीं; शरीर जड़-मिट्टी-धूल है, वह आत्मा में नहीं परन्तु अन्दर में विकल्प शुभ-अशुभरागभाव उठता है, उसकी जाति इसके स्वरूप में नहीं है। ऐसा भगवान आत्मा अपने स्वरूप में आरूढ़ होता हुआ, यथाजात-जैसा स्वरूप है वैसे स्वरूप को अन्तर वीतरागभावरूप धारण करता है। आहा...हा...! गुजराती सरल है, बहुत ऐसी (कठिन) नहीं है। समझ में आया ?

वह इस प्रकार.... ऐसा कहते हैं, अरे! **'प्रथम तो मैं किंचित्मात्र भी पर का नहीं हूँ,....** हाँ! मैं पर का किंचित्मात्र नहीं। मेरा भाव आत्मा वीतरागस्वरूप है, वह पर का मैं जरा भी नहीं।

मुमुक्षु - अभी थोड़ी देर पहले गुरु के पास जाकर 'मैं तुम्हारा हूँ - ऐसा कहा'

पूज्य गुरुदेवश्री - वह व्यवहार से भाषा है। इसलिए यहाँ कहा न, '**प्रथम तो मैं किंचित्मात्र....**' किंचित् शब्द है न? उसमें हिन्दी में। '**अहं तावन्न किञ्चिदपि**' संस्कृत में है। संस्कृत (में) किंचित् है ना।

ओ...हो...! देह छोड़कर पराधीनरूप से तो अनन्त बार जाता है न! अनन्त बार गया परन्तु इसने आत्मा को शरीर के लिये हैरान किया परन्तु आत्मा के लिये इसने कभी शरीर को हैरान नहीं किया। शरीर के लिये आत्मा को हैरान किया, गाल्यो अर्थात् हैरान किया, हैरान किया। यह मेरा और यह क्रिया मेरी ऐसा किया। आत्मा की मिथ्यादशा (लेकर) गया। अर्थात् आत्मा को हैरान किया। हैरान किया अर्थात् हीनदशा-विपरीत दशा की परन्तु आत्मा के लिये शरीर को हैरान किया - ऐसा कभी इसने नहीं किया। यह मैं नहीं, यह मैं नहीं। आहा...हा...!

कोई भी शरीर की क्रिया हो, उसमें मैं नहीं, वह तो जड़ है; मेरे और उसके जरा भी (सम्बन्ध नहीं)। मैं पर का नहीं, राग का, शरीर का, वाणी का, माँ-बाप का, कुटुम्ब का, देश का (मैं किंचित्मात्र नहीं)।

प्रश्न - गुरु का?

समाधान - गुरु का इसमें आ गया। समझ में आया? आहा...हा...!

मैं किंचित्मात्र भी पर का नहीं हूँ, पर भी किंचित्मात्र मेरे नहीं हैं,.... इस प्रकार अस्ति-नास्ति ली है। मैं किंचित्मात्र पर का नहीं। राग-द्वेष, पुण्य-पाप विकल्प, कर्म, शरीर का मैं नहीं; वे किंचित्मात्र मेरे नहीं। देखो! यह सम्यग्दर्शन! साधु होने के पहले ऐसी इसकी दृष्टि और अनुभव होता है। आहा...हा...! ऐसा जहाँ भान नहीं, वहाँ तो सम्यग्दर्शन नहीं, जहाँ धर्म की भूमिका नहीं, वहाँ साधुपना कहाँ से आवे? ओहो...हो...! वस्तु ऐसी है।

कहते हैं, **पर भी किंचित्मात्र मेरे नहीं हैं,....** राग का विकल्प, देहादि की दशा, वाणी की भाषा, वह पर किंचित्मात्र मेरे नहीं। **क्योंकि समस्त द्रव्य....** देखो सिद्धान्त! क्योंकि सभी तत्त्व —अनन्त आत्माएँ, अनन्त परमाणु, असंख्य कालाणु, एक धर्मास्ति,

एक अधर्मास्ति और आकाश - ये सर्व तत्त्व-द्रव्य **तत्वतः....** (अर्थात्) वास्तविकरूप से, तत्त्व की दृष्टि से, परमार्थ से **पर के साथ समस्त सम्बन्ध रहित हैं;....** देखो! समस्त सम्बन्ध रहित है। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध, वह वास्तव में सम्बन्ध ही नहीं है। समझ में आया? वह तो भिन्नता बतलाता है। आहा...हा...!

अन्तर से मैं जहाँ हूँ, उसमें राग, शरीर, और कर्म नहीं क्योंकि मुझे और उन्हें कोई सम्बन्ध नहीं। समझ में आया? मुसाफिर का दृष्टान्त दिया है न! मुसाफिर, सड़क पर चला जाता है, वृक्ष की छाया, ऐसे हजारों वृक्ष हों, (उनकी) छाया पड़ती है। मुसाफिर जाता है, शरीर को छाया छूती है? शरीर को कुछ छूता ही नहीं? शरीर की छाया हुई नहीं, छाया का शरीर हुआ नहीं। इसी प्रकार भगवान आत्मा पूर्ण ज्ञानघनस्वरूप ध्रुव ऐसा चला आता है, उसे पुण्य-पाप के राग और शरीर की छाया के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। आहा...हा...! समझ में आया?

जैसे, मुसाफिर हजारों वृक्षों की छाया (को) उल्लंघ कर चला जाता है, वह मुसाफिर छाया का नहीं होता, छाया उस मुसाफिर की नहीं होती; इसी प्रकार मैं एक ध्रुव चीज हूँ, वस्तु हूँ; मुझे राग, शरीर और वाणी की छाया मुझमें है नहीं, मैं उसे छूता भी नहीं, उसमें मैं नहीं और वह मुझमें नहीं, इस प्रकार तो अभी प्रथम धर्म की सम्यग्दृष्टि काल में ऐसा अनुभव और दृष्टि होती है। समझ में आया? आहा...हा...!

तत्त्वतः वास्तविकरूप से, सच्चे रूप से, तत्त्वदृष्टि से, परमार्थ से **पर के साथ समस्त सम्बन्ध....** भाषा देखो! **समस्त सम्बन्ध रहित हैं....** सर्व द्रव्य... देखो! इसमें कोई परमाणु-परमाणु के साथ, आत्मा-परमाणु के साथ, आत्मा, आत्मा के साथ (कोई सम्बन्ध नहीं है)। सर्व द्रव्य परमार्थ से पर के साथ समस्त-सभी **सम्बन्ध रहित हैं....** आहा...हा...!

मुमुक्षु - धर्मास्तिकाय निमित्त होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री - वह सम्बन्धरहित है। उसके साथ सम्बन्ध क्या? वह पर चीज है। निमित्त हो, उसका अर्थ क्या? यहाँ परिणमता है, (तब वह) है परन्तु उसके साथ सम्बन्ध है (- ऐसा) बिल्कुल नहीं। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध, (वह) सम्बन्ध ही नहीं, यहाँ कहा है।

प्रश्न – ज्ञेय-ज्ञायक (सम्बन्ध) ?

समाधान – ज्ञेय-ज्ञायक तो पृथक्पना बतलाता है, वह कहीं ज्ञान, ज्ञेय का और ज्ञेय, ज्ञान का है ? (कोई) सम्बन्ध नहीं है।

भगवान चैतन्यसूर्य, आत्मा चैतन्यसूर्य आनन्द का धाम ऐसा मैं, मुझे और पर को या किसी द्रव्य को परमार्थ से कोई सम्बन्ध है नहीं। कहो, यहाँ तो कहा न ? गुरु-शिष्य का भी सम्बन्ध नहीं – ऐसा है। माँ-बाप का सम्बन्ध, बेटा-बेटी का सम्बन्ध और सेठ-सेठानी का सम्बन्ध, मैं सेवक और परमात्मा सेव्य-ऐसा कुछ है नहीं। आहा...हा...! क्या है ?

प्रश्न – लड़के-लड़की का तो सम्बन्ध है न ?

समाधान – लड़का-लड़की तो कहीं रह गये। लड़का था कब ? यहाँ तो सेव्य-सेवक (अर्थात्) परमात्मा सेवा के योग्य और मैं सेवक – ऐसा मुझमें है नहीं। सर्व सम्बन्धरहित हूँ। आहा...! अरे ! सर्व द्रव्य, सर्व सम्बन्धरहित है – ऐसा कहा न ? देखो ! **समस्त द्रव्य तत्त्वतः पर के साथ समस्त सम्बन्ध रहित हैं;....** देखो ! एक परमाणु और दूसरे परमाणु के साथ सर्व सम्बन्ध रहित परमाणु स्वतन्त्र तत्त्व है, एक-एक परमाणु स्वतन्त्र तत्त्व है। उसे दूसरे परमाणु के साथ सम्बन्ध नहीं है। समस्त सम्बन्धरहित है, तो आत्मा के साथ कर्म का सम्बन्ध है ? कि नहीं। आहा...हा...!

प्रश्न – तो फिर हम क्यों मानते हैं ?

समाधान – भ्रम से मानते हैं। सबेरे आया न ? रागरूप परिणमने की आत्मा में शक्यता है ही नहीं। विकाररूप होने की शक्ति, आत्मा में विकाररूप होने की शक्ति है ही नहीं। मानता है। आहा...हा...! पागल चाहे जो माने, उससे कहीं वस्तु हो जाती है ? मैं सदा स्वयं व्यवहाररत्नत्रयरूप स्वामीरूप न परिणमूँ – ऐसी मैं चीज हूँ। रागरूप होना, वह मैं हूँ नहीं। आहा...हा...!

प्रश्न – ऐसा मुनि मानते होंगे ?

समाधान – ऐसा समकिती पहले माने और फिर अन्दर राग का अभाव करता है। यह बात है। आहा...हा...! पहले से सर्व द्रव्यों को समस्त सम्बन्ध (रहित है)। आहा...हा...! सर्व द्रव्यों को, जगत् में जितने अनन्त तत्त्व परमात्मा ने देखे, परमेश्वर ने अनन्त तत्त्व देखे,

वे अनन्त-अनन्तरूप रहकर पर के साथ सम्बन्ध रहित रहे हैं। आहा...हा... ! समझ में आया ? यह ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध तो सहज है, यह वास्तव में सम्बन्ध पर के साथ नहीं है। यह तो यहाँ ज्ञान का स्वभाव है। वह ज्ञायक, ज्ञेय को जाने। ज्ञेय का स्वभाव है, ज्ञान में प्रमेय होकर ज्ञात हो, परन्तु यह सम्बन्ध है, वह है ही नहीं, यहाँ तो कहते हैं। आहा...हा... ! ऐसा जो धर्मी जीव सम्यग्दर्शन होने में, भले राजा कुटुम्ब में पड़ा हो (- ऐसा) दिखे। समझ में आया ? परन्तु मेरे आत्मा को और पर को कोई सम्बन्ध नहीं है। किसी प्रकार का सम्बन्ध मुझे और उसे नहीं है। समझ में आया ? आ...हा... !

क्योंकि.... यह किसकी व्याख्या की है ? कि मैं किंचित्मात्र पर का और पर भी किंचित्मात्र मेरा नहीं है। क्योंकि, ऐसा। **क्योंकि समस्त द्रव्य....** अपने-अपने स्वरूप से विराजमान सभी हैं। पर के साथ किसी तत्त्व को कोई सम्बन्ध नहीं है। आहा...हा... ! ठीक होगा यह ? मानता है न यह ? ए... भाई ! कहो, पागल होकर, पागल होकर माने, वह कुछ भी माने। आहा...हा... !

परमेश्वर और सर्वज्ञदेव और मैं — ये दोनों चीजें अत्यन्त भिन्न है। मेरा मुझमें स्व-स्वामी सम्बन्ध है। मैं एक द्रव्य-वस्तु आत्मा अनन्त आनन्द और ज्ञान के भाव के स्वभाव से स्वभावस्वरूप अनन्त बेहद वस्तु हूँ। उसे वस्तु का स्वभाव है। स्व-भाव है, वह अपरिमित है, हदरहित, प्रमाण रहित, अपरिमित स्वभाव है। ऐसे स्वभाव का स्वपना और मैं उसका स्वामी - ऐसा मेरा मुझमें सम्बन्ध है। समझ में आया ? परन्तु पर के साथ सम्बन्ध सम्बन्धरहित है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

इसलिए इस षड्द्रव्यात्मक लोक में.... जहाँ भगवान आत्मा है, वहाँ षट्द्रव्य-सम्पूर्ण जगत् है। भगवान ने छह द्रव्य देखे। परमात्मा ने केवलज्ञानी तीर्थंकरदेव ने केवलज्ञान में छह द्रव्य देखे। छह द्रव्यात्मक लोक। लोकयन्ति लोकं - जहाँ छह द्रव्य दिखते हैं, वह लोक है। छह द्रव्य अनादि हैं। अनन्त आत्मायें, संख्या से अनन्त; जाति से छह, जाति से छह। आत्मा की जाति, परमाणु की जाति, काल की जाति, धर्मास्ति, अधर्मास्ति आकाश की जाति, बस छह (जातियाँ हैं)। ऐसे षट् द्रव्यात्मक अथवा ऐसे छह द्रव्यस्वरूप **लोक में आत्मा से अन्य कुछ भी मेरा नहीं है....**

इस षड्द्रव्यात्मक लोक में आत्मा से अन्य कुछ भी मेरा नहीं है.... आत्मा से कहा है, हाँ! आत्मा अर्थात् आनन्द और ज्ञानमूर्ति, वह आत्मा। राग, विकल्प, शरीर और व्यवहारमात्र सब आत्मा से अन्य है। समझ में आया? आहा...हा...!

मुमुक्षु - वस्तु शुद्ध-अशुद्ध पर्याय का पिण्ड है।

पूज्य गुरुदेवश्री - यह शुद्ध शक्ति। शुद्ध है, उसको ही आत्मा कहते हैं। राग तो आस्रवतत्त्व है। राग तो आस्रवतत्त्व है, दया, दान, व्रत, तो आस्रवतत्त्व है; आत्मतत्त्व नहीं। आस्रवतत्त्व के साथ मुझे कोई सम्बन्ध नहीं है।

मुमुक्षु - निश्चय की बात तो ठीक है।

पूज्य गुरुदेवश्री - परन्तु व्यवहार कौन सा था? आहा...! निश्चय ही सत्य है, व्यवहार तो आरोप का कथन है। लौकिक कथन, लौकिक कथन है।

मुमुक्षु - शुद्ध-अशुद्ध पर्याय का पिण्ड आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री - शुद्ध-अशुद्ध पर्याय का पिण्ड (आता है), वह तो (जो) एकान्त द्रव्य मानते हैं (उसके लिये है)। अशुद्ध पर्याय द्रव्य में हुई नहीं - ऐसा नहीं मानता, उसे कहते हैं। समझ में आया? ठीक निकाला, सेठ भी ठीक निकालता है। शुद्ध-अशुद्ध पर्याय का पिण्ड है न आत्मा? मोक्षमार्ग (प्रकाशक में) कहा है न? वह तो अशुद्धता बिल्कुल नहीं - ऐसा माननेवाले को वह समझाया है। वरना वस्तु जो आत्मा है (वह तो) अकेला शुद्ध पर से अत्यन्त भिन्न है। आहा...हा...! समझ में आया?

इस षड्द्रव्यात्मक लोक में आत्मा से अन्य.... भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द के भावस्वरूप ज्ञायक है। समझ में आया? आहा....! **कुछ भी मेरा नहीं है.... अन्य कुछ भी....** अन्य किंचित् भी **मेरा नहीं है....**

मुमुक्षु - बाबा लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री - आत्मा अनादि से बाबा ही है, पर से खाली ही है। पर से खाली, हाँ! अपने से भरपूर है। अपने स्वभाव से भरपूर है, पर से खाली है। खाली न हो तो पर से शून्यरूप नहीं रह सकता। आहा...हा...! समझ में आया?

देखो ! मुनिपना लेते समय गुरु के पास ऐसा तो निर्णय प्रसिद्ध करता है। फिर मुनि होता है, स्वरूप में लीन होता है। ऐसे लेता है ऐसा कहेंगे। लेता है (– ऐसा कहा) वह तो भाविनैगम से, अभी भावलिंग लेता है (– ऐसा कहा)। (वरना तो) फिर जब ध्यान में बैठेगा तो तब भावलिंग होगा। सुनता है, तब भावलिंग नहीं होता। समझ में आया ? यह तो अभी इसकी पर से भिन्नता की चीज मेरी कैसी है ? उसका तो यह वर्णन है। आहा...हा... ! ऐसा भगवान आत्मा।

अन्य कुछ.... मुझसे पृथक् ऐसा। **कुछ भी मेरा नहीं है....** आ...हा... ! **इस प्रकार निश्चित मतिवाला (वर्तता हुआ)....** है ? ऐसा निर्णय मतिवाला वर्तता हुआ। आहा...हा... ! **और परद्रव्यों के साथ स्व-स्वामिसम्बन्ध जिनका आधार है....** देखो ! इन्द्रिय और मन। यह पाँच इन्द्रियाँ हैं और मन, ये परद्रव्य के साथ इन्हें स्व-स्वामि सम्बन्ध है। ये इन्द्रियाँ स्व और मैं इनका स्वामी – ऐसा मेरे पास कुछ है नहीं। आहा...हा... ! ये इन्द्रियाँ – शरीर के अवयव, जो इन्द्रियाँ अर्थात् शरीर के अवयव और मन भी एक अवयव परमाणु, उस परद्रव्य के साथ स्व-स्वामि सम्बन्ध... परद्रव्य उसका स्व और परद्रव्य उसका स्वामी। वह मेरी इन्द्रियाँ हैं और मैं उनका स्वामी हूँ – ऐसा है नहीं। आहा...हा... !

देखो न ! देह छूटने पर अत्यन्त असाध्य (हो जाता है)। आहा... ! भगवान अन्दर पृथक्, इन्द्रियों की एकत्वबुद्धि में ऐसा हो गया। अत्यन्त भिन्न, इन्द्रियों का ऐसा होना, वह कहीं आत्मा के आधीन नहीं है, क्योंकि उनका स्वामी जड़ है। समझ में आया ? यह आँख का फड़कना ऐसा होना, कान का ऐसा होना, उसका स्वामी जड़ है। जड़ उसका स्व और जड़ उसका स्वामी। उन्हें मैंने जीता है – ऐसा (समयसार की) ३१ गाथा में कहते हैं।

परद्रव्यों के साथ स्व-स्वामिसम्बन्ध जिनका आधार है.... स्व-स्वामिसम्बन्ध जिनका आधार जड़ के साथ है। **ऐसी इन्द्रियों और नो इन्द्रियों....** अर्थात् मन। **जय से जितेन्द्रिय होता हुआ.....** देखो ! ३१ वीं गाथा में जो कहा था न ? '**जो इंदिये जिणित्ता णाणसहावाधियं मुणदि आदं**' जिसने भगवान आत्मा को '**जो इंदिये जिणित्ता**' जड़ इन्द्रियाँ — मिट्टी, भावेन्द्रिय, एक विषय को जाननेवाला खण्ड ज्ञान और इन्द्रियों के विषय। आहा...हा... ! भगवान की वाणी से लेकर संसार की वाणियाँ और शरीर, ये सब

इन्द्रिय में जाते हैं - ऐसा कहते हैं। **'जो इंदिये जिणित्ता'** इन्द्रिय को जीती, इसकी व्याख्या यह है कि द्रव्येन्द्रिय भावेन्द्रिय, और सामने इन्द्रिय का विषय। आहा...हा...! वीतराग की बात गजब बात है!

भगवान की वाणी भी इन्द्रिय है - ऐसा कहते हैं। वह इन्द्रिय का विषय, इन्द्रिय है - ऐसा कहा। वहाँ तो उसे इन्द्रिय लिया न। आहा...हा...! समझ में आया? ये जड़ परमाणु के अवयव हैं, वे तो जड़ हैं ही, इन्द्रिय हैं ही। खण्ड इन्द्रिय-एक-एक विषय को जाननेवाला ज्ञान, वह खण्ड इन्द्रिय और सामने जितने विषय हैं न — शब्द, रूप, रस को भी इन्द्रिय कहा है। इन्द्रिय के विषयों को इन्द्रिय कहा गया है। यह अनीन्द्रिय भगवान आत्मा से वह चीज भिन्न है। आहा...हा...! समझ में आया? एक ओर राम और एक ओर गाँव।

भगवान आत्मा अनीन्द्रिय प्रभु आत्मा है, इसके सिवाय द्रव्य, भाव और विषय सभी इन्द्रिय है। उन्हें जीतकर। जीतकर अर्थात्? उस ओर का लक्ष्य तथा रुचि छोड़कर अपना भगवान ज्ञानस्वभाव से अधिक है। खण्ड इन्द्रिय और विषय से ज्ञानस्वभाव से पृथक्, ऐसे स्वभाव में एकाग्रता होना उसे इन्द्रिय को जीता और जितेन्द्रिय हुआ - ऐसा कहा जाता है। आहा...हा...! ऐसा तत्त्व सूक्ष्म, लोगों को सुनने को मिलता नहीं और लोगों को बाहर का प्रेम ऐसा हो गया है। यह चीज बाहर में तो कभी है ही नहीं और बाहर की चीजें इसमें नहीं।

अस्ति-नास्ति की है न? सप्तभंगी। अपने स्वभाव से भगवान अस्ति, अशून्य है। अपने स्वभाव से यह आत्मा अशून्य है, अस्ति है अर्थात् खाली नहीं है और रागादि, शरीरादि से शून्य है। ऐसा मानो बैठा हो, जहाँ बैठा हो वहाँ ऐसा हो जाता है, यह सब भी मैं हूँ न! मेरे कारण है न! बापू! तेरे कारण तुझमें होता है, तेरे कारण पर में नहीं होता। आहा...हा...! समझ में आया? कहते हैं, अरे! **परद्रव्यों के साथ स्व-स्वामिसम्बन्ध जिनका आधार है ऐसी इन्द्रियों....** ऐसा। जिनका आधार है - ऐसी इन्द्रियाँ और मन। उनके **जय से....** अर्थात् उस ओर की रुचि छोड़कर, भगवान अतीन्द्रिय आनन्द की परिणमनदशा करके **जितेन्द्रिय होता हुआ....** लो, समझ में आया? **जितेन्द्रिय होता हुआ....** स्वयं। इसमें कोई कर्म ने मार्ग दिया और कर्म ऐसा हुआ, इसलिए ऐसा जितेन्द्रिय

वर्तता है – ऐसा नहीं कहा। अपने स्वभाव से जागृत हुआ आत्मा, स्वयं पर से जय से वर्तता है। जय करके वर्तता है। इन्द्रियों के आधीन नहीं होता। समझ में आया? आहा...हा...!

जय से जितेन्द्रिय होता हुआ, वह (श्रामण्यार्थी).... ऐसा जो समकिती, वह साधुपने का अर्थी है। अब उसे साधुपना अंगीकार करना है। ऐसा होवे तो... ऐसा जहाँ भान ही नहीं, उसे उसके बाद की स्थिरता ग्रहण करनी है, वह कहाँ से आये? यह तो वस्तु की स्थिति ऐसी है। परन्तु लोगों को ऐसा लगता है न, यह निश्चय... निश्चय... करके सदाचरण की बात नहीं करते, यह नहीं करते, यह नहीं करते। अरे... भगवान! सदाचरण यही है। सत् आचरण तो आत्मा में होना, वह सदाचरण है। राग की मन्दता, सदाचरण नहीं है। आ...हा...!

अरे... भाई! ऐसा मनुष्य देह मिला, (वह) चला जाता है, भाई! प्रति समय स्थिति पूरी होने आती है और आँखें मिच जायेंगी, नाथ! कहाँ जायेगा तू? तेरी खबर नहीं और यदि तेरा भान नहीं किया, यदि तेरी कीमत नहीं आँकी तो पर की कीमत तेरे ज्ञान में से नहीं जायेगी और पर की कीमत नहीं जाये तो तुझे पर संयोग नहीं छूटेंगे। संयोग में जायेगा, चौरासी के अवतार में जायेगा – ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया?

दीक्षित होता है, वहाँ ऐसा आता है। श्वेताम्बर में सज्झाय में कहा हो। माँ की आज्ञा मानता है सम्यग्दृष्टि, उसमें यह तो बहुत नहीं आता। श्वेताम्बर में ऐसा नहीं आता? आज्ञा मानता है, तब कहता है 'माडी मोरी रे, हवे नहि आवुं रे संसारमां, हे माडी रे मोरी रे....' माडी समझते हैं? अम्मा, माता। 'माडी मोरी रे, हवे नहि आवुं रे संसारमां,' हे माता! क्षण भी अब संसार में मुझे कहीं रुचि नहीं होती। माता! मेरा मन कहीं लगता नहीं, जहाँ मुझे आनन्द का भाव, भान हुआ है, वहाँ बारम्बार मेरा मन जाना चाहता है। आहा...हा...! समझ में आया? 'क्षण लाखेणि रे जाय' ऐसा कहते हैं। हे माता! हमें वनवास जाने में एक-एक क्षण लाखों की जाती है। क्षण लाखेणि समझते हैं? लाखेणि अर्थात् बहुत कीमती। 'क्षण लाखेणि रे जाये' माता! मेरा क्षण लाखों का (जाता है)। लाखों की कीमत से न मिले – ऐसा मेरा क्षण जाता है। अरे... मुझे मेरा करना है, मैं वनवास जानेवाला हूँ, माता! आहा...हा...! वैराग्य से भरपूर जहाँ छलाछल हो गया है; कहीं मेरा चित्त जमता नहीं, कहीं

मेरा चित्त मेरा है – ऐसा मुझे कहीं लगता नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? मुर्दे को उठाकर निकाले, माता! मैं जीवित चला जाता हूँ। मुझे कहीं विकल्प में भी रस और रुचि नहीं होती। समझ में आया? ऐसा वैराग्य सम्यग्दर्शन के भानपूर्वक (होता है)। वह साधु होता है।

आहा...हा...! धन्य अवतार! धन्य काल! धन्य समय! चारित्र की दशा! आहा...हा...! समझ में आया? ऐसी दशा, सन्तों ने ऐसी दशा प्रगट की और कहते हैं कि हम इस चारित्र के कहनेवाले अनुभूत किये हुए खड़े! तुम्हें करना हो तो यह करो, हम ऐसा करते हैं। आहा...हा...!

पहले अभी सम्यग्दर्शन क्या? सम्यग्ज्ञान क्या? सम्यक्चारित्र क्या? उसका इसे निर्णय तो करना पड़े न! या ऐसे का ऐसा मान ले कि बाहर की क्रिया, वह साधु पद, हमने आत्मा को जाना, लो! अब रागादि क्रिया करें, वह हमारा धर्म, बापू! बहुत देर है, नाथ! इस प्रभु आत्मा में राग नहीं, आत्मा में शरीर नहीं, आत्मा को पर के साथ कोई सम्बन्ध नहीं – ऐसा अन्तर में वैराग्य होने पर, अनुभव होने पर, श्रमण अर्थी **आत्मद्रव्य का यथानिष्पन्न शुद्धरूप धारण करने से....** देखो! जैसा बना हुआ है वैसा। किसका? आत्मा का स्वरूप। शुद्ध आनन्दघन वीतरागभाव से बनी हुई वह चीज है। बनी हुई कहो या हुई ऐसी की ऐसी है। भाषा ऐसी आती है न! पंचास्तिकाय में आता है – छह द्रव्य से लोक बना है; बना है अर्थात् है, ऐसा। ऐसे का ऐसा है।

(श्रामण्यार्थी).... आहा...हा...! ऐसे आत्मा के भान और वैराग्य की लहर में उठती, वैराग्य के बहेण (प्रवाह) में चढ़ता, बहेण समझते हैं? नहीं? पानी के बहेण आते हैं न? पानी... पानी! प्रवाह चलता है न, उसे बहेण कहते हैं। इस ओर प्रवाह हो, नदी के दूसरे किनारे प्रवाह हो। प्रवाह-पानी का बहेण कहलाता है। हमारी काठियावाड़ी भाषा सब ऐसी है। समझ में आया? इसी प्रकार अन्दर से वैराग्य के प्रवाह में चढ़े हैं। फाट... फाट... (प्रस्फुटित) प्याला मानो कि! आ...हा...! प्रवाह, बहेण प्रवाह आता है न? नदी (में) पूर होता है न! हमारे बड़ी नदी है, कई बार पानी आवे तो इस ओर आवे, किसी समय इस ओर आवे, प्रवाह जिस ओर जोर हो उसमें आवे, उसे बहेण (प्रवाह) कहते हैं। आ...हा...!

कहते हैं, वह साधु होने का कामी, अरे! साधुपना हुए बिना मुक्ति तीन काल में नहीं है। आहा...हा...! ऐसा यहाँ सिद्ध करते हैं। सम्यग्दर्शन हो, क्षायिक समकित हो, तीन ज्ञान के धनी हो, गृहस्थाश्रम में तीन ज्ञान भी हो, जातिस्मरण भी हो। आहा...! परन्तु चारित्र के बिना मुक्ति नहीं है।

प्रश्न – कैसे चारित्र के बिना?

समाधान – ऐसे चारित्र की बात है। समझ में आया? स्वरूप की रमणता। उस आनन्दघन में रमना, वह चारित्र, उसके बिना मुक्ति कहाँ से हो?

कहते हैं कि भगवान आत्मा! **आत्मद्रव्य का यथानिष्पन्न.....** यथानिष्पन्न (अर्थात्) जैसा है वैसा बना हुआ। शुद्धरूप तो बना हुआ है ही। **शुद्धरूप धारण करने से यथाजातरूपधर होता है।** यहाँ तो निश्चय की जाति ली है, हाँ! जयसेनाचार्यदेव ने टीका में दोनों बातें ली हैं। '**रूवधरो**' है न? वहाँ **यथाजातरूपधरः** वह निश्चय और '**व्यवहारेण नग्नत्वं यथाजाततरूपं, निश्चयेन तु स्वात्मरूपं**' '**निश्चयेन तु स्वात्मरूपं, तदित्थंभूतं यथाजातरूपं धरतीति यथाजातरूपधरः निर्ग्रन्थो जात**' आहा...हा...! राग और विकल्प से निकलकर, भगवान आत्मा वीतरागपने को प्राप्त करता है, उसे निर्ग्रन्थदशा और चारित्रदशा कहा जाता है। समझ में आया? यहाँ तो कहते हैं, निर्ग्रन्थ (अर्थात्) यह स्त्री, पुत्र छोड़े, कपड़े छोड़े तो हो गये निर्ग्रन्थ। भाई! यह नहीं भाई! राग का विकल्प है, वह भी परिग्रह की गाँठ है, परिग्रह है। चौदह प्रकार के परिग्रह में मिथ्यात्व को परिग्रह नहीं कहा? महा परिग्रह है। मिथ्यात्व राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ (ये) सब परिग्रह हैं। उनका एक अंश भी आत्मा में है – ऐसा (जो) मानता है (उसकी) दृष्टि मिथ्या है। उस परिग्रह से रहितपना जीव का स्वरूप है। ऐसा जीव का स्वरूप धारण करता है, उसका नाम निर्ग्रन्थ। वीतरागी सन्त ऐसी दशा धारण करते हैं, तब बाह्य नग्नदशा हो जाती है।

इसलिए अमृतचन्द्राचार्यदेव ने वह बात नहीं ली है। हो जाती है क्योंकि ऐसा जड़ में हो जाता है। वास्तव में तो उसके साथ सम्बन्ध नहीं है – ऐसा सिद्ध करना है न? इसलिए वह निकाल दिया, इसलिए वह बात निकाल दी, स्वयं नहीं ली। जयसेनाचार्यदेव तो जरा दो बात को साथ में बतलाते हैं। यहाँ तो होता है, तथापि यहाँ उसके साथ सम्बन्ध

नहीं है, कोई सम्बन्ध नहीं है – ऐसा सिद्ध करना है क्योंकि पहले से कहा है न यह, इसलिए व्यवहार नग्नपना होगा, यह बात भी यहाँ नहीं ली है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

आत्मद्रव्य का यथानिष्पन्न शुद्धरूप.... लो, आत्मद्रव्य का, हाँ ! शरीर का नहीं। भगवान आत्मा, पुण्य-पाप के भावरहित है, उस रहित का अन्तर में हो गया। **यथानिष्पन्न शुद्धरूप धारण करने से यथाजातरूपधर होता है।** यथाजातरूप। बाहर में तो माता ने जैसा जन्म (दिया), वैसा होता है – यह बात यहाँ नहीं ली है। यथाजात – जैसा माता ने जन्म (दिया), ऐसी दशा हो जाती है परन्तु वह परद्रव्य है और निश्चय ऐसा हो, वहाँ ऐसा होता है – ऐसा सम्बन्ध भी यहाँ रखा नहीं – यह बात ली नहीं।

मुमुक्षु – सम्बन्धरहित दशा है।

पूज्य गुरुदेवश्री – यह बात है। हो, भले हो। आहा...हा... ! ऐसी दशा भाई ! जिसे क्षण में-अन्तर्मुहूर्त में हजारों बार छठा और सातवाँ गुणस्थान आता है। देखो ! यह छठे-सातवें की बात चलती है। कोई कहे कि ऐसा स्वरूप तो आठवें (गुणस्थान में) होता है। अरे... भगवान ! यह किसकी बात चलती है, यह ? स्वयं कहते हैं कि मैं ऐसा हुआ हूँ, तुम होओ। समझ में आया ? यह कहीं बाहर से हठ से हुआ जाये, ऐसा नहीं है।

जामनगर में एक व्यक्ति था, वह प्रतिदिन चूरमा ही खाता, भाई ! चूरमा, चूरमा समझते हैं ? लड्डू। उसका भोजन ही वह। रोटी-वोटी, रोटी कुछ नहीं। उसमें इकलौता पुत्र मर गया, इकलौता मर गया। स्वयं का इकलौता पुत्र मर गया, जलाने गये, जलाकर आये। लोग-सगे-सम्बन्धी एकत्रित हुए। भाई ! तुम्हें रोटी नहीं पचेगी, हाँ ! भाई ! .... तो तुझे दु:ख होगा, रोटी नहीं पचेगी। अरे...रे ! परन्तु मैं चूरमा किस प्रकार खाऊँ ? अभी यह लड़का चला गया, जिसे जलाकर आये। भाई ! परन्तु चूरमा बिना नहीं पचे। तुम्हारी खुराक नहीं... चूरमा बनाया। ऐ...ई... ! परन्तु वह चूरमा कहो या रोटी कहो, उसे कुछ अन्तर (नहीं पड़ता)। ऐसे थाली में चूरमा आया, इकलौता लड़का (मर गया)। पुत्र ! तेरे बिना मुझे चलेगा, ऐसा करके खाता है। ऐसे उठाता है, आँख में से आसूँ बहने लगते हैं। साथ में लोग, सगे-सम्बन्धी बैठे हैं, भाई ! परन्तु दूसरा नहीं खा सकते, यह खाओ, खाता है परन्तु वह किस प्रकार ? प्रेम है ? है रस ? उदास... उदास... अरे ! मेरी यह दशा ? समझ

में आया ? इसी प्रकार धर्मी खाने-पीने में दिखे परन्तु कहीं उसे चैन नहीं पड़ता। आहा...हा... ! अपने स्वभाव में आनन्द में है। वहाँ चैन पड़ी है, वहाँ चैन पड़ती है।

यह यहाँ कहते हैं, यथाजातरूपधारण... भगवान आत्मा जैसा था, ऐसा वीतरागपना आ गया - ऐसा कहते हैं। यहाँ तो वीतराग धारण करने से ऐसा हुआ, यह कहते हैं। लो ! अभी तो (भावलिंग) माँगेगा परन्तु उसके पहले भाविनैगम में, होनेवाला है - इस अपेक्षा से अभी हुआ है - ऐसा कहना चाहते हैं। समझ में आया ?

यह भाई ! है उसमें, संस्कृत में है। जयसेनाचार्यदेव में है। यहाँ तो अभी माँगता है, वहाँ तो विकल्प है, अभी चौथा-पाँचवाँ गुणस्थान है, उस समय छठवाँ नहीं। माँग करता है, तब भान है (कि) मैं रागरहित हूँ मुझे कोई क्रिया-फिरिया करना, वह है ही नहीं। ज्ञान और दर्शन की अपेक्षा से परवस्तु का मुझे त्याग पहले से हो गया है, मुझे कोई ग्रहण-त्याग है नहीं परन्तु राग की मन्दता के उदय के काल में शुभभाव आता है; इसलिए उस विकल्प से कहता है कि प्रभु ! मुझे दीक्षित करो। उस समय कहीं छठवाँ गुणस्थान नहीं, वह तो पाँचवाँ या चौथा होता है परन्तु धारण करता हूँ - ऐसा जो कहता है, वह भविष्य में होनेवाला है, उसे अभी धारण करता हूँ - ऐसी भाविनैगम की बात की है। समझ में आया ? आ....हा... !

प्रवचन नं. २०७ आषाढ़ शुक्ल ५, गुरुवार, १९ जून १९६९

(प्रवचनसार) २०४ गाथा। क्या चलता है ? जो साधु होना चाहता है, वह पहले क्या करता है, वह बात चलती है। पहले उसे सम्यग्दर्शन तो होता ही है। साधु होनेवाले को पहले सम्यग्दर्शन होता है। पहले ज्ञानज्योति प्रगट होती है। वह अपने आ गया है।

मैं ज्ञानानन्द हूँ, शुद्ध चैतन्य आनन्द हूँ, मुझमें संसार या विकल्प कुछ है ही नहीं। संसार, जो रागभाव और मिथ्यात्व भाव है, वह संसार है। वह संसार मेरे स्वभाव में है ही नहीं। समझ में आया ? ऐसा अन्तर अनुभव होने के बाद साधु होना चाहता है, वह कुटुम्ब की आज्ञा लेकर विदा लेता है। समझ में आया ? और पंचाचार अंगीकार करता है, ऐसा भाविनैगम से कहने में आया है। क्या कहते हैं, समझ में आया ?

जो कोई साधु होना चाहता है, उसे पहले अपना आनन्द और ज्ञानज्योति का अनुभव होना चाहिए, उसको अनुभव हुआ हो। आत्मा का ज्ञानस्वरूप और आनन्दस्वरूप के अनुभव बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं। तो सम्यग्दर्शन तो पहले से हुआ है, बाद में साधुपद लेने की भावना है, वह कुटुम्ब की विदा लेता है और पंचाचार लेता है; अभी लिया नहीं है, किन्तु लेता है, ऐसा पहले से भाविनैगम से कथन किया है और फिर वह कैसा होता है यह कहते हैं।

णाहं होमि परेसिं ण मे परे णत्थि मज्झमिह किंचि।
इदि णिच्छिदो जिदिंदो जादो जधजादरूपवधरो।।२०४।।

टीका, टीका है न? **और तत्पश्चात् श्रामण्यार्थी....** आत्मा अपना शान्तपद साधुपद वीतरागभाव पद अंगीकार करना चाहता है, वह **यथाजातरूपधर होता है।** आत्मा वीतरागस्वभाव है, ऐसा होता है। सूक्ष्म बात है, भाई! क्या कहते हैं, समझ में आया?

श्रामण्यार्थी - जो साधु होना चाहता है (वह) **यथाजातरूपधर होता है।** जैसा जन्म से आत्मा नग्न होता है, वैसे आत्मा अन्दर में भगवान तीर्थंकर परमात्मा ने कहा, ऐसा राग बिना, विकल्प बिना, पुण्य-पाप बिना, मन बिना जैसा उसका स्वरूप है, ऐसा वीतरागपदरूप यथाजातरूप धारण करता है। **यथाजातरूपधर होता है।** कहो, समझ में आया? मुनि होता है, वह पहले सम्यग्दृष्टि तो होता ही है किन्तु उस समय (-दीक्षा लेते समय) यथाजातरूपधर होता है, ऐसा कहा। देखो! वीतरागभाव, शान्तभाव, उपशमरसभाव, तीन कषाय का अभाव - ऐसा यथाजातरूपधर मुनि होता है, वह ऐसा ही होता है। यह जैन के साधु! वीतराग परमात्मा का साधु ऐसा होता है।

वह इस प्रकार - अब उसका स्पष्टीकरण करते हैं। '**प्रथम तो मैं किंचित्मात्र भी पर का नहीं हूँ,....** मैं एक राग का या शरीर का या मन का किंचित्मात्र नहीं। समझ में आया? मैं तो आत्मा हूँ, वीतरागस्वभाव से भरा पड़ा हूँ। मेरा पर के साथ (कोई सम्बन्ध नहीं)। पर का मैं बिल्कुल नहीं। रागादि व्यवहाररत्नत्रय का, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का जो राग है, उसका भी मैं किंचित् हूँ नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? **मैं किंचित्मात्र भी पर का नहीं हूँ,....** राग का मैं नहीं, हाँ! आहा...हा...! जो दया, दान आदि का

विकल्प – राग उठता है, उसका मैं जरूर नहीं। मैं तो वीतरागस्वरूप हूँ। आहा...हा...! समझ में आया?

पर भी किंचित्‌मात्र मेरे नहीं हैं,.... राग मैं नहीं और राग मेरे में नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? भाई! जैन वीतरागी साधु अलौकिकदशा है! जैन परमेश्वर ने जैसा कहा, ऐसा साधुपद... अन्तर सम्यग्दर्शन, ज्ञान में तो राग का रहितपना हुआ ही है, दृष्टि और ज्ञान की अपेक्षा से, परन्तु यहाँ तो चारित्र की वीतरागता की अपेक्षा से वीतराग... वीतराग... वीतराग भाव हुआ। अरे...! मेरा कुछ है नहीं और ये चीज मेरी नहीं। **पर भी किंचित्‌मात्र मेरे नहीं हैं, क्योंकि समस्त द्रव्य....** भगवान ने जितने द्रव्य देखे, अनन्त आत्माओं, अनन्त परमाणुओं।

तत्त्वतः.... है न? वास्तव में तत्त्वदृष्टि से **पर के साथ समस्त सम्बन्ध रहित हैं;....** ओ...हो...! यह आत्मा, व्यवहार विकल्प जो उठते हैं, उसके सम्बन्ध से भी आत्मा रहित ही है। समझ में आया? **तत्त्वतः पर के साथ समस्त सम्बन्ध....** मेरे और राग के, मेरे और कर्म के, मेरे और गुरु के, मेरे और शास्त्र के, मेरे और देव के (बीच कोई सम्बन्ध नहीं)। (सर्व से) सम्बन्ध रहित, मैं सर्वथा सम्बन्धरहित हूँ।

इसलिए इस षड्द्रव्यात्मक लोक में आत्मा से अन्य कुछ भी मेरा नहीं है..... लो! ये छह द्रव्य भगवान ने देखे। छह द्रव्य, उसमें मेरा आत्मा वीतरागभाव से भरा है, इसके अलावा कोई चीज मेरी है नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? **षड्द्रव्यात्मक लोक में आत्मा से अन्य कुछ भी मेरा नहीं है.....** मेरा कुछ नहीं। मैं पर से शून्य हूँ, अपने आनन्द और ज्ञान वीतरागस्वभाव से भरा पड़ा पूरा हूँ। देखो! यह मुनिपना। समझ में आया?

कहते हैं, **इस प्रकार निश्चित मतिवाला (वर्तता हुआ) इस प्रकार निर्णय मतिवाला होता हुआ। और परद्रव्यों के साथ स्व-स्वामिसम्बन्ध जिनका आधार है....** क्या कहते हैं? ये इन्द्रियाँ जड़ हैं और भावेन्द्रिय हैं और उसका विषय है, (ये) सब। **जिनका आधार है, ऐसी इन्द्रियों और नो इन्द्रियों के....** साथ। वह तो परद्रव्यों के साथ आधार-आधेय सम्बन्ध (है), मेरे आधार से इन्द्रिय नहीं और मैं पर के आधार से नहीं।

ये इन्द्रियाँ है, वे मेरे आधार से नहीं – ऐसा कहते हैं। पाँच इन्द्रियाँ ये जड़ हैं, वह मेरे आधार से नहीं। मन है, वह मेरे आधार से नहीं। समझ में आया? वह तो **परद्रव्यों के साथ स्व-स्वामिसम्बन्ध....** (है)। परद्रव्य-जड़ के साथ स्व-स्वामी सम्बन्ध (है)। जड़ उसका स्व और स्वामी जड़ है। इन्द्रियाँ मेरी हैं और मैं स्वामी (हूँ) – ऐसा है नहीं। वह तो मिट्टी-धूल है। आहा...हा...! कहो, समझ में आया?

इन्द्रिय से मैं काम लूँ, वह मैं चीज ही नहीं, फिर क्या? ऐसा यहाँ कहते हैं, भाई! आहा...हा...! इन्द्रिय और मन से मैं काम लूँ (– ऐसा है नहीं)। (उसे) तो आधार जड़ का है न! मेरे आधार से है ही नहीं। और मेरी चीज वे हैं और मैं (उसका) स्वामी (हूँ) – ऐसा हूँ ही नहीं। आहा...हा...! भगवान आत्मा अपना ज्ञानानन्द स्वभाव, यह अपना स्व (है) उसका स्वामी (मैं हूँ)। इस ज्ञानानन्द आदि स्वभाव का आधार मैं हूँ लेकिन इन्द्रियाँ और मन का आधार मैं नहीं। आहा....हा...! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! वीतराग का मार्ग बहुत सूक्ष्म है।

मुमुक्षु – जीव हो तो इन्द्रियाँ काम करें।

पूज्य गुरुदेवश्री – जीव हो तो (इन्द्रियाँ) हैं – ऐसा नहीं। वह हो तो है। जीव हो तो हैं, ऐसा नहीं। पुद्गलद्रव्य हो तो है। मैं हूँ तो (वह) है, ऐसा है नहीं। आहा...हा...! मैं तो आत्मा हूँ। ज्ञानानन्दस्वरूप, सर्वज्ञ परमात्मा जैसा आत्मा मेरा है। मेरे में और मेरे आधार से इन्द्रियाँ हैं और मेरे में इन्द्रियाँ हैं, (– ऐसा) है नहीं। देखो! अतीन्द्रिय होता है। वस्तु का स्वरूप अतीन्द्रिय है। दृष्टि में तो पहले अतीन्द्रिय हुआ है किन्तु अब इन्द्रिय के सम्बन्ध का जो राग था, उससे रहित मैं हूँ, ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! देखो! जैनदर्शन का मुनिपना, भाई! जैनदर्शन क्या, वस्तु का स्वरूप ऐसा है। समझ में आया?

परद्रव्यों के साथ स्व-स्वामिसम्बन्ध जिनका आधार है, ऐसी इन्द्रियों और नो इन्द्रियों.... (अर्थात्) मन (के) **जय से...** उसका जय किया है। **जितेन्द्रिय होता हुआ....** उसका मेरे में अभाव किया है, सम्बन्ध छोड़ दिया है। मेरे स्वभाव के साथ सम्बन्ध किया, इन्द्रियाँ और मन से सम्बन्ध छोड़ दिया है। आहा...हा...! देखो, यह

मुनिपना! समझ में आया? सम्यग्दर्शन में, सम्यग्ज्ञान में तो पर के साथ सम्बन्ध है नहीं, इतना तो छूट गया किन्तु यहाँ तो बाकी रहा राग और इन्द्रियाँ निमित्तरूप थी, वे भी मेरे सम्बन्ध से नहीं। जड़ के आधार से हैं, मेरे आधार से नहीं। मैं उसका आलम्बन लेता हूँ और मेरे में कुछ होता है, ऐसा चीज मैं हूँ नहीं। इन्द्रियाँ हैं तो इन्द्रिय से मैं जानता हूँ, सुनता हूँ, ऐसी चीज हूँ नहीं - ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! देखो, मुनिपना वीतराग का!

कहते हैं, **जितेन्द्रिय होता हुआ, वह (श्रामण्यार्थी).....** साधुपने का अर्थी, **आत्मद्रव्य का यथानिष्पन्न....** आत्मा है, वीतराग निर्दोष आनन्दस्वरूप **शुद्धरूप धारण करने से....** लो। अन्तर का (रूप)। **यथाजातरूपधर होता है।** लो, इतनी व्याख्या हुई। यथाजातरूप (अर्थात्) जैसा प्रभु आत्मा है, ऐसी दशा में वीतरागता हुई। उसका नाम यथाजातरूप, जैसा जन्मा अर्थात् जैसा है, वैसा रूप का धरनेवाला आत्मा (होता है)। ओ...हो...! विकल्प के साथ सम्बन्ध नहीं, मन के साथ सम्बन्ध नहीं, वाणी के साथ सम्बन्ध नहीं, शरीर के साथ सम्बन्ध नहीं, कर्म के साथ सम्बन्ध नहीं। छह द्रव्य (स्वरूप) लोक में मेरी अन्य कोई चीज (है नहीं), किसी के साथ मेरा सम्बन्ध है नहीं। ऐसी वीतरागदशा प्रगट हो, उसका नाम परमेश्वर का साधु, जैन साधु कहा जाता है।

मुमुक्षु - जैसी अन्दर में परिणति होती है, जब तो इन्द्रियों का कपड़ा-लत्ता पालते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री - बिल्कुल नहीं। इन्द्रिय-फिन्द्रिय है नहीं, फिर कपड़ा-लत्ता कहाँ से आया? वह पीछे आयेगा, अभी आयेगा।

कहते हैं कि, मैं... ओ...हो...! मुनिपना कैसा है, देखो! मैं तो आनन्द (हूँ)। सम्यग्दर्शन हुआ, उसमें से ऐसी दृष्टि पहले से हो गई है कि, विकल्पमात्र, मनमात्र मेरी चीज है ही नहीं। समझ में आया? सम्यग्ज्ञान में ऐसा अनुभव हो गया परन्तु जो अस्थिरता / कमजोरी से राग-द्वेष आदि उत्पन्न (होता) था और इन्द्रिय के सम्बन्ध के लक्ष्य जाता था, वह कहते हैं कि वह लक्ष्य जाता है, वह मैं नहीं; मेरा तो वह लक्ष्य भी अब तो छूट गया। आहा...हा...!

यथाजातरूपधर होता है। लो। उसका नाम सम्यग्दर्शन के अनुभवसहित वीतरागता की पर्याय प्रगट हो, उसका नाम भगवान, साधुपद कहते हैं। समझ में आया ? अब २०५-२०६ (गाथा)।

मुमुक्षु - संक्षेप में पूरा हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री - संक्षेप में पूरा हुआ। कल आ गया था न, इसलिए संक्षेप में पूरा हो न। पहले आये, उस समय जैसा आये, ऐसा फिर से आये ? कल बहुत चला था। नये आदमी थे और गुजराती में था। आहा....हा... ! गुजराती हो तो ज्यादा चलता है। इसमें तो (हिन्दी में तो) शब्दों में लक्ष्य में रुकना पड़ता है न।

ऐसा यथाजातरूप हुआ। बाह्य में भी नग्न दशा हो गई। 'अमृतचन्द्राचार्यदेव' ने यहाँ वह नहीं लिया। अन्तर में ऐसी वीतरागता हुई (तो) बाह्य में भी नग्नदशा हो जाती है, करनी पड़ती नहीं। पुद्गल की पर्याय, पुद्गल के अनुसार उस प्रकार की दशा हो जाती है। कपड़ा उतारना - लेना मुनि को है नहीं। मुनि को कपड़े होते ही नहीं। समझ में आया ? वह यहाँ कहेंगे, देखो !

गाथा - २०५-२०६

अथैतस्य यथाजातरूपधरत्वस्यासंसारानभ्यस्तत्वेनात्यन्तमप्रसिद्धस्याभिनवाभ्यास-कौशलोपलभ्यमानायाः सिद्धेर्गमकं बहिरङ्गान्तरङ्गलिङ्गद्वैतमुपदिशति-

जधजादरूवजादं उप्पाडिदकेसमंसुगं सुद्धं।
रहिदं हिंसादीदो अप्पडिकम्मं हवदि लिंगं।।२०५।।

मुच्छारंभविजुत्तं जुत्तं उवओगजोगसुद्धीहिं।
लिंगं ण परावेक्खं अपुणब्भवकारणं जेण्हं।।२०६।। [जुगलं]

यथाजातरूपजातमुत्पाटितकेशश्मश्रुकं शुद्धम्।
रहितं हिंसादितोऽप्रतिकर्म भवति लिङ्गम्।।२०५।।

मूर्च्छारम्भवियुक्तं युक्तमुपयोगयोगशुद्धिभ्याम्।
लिङ्गं न परापेक्षमपुनर्भवकारणं जैनम्।।२०६।। [युगलम्]

आत्मनो हि तावदात्मना यथोदितक्रमेण यथाजातरूपधरस्य जातस्यायथाजातरूपधरत्वप्रत्ययानां मोहरागद्वेषादिभावनां भवत्येवाभावः, तदभावात्तु तद्भावभाविनो निवसनभूषणधारणस्य मूर्धजव्यञ्जन-पालनस्य सकिञ्चनत्वस्य सावद्ययोगयुक्तत्वस्य शरीरसंस्कारकरणत्वस्य चाभावाद्यथाजातरूपत्व-मुत्पाटितकेषश्मश्रुत्वं शुद्धत्वं हिंसादिरहितत्वमप्रतिकर्मत्वं च भवत्येव, तदेतद्बहिरङ्गं लिङ्गम्। तथात्मनो यथाजातरूपधरत्वापसारितायथाजातरूपधरत्वप्रत्ययमोहरागद्वेषादिभावानामभावादेव तद्भावभाविनो ममत्वकर्मप्रक्रमपरिणामस्य शुभाशुभोपरक्तोपयोगतत्पूर्वकतथाविधयोगाशुद्धियुक्तत्वस्य परद्रव्यसापेक्षत्वस्य चाभावान्मूर्च्छारम्भवियुक्तत्वमुपयोगयोगशुद्धियुक्तत्वमपरापेक्षत्वं च भवत्येव, तदेतदन्तरङ्गं लिङ्गम्।।२०५-२०६।।

अथ तस्य पूर्वसूत्रोदितयथाजातरूपधरस्य निर्ग्रन्थस्यानादिकालदुर्लभायाः स्वात्मोपलब्धि-लक्षणसिद्धेर्गमकं चिह्नं बाह्याभ्यन्तरलिङ्गद्वयमादिशति-**जधजादरूवजादं** पूर्वसूत्रोक्तलक्षणयथाजातरूपेण निर्ग्रन्थत्वेन जातमुत्पन्नं यथाजातरूपजातम्। **उप्पाडिदकेसमंसुगं** केशश्मश्रुसंस्कारोत्पन्नरागादिदोष-

वर्जनार्थमुत्पाटितकेशश्मश्रुत्वादुत्पाटितकेशश्मश्रुकम्। **सुद्धं** निरवद्यचैतन्यचमत्कारविसद्दशेन सर्वसावद्ययोगेन रहितत्वाच्छुद्धम्। **रहिदं हिंसादीदो** शुद्धचैतन्यरूपनिश्चयप्राणहिंसाकारणभूताया रागादिपरिणतिलक्षणनिश्चयहिंसाया अभावात् हिंसादिरहितम्। **अप्पडिकम्मं हवदि** परमोपेक्षासंयमबलेन देहप्रतिकाररहितत्वादप्रतिकर्म भवति। किम्। **लिंगं** एवं पञ्चविशेषणविशिष्टं लिङ्गं द्रव्यलिङ्गं ज्ञातव्यमिति प्रथमगाथा गता।। **मुच्छारंभविमुक्कं** परद्रव्यकाङ्क्षारहितनिर्मोहपरमात्मज्योतिर्विलक्षणा बाह्यद्रव्ये ममत्वबुद्धिर्मूर्च्छा भण्यते, मनोवाक्कायव्यापाररहितचिच्चमत्कारप्रतिपक्षभूत आरम्भो व्यापारस्ताभ्यां मूर्च्छारम्भाभ्यां विमुक्तं मूर्च्छारम्भविमुक्तम्। **जुत्तं उवओगजोगसुद्धीहिं** निर्विकारस्वसंवेदनलक्षण उपयोगः, निर्विकल्पसमाधिर्योगः, तयोरुपयोगयोगयोः शुद्धिरुपयोगयोगशुद्धिस्तया युक्तम्। **ण परावेक्खं** निर्मलानुभूतिपरिणतेः परस्य परद्रव्यस्यापेक्षया रहितं, न परापेक्षम्। **अपुणब्भवकारणं** पुनर्भवविनाशकशुद्धात्मपरिणामाविपरीतापुनर्भवस्य मोक्षस्य कारणमपुनर्भवकारणम्। **जेण्हं** जिनस्य संबन्धीदं जिनेन प्रोक्तं वा जैनम्। एवं पञ्चविशेषणविशिष्टं भवति। किम्। **लिंग** भावलिङ्गमिति। इति द्रव्यलिङ्गभावलिङ्गस्वरूपं ज्ञातव्यम्।।२०५-२०६।।

अब, अनादि संसार से अनभ्यस्त होने से जो अत्यन्त अप्रसिद्ध है और अभिनव[1] अभ्यास में कौशल्य द्वारा जिसकी सिद्धि उपलब्ध होती है – ऐसे इस यथाजातरूपधरपने के बहिरंग और अन्तरंग दो लिंगों का उपदेश करते हैं—

यथाजात स्वरूप हो, कर केश-लुंचन शुद्ध है।
शृंगार अरु हिंसारहित जो, वह श्रमण का लिङ्ग है॥२०५॥

आरम्भ मूर्च्छाशून्य हो, उपयोग-योग विशुद्ध हो।
निरपेक्ष पर से-जिनकथित, मुक्ति का कारण लिंग वो॥२०६॥

अन्वयार्थ - **[यथाजातरूपजातम्]** जन्म समय के रूप जैसा रूपवाला, **[उत्पाटितकेशश्मश्रुकं]** सिर और दाढ़ी-मूछ के बालों का लोंच किया हुआ, **[शुद्धं]** शुद्ध (अकिंचन), **[हिंसादितः रहितम्]** हिंसादि से रहित और **[अप्रतिकर्म]** प्रतिकर्म (शारीरिक शृंगार) से रहित — **[लिंगं भवति]** ऐसा (श्रामण्य का बहिरंग) लिंग है।

[मूर्च्छारम्भवियुक्तम्] मूर्च्छा (ममत्व) और आरम्भ रहित, **[उपयोगयोग-शुद्धिभ्यां युक्तं]** उपयोग और योग की शुद्धि से युक्त तथा **[न परापेक्षं]** पर की अपेक्षा

१. अभिनव=बिलकुल नया। (अनादि संसार से अनभ्यस्त यथाजातरूपधरपना अभिनव अभ्यास में प्रवीणता के द्वारा सिद्ध होता है।)

से रहित — ऐसा **[जैनं]** जिनेन्द्रदेव कथित **[लिंगम्]** (श्रामण्य का अन्तरंग) लिंग है। **[अपुनर्भवकारणम्]** जो कि मोक्ष का कारण है।

टीका - प्रथम तो अपने से, यथोक्तक्रम से यथाजातरूपधर[१] हुए आत्मा के अयथाजातरूपधरपने[२] के कारणभूत मोहरागद्वेषादिभावों का अभाव होता ही है; और उनके अभाव के कारण, जो कि उनके सद्भाव में होते हैं ऐसे (१) वस्त्राभूषण का धारण, (२) सिर और दाढ़ी-मूछों के बालों का रक्षण, (३) सकिंचनत्व[३], (४) सावद्ययोग से युक्तता तथा (५) शारीरिक संस्कार का करना, इन (पाँचों) का अभाव होता है; जिससे (उस आत्मा के) (१) जन्मसमय के रूप जैसा रूप, (२) सिर और दाढ़ी-मूछ के बालों का लोंच, (३) शुद्धत्व, (४) हिंसादिरहितता तथा (५) अप्रतिकर्मत्व (शारीरिक शृंगार-संस्कार का अभाव) होता ही है। इसलिए यह बहिरंग लिंग है।

और फिर, आत्मा के यथाजातरूपधरपने से दूर किया गया जो अयथाजातरूपधरपना, उसके कारणभूत मोहरागद्वेषादिभावों का अभाव होने से ही जो उनके सद्भाव में होते हैं ऐसे जो (१) ममत्व के और कर्मप्रक्रम[४] के परिणाम, (२) शुभाशुभ उपरक्त उपयोग और तत्पूर्वक[५] तथाविध योग की अशुद्धि से युक्तता तथा (३) परद्रव्य से सापेक्षता; इस (तीनों) का अभाव होता है; इसलिए (उस आत्मा के) (१) मूर्छा और आरम्भ से रहितता, (२) उपयोग और योग की शुद्धि से युक्तता तथा (३) पर की अपेक्षा से रहितता होती ही है। इसलिए यह अन्तरंग लिंग है ॥२०५-२०६॥

प्रवचन नं. २०६ का शेष **आषाढ़ शुक्ल ५, गुरुवार, १९ जून १९६९**

अब, अनादि संसार से अनभ्यस्त होने से.... क्या कहते हैं ? देखो ! ओ...हो... ! भगवान आत्मा ! वीतरागस्वभाव का अनादि से अनभ्यास है।

मुमुक्षु - द्रव्यलिंगी मुनि अनन्त बार हुआ न ?

---

१. यथाजातरूपधर = (आत्मा का) सहजरूप धारण करनेवाला।
२. अयथाजातरूपधर = (आत्मा का) असहजरूप धारण करनेवाला।
३. सकिंचन = जिसके पास कुछ भी (परिग्रह) हो ऐसा।
४. कर्मप्रक्रम = काम को अपने ऊपर लेना; काम में युक्त होना, काम की व्यवस्था।
५. तत्पूर्वक = उपरक्त (मलिन) उपयोगपूर्वक।

पूज्य गुरुदेवश्री – अनभ्यास है। वीतरागभाव का अनभ्यास है, वह तो राग का अभ्यास था। द्रव्यलिंगी मुनि हुआ, उसे राग का अभ्यास था। रागी, मोही प्राणी था। मिथ्यादृष्टि (था) राग का अभ्यास (था)। आहा...हा...! बाहर में देखो तो हजारों रानियों का त्याग, पर से उदास... 'उर से ही उदासी लही सबपै, उर से ही उदासी लही सबपै' ऐसा अनन्त बार हुआ है। वह राग का अभ्यास है। भगवान आत्मा, राग से भिन्न भगवान का इसे अनभ्यस्त है, उसका इसे अभ्यास नहीं है; इसलिए इसे दुर्लभ कहा है, ऐसा।

अनभ्यस्त होने से जो अत्यन्त अप्रसिद्ध है.... ऐसा। उसे अभी अप्रसिद्ध है। मुनिपना अनादि के अभ्यास में नहीं। देखो! नौवें ग्रैवेयक गया, तब मिथ्यादृष्टि दिगम्बर मुनि होकर गया, तथापि कहते हैं कि उसे मुनिपना क्या है? वह अप्रसिद्ध है, उसे अभ्यास था नहीं; क्रियाकाण्ड का, राग का, पुण्य का अभ्यास था। भगवान आत्मा, रागरहित चीज परमात्मस्वरूप है, उसकी इसे दृष्टि और अनुभव नहीं हुआ था। आहा...हा...! समझ में आया? अनभ्यस्त **अत्यन्त अप्रसिद्ध....** फिर भाषा ली है। बिल्कुल वीतरागभाव की प्रसिद्धि ही अत्यन्त अप्रसिद्ध है। आहा...हा...! लेंगे दोनों साथ, हाँ! क्यों? कि बाह्य में तो अनन्त बार आया था न! वह नहीं; निश्चय का अनभ्यास है तो व्यवहार का भी इसे अनभ्यास ही है क्योंकि निश्चय के साथ व्यवहार हो, उसे व्यवहार कहते हैं। अर्थात् अनन्त बार द्रव्यलिंग आया, अट्ठाईस मूलगुण आये, उसे भी अभ्यास में नहीं रखा; अनभ्यास था। अर्थात्? कि निश्चय की वीतरागता का अभ्यास है तो उसके साथ राग के व्यवहार का भी उस प्रकार का अनभ्यास है – ऐसा (कहना है)। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म भाई! गुजराती में आवे परन्तु भाव तो जो हों वो आवे न! ए....भाई!

आत्मा.... ऐसा भगवान फरमाते हैं कि इसे द्रव्यलिंग और भावलिंग का अनभ्यास है – ऐसा कहते हैं। द्रव्यलिंग तो अनन्त बार आया है न? (तो कहते हैं) नहीं; द्रव्यलिंग तब कहते हैं, जिसे भावलिंग वीतरागता प्रगट हुई तो। इसलिए उसे निश्चय और व्यवहार दोनों का अनभ्यास है – ऐसा कहते हैं। आ...हा...!

कहते हैं, **अनादि संसार से.....** अनादि संसार में तो सब आ गया न? नौवें ग्रैवेयक गया वह (भी आ गया) 'मुनिव्रत धार अनन्त ग्रीवक उपजायौ' इसका अर्थ दूसरा करते

हैं.... अरे प्रभु! क्या करता है तू? यह तो अभव्य के लिये है (ऐसा वे लोग कहते हैं) और अनादि मिथ्यादृष्टि ग्यारह अंग का ज्ञान नहीं करता, सादि मिथ्यादृष्टि करता है। अरे... अरे... प्रभु! क्या करता है तू यह? अनादि मिथ्यादृष्टि भी अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक गया, ग्यारह अंग और नौ पूर्व पढ़ा तथा व्यवहार क्रिया अनन्त बार की, उसे व्यवहार कहा नहीं – ऐसा कहते हैं। इसलिए दोनों का अनभ्यास है – ऐसा कहा है। समझ में आया? भगवान आत्मा वीतरागभाव का अभ्यास नहीं, इसलिए उसके साथ रागवाला अभ्यास व्यवहार का जो कहें, वह निश्चयपूर्वक नहीं, इसलिए उन दोनों का अभ्यास नहीं।

मुमुक्षु – पहले उपादेयभूत था।

पूज्य गुरुदेवश्री – हाँ! परन्तु वह तो दूसरी लाईन हो गयी। वह तो परवस्तु है, मुझमें है ही नहीं, उसका अभ्यास था। यह तो मुझमें है, ऐसा वीतरागभाव मुझमें है, उसका अभ्यास इसे नहीं; इसलिए उस प्रकार के राग का विकल्प जो है, उस भूमिका प्रमाण में या द्रव्यलिंग नग्नपना, दोनों को अनभ्यास में डाला क्योंकि उसे निमित्त को व्यवहाररूप से भी निश्चय की अप्रसिद्धि में व्यवहार की भी प्रसिद्धि नहीं थी – ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया? अलौकिक बात है भाई! कुन्दकुन्दाचार्यदेव की चरणानुयोग की शैली भी (गजब है)। आहा...हा...! ऐसी बात है देखो! अरे... भाई! यह मार्ग कोई अलग है, भाई! समझ में आया?

कहते हैं कि **अनादि संसार से अनभ्यस्त....** ऐसा कहा। कभी अभ्यास व्यवहार का भी नहीं। ऐसा कहा। **जो अत्यन्त अप्रसिद्ध है.... ऐसे इस यथाजातरूपधरपने के बहिरंग और अन्तरंग दो लिंगों (का उपदेश करते हैं—)** लो, ठीक! बहिरंग अट्ठाईस मूलगुण आदि, नग्नपना तो जड़ की बात है। अन्तरंग वीतरागदशा। अन्तरंग में वीतराग का उभरा-उफान... इतनी वीतरागता... वीतरागता। वीतरागता के झूले में झूलता हुआ। समझ में आया? ऐसे जो बहिरंग और अन्तरंग दो लिंग, उनका अनादि से अनभ्यास। **अभिनव अभ्यास में कौशल्य द्वारा.....** देखो! अभ्यास नहीं, इसलिए नया कहा न? एकदम नया। यथाजातरूपधरपने के अत्यन्त नये अभ्यास में प्रवीणता द्वारा शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धिरूप सिद्धि प्राप्त होती है – ऐसा लिया। अकेला निश्चय लिया। **कि अभिनव**

अभ्यास में कौशल्य द्वारा..... वीतरागपने का नया अभ्यास। विज्ञानघन आत्मा, ऐसा अनुभव होने पर भी, वीतरागपने का अनभ्यास है; इसलिए नये अभ्यास में कुशलता द्वारा, चतुराई द्वारा चतुरपने द्वारा अन्तर वीतरागस्वभाव में प्रवेश करता है। **जिसकी सिद्धि उपलब्ध होती है, उसके सूचक हैं....** ये लिंग। अन्तरंग और बाह्य को बतलानेवाले हैं। **अभिनव अभ्यास में कौशल्य द्वारा जिसकी सिद्धि उपलब्ध होती है, उसका उपदेश करते हैं—**

जधजादरूवजादं उप्पाडिदकेसमंसुगं सुद्धं।
रहिदं हिंसादीदो अप्पडिकम्मं हवदि लिंगं।।२०५।।

मुच्छारंभविजुत्तं जुत्तं उवओगजोगसुद्धीहिं।
लिंगं ण परावेक्खं अपुणब्भवकारणं जेण्हं।।२०६।। [जुगलं]

यथाजात स्वरूप हो, कर केश-लुंचन शुद्ध है।
श्रृंगार अरु हिंसारहित जो, वह श्रमण का लिङ्ग है॥२०५॥

जन्मे प्रमाणेरूप बाहर का-बहिरंग लिया। लुंचन केश का शुद्धत्व... शुद्धत्व अर्थात् किंचिनरहित, वस्तुरहित **हिंसादि से शून्यता देह असंस्करण यह लिंग है।** यह बाहर का लिंग।

आरम्भ मूर्च्छाशून्य हो, उपयोग-योग विशुद्ध हो।
निरपेक्ष पर से-जिनकथित, मुक्ति का कारण लिंग वो॥२०६॥

आरम्भ मूर्च्छाशून्य हो, उपयोग-योग विशुद्ध हो। देखो, यह मुनिपने की देखो, व्याख्या, देखो! उपयोगयोग विशुद्धता। आहा...हा...! विशुद्ध उपयोग और योग समाधि शुद्ध योग अर्थात् अन्दर समाधि शुद्ध। आहा...हा...! समझ में आया? वे कहते हैं - उपयोग विशुद्ध नहीं होता; जबकि यहाँ तो कहते हैं कि उपयोग और योग दोनों विशुद्ध हैं। मुनि को उपयोग विशुद्ध और योग शान्ति समाधि शुद्ध है, विशुद्ध है। **आरम्भ मूर्च्छाशून्य हो, उपयोग-योग विशुद्ध हो। निरपेक्ष पर से-जिनकथित, मुक्ति का कारण लिंग वो।** देखो! **अपुणब्भव** कहा न? जिनोदित-भगवान सर्वज्ञ परमात्मा के-वीतराग के मुख

से निकला हुआ अभ्यन्तर और बाह्यलिंग का यह मार्ग, यह लिंग इस प्रकार के होते हैं। भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ कथित। समझ में आया? उसकी टीका है।

प्रथम तो अपने से, यथोक्तक्रम से.... यथोक्तक्रम से - यह कहा न? आज्ञा ली अथवा अनुमति ली, पंचाचार को अंगीकार करता हूँ - ऐसा कहा। पंच आचार नहीं? ज्ञानाचार आदि। यह क्रम। भले अंगीकार करता हूँ - यह कुछ अभी नहीं परन्तु आयेगा, परन्तु अंगीकार करता हूँ - एक विधि। प्रथम तो स्वयं से यथोक्त-यथा-उक्त क्रम द्वारा। **यथाजातरूपधर.....** सहजरूप भगवान आत्मा, उसके हुए **आत्मा के अयथाजात-रूपधरपने के कारणभूत....** श्लोक में पहले व्यवहार डाला है, यह तो निश्चय लिया। (ऐसी) शैली, रचना है न!

कहते हैं कि भगवान आत्मा यथाजात (अर्थात्) आनन्दस्वरूप वीतरागस्वरूप हुआ। जैसा स्वरूप था, वैसा हुआ। जिससे ऐसे आत्मा को **अयथाजातरूपधरपने के कारणभूत मोहरागद्वेषादिभावों का अभाव होता ही है;....** देखो! यह मुनि को ऐसा होने पर अयथाजातरूपधरपने का कारण मोह-राग-द्वेष का अभाव (होता है) लो, यह कोई कहे कि मोह-राग-द्वेष का अभाव तो बारहवें (गुणस्थान में) होता है। अब, सुन न! यहाँ तो इन मुनि को अभाव ही है। आहा...हा...! यह किसके लिये है? यह तो मुनिपना लेने की बात है। आ...हा...!

प्रथम तो अपने से, यथोक्तक्रम से यथाजातरूपधर हुए आत्मा के अयथाजात... (अर्थात्) इससे विरुद्ध। देखो! असहजरूप धरनेवाला, खोटा। क्या कारणभूत? **मोहरागद्वेषादिभावों का अभाव होता ही है; और उनके अभाव के कारण,...** मुनि को तो मोह और राग-द्वेष तीनों का अभाव होता है। मिथ्यात्व का और राग-द्वेष का (अभाव होता है)। संसार में समकिती को मिथ्यात्व का अभाव होता है परन्तु राग-द्वेष का अभाव नहीं होता। राग-द्वेष के साथ भले सम्बन्ध नहीं, उनका परिणमन है परन्तु अभी अभाव नहीं हुआ। मुनि हो तो मोह और राग-द्वेष तीनों का अभाव होता है और इसलिए **जो कि उनके सद्भाव में होते हैं....** किसके? मोह और राग-द्वेष के सद्भाव में होते हैं, वह वस्तु उन्हें होती नहीं। यह विशेष कहेंगे। लो!

(**श्रोताः** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. २०७ का शेष **आषाढ़ शुक्ल ५, गुरुवार, १९ जून १९६९**

अब, अनादि संसार से अनभ्यस्त.... देखो! अरे...! अनादि संसार में आत्मभान बिना जैन का द्रव्यलिंग मुनिपना जो धारण किया था, तो मुझे उसके व्यवहार का अभ्यास भी नहीं था, ऐसा कहते हैं। क्योंकि व्यवहार पर है, तो पर है – ऐसा मेरा अभ्यास नहीं था। समझ में आया? मेरा वीतरागभाव है और रागादि पर है – ऐसा मेरा अभ्यास अनादि से कभी था ही नहीं। आहा...हा...! समझ में आया?

ओ...हो...! **अनादि संसार से अनभ्यस्त होने से....** अभ्यास में नहीं आया। कैसे? **अत्यन्त अप्रसिद्ध....** आत्मा, वीतरागभावरूप और व्यवहार, रागरूप, दोनों की अत्यन्त अप्रसिद्धि थी। व्यवहार, व्यवहाररूप; निश्चय, निश्चयरूप – ऐसी अनादि से मेरे में अप्रसिद्धि थी, अत्यन्त अप्रसिद्धि थी। **और अभिनव अभ्यास....** मेरा बिल्कुल नया। (अनादि संसार से अनभ्यस्त यथाजातरूपधरपना अभिनव अभ्यास में प्रवीणता के द्वारा सिद्ध होता है)। यहाँ तो निश्चय की बात कही है। समझ में आया? वास्तव में तो दोनों का अभ्यास मुझे नहीं था – ऐसा कहते हैं। क्यों? कि मैं आनन्द और ज्ञानानन्द मेरा स्वभाव – ऐसा भी अनभ्यस्त रहा और रागादि, निमित्त आदि परवस्तु हैं, पर हैं, ये भी अनभ्यस्त रहा। पर कहा न पहले? पर मेरा कुछ नहीं। समझ में आया? ओ...हो...हो...!

सम्यग्दर्शन बिना द्रव्यलिंग मुनिपना लिया तो वह तो पर का अभ्यास भी नहीं, क्योंकि पर पररूप है – ऐसा अभ्यास मैं कभी किया नहीं। समझ में आया? भगवान आत्मा पूर्णानन्द सच्चिदानन्द प्रभु, उसकी भी पर्याय की प्रगटता अप्रसिद्ध रही और रागादि हेय है, पर है, अजीव है, अचेतन है; मेरे चैतन्य में वह वस्तु है नहीं, उसका भी मेरे अनभ्यास से व्यवहार की भी अप्रसिद्धि रही। अत्यन्त अप्रसिद्धि रही – ऐसा कहते हैं। देखो! समझ में आया? वैसे तो अनन्त बार मुनिपना लिया न! पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण पाले। (परन्तु) एकता थी। पर पृथक् है, मेरी चीज उससे पृथक् है, दोनो की मुझे अप्रसिद्धि थी – ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया?

सम्यग्दर्शन में ही ऐसा अभ्यास होता है। रागादि विकल्प – पुण्य-पाप, दया,

दानादि पर हैं, मेरा वीतराग स्वभाव स्व है – ऐसा अभ्यास अनन्त काल में, स्व का स्वपने, पर का परपने नहीं किया था। समझ में आया ?

मुमुक्षु – यथाजातरूप की अप्रसिद्धि रही।

पूज्य गुरुदेवश्री – हाँ। मेरी अप्रसिद्धि हुई। अप्रसिद्ध था, उसे प्रसिद्ध किया और व्यवहार भी अप्रसिद्ध था। क्या ? कि, व्यवहार पर है – ऐसी प्रसिद्धि नहीं आयी थी। अप्रसिद्धि थी, वह भी प्रसिद्ध हो गया। राग, रागरूप है; व्यवहार, व्यवहाररूप है। मेरे में नहीं और मैं उसमें नहीं। ओ...हो...हो... ! समझ में आया ? लोग पढ़कर विचार करे तो उन्हें कुछ मालूम पड़े। पढ़े नहीं, स्वाध्याय करना नहीं, अपनी दृष्टि से स्वाध्याय करे तो वह तो वही की वही दृष्टि रही। ऊपर कहा था न कि पर मेरा किंचित् नहीं। (उसके) अनुसन्धान की बात करते हैं। आहा...हा... !

मेरा आत्मा ज्ञान और शान्तरस से भरा पड़ा है, उसकी भी अत्यन्त अप्रसिद्धि थी और रागादि, पुण्यादि का विकल्प उठते हैं, वह भी पर है, उसकी भी अपने में अनादि से अप्रसिद्धि थी। समझ में आया ? और नया अभ्यास मुझे हुआ। भाई ! आहा...हा... ! देखो ! व्यवहार का भी नया अभ्यास ? हाँ। परन्तु उस समय भी हमें व्यवहार था कहाँ ? व्यवहार अपना माना था। समझ में आया ? व्यवहार को अपना स्वरूप माना था, अपना माना था। व्यवहार, व्यवहाररूप से अभ्यस्त कहाँ था ? आहा...हा... ! दया, दान, व्रत, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, व्यवहार श्रद्धा, व्यवहार ज्ञान, व्यवहार राग, कषाय की मन्दता (आदि) तो पर हैं। पर का परपने अभ्यास नहीं किया था और अपना वीतरागभाव स्व है – ऐसा अभ्यास भी नहीं किया था। यह अभ्यास कर। अभ्यास (अर्थात्) यह वाणी रटना, (ऐसा) नहीं।

मेरा स्वभाव अनादि से अनभ्यस्त रहा। शुद्ध चिदानन्द प्रभु (की) वीतरागभाव से प्रसिद्धि हो – ऐसा कभी अभ्यास किया नहीं। मैं नया अभ्यास करता हूँ। समझ में आया ? मेरा स्वरूप ज्ञान और आनन्द, ऐसा वीतरागभाव से भरा – ऐसा मेरा नया अभ्यास है; और रागादि पर वस्तु हैं, मेरे में नहीं – ऐसा भी नया अभ्यास है। समझ में आया ?

कौशल्य द्वारा जिसकी सिद्धि उपलब्ध होती है'... देखो ! नये अभ्यास द्वारा,

कौशल्य अर्थात् चतुराई द्वारा जिसकी सिद्धि उपलब्ध होती है। अन्तर विवेक द्वारा, स्व और पर की भिन्नता के विवेक द्वारा। स्व स्व का अभ्यास, पर का परपने, ऐसा अभ्यास। ऐसे **कौशल्य द्वारा....** निपुणता द्वारा **जिसकी सिद्धि उपलब्ध होती है, ऐसे इस यथाजातरूपधरपने के बहिरंग और अन्तरंग दो लिंगों....** हैं। देखो! बहिरंग अट्ठाईस मूलगुण, नग्नपना; अन्तरंग वीतरागभावपना अन्तरंग लिंग है (दोनों) एकसाथ है। समझ में आया? ऐसा नहीं कि बहिरंग पहले और अन्तरंग बाद में। देखो! उसमें तो वह भी निकला कि, व्यवहार पहले निश्चय (बाद में) ऐसा है नहीं। है या नहीं उसमें? दो हुए। अन्तरंग वीतरागपने का भान हुआ, बाह्य का रागादि पर है, ऐसा अन्दर भान हुआ। एकसाथ में (हुआ)। निश्चय हुए बिना पर का व्यवहार है, पररूप व्यवहार, उसका बोध यथार्थ होता नहीं। विपरीत माने वह माने, वह दूसरी (बात है)। हमारा व्यवहार है, हमने कषाय मन्द किया था तो मन्द कषाय से आत्मा की उपलब्धि हुई (– ऐसा मानना) बिल्कुल अज्ञान है। समझ में आया? आहा...हा...!

जो मुनि के योग्य व्यवहार विकल्प है, परन्तु है पर। मेरे में तो नहीं, मेरा नहीं। (और कहे ऐसा) मुनि के योग्य। (किन्तु) भाषा कैसे करे? समझ में आया? आत्मा अपना वीतरागी स्वभाव, जो मुनिपने के योग्य अभ्यन्तर लिंग है, उसको नये अभ्यास द्वारा प्रगट किया और साथ में व्यवहार है, जिसमें वस्त्र-पात्र का निमित्त भी नहीं, और वस्त्र-पात्र का राग है, उसका भी सम्बन्ध नहीं। इसके अलावा (जो) राग बाकी रहा, उसका भी मुझे अभ्यास (अर्थात् वह), पर है ऐसा नया (अभ्यास) हुआ। समझ में आया?

अनादि का तो विकल्प मेरा है अथवा वही मैं हूँ, क्योंकि दृष्टि स्वभाव ऊपर नहीं तो अपनापना नहीं मानना तो पड़े न? तो राग पर अपनापना माना। बस, कुछ कुछ अन्दर राग (की) मन्दता है, हम कुछ करते तो हैं, हमने निवृत्ति तो ली है। समझ में आया? तो हमारी दूसरी प्रवृत्ति तो है नहीं। तो प्रवृत्ति का जो राग है, वह भी अपना माना।

मुमुक्षु – संसार छोड़ा न।

पूज्य गुरुदेवश्री – पहले तो कहा था, संसार किसे कहना? मिथ्यात्व और राग-द्वेष भाव को संसार कहते हैं। स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, शरीर, लक्ष्मी या जेवर को संसार

कहते नहीं। क्योंकि वह तो परवस्तु हैं। संसार की दशा आत्मा में भूल से उत्पन्न हुई दशा है। संसार कोई स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब संसार नहीं। मैंने संसार को छोड़ा है न ? कहाँ छोड़ा है ? मिथ्यात्व और राग-द्वेष छोड़े बिना संसार छूटा कहने में आता नहीं। आहा...हा... !

मुमुक्षु - दोनों प्रकार का परिग्रह त्याग करते हैं - बहिरंग और अन्तरंग।

पूज्य गुरुदेवश्री - अन्तरंग का मिथ्यात्व और राग-द्वेष है। उसका त्याग हुआ तो अन्तरंग का त्याग हुआ और ऐसा हुआ तो निमित्त का त्याग (किया कहने में आता है)। निमित्त तो अभावरूप है ही। लेकिन निमित्त का अभावरूप व्यवहार तब कहने में आता है। ओ...हो...हो... ! समझ में आया ?

बहिरंग और अन्तरंग दो लिंगों का उपदेश करते हैं— देखो ! आचार्य... ओ...हो...हो... ! '**कुन्दकुन्दाचार्यदेव**' निश्चय सहित का व्यवहार (कहते हैं)। व्यवहार में व्यवहार (है), हाँ ! निश्चय में नहीं। आहा...हा... ! मुझे और व्यवहार को कुछ सम्बन्ध नहीं। वह तो पर है। वह पहले आ गया है। सम्बन्ध नहीं। मेरा सम्बन्ध पर के साथ सम्बन्ध नहीं (- ऐसा) अभ्यास पहले कभी नहीं किया था। समझ में आया ? सबेरे आया था न वह ? राग का परिणमन / कर्तृत्व वह तो मिथ्यात्व भाव है। समझ में आया ? राग, चाहे तो शुभ हो, उसरूप मैं परिणमता हूँ, मैं कर्ता हूँ, मैं भोक्ता हूँ, उसरूप मैं हूँ, वह तो मिथ्यात्व भाव है। यह संसार है।

कहते हैं, अभ्यन्तर लिंग वीतरागभाव, बहिरंग विकल्प आदि का नग्नपना आदि, उसका अनभ्यास था। (अब) नया अभ्यास करके वस्तु की मैं प्राप्ति करता हूँ। समझ में आया ? वह कहते हैं, देखो !

जधजादरूवजादं उप्पाडिदकेसमंसुगं सुद्धं।
रहिदं हिंसादीदो अप्पडिकम्मं हवदि लिंगं।।२०५।।
मुच्छारंभविजुत्तं जुत्तं उवओगजोगसुद्धीहिं।
लिंगं ण परावेक्खं अपुणब्भवकारणं जेण्हं।।२०६।। [जुगलं]

गुजराती हिन्दी पीछे है। उसकी टीका। **प्रथम तो अपने से, यथोक्तक्रम से....** यथोक्तक्रम से। विदा ली है, पंचाचार लिया है - ऐसा कहा था न ? यथाक्रम से। ज्ञानाचार

– व्यवहार का विनय आदि का पठन कहा था। वह पहले से कहा था कि तुम मेरे नहीं। मेरे में और तुझ में कुछ सम्बन्ध नहीं। मैं जानता हूँ। शुद्धात्मा का–मेरा नहीं। आहा....हा...! ज्ञानाचार–समय पर पढ़ना, विनय से पढ़ना, निह्नव का (दोष न करे)। जिसके पास पढ़ा हो, उसे गुप्त रखना नहीं – ऐसा जो विकल्प है, कालविनय आदि और समकित का आठ प्रकार का निःशंकादि जो विकल्प है और चारित्र का पंच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति विकल्परूप जो तेरह आचार हैं और तपाचार में जो विकल्प ध्यानादि और अनशन, ऊनोदरी आदि का विकल्प है, सब मेरा / शुद्धात्मा का तू है नहीं। मैं जानता हूँ परन्तु तुम्हारा तब तक हम निमित्तपने आलम्बन लेते हैं (कि) जब तक तुम्हारा अभाव करके पूर्ण वीतराग न हो वहाँ तक। समझ में आया?

अरे...! कैसा वीतराग मार्ग! उसकी शुरुआत और पूर्णता के मध्य में कैसी दशा (होती है)? शुरुआत में दशा कैसी? मध्य में दशा कैसी? और पूर्ण की दशा कैसी? समझ में आया? उससे न्यून, विपरीत, अतिरिक्त – ऐसी तीन स्थिति जहाँ हो, वहाँ तो मिथ्यात्व भाव है। आता है न? 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार'! न्यून नहीं, अधिक नहीं, विपरीत नहीं। कम-अधिक और विपरीत। बाद में इन लोगों को समझाते थे न? फिर मिथ्यात्व आता है न? कम-अधिक और विपरीत। एक अंश भी न्यून मानना – जैसी चीज है, उसे न्यून माननी वह भी मिथ्यात्व भाव है। एक अंश भी अधिक मानना, वह भी मिथ्यात्व है और है उससे विपरीत मानना, वह भी मिथ्यात्व है। आहा...हा...! समझ में आया?

कहते हैं, **यथोक्तक्रम से....** सम्यग्ज्ञान हुआ है, सम्यग्ज्ञान ज्योति प्रगट हुई है, प्रगट की है और विदा ली है। माता-पिता, स्त्री की (विदा ली है) और पंचाचार आदि ग्रहण किये हैं। **यथाजातरूपधर हुए....** (अर्थात्) सहजरूप धारण करनेवाला। कहो, अभी तो आज्ञा माँगते हैं, अभी गुरु देंगे तो भी हुआ ऐसा भाविनैगम की शैली की बात करते हैं। समझ में आया? अभी तो व्रत सुनेगा, वह बात आयेगी न? किन्तु उसके पहले भविष्य में ऐसा होनेवाला है, वह बात पहले से नक्की करते हैं कि यह मैंने लिया, लिया... लिया।

यथाजातरूपधर हुए आत्मा के अयथाजातरूपधरपने के कारणभूत.... कहते हैं कि भगवान आत्मा! मुनिपने में यथाजात वीतरागस्वभाव, यथाख्यात। यथाख्यात चारित्र (आता है) लेकिन यथाजात, यथाख्यात। जैसी आत्मा की शुद्ध वीतराग से प्रसिद्धि है,

ऐसी प्रसिद्धि की। समझ में आया? ऐसे **आत्मा के अयथाजातरूपधरपने के कारणभूत मोहरागद्वेषादिभावों का अभाव होता ही है;....** धर्मी को, साधु को अयथाजातरूपधर ऐसा मोह-मिथ्यात्व और राग-द्वेष। देखो! उसका अभाव होता है। **अभाव होता ही है;....** आ...हा...हा...! संज्वलन के एक कषाय का अंश रहा है, उसकी यहाँ गिनती नहीं। साधुपद के योग्य जो हुआ, यथाजातरूपधर (हुआ), अनुभवसहित में रागरहित होकर ऐसी दशा धारण की तो कहते हैं कि इस दशा से विरुद्ध-अयथाजातरूपधर। उसका कारण मोह और राग-द्वेष (है)। उसका कारण कोई बाहर की चीज - स्त्री, पुत्र, कुटुम्ब, व्यापार (है), ऐसा नहीं कहा है। समझ में आया?

अरे...! स्त्री छोड़ दो, कुटुम्ब छोड़ दो। अभी कुछ लोग (ऐसा) कहते हैं। अरे...! स्त्री ऊपर, कुटुम्ब ऊपर ऐसा द्वेष आ जाये कि प्रेम छूट जाये, तब छोड़ सकते हैं। वह तो द्वेष हुआ। समझ में आया? वह तो ज्ञेय है। परवस्तु कोई इष्ट-अनिष्ट है ही नहीं। स्त्री हो, कुटुम्ब हो, शरीर हो, माता-पिता हो, पुत्र हो, पत्नी हो, सब तो ज्ञान में ज्ञेय हैं। उन पर (ऐसी) बुद्धि - अरुचि आना चाहिए, अरुचि अर्थात् द्वेष। वह तो द्वेष हुआ। जैसा परपदार्थ के प्रति राग करता था तो राग का स्वामी होकर मिथ्यादृष्टि था। अब द्वेष करते हैं (कि) तुम नुकसान करनेवाले हो। मूढ़ है। परवस्तु नुकसान करती है, (ऐसा) कहाँ से आया? पर (चीज) तो पर में रहती है। पर मेरा है और पर को इष्ट-अनिष्ट मानकर जो राग-द्वेष करते थे, वह यथाजातरूप भाव था। वह अपने मुनिपने से विरुद्ध भाव था। मुनिपना से विरुद्ध भाव स्त्री, कुटुम्ब, व्यापार-धन्धा नहीं था, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

कोई कहे कि वकालत करते थे और वकालत छोड़ दी। डॉक्टरपना करते थे, (अब) डॉक्टरपना छोड़ दिया। दुकान का व्यापार करते थे, वह दुकान का व्यापार छोड़ दिया। कौन कहता है छोड़ दिया? तूने उसे कब किया था कि छोड़ दे।

मुमुक्षु - आगे बढ़े।

पूज्य गुरुदेवश्री - मिथ्यात्व में बढ़ते हैं। मैंने छोड़ दिया (- ऐसा माननेवाला) मिथ्यात्व की पुष्टि करता है। आहा...हा...! समझ में आया? क्योंकि वह कोई दोष की चीज नहीं थी। दोष तो तेरे अन्दर में था। देखो न! यहाँ क्या कहते हैं?

अयथाजातरूपधरपने के कारणभूत मोहरागद्वेषादिभावों.... राग-द्वेष, वासना, विषयादि इत्यादि भावों का **अभाव होता ही है....** ओ...हो...! मिथ्यात्व और राग-द्वेष के भाव का, जो यथाजातरूप मुनिपना है, उससे विरुद्ध अयथाजातरूप का कारण जो मोह, राग-द्वेष, उसका मुनि को अभाव होता है। **और उनके अभाव के कारण,....** देखो! ओ...हो...! मिथ्यात्व और राग-द्वेष के अभाव के कारण। **जो कि उनके सद्भाव में होते हैं....** देखो! मोह और राग-द्वेष के सद्भाव में होती हैं, ऐसी पाँच चीज का वर्णन करते हैं। बाहर की, हों! पहले बहिरंग लेते हैं। समझ में आया?

भाई! यह तो पहली चीज यह ली। पाठ में बहिरलिंग है न, उस बहिरलिंग की ही बात करते हैं। ऐसा होता है, उस समय अयथाजातरूप भाव है, उसका अभाव होता है और उसके भाव में यह चीज होती है। वह बहिरलिंग नहीं है। समझ में आया? थोड़ी सूक्ष्म बात है। निश्चय-व्यवहार की सन्धि (की है), फिर भी दोनों भिन्न हैं।

भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ, उसमें गुण-गुणी का भेद विकल्प भी पर है, ऐसा मैंने कभी अभ्यास नहीं किया था। समझ में आया? तो मेरी चीज के अभ्यास में जो विरुद्ध भाव था, यथाजात से विरुद्ध अयथाजात; अयथाजात का कारण मोह और राग-द्वेष। और जब तक मोह, राग-द्वेष है... तो अब पाँच बोल कहते हैं।

(१) वस्त्राभूषण का धारण,.... देखो! वस्त्र और आभूषण का धारण मोहभाव था। समझ में आया? वह धारण चीज बहिरलिंग है, उसमें मोह कारण है। समझ में आया? वस्त्र और आभूषण का धारण मोहभाव है। मिथ्यात्व के कारण मिथ्यात्व और उसके अलावा राग। मिथ्यात्व गया और बाद में वस्त्र, आभूषण रहे, उसका कारण राग है। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि हुआ कि राग, विकल्प और पर बिल्कुल मेरे नहीं। ऐसी दृष्टि होने पर भी, (राग रहता है)। ऐसी दृष्टि नहीं थी, तब तक तो वस्त्र और आभूषण मेरा है - ऐसा मिथ्यात्व भाव सहित का रागभाव था। समझ में आया? परन्तु जब ये मेरा कुछ नहीं, मैं तो ज्ञानानन्द शुद्ध हूँ - ऐसे भाव में मिथ्यात्व तो गया परन्तु जब तक कपड़े, वस्त्र-पात्र का निमित्तपना रहता है, तब तक राग है। राग की मौजूदगी में वस्त्र और आभूषण होते हैं। समझ में आया? राग न हो तो वस्त्र और आभूषण होते नहीं। उसके कारण से होते नहीं लेकिन ऐसा सम्बन्ध बताते हैं। आहा...हा...! ऐसा कभी उसने सुना नहीं।

मुमुक्षु – उसके कारण से होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री – वस्त्र, आभूषण हैं, राग का भाव है / अयथाजातरूपधर ऐसा जो मोह, राग–द्वेष भाव का अभाव नहीं और उसका भाव है तो वस्त्र, आभूषण हैं। देखो! शरीर पर वस्त्र का रहना, परन्तु कहते हैं कि राग का भाव है तो वस्त्र, आभूषण हैं। हैं तो उसके कारण से, राग के कारण से नहीं परन्तु इतना सम्बन्ध वहाँ है। परन्तु राग का अभाव हो तो वस्त्र, आभूषण का अभाव हो, तब उसे निमित्त से अभाव कहा और कहने में आता है। मात्र वस्त्र, आभूषण छूट गया और राग छूटा नहीं तो राग के भाववाले ने उनका भी अभाव किया नहीं। कठिन बात, भाई! पुराने आदमी को (तो ऐसा कठिन लगे) । ये पुराने हैं। कहो, समझ में आया?

पूर्व में स्थानकवासी में लोगों को तो हमारे प्रति तो बहुत प्रेम था न। बहुत प्रेम था। (बाद में) फेरफार हो गया तो कुछ लोगों को (नहीं रुचा) । बाहर का फेरफार हुआ तो (ऐसा लगता था कि) अरे.रे... ! यह तो हमारा वेश गया। मुहपट्टी गई, रजोणा गया, यह मूर्ति आयी और कहे कि पुण्य में धर्म नहीं, व्यवहार में धर्म नहीं। सब बदल गया। भाई! आहा...हा... !

कहते हैं, अरे... ! भगवान आत्मा में जब तक राग, द्वेष और मोह रहते हैं, तब तक मोह के अनुसार परवस्तु मेरी – ऐसा निमित्तपना रहता है; और राग रहता है तो वस्त्र, आभूषण भी उस कारण से रहते हैं। समझ में आया? राग के साथ सम्बन्ध हैं, हाँ! बाहर से छूट गया (और) राग छूटा नहीं तो (वस्त्रादि) छूटा – ऐसा व्यवहार से भी कहते नहीं।

मुमुक्षु – राग छूटा है या नहीं – वह नक्की करने की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री – उसकी बात है।

भगवान आत्मा चैतन्य का भान, सम्यग्दर्शन हुआ, अनुभव हुआ। चैतन्यज्योति ज्ञानज्योति प्रगट हुई। तदुपरान्त स्वरूप में आरूढ़ होकर, राग का अभाव होकर, यथाजातरूप हुआ तो उसका नाम मुनिपना कहते हैं। इस मुनिपने के योग्य से विरुद्ध अयथाजातरूपधर। जैसी वीतरागता है, उससे विरुद्ध–अयथार्थ। अर्थात् क्या? कि, मोह और राग–द्वेष। और मोह, राग–द्वेष की मौजूदगी में वस्त्र और आभूषण थे, सम्बन्ध था, वहाँ राग की मौजूदगी बताते हैं। समझ में आया? जहाँ शरीर पर वस्त्र है तो ऐसा बताते हैं कि अन्दर राग है।

मुमुक्षु – शरीर के प्रति राग है।

पूज्य गुरुदेवश्री – वस्त्र के प्रति भी राग है और शरीर के प्रति भी अन्दर राग है। समझ में आया? चाहे तो समकिती हो। समझ में आया? चाहे तो ग्यारह प्रतिमा धारण करनेवाला हो, सम्यग्दर्शन अनुभव सहित आनन्दकन्द की धारा में बहता हो, परन्तु जब तक वस्त्र का टुकड़ा पड़ा है, तब तक राग का भाव है, ऐसी अस्ति धराते हैं। ऐसा कहते हैं। और वस्त्र छूट गया, इसलिए राग का अभाव हुआ – ऐसा नहीं। यहाँ तो राग का अभाव स्वभाव के आश्रय से हुआ हो तो वस्त्र का अभाव हुआ – ऐसा व्यवहार द्रव्यलिंग कहने में आता है। ऐसी बात सूक्ष्म बहुत, भाई! **वस्त्राभूषण का धारण,....**

(२) सिर और दाढ़ी-मूछों के बालों का रक्षण,.... देखो!

प्रश्न – ऐसी नयी बात कहाँ से ले आये?

समाधान – कहाँ से ले आये? अन्दर है या नहीं? है या नहीं अन्दर? कहाँ से आया यह? यहाँ ऐसा है या नहीं देखो?

प्रश्न – इसका अर्थ कहाँ से लाये?

समाधान – अर्थ आया आत्मा में से। समझ में आया? आ...हा...हा...! सन्तों की कथनी अलौकिक बात! 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव', 'अमृतचन्द्राचार्यदेव' क्या निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध सिद्ध करते हैं!! और व्यवहार लिंग और निश्चय लिंग कैसा होता है, यह कैसे सिद्ध करते हैं!

कहते हैं, अ...हो...! **(२) सिर और दाढ़ी-मूछों के बालों का रक्षण,....** सिर, दाढ़ी और मूछ, उसके बालों को रखूँ, वह राग बताता है, वहाँ राग है। समझ में आया? राग है तो केशालंकार दिखता है – ऐसा कहते हैं। समझ में आया? राग की अस्ति में सिर और दाड़ी, मूछों के बाल रखूँ अर्थात् ऐसे रहे, ठीक रहे, नहीं तो चेहरा खराब दिखता है (– ऐसा भाव होता है)। बात तो सब आती है न! क्योंकि लोंच करने से तो शरीर की स्थिति बराबर नहीं रहती। बाल अच्छे हो। लोंच करने से तो थोड़ा कहीं उगे, कहीं न उगे – ऐसा होता है।

कहते हैं कि जहाँ अनुभवपूर्वक राग का अभावरूप यथजातरूपधर है, वहाँ ऐसा

राग – मूर्च्छा (अर्थात्) शरीर और बाल, दाढ़ी, मूछ के बाल ऐसे हो तो ठीक – ऐसा भाव होता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? बाहर में लोंच आदि करे और रक्षण नहीं करे, इसलिए वहाँ राग गया है – ऐसा नहीं। आहा...हा...! सन्तों का धर्म प्रवाह, अलौकिक प्रवाह (है)! सन्तों ने धर्म को टिका रखा है। मार्ग ऐसा है। फेरफार थोड़ा भी करेगा तो तुझे मिथ्यात्व लगेगा, कहते हैं। मार्ग ऐसा है। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन हुआ, सम्यग्ज्ञान हुआ; इसलिए मुनिपना हो गया (– ऐसा बिल्कुल नहीं)। 'आत्मज्ञान वहाँ मुनिपना' आता है न? लोग मान ले। वहाँ तो ऐसा कहते हैं कि मुनिपना हो, वहाँ आत्मज्ञान होता है। परन्तु वह शब्द ऐसा है। 'आचारांग' में एक शब्द ऐसा है। '....' ऐसा एक शब्द है। जहाँ सम्यग्दर्शन देख, वहाँ मुनिपना देख। जहाँ मुनिपना देख, वहाँ सम्यग्दर्शन देख, ऐसे परस्पर है। '...' वह तो सब व्यवहार की बातें हैं। समझ में आया? वहाँ कहनेवाले को कहाँ व्यवहार-निश्चय की सन्धि का ज्ञान है। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं कि सम्यग्दर्शन होने पर भी, क्षायिक समकित होने पर भी, जब तक दाढ़ी, मूछ और सिर के बाल ठीक रखने का भाव है, तब तक मुनिपना नहीं। यथाजातरूपपना नहीं; यथाजातरूप से विरुद्ध अयथाजातरूप ऐसा रागभाव है – ऐसा कहते हैं। कठिन बातें, भाई! मार्ग ऐसा है। न्याय में समझ सके, ऐसी चीज है। लो। सिर, दाढ़ी, मूछ बराबर रखे। मूछ ठीक हो, दाढ़ी ठीक हो। ठीक की व्याख्या क्या? राग है, भगवान! राग है तो इसे रखने का भाव होता है। राग का जहाँ अभाव हुआ (तो) लोंच में कैसी चीज (हो), शरीर की दरकार है नहीं। आहा...हा...! लोंच की क्रिया जो होती है, वह भी मैं करता हूँ (– ऐसा मानता है), वह तो जड़ की पर्याय का कर्ता, स्वामी हुआ। और लोग देखे (कि) कितनी सहनशक्ति है! समझ में आया? वह तो जड़ की क्रिया है। तुम खींच सकते नहीं, अंगुली ऐसा रख सकते नहीं।

कल तुम्हारे हाथ में आया था न? 'द्रव्यसंग्रह'! (एक ब्रह्मचारी) २००० की साल में यहाँ आये थे, हमारे पास दो महीने रहे। बाद में वह बात आयी थी। कल आया था उस समय याद आया। उस वक्त कहा था, २००० की साल। शास्त्र में दो बात कही है। बाद में यह कहा था कि हस्तादिक की क्रिया का कर्ता आत्मा नहीं। २००० (की साल) पच्चीस साल पहले। मालूम है? उस दिन यह कहा था, 'द्रव्यसंग्रह' की यह भाषा (कही

थी)। टीका में है न! हस्तादि की क्रिया का कर्ता, ऐसे हिलाना, ऐसे करना, ऐसी क्रिया का कर्ता आत्मा है नहीं। समझ में आया? हस्तादिक क्रिया, देखकर चलना, नीचे जीव आ जाये तो पैर ऊपर करना, इस क्रिया का कर्ता आत्मा नहीं? ना। कहा, यह देखो, इसमें आया न? समझ में आया?... क्योंकि जितने प्रमाण में पंचम गुणस्थान में राग जाना चाहिए, दर्शनपूर्वक गया नहीं और प्रतिमा का विकल्प कहाँ से आया? 'ऐसा मार्ग वीतराग का कहा श्री भगवान' समवसरण में मध्य में 'सीमन्धर' भगवान। समझ में आया?

ओ...हो...हो...! निश्चय-व्यवहार का भाव और उसका अभाव कैसा हो - वह बात करते हैं, हाँ! कहते हैं कि जहाँ अपने स्वरूप के अनुभवसहित वीतरागभाव उत्पन्न हुआ हो, वहाँ इस प्रकार का रागभाव होता ही नहीं। समझ में आया? सिर, दाढ़ी, मूछों के बालों का रक्षण (करूँ), ऐसा होता ही नहीं।

(३) सकिंचनत्व,.... राग की अस्ति में होता है। संकिंचन अर्थात् कुछ भी परिग्रह का रखना। थोड़ा भी परिग्रह, इतना थोड़ा, हाँ! बाल का आता है न? तिलतुष! तिलतुष मात्र भी रखना, वह राग को सूचित करता है। तो राग का भाव जहाँ है, वहाँ इतना तिलतुष मात्र भी परिग्रह है। कलम, शीशपेन ऐसी कोई भी चीज (नहीं होती)।

प्रश्न - चश्मा भी?

समाधान - चश्मा परिग्रह है। भगवान! ऐसी चीज है, बापू! मार्ग तो ऐसा है, नाथ! क्या करे? 'अष्टपाहुड' में 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' मुनियों को ऐसे बुलाया है, हे महाजश! हैं तो द्रव्यलिंगी, फिर भी ऐसा कहा। बापू! महाजश प्रभु! तुझे ऐसा शोभा नहीं देता। भाई! तुझे ऐसा नहीं शोभता। तू आत्मा है, प्रभु है। किस पर द्वेष करना? वह आत्मा है। पण्डित भी कहा है, हाँ! व्यवहार से पण्डित, महाजश, यशवन्त ऐसा सम्बोधन कर दिया है। आत्मा अपने स्वरूप का नाथ है न! क्या राग का नाथ है? क्या व्यवहार का नाथ है?

भगवान 'अमृतचन्द्राचार्य' महाराज, श्लोक तो 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' का है। उसका स्पष्टीकरण करते हैं। ऐसा स्पष्टीकरण गाथा में से निकालते हैं, हाँ! ऐसा स्पष्टीकरण न हो तो इतना स्पष्टीकरण समझ में नहीं आता। समझ में आया? आ...हा...!

(३) सकिंचनत्व,.... जहाँ-जहाँ राग थोड़ा भी है, वहाँ-वहाँ अंशमात्र-तिलतुषमात्र

भी परिग्रह दिखने में आता है। समझ में आया? और तिलतुषमात्र भी परिग्रह हो और कहे कि, हमें राग नहीं है....

मुमुक्षु – मूर्च्छा नहीं, राग नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री – वह राग है, राग है वही मूर्च्छा है। समझ में आया?

प्रश्न – तिलतुषमात्र में कितना होता है?

समाधान – इतना।

प्रश्न – दाने के बराबर?

समाधान – दाने के बराबर।

यह चश्मा, लोहे की, पीतल की फ्रेम। क्या कहते हैं? नेतर की रखते थे। हमारे यहाँ रखते थे। नेतर समझते हैं? नेतर नहीं होता? नेतर की कुर्सी नहीं होती? नेतर की पतली होती है। यह कुर्सी आती है। (उसका) टुकड़ा, अंश भी राग को सूचित करता है। (विशेष कहेंगे)..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. २०८ **प्रथम आषाढ़ शुक्ल ६, शुक्रवार, २० जून १९६९**

'प्रवचनसार' २०५ और २०६ (गाथा चलती है)। टीका फिर से (लेते हैं)। साधु जो होता है, सम्यग्दर्शनपूर्वक; ज्ञानज्योति शक्तिरूप थी, (उसका) जहाँ प्रगटरूप अनुभव हुआ, बाद में ज्ञानज्योति को विशेष स्पष्ट विस्तार करने को साधुपद लेते हैं। समझ में आया? उस साधुपद में पहले **अपने से, यथोक्तक्रम से यथाजातरूपधर हुए....** तीन तक आ गया है। संकिचनत्व तक (आ गया है)।

प्रथम तो अपने से, यथोक्तक्रम से यथाजातरूपधर हुए.... जैसा आत्मा का वीतराग स्वभाव है, ऐसा मुनि अन्तर में हुआ। वीतरागदशा (अर्थात्) तीन कषाय का अभाव (रूप) ऐसी अन्तर सम्यग्दर्शन, ज्ञानपूर्वक स्वरूप की वीतरागदशा प्रगट की। और **अयथाजात-रूपधरपने के कारण....** असहज अवास्तविक विकृतरूप जो है, सहजरूप से विरुद्ध उसके **कारणभूत मोहरागद्वेषादिभावों का अभाव होता ही**

है;.... सहज से विरुद्ध असहज, उसके कारणभूत मोह, राग और द्वेष, उन भावों का मुनि को अभाव होता है।

और उनके अभाव के कारण,.... बस, इतना। **जो कि उनके सद्भाव में होते हैं....** उसका अभाव होता है, ऐसा कहना है। क्या कहते हैं? कि जिसको मोह और राग-द्वेष का अभाव है, उसका ये पाँच बोल नहीं होते परन्तु मोह और राग-द्वेष की मौजूदगी है उसमें ये पाँच बोल होते हैं। क्या पाँच? देखो!

(१) वस्त्राभूषण का धारण,... मुनि की दशा की बात है न! वस्त्र और आभूषण एक टुकड़ा भी वस्त्र का रहे, वह सूचित करता है कि वहाँ राग है। मुनि के योग्य राग नहीं, ऐसा राग वहाँ है। समझ में आया? वस्त्र और आभूषण, कोई गहने आदि।

मुमुक्षु - अकेले वस्त्र हो और आभूषण नहीं हो।

पूज्य गुरुदेवश्री - वस्त्र अकेले हो तो भी वही है। यहाँ दो बात साथ में ली हैं। अकेला कहा न, कल कहा था न? एक तिलतुषमात्र भी टुकड़ा मुनि को और मुनिपना माने, मनावे, माने उसको अनुमोदे, (वह) निगोदम् गच्छई। समझ में आया? 'चीभदाना (ककड़ी) के चोर को फाँसी की सजा' (अर्थात् छोटे गुनाह के लिये बड़ी सजा) ऐसा कोई कहते हैं। ऐसा है नहीं। कोई कहते हैं कि, अरे...! इतने में (इतनी सजा)! चीभड़ा समझे? ककड़ी... ककड़ी! 'ककड़ी के चोर न मारिये कटार' (ऐसा) आता है, भजन में आता है। 'ककड़ी के चोर को...' ऐसे इतना थोड़ा टुकड़ा रखे, एक छोटा-सा, तो इतना रखने से भी वहाँ राग सूचित करता है, मुनिपन के योग्य राग है नहीं। मुनिपने के योग्य जो राग है, वह राग नहीं (है), विशेष राग है। समझ में आया?

और वह राग है वहाँ **(२) सिर और दाढ़ी-मूछों के बालों का रक्षण,....** होता है। देखो! थोड़ी सूक्ष्म बात है। और **(३) सकिंचनत्व,....** वहाँ है। संकिचन अर्थात् परिग्रह का कुछ सम्बन्ध है। थोड़ा भी परिग्रह का सम्बन्ध है, यह सकिचनत्व राग की मौजूदगी बताता है। परन्तु परिग्रह का कुछ भी सम्बन्ध दिखे तो वहाँ राग की मौजूदगी है। राग की हयाती (मौजूदगी) है तो वहाँ राग का अभाव नहीं है, तो मुनिपना वहाँ नहीं है। समझ में आया?

प्रश्न – हयाती अर्थात् मौजूदगी ?

समाधान – मौजूदगी, मौजूदगी। समझ में आया ? हयाती (शब्द) हिन्दी में नहीं चलता ? 'हयाती' फारसी भाषा है। हयाती है न हयाती – अस्ति, वह फारसी भाषा है। सद्भाव। अकिंचनत्व (का अर्थ मूल ग्रन्थ में फुटनोट में दिया है), जिसके पास कुछ भी (परिग्रह) हो ऐसा। कुछ भी हो, थोड़ा भी परिग्रह (हो) तो समझे कि उसके पास राग है और राग है तो मुनिपना है नहीं। ऐसी बात है। समझ में आया ? सकिंचनत्व।

इसलिए आचार्य महाराज ने 'अष्टपाहुड' में लिया है कि जिसे आत्मा का भानसहित मुनिपना है, वहाँ नौ-नौ कोटि से मन-वचन-काया से, करना, करवाना, अनुमोदन से वस्त्र का-परिग्रह का त्याग हुआ है। समझ में आया ? तो कोई कहते हैं कि उसमें काया से रहे तो क्या ? मन, वचन से छूट गया। परन्तु काया में रहता है, उतना अन्दर अज्ञान में परिग्रह है अथवा राग का (सद्भाव सूचित करता है)। काया से छूटे तब कहने में आता है कि, काया ऊपर वस्त्र का निमित्त का राग नहीं। और राग है और वस्त्र का टुकड़ा लेने का भाव हुआ, (वहाँ) मुनिपना रहता नहीं।

मुमुक्षु – बहुत बारीक।

पूज्य गुरुदेवश्री – बारीक बात ही है। समझ में आया ? बारीक ही है। ऐसी चीज ली है, वस्तु का स्वरूप ऐसा है। वीतरागता जहाँ चाहिए, उस वीतरागता में ऐसा राग होता ही नहीं। जहाँ मोह और राग-द्वेष (का) अभाव है, वहाँ ऐसा राग होता नहीं। और मोह, राग के अभाव में जब-जब राग-द्वेष का भाव होता है, तब ऐसा सम्बन्ध होता है। समझ में आया ? समझ में आया ? श्वेताम्बर तो कहते हैं कि इतना कपड़ा हो, चौदह प्रकार के उपकरण होता है तो भी मुनिपना है। बिल्कुल तत्त्वदृष्टि से विरुद्ध है। समझ में आया ? वस्तुदृष्टि से विरुद्ध है। वह कोई सम्प्रदाय के पक्ष की बात नहीं।

महामुनि... आ...हा...हा... ! गजब बात है ! चारित्र जिसे हुआ, (वह) परमेश्वरपद में मिला। ग्यारहवीं प्रतिमाधारी, पंचम गुणस्थानवाला क्षुल्लक हो, वह भी पंच परमेष्ठी में नहीं मिलते। नहीं तो एक लंगोटीमात्र रखे और एक कटका / टुकड़ा रखे, इतना है, इसके अलावा वस्त्र क्षुल्लक को (होता नहीं)।

मुमुक्षु – चद्दर भी बताई है।

पूज्य गुरुदेवश्री – टुकड़ा, चद्दर-फद्दर ओढी है, ऐसा नहीं। खण्ड वस्त्र... खण्ड वस्त्र। लंगोटी और खण्ड वस्त्र दो (होते हैं)।

प्रश्न – श्वेताम्बर में वस्त्र को उपकरण में कैसे गर्भित कर दिया?

समाधान – वे तो उपकरण मानते हैं न। बाहर निकले तो पहले उपकरण माना, तब श्वेताम्बर निकला। दृष्टि में विपरीत हुआ। पहले अर्धफलक टुकड़ा लिया था। बाहर में बहुत अकाल पड़ा। अर्धफलक समझे न? आधा टुकड़ा लिया। ऐसे लिया था, पीछे (ऐसा) करते-करते शास्त्र बनाया और वस्त्र स्थापित किया।

यहाँ तो कहते हैं कि क्षुल्लक भी है वह भी लंगोटी और थोड़ा टुकड़ा (रखते हैं)। इसके अलावा विशेष हो तो वहाँ अन्दर तीव्र राग बताता है। ऐसी बात है। और तीव्र राग है तो वहाँ पंचम गुणस्थान है नहीं। और पंचम गुणस्थान नहीं है और उस पदवी को पंचम गुणस्थान के रूप में स्वीकारे या दूसरे माने, मनावे और अनुमोदन करे तो वह भी निगोदम् गच्छई है। ऐसी बात है। समझ में आया? मार्ग की पदवी से कुछ आगे-पीछे करे तो वस्तुस्थिति की मर्यादा का उल्लंघन करते हैं। समझ में आया?

यहाँ यह कहते हैं, देखो! **(३) सकिंचनत्व,....** आ...हा...! उस भूमिका से कुछ भी विशेष सम्बन्ध रहा तो समझना कि वह परिग्रहवंत है, वह निष्परिग्रह हुआ नहीं। समझ में आया? और **(४) सावद्ययोग से युक्तता....** सावद्ययोग जब दिखता है कि ऐसे निमित्त में पाप का परिणाम (दिखता है) तो समझना कि वहाँ राग का भाव है। अशुभ सावद्य का परिणाम दिखता है (कि) सूक्ष्म हिंसा करते हैं। समझ में आया? एकेन्द्रिय जीव है न, पृथ्वी, पानी, अग्नि (आदि) उसको भी थोड़ा छूते हैं, ऐसा छूते हैं तो समझना कि सावद्ययोग है। समझ में आया?

मुमुक्षु – कच्चे पानी को छुए।

पूज्य गुरुदेवश्री – कच्चे पानी को छुए, वनस्पति को छुए। कच्चा छुए, छुते हो उसको कर्ता (माने) और कर्ता अनुमोदे, सब एक चीज है। नव कोटि (टूटे)। समझ में आया? मुनि को सावद्ययोग का भाव होता ही नहीं। वह तो मोह के भाव की मौजूदगी में...

हयाती बोलते हैं ? मौजूदगी में, राग की मौजूदगी में वह भाव-सावद्ययोग है। समझ में आया ? बात तो ऐसी है। यह तो वीतराग का मार्ग है, कोई पक्ष का नहीं। समझ में आया ? ऐसी चीज - निश्चय सहित का राग का अभाव और निमित्त का अभाव, ऐसी चीज तो वीतराग मार्ग में ही होती है। इसके अलावा कहीं, तीन काल में सत्य का अंश कहीं हो, (ऐसा है नहीं)। समझ में आया ?

यहाँ एक साधु-बाबा आया था। 'शिहोर' में बड़ा महोत्सव किया। पन्द्रह-बीस लाख रुपये खर्च किये। लोगों (ने) तो चारों 'शंकराचार्य' उतारे। चार 'शंकराचार्य' है न ? चार गद्दी (हैं)। यहाँ (से) पाँच मील (दूर) 'शिहोर' है न (वहाँ) बड़ा महोत्सव किया था। लाखों आदमी, लाखों आदमी आये थे। वह बाबाजी था, वह एक लाख रुपये का तो मोती का हार पहनते थे। एक लाख रुपये का मोती का हार। छोटी उम्र थी। दुनिया पागल-पागल है। ओ...हो...हो...! महाराज... महाराज... महाराज (करने लगते हैं)। (वह कहता था) हमारे गुरु भी ऐसा करते थे। वह आभूषण तो कहाँ रहा ? परन्तु यहाँ तो वस्त्र का टुकड़ा रखे तो भी राग है और राग है तो वहाँ मुनिपना है नहीं।

मुनिपना नहीं, वहाँ तो नौ ही तत्त्वों की भूल हुई। बताया न ? सबेरे थोड़ा बताया था। समझ में आया ? नौ ही तत्त्वों की भूल है। क्योंकि जितने प्रमाण में वहाँ राग नहीं चाहिए, इतना राग है और उसे आस्रव का यथार्थ ज्ञान नहीं; और उसके प्रमाण में आस्रव का अभाव हो तो इतना राग न हो तो संवर का भी ज्ञान नहीं। संवर का ज्ञान नहीं तो इतने प्रमाण में शुद्धि हो, शुद्धि हो तो राग बहुत मन्द होता है, तो इसका ख्याल नहीं तो निर्जरा का ख्याल नहीं, और निर्जरा का फल मोक्ष, उसकी भी श्रद्धा नहीं। सारे नौ तत्त्व की श्रद्धा में फर्क पड़ता है। आहा...हा...!

'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' ने साधारण बात एकदम ऐसे ही कह दी है, ऐसा नहीं। वस्तु का स्वरूप ऐसा है, भाई ! ऐसा कहते हैं। वस्तु की एक समय की पर्याय में जो इतना राग रहे, वस्त्र आदि लेने का सावद्ययोग भाव रहे तो वहाँ मुनिपना रहता नहीं। आहा...हा...! समझ में आया ? ऐसी पहचान तो उसे पहले करनी पड़े या नहीं ? दूसरा क्या है, वह अपनी श्रद्धा सुधारने के लिये दूसरे की पहचान करनी है। अपने लिये (करनी है)। समझ में आया ? वह (बात) यहाँ आचार्य महाराज पाँच बोल से कहते हैं, देखो !

(४) सावद्ययोग से युक्तता.... वहाँ राग है। उस प्रमाण में राग है तो वहाँ मुनिपने में जो राग का अभाव चाहिए तो उस राग का अभाव है नहीं। **(५) शारीरिक संस्कार का करना,....** शारीरिक सुश्रुषा, शोभा, तेल लगाना आदि करते हैं या नहीं ? क्या कहते हैं ? श्रृंगार। शारीरिक संस्कार। मर्दन करे, तेल लगाये, बादाम का तेल लगाये, मालिश करे... सब अन्दर में राग बताता है। समझ में आया ? अन्यमति में है न ? बहुत (साधु) नग्न रहते हैं परन्तु भस्म लगाते हैं। वह तो वही हुआ। यहाँ कपड़ा छोड़ दिया परन्तु उसे निभा सकते नहीं तो सबेरे एक-दो-तीन प्रकार का तेल रखते हैं, घिसते हैं। सबेरे मर्दन करे। वह वस्त्र का बाप हुआ, वस्त्र से अधिक उपाधि हुई। समझ में आया ? बहुत परिग्रह हुआ तो बहुत ममता हुई। उस भूमिका में ऐसा होता नहीं।

प्रश्न – कभी बीमारी वगैरह होने पर ले तो ?

समाधान – तो भी कुछ नहीं। बीमारी-फिमारी आत्मा को है नहीं। मोतिया आये तो क्या करना ? मोतिया समझे ? मोतियाबिन्दु ! (पाल नहीं सकते तो) संथारा कर दे। हमारी भूमिका से आगे जाते हैं, हमारा निभाव नहीं होता और राग होता है (तो) संथारा (कर दे)। शरीर के साथ क्या है ? आँखें बन्द हो गई, आँख में से रोशनी चली गई, छोटी उम्र हो, मुनिपना है तो छोड़ दे। संथारा (ले)। और न (ले सके) ऐसा लगे तो फिर उतर जाये। तो साधुपना रहता नहीं। समझ में आया ? ऐसी बात शास्त्र में है। उतर जाये, नीचे उतर जाये कि मेरी स्थिति अनुसार (नहीं रह सकता)। 'समन्तभद्र' उतर गये न। 'समन्तभद्र' निकल गये, मुनिपना रहा नहीं। छोड़ दिया। मुझ से निभाव नहीं हो सकता। भोजन बहुत करते हैं तो मुनिपना रहेगा नहीं। इतने राग में मुनिपना होता नहीं। छोड़ दिया।

यहाँ तो कहते हैं कि सावद्ययोग से सहितपना (है), वहाँ रागपना बताता है। कोई भी वनस्पति एकेन्द्रिय जीव, दाने होते हैं न ? उसमें जीव है न। बाजरा, ज्वार, उसका सम्बन्ध हो, उसका सावद्ययोग हो, उसमें पैर रखे... नीम का फूल होता है न ? नीम का फूल। (उसमें) अनन्त जीव हैं। अनन्त जीव ! चलते समय नीम के फूल (ऊपर) चले, सावद्ययोग है, वहाँ तीव्र राग बताता है। समझ में आया ? और वनस्पति है, देखो ! अभी होगी। हरे अंकुर इतने (होंगे)। एक-एक अंकुर नया निकले तो अनन्त जीव हैं और बाद

में प्रत्येक (वनस्पति) हो जाते हैं। उसमें ख्याल न रखे और सावद्यभाव रहे, (वह) राग की मौजूदगी बताता है। समझ में आया? आ...हा...! ऐसी बात है।

प्रश्न – इसका फल क्या?

समाधान – वह तो पहले आ गया। सावद्यफल है, वहाँ राग है; राग है वहाँ मुनिपना नहीं और मुनिपना माने तो फल है निगोद।

मुमुक्षु – .....

पूज्य गुरुदेवश्री – क्या किया है? क्या किया, कुछ किया नहीं। क्या किया है? बिगाड़ा है। अपनी पदवी के योग्य नहीं है और बिगाड़ किया है। समझ में आया? मार्ग तो ऐसा है, भाई! व्रत न लेना, उसका कोई दूसरा दोष नहीं, अव्रत का दोष है ही। लेकिन व्रत लेकर उसका भंग करना वह तो महादोष है, महापाप है। ऐसी बात है, भाई!

मुमुक्षु – वर्तमान में....

पूज्य गुरुदेवश्री – वर्तमान में कोई चलते हैं नहीं। परन्तु मार्ग ऐसा है। वस्तु की स्थिति ऐसी है। समझ में आया?

प्रश्न – मुनि का रहना भी जंगल में?

समाधान – जंगल में ही होता है, वनवास में ही रहते हैं। उनको अन्तर आनन्द... आनन्द, शान्ति में रमते हैं। उन्हें आदमी के पैर का आवाज आये वहाँ (भी) उनको चैन पड़ती नहीं। जंगल में चले जाते हैं। आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव में है, उन्हें मुनि कहते हैं। प्रचुर स्वसंवेदन आया न? भाई! 'समयसार' (की) पाँचवीं गाथा। अमन्द स्वसंवेदन। आहा...हा...! महा आनन्द... आनन्द... आनन्द... राग का कण कहाँ?

(यहाँ कहते हैं), ऐसे राग की मौजूदगी है तो शरीर का संस्कार करना दिखता है। तेल लगाना, मर्दन करना, उस प्रकार का राग तीव्र है और तीव्र राग है, वहाँ मोह का भी भाव (है)। और मान ले कि मेरे में साधुपना है तो मिथ्यात्व का भाव हो गया। **इन (पाँचों) का अभाव होता है;....** लो। मोह का और राग-द्वेष का भाव होता है, वहाँ यह होते हैं। परन्तु मुनि को मोह, राग-द्वेष का अभाव होता है, वहाँ पाँचों का अभाव होता है। समझ में आया? देखो, चरणानुयोग की विधि!

चौथे गुणस्थान में भी इतनी मर्यादा होनी चाहिए। उतने प्रमाण में उसे माँस, मदिरा, मद्य का भाव होता नहीं। अभक्ष्य का भाव होता नहीं। समझ में आया? माँस आदि का भाव है तो चौथे गुणस्थान की दशा सूचित करता नहीं। ऐसी बात है। इसमें वह शब्द है। स्थूलपने नहीं हो, ऐसा शब्द अपनी चर्चा में आया था। 'स्थूल' शब्द (आया था)। स्थूल माँसादि सीधा न हो।.... समझ में आया? आ...हा...!

कुछ लोग कहते हैं, हमारी चर्चा हुई थी कि समकिती हो और माँस खाये तो समकित को क्या बाधा है? क्योंकि त्रस की हिंसा तो करते हैं। वह आता है न? 'गोम्मटसार' में आता है न? भाई! त्रस हिंसा वह तो लड़ाई आदि की त्रस हिंसा है। खाने का माँस है तो (वहाँ चौथा) गुणस्थान होता ही नहीं। ऐसा भाव नहीं होता। समझ में आया? (संवत्) २००१ की साल में (एक विद्वान) आये थे। (उस समय उन्होंने कहा कि), **'णो इंदियेसु विरदो, णो जीवे थावरे तसे वापि'** (गोम्मटसार-जीवकाण्ड, २९)। देखो! उसमें ऐसा आया है। लेकिन वह तो लड़ाई आदि का भाव है, वहाँ त्रस की हिंसा (होती है), वह (विषय) चलता है। खुराक में हिंसा और माँस आदि समकिती को होता ही नहीं। ऐसा है। आ...हा...! लोग अभी शास्त्र का अर्थ करने में भी अपना पक्ष लगा दे। समझे? वह तो अपनी स्वच्छन्दता हुई। वीतरागता क्या कहते हैं? और वीतराग का भाव - अभिप्राय क्या समझाते हैं? उस दृष्टि से उसका भाव न समझे और अपनी दृष्टि से (अर्थ) करे तो सारा उल्टा हो जाता है।

लड़ाई में हजारों लोगों मरते हैं। उसमें समकिती को दोष है, लेकिन दृष्टि में कोई बाधा नहीं है, परन्तु माँस एक टुकड़ा भी खाने का भाव हो (तो) समकित नहीं रहता। समझ में आया?

प्रश्न - डॉक्टरी-दवाई वगैरह?

समाधान - बहुत दवाई तो सीधी माँसवाली होती नहीं। सीधा जो माँस आदि देखता है, वह तो होता ही नहीं। कोई साधारण अतिचार हो, किसी में कोई साधारण हो, वह दूसरी बात है। समझे?

मुमुक्षु - अभी तो ऐसा कोई खाता भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री – अभी तो दवाई बहुत अच्छी (आती है)। अभी हम 'मुम्बई' गये थे न! 'मुम्बई... मुम्बई!' अपने (मुमुक्षु) हैं, डॉक्टर हैं। वे तो घर में बनाते हैं, सब देखा। जैसी विलायती थी ऐसी देशी बनती है। सब देखा। हम आहार करने गये थे न! भाई! वहाँ आपने देखी थी न? (अपने मुमुक्षु) डॉक्टर है। बड़ा नौ लाख, दस लाख, बीस लाख का मकान है। वहाँ भोजन करने गये थे तो वहाँ सब बताया। जैसी विलायती (दवाईयाँ) हैं, ऐसी सब देशी बनती हैं। गोली (वगैरह) सब हमने देखा। हाथ छुये नहीं। ऐसा अभी देखा। बहुत मेहमान भी थे। हम तो आहार करने गये थे। अपने प्रेमी हो गये। 'मलाड' में मन्दिर के शिलान्यस में पन्द्रह हजार दिये और अभी 'मुम्बई' में पंच कल्याणक हुए उसमें भगवान का आहार का दिन था न, आहार का दिन! उसने आहार का (लाभ) लिया (तो) सोलह हजार दिये। सब करते हैं। वहाँ भोजन करने गये थे तो सब बताया था। देखो! महाराज! हम यहाँ देशी (दवाईयाँ) बनाते हैं। कुछ विलायती-फिलायती नहीं। छोटी-बड़ी अनेक प्रकार की गोलियाँ। दम (रोग) पर। श्वास (रोग) पर (दवाई) ऐसे-ऐसे सब बताया। भाई! तुम थे? एक तो ऐसी गोली थी तो हमने कहा, यह तो विलायती गोली है। (तो उन्होंने) कहा, नहीं, नहीं। यहाँ सब देशी बनती हैं। कोई कहता था, उसमें थोड़ा एल्कोहोल (होता है)। एल्कोहोल समझते हैं? नहीं समझते? फिर ऊड़ जाता है। क्या कहते हैं? केला का कहता है, केला... केला क्या कहते हैं? केले का पेड़। केल... केल। केल में से रस निकालते हैं और उसमें थोड़ा होता है। अन्दर थोड़ा होता है फिर ऊड़ जाता है, निकल जाता है, अन्दर में नहीं (रहता)। आहा...हा...!

यहाँ तो कहते हैं कि ऐसा योग हो, ऐसा न हो। वह प्रश्न तो बहुत चलता था न कि भाई! पंचम गुणस्थानवाला स्वयंभूरमण समुद्र में श्रावक है। एक हजार योजन का मच्छ! चार हजार कोस का लम्बा! चार हजार कोस का लम्बा! तो पानी पीते हैं, कहाँ छानकर पीते हैं? वहाँ कपड़ा-बपड़ा है नहीं। मच्छ (भी) पेट में आते हैं, छोटे-छोटे मच्छ भी पेट में आ जाते हैं। लेकिन वह तो (अशक्य) पर्याय, दूसरी कोई चीज है नहीं। समझ में आया? इसलिए ऐसे कोई छूट ले कि, उसे ऐसा होता है तो हमें भी दिक्कत नहीं, ऐसा है नहीं। समझ में आया? हमारे तो बहुत चर्चा चलती है न! देखो भाई! हजार योजन, चार हजार गाँव का मच्छ, पंचम गुणस्थान(वर्ती), अनुभवी और वहाँ से स्वर्ग में जाकर मनुष्य

होकर मोक्ष जानेवाला, ऐसे असंख्य पशु पड़े हैं। स्वयंभूरमण समुद्र में असंख्य पशु पड़े हैं। आत्मा तो आत्मा है या नहीं ? भले पशु हो। आहा...हा... !

कहते हैं कि उसमें पेट में तो पानी बहुत जाता है और पानी में छोटे-मोटे बहुत मच्छ (होते) हैं। अंगुल के असंख्यवें भाग में मच्छ हैं। अंगुल के असंख्य भाग में। पानी में बहुत हैं। परन्तु दूसरा कोई उपाय है नहीं, परन्तु उसका बहाना लेकर कोई दूसरा कहे कि, हमारे भी माँसादि हो तो बाधा नहीं। वह बात है नहीं। समझ में आया ? ऐसा भाव राग की अस्ति में आता है। भूमिका अनुसार राग का अभाव हो, वहाँ ऐसा भाव होता नहीं। रागादि, मोहादि गये तो क्या होता है ? (वह कहते हैं)।

(उस आत्मा को) **(१) जन्मसमय के रूप जैसा रूप,...** माता ने जैसा जन्म दिया ऐसा रूप मुनि का है, भाई! अनादि जिनेश्वर ने यह कहा है। समझ में आया ? बाह्यरूप ऐसा हो जाता है। जन्म समय के रूप जैसा रूप। अनुभव सहित वीतरागदशा हुई, वहाँ तो जन्मा हुआ बालक है, ऐसा बालक (जैसा रूप) है। निर्विकारी! अन्तर में और बाह्य में ऐसा उसका लिंग होता है, उसे मुनिपना कहते हैं।

(२) सिर और दाढ़ी-मूछ के बालों का लोंच,.... राग नहीं है (तो) लोंच की क्रिया राग के अभाव में ऐसी होती है। क्रिया, क्रिया से होती है, हाँ! जीव करता नहीं, वह आगे कहेंगे। भाषा लेंगे। भाषा तो ले न! **सभी क्रियाओं का एक कर्ता दिखलाते हुए....** है न ? २०७ वीं गाथा में है। चरणानुयोग की व्याख्या है न, इसलिए वह बताते हैं। होती है, वह बताते हैं। समझ में आया ?

(३) शुद्धत्व.... देखो भाषा! सकिंचनत्व के सामने शुद्धत्व (लिया)। बिल्कुल शुद्ध। शरीर में वस्त्र का बाल (जितना) टुकड़ा भी नहीं, वस्त्र का बाल जितना भी टुकड़ा नहीं। वही शुद्ध लिंग है। समझ में आया ?

(४) हिंसादिरहितता.... सावद्ययोग के सामने (लिया)। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय की हिंसा बिल्कुल नहीं। पृथ्वी, पानी। जल के एक बिन्दु में असंख्य जीव (होते हैं)। पृथ्वी के टुकड़े में असंख्य जीव! असंख्य जीव! पानी के एक बिन्दु में असंख्य जीव! अग्नि के एक तणखा में... तणखा समझते हैं ? कण, (उसमें) असंख्य जीव! वायु

में असंख्य जीव! वनस्पति में तो निगोद का हो तो एक टुकड़े में अनन्त जीव (और) प्रत्येक हो तो असंख्य जीव! उसकी हिंसा का भाव उन्हें होता नहीं। **हिंसादिरहितता....** पंचेन्द्रिय तो नहीं, परन्तु एकेन्द्रिय की भी हिंसा करना नहीं, कराना नहीं, करते हो तो अनुमोदना नहीं। ऐसी क्रिया मुनि की छट्ठे गुणस्थान में भगवान ने देखी है। ऐसा हो तो मुनिपना है, नहीं तो है नहीं।

(५) अप्रतिकर्मत्व.... संस्कार नहीं। शरीर का संस्कार (अर्थात्) तेल लगाना या मर्दन कराना या ऐसे करना... समझे? ऐसा होता नहीं।

मुमुक्षु – साबुन तो लगाये न!

पूज्य गुरुदेवश्री – साबुन कहाँ, पानी-बानी कहाँ उनके पास है कि साबुन लगाये? साबुन क्या लगाये? कुछ तो गुप्तरूप में तेल रखते हैं। कोई देखे नहीं इसलिए रात को लगवाये, तेल लगवाये।

मुमुक्षु – दिन में भी लगाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री – दिन में भी लगाते हैं? होगा कोई। क्षुल्लक भी बहुत लगाते हैं, सुना है। दो-तीन प्रकार के तेल रखते हैं। वह (वास्तविक) चीज नहीं, भाई! तूने राग का त्याग किया है न! तुझे खबर नहीं (कि) राग का त्याग कितना कहाँ होता है, इसकी तुझे खबर नहीं, तब तो अज्ञान हुआ। अज्ञान में (किया हुआ) त्याग व्यवहार भी सच्चा है नहीं। कठिन मार्ग है, भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर के मार्ग में ऐसा होता है। अन्य में तो स्त्री, पुत्र हो और भगत हो तो भी सन्त और साधु कहने में आता है, देखो! अन्यमत में (ऐसा चलता है)।

हमारे गुजरात में तो वहाँ तक चलता था। हम गुजरात में रहते थे, व्यापार था न। वहाँ एक साधु ऐसा था, (वह कहता था), हमको आत्मा का साक्षात्कार हुआ है। सब झूठ। समझ में आया? अन्यमति वेदान्त में ऐसा है। निरंजन निराकार भगवान का हमको साक्षात्कार हुआ है। बिल्कुल झूठ है। जहाँ तत्त्व की-वस्तु की खबर नहीं, वस्तु में शक्तियाँ क्या, (उसकी) खबर नहीं, उसकी पर्याय कितनी खबर नहीं, पलटन क्या है खबर नहीं, भूमिका के योग्य गुणस्थान में कितनी दशा होती है, संयोग कितना छूट जाता

है, कितना संयोग रहता है, कोई खबर नहीं। (वहाँ) मुनिपना-साधुपना आया कहाँ से? उसे कुछ लोग सन्त कहते हैं। समझ में आया? आता है न वह, 'तुकाराम' और अमुक... 'महाराष्ट्र' में। सन्त-फन्त कैसा? समझ में आया? उसको सन्त माने, वह दृष्टि मिथ्यात्व है। आहा...हा...! यहाँ तो मार्ग ऐसा है, भाई!

हमें तो कुछ साधु ऐसे मिले हैं, वे गुप्तरूप में ऐसे कहे, हमको साक्षात्कार हुआ है। हमको भगवान का साक्षात्कार हुआ है। अरे...! भान नहीं तत्त्व क्या है, छह द्रव्य क्या है, नव तत्त्व क्या है, नव तत्त्व में आत्मा भिन्न क्या है, राग क्या है, सर्वज्ञपद कहाँ से आता है और पूरा कैसे प्राप्त होता है, उसकी साधकदशा की कैसी स्थिति है? (-उसकी) खबर नहीं। कहाँ से आया? सम्यग्दर्शन नहीं तो धर्म कहाँ से आया? कठिन बात है। कुछ लोग कहते हैं, सन्त तुलसी, सन्त कबीर, सन्त ये। ऐसे बहुत शब्द लगाते हैं, बहुत लगाते हैं। सब विपरीत मान्यता है। समझ में आया? मान्यता की खबर नहीं। ऐसी बात है।

(शारीरिक शृंगार-संस्कार का अभाव) होता ही है। इसलिए यह बहिरंग लिंग है। देखो! यह बहिरंग लिंग की बात हुई। अब अन्तर की बात करते हैं।

मुमुक्षु - कोई कहता है कि एक हो तो चले।

पूज्य गुरुदेवश्री - दोनों होते हैं। एक हो तो कहाँ से चले?

मुमुक्षु - पहले बहिरंग हो फिर अंतरंग हो।

पूज्य गुरुदेवश्री - ऐसा पीछे होता ही नहीं। भावलिंग हो तो द्रव्यलिंग ऐसा होता ही है। पीछे-पीछे कहाँ आया? यहाँ तो साथ-साथ लिया है न! उसके लिये तो यह चरणानुयोग (का) अधिकार है। आचार्य ने निश्चय अनुभव की बात कही कि पर्यायदृष्टि, अपनी पर्याय पर दृष्टि रहे तो भी मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा...! राग पर, निमित्त पर दृष्टि रहे वह तो मिथ्यादृष्टि है। एक समय की अवस्था है, उसके अस्तित्व पर दृष्टि रहे तो सारा ध्रुव का अभाव होकर मिथ्यादृष्टि होता है। समझ में आया? पर्यायदृष्टि नहीं, आता है न? 'बनारसीदास' में आता है न? पर्यायबुद्धि नहीं, पर्यायबुद्धि नहीं।

मुमुक्षु - पर्यायमूढ़ा परसमया।

पूज्य गुरुदेवश्री - वह तो ('प्रवचनसार' में आता है)। यह तो 'बनारसीदास' में

(आता है)। वहाँ तो है ही। लेकिन 'बनारसीदास' में (आता है कि) पर्यायबुद्धि नहीं। 'स्वारथ के साचे, परमारथ के साचे, वैण कहे साचे जिनमति है' समझे? उसमें आता है, बहुत आता है।

मुमुक्षु - न यति है न...

पूज्य गुरुदेवश्री - गृहस्थी नहीं। चौथा गुणस्थान लेते हैं न! न गृहस्थ है, न यति है। पंचम गुणस्थान(वर्ती) श्रावक नहीं और मुनि भी नहीं। लेकिन पर्यायबुद्धि नहीं। एक समय की अवस्थाबुद्धि समकितदृष्टि को होती नहीं। सारा अनन्त गुण का पिण्ड भगवान द्रव्यस्वभाव / ध्रुव, दृष्टि का विषय, वह तो रह जाता है। आहा...हा...! समझ में आया? पुण्य का करना, निमित्त का लाना, मिलाना वह तो कहीं दूर रहा परन्तु अपने द्रव्य स्वभाव में एक समय की पर्याय में परिणाम जो है, वह परिणाम व्यवहार है और व्यवहार है, वह वास्तव में वस्तु की दृष्टि से अभूतार्थ है। अभूतार्थ है तो निश्चय सत्यार्थ की अपेक्षा से असत्यार्थ है। उस पर दृष्टि रखना, वह असत्यार्थ मिथ्यादृष्टि है। कठिन बात, भाई!

कहा न कि परिणाम है न-पर्याय, वह सब व्यवहार है। निश्चय तो ध्रुव त्रिकाली (है)। त्रिकाली वस्तु पिण्ड अकेला वह निश्चय (और) पर्याय व्यवहार। उसमें व्यवहार समाया। राग व्यवहार और पर निमित्त, वह दूसरी बात। वह तो असद्भूत व्यवहारनय। यह तो सद्भूत व्यवहार है। केवलज्ञान पर्याय है या नहीं? तो वह सद्भूत व्यवहार है। ऐसे एक समय की पर्याय, कोई भी पर्याय — ज्ञान-दर्शन आदि, एक समय की दृष्टि में पर्याय में अंशबुद्धि (है), क्योंकि परिणाम है वह व्यवहार है, व्यवहार असत्यार्थ है, सत्यार्थ त्रिकाली है, तो त्रिकाल की अपेक्षा असत्यार्थ है और असत्यार्थरूप दृष्टि रहे, वह मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? आहा...हा...!

आत्मा है न! आत्मा (में) दो अंश है न। एक त्रिकाली (और) एक समय की अवस्था-परिणाम। एक समय का परिणाम; भले रागादि नहीं। ज्ञान का क्षयोपशम लो, वीर्य का क्षयोपशम लो या एक समय के विकास का अंश है, यह अंश है, उसको भगवान व्यवहार कहते हैं।

मुमुक्षु - चाहे व्यवहार अशुद्ध हो, अपूर्ण हो।

पूज्य गुरुदेवश्री – यहाँ तो ज्ञान से लिया न। ज्ञान का क्षयोपशम का अंश है, दर्शन का क्षयोपशम (है), दर्शन शब्द से (दर्शन) उपयोग। उसका क्षयोपशम अंश है और राग की मन्दता का क्षयोपशमभाव हो, व्यवहारनय से राग की मन्दता हो, वह द्रव्यनिक्षेप में क्षयोपशम कहते हैं और वीर्य में मन्दता हो और क्षयोपशम हो, इतनी पर्याय हमारी है और वहाँ दृष्टि परिणाम पर रहती है तो सम्पूर्ण परिणामी द्रव्य (का) अनादर हो जाता है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

मुमुक्षु – ज्ञानपना, दर्शनपना हमारा है, इसमें कहाँ बाधा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री – हमारा क्या ? उसे पर्याय कहा। पर्याय है, वह एक समय की अवस्था है। त्रिकाली भगवान तो महाप्रभु अनन्त सिद्ध की पर्याय जिसके पेट में पड़ी है, उसका तो आदर हुआ नहीं।

यहाँ तो ऐसा कहना है कि ऐसी दृष्टि का विषय बताना हो, उस समय पर्याय में विवेक (कि) कितना राग है और कितना सम्बन्ध है, वह भी यहाँ बताते हैं, भाई ! ऐसे बताना है। ऐ..ई... ! एक ओर यह कि, एक समय की पर्याय ज्ञान का, दर्शन का, वीर्य का, राग की मन्दता द्रव्यनिक्षेप से उसे क्षयोपशम कहने में आता है। राग मन्द हुआ न, तो उसे द्रव्यनिक्षेप से क्षयोपशम कहते हैं। वह सब एक समय की पर्याय पर दृष्टि है और परिणाम में रमता है, (वह) मिथ्यादृष्टि है। ऐसी दृष्टि का विषय चले, तब ऐसा कहे। उसके सहित अब उसकी पर्याय में राग का अभाव गुणस्थान (अनुसार) कितना होता है और जितने राग का अभाव होता है, इतना उस प्रकार का निमित्त सम्बन्ध भी छूट जाता है। वह बात कहते हैं। आहा...हा... ! समझ में आया ?

पर्याय का ज्ञान-व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान (है), जानना तो होगा या नहीं ? कि, इस गुणस्थान की पर्याय में इतना ही है। सम्यग्दर्शन हुआ, इसलिए चारित्र हो गया, मुनिपना आ गया – ऐसा है नहीं। और नग्नपना ले लिया, इसलिए मुनिपना आ गया – ऐसा है नहीं। समझ में आया ? आहा...हा... !

कहते हैं, **और फिर, आत्मा के यथाजातरूपधरपने से दूर किया गया...** है। जहाँ यथार्थ वीतरागता हुई है, वहाँ अयथाजातरूपधर (अर्थात्) जो असहजरूप है,

विकृत (है उसे) दूर किया है। **उसके कारणभूत मोहरागद्वेषादिभावों का अभाव होने से ही जो उनके सद्भाव में होते हैं ऐसे जो....** अब अन्तर की बात कही। (पहले) बाहर की-द्रव्यलिंग की थी। अब, भाव की (बात करते हैं)।

(१) ममत्व के और कर्मप्रक्रम के परिणाम,... समझ में आया? उसका अभाव होता है। ममत्व और कर्मप्रक्रम अर्थात् कोई भी काम सिर पर लेना - ऐसा मुनि को होता नहीं। सिर पर लेना अर्थात् क्या? मैं इतने पुस्तक बनाऊँगा, वह जिम्मेदारी है। वह भाव मुनि को होता नहीं। बन जाओ तो बन जाओ। आ....हा...हा... ! समझ में आया?

प्रश्न - ये ग्रन्थ कैसे बने?

समाधान - ये बन गये, ऐसे ही बन गये। सिर पर काम नहीं लिया था। ऐसे विकल्प आया, पाँच गाथा हो गई, वहाँ पड़ी रहे। चले गये। और गृहस्थ था, उसने लिया। पड़ा था वह, ले लिया, इकट्ठा करके बनाया, ऐसे बना है। ऐसी बात है, भाई! वीतरागी मुनि को, ऐसा मैं बनाऊँ, मैं रखूँ, फिर दूसरा ले जाये, (ऐसे) कोई विकल्प है हीं नहीं - ऐसा कहते हैं। आ...हा...हा... ! मुझे ४१५ श्लोक बनाने हैं, वह बराबर न बने, तब तक पूरा करना है - ऐसा काम का बोझा (लेते नहीं)। बोझा क्या कहते हैं? समझ में आया? देखो, नीचे है या नहीं? क्रम-प्रक्रम (अर्थात्) काम को अपने ऊपर लेना; काम में युक्त होना, काम की व्यवस्था। (मूल ग्रन्थ में) नीचे (फुटनोट) है। ऐसा मुनि को होता ही नहीं। आहा...हा... ! पाठशाला बनाऊँगा, ऐसे विद्यार्थी को हमेशा मैं एक घण्टा पढ़ाऊँगा, यह बात मुनि को नहीं होती। समझ में आया? यह अलौकिक बात है!

मुमुक्षु - ......

पूज्य गुरुदेवश्री - कोई जाता है तो पढ़ाते हैं, उसमें क्या? सिर पर बोझा नहीं (रखते) कि कल हम आयेंगे और तुमको (शिक्षा) देंगे, ऐसा बिल्कुल है नहीं। ऐसी बात है।

मुमुक्षु - शिष्य को दे न।

पूज्य गुरुदेवश्री - शिष्य आनेवाला हो, राग आया हो तो (विकल्प) चलता है तो चलता है लेकिन कल मैं तुमको इतना दूँगा - ऐसा काम का बोझा मुनि को होता नहीं।

मुमुक्षु - उपाध्याय की पदवी जो है....

पूज्य गुरुदेवश्री – वह तो विकल्प आता है और समझाते हैं। उस काल में हो तो हो, इतना सिर पर बोझा है नहीं।

मुमुक्षु – जिम्मेदारी की बात नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री – जिम्मेदारी नहीं। वीतराग दशा किसे कहते हैं! जिम्मेदारी वीतरागभाव की है। आपको इतना उपदेश प्रतिदिन देना पड़ेगा। आप यहाँ रहते हो तो देना पड़ेगा। कुछ लोग कहते हैं न कि तुम्हारा आहार लेते हैं तो इतना तो उपदेश देना है न, देना पड़े न। सब विपरीत भाव है। क्या देना है ? लेते कौन ? देते कौन ? समझ में आया ?

मुमुक्षु – समाज को देना चाहिए ?

पूज्य गुरुदेवश्री – कौन समाज ? समाज का परिग्रह है कहाँ ? समाज समाज में रहा। हमें क्या सम्बन्ध है ? ऐसी चीज है। पर्याय की भूमिका में जितना राग न हो, इतने में राग विशेष मान ले तो पर्यायबुद्धि में मिथ्यादृष्टि हो जाता है – ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! ऐसा कहते हैं, देखो !

(१) ममत्व के और कर्मप्रक्रम के परिणाम,.... उसका अभाव है। मेरा यह समाज है, यह मेरा श्रावक है – ऐसा है नहीं। और मुझे इतना काम तो करना पड़े (ऐसा है नहीं)। समझे ? मेरे निमित्त से, गृहस्थाश्रम में था, तब पाठशाला बनी, अब मुनि हुआ तो पाठशाला की थोड़ी सम्भाल तो मुझे करनी ही पड़े।

मुमुक्षु – मन्दिर तो बनाना पड़े न !

पूज्य गुरुदेवश्री – मन्दिर बनाना क्या, पाठशाला की सम्भाल करना, यह मुनि को होता ही नहीं – ऐसा यहाँ आचार्य कहते हैं। दृष्टि का विषय सुने तो अच्छा लग परन्तु इस पर्याय का विवेक कितना है और कितने राग का अभाव है तो वहाँ राग के अभाव में कितने कार्य नहीं है – यह बताते हैं। आहा...हा... !

मुमुक्षु – 'धवल', 'महाधवल' के ताड़पत्र के ऊपर काँटों से लिखा।

पूज्य गुरुदेवश्री – वह सहज ही बन गया तो बन गया, न बने तो क्या है ? ऐसी बात है।

मुमुक्षु – रह गये।

पूज्य गुरुदेवश्री – कितने ही काम रह गये, क्या करे? वह तो विकल्प आया। हो गया तो हो गया। परमाणु की पर्याय (हो गई)। लेकिन इतना तुमको करना पड़ेगा, इतने लड़को को पढ़ाना पड़ेगा, इतना पुस्तक तो लिखना ही पड़ेगा। अरे...! ये सब तो बोझा है। आहा...हा...! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, भाई! ऐसी चीज है। परमेश्वर के पन्थ में ऐसी पर्याय की शुद्धता होती है, वहाँ ऐसे काम का बोझा सिर पर होता नहीं। आहा...हा...!

मुमुक्षु – दो मुनिराज को दक्षिण से बुलाये थे।

पूज्य गुरुदेवश्री – वह तो आया तो आया, विकल्प आया तो क्या? आया फिर भी पहले तीन दिन तो सुना नहीं। वन्दन किया, इतना हुआ, बस। फिर तीन दिन के बाद (कहा), महाराज!... तीन दिन तक तो सामने देखा नहीं। विकल्प नहीं आया। वे मुनि, सच्चे मुनि हैं, बापू! भावलिंगी साधु किसको कहते हैं! पीछे क्रमसर ऐसा हुआ। सिर पर बोझा कुछ नहीं। विषय सूक्ष्म है, भाई! आ...हा...!

मुमुक्षु – दोनों ओर की बराबर की है।

पूज्य गुरुदेवश्री – हाँ, दोनों ओर। बहिरलिंग में ऐसा न हो, अन्तर में ऐसा न हो, तब वहाँ मुनिपना रह सकता है। ऐसी चीज भगवान तो कहते हैं। ऐसा कहते हैं। इतना स्पष्टीकरण 'अमृतचन्द्राचार्यदेव' कहते हैं।

ममत्व के और कर्मप्रक्रम.... प्रक्रम अर्थात् प्र=विशेष कार्य। मुझे इतना तो करना पड़े। दो श्लोक तो आपको बनाने पड़ेंगे। समझ में आया? और दो श्लोक तो सबेरे हमें सुनाना पड़े, हम कण्ठस्थ कर ले, पीछे हम बनायेंगे। ऐसे कोई काम मुनि के सिर पर है नहीं। आहा...हा...! 'आदिपुराण' देखो! बहुत शास्त्र हो गये। 'समयसार', 'प्रवचनसार' हो गये। हो तो हो। टीका हो गई। टीका करनेवाले कहते हैं कि हमारे सिर पर बोझा कुछ नहीं। हम टीका करेंगे ही, शुरु किया तो पूरा हमें करना ही पड़े, (ऐसा है नहीं)।

मुमुक्षु – लिखा तो है कि मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि यह टीका करूँगा।

पूज्य गुरुदेवश्री – कहूँगा। कहूँगा – ऐसा विकल्प है, बस इतना। 'वोच्छामि'

कहूँगा। हुआ तो हुआ। इतना पूरा करेगा ही (ऐसा नहीं है)। सूक्ष्म बात है, भाई! वीतरागभावी मुनि हैं। आ...हा...हा...! समझ में आया? आचार्य ने 'कर्मप्रक्रम' शब्द रखकर तो बड़ा काम (किया है)। सिर पर कोई काम है नहीं। महाराज! तुम यहाँ रहो तो थोड़ा ऐसा उपदेश दो (कि) पाठशाला के लिये, विद्वानों के लिये पैसे इकट्ठे हो जाये। बिल्कुल ऐसा (होता नहीं)। समझ में आया?

'अमृतचन्द्राचार्यदेव' वह लेते हैं, **ममत्व के और कर्मप्रक्रम के परिणाम,....** का अभाव है। **(२) शुभाशुभ उपरक्त उपयोग और तत्पूर्वक तथाविध योग की अशुद्धि से युक्तता....** उसका भी अभाव है। देखो! मुनि को शुभाशुभ उपरक्त (अर्थात्) मैल। ऐसा **उपयोग और तत्पूर्वक तथाविध योग....** उस प्रकार का योग, अशुद्धता। ऐसी अशुद्धता से सहितपना उनको होता नहीं। **(३) परद्रव्य से सापेक्षता;....** होता नहीं। देखो! परद्रव्य की अपेक्षा ही नहीं। (सापेक्षता का) अभाव होता है। परद्रव्य की अपेक्षा क्या?

मुमुक्षु – पिच्छी, कमण्डल तो होते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री – वह हो तो हो। अन्दर में अपेक्षा नहीं। ऐसी बात है, भाई! आहा...हा...! व्यवहारनय के कथन में ऐसा आता है। अपेक्षा कुछ है नहीं; निरपेक्षपना है, ऐसी चीज है। समझ में आया?

(३) परद्रव्य से सापेक्षता; इस (तीनों) का अभाव होता है;.... लो। तीनों का अभाव होता है। क्योंकि मोह और राग-द्वेष गये हैं तो तीन भाव उसके पास है नहीं। भाव में नहीं है। द्रव्यलिंग में नहीं था, यहाँ भाव में नहीं है। **इसलिए (उस आत्मा के)....** अब उसका स्पष्टीकरण करते हैं।

(१) मूर्छा और आरम्भ से रहितता,.... देखो! मूर्च्छा और ममत्व से रहित बताना है न! ममत्व का अर्थ मूर्च्छा। और कर्मप्रक्रम का आरम्भ (अर्थात्) ऐसा करना, उससे रहितता। मूर्च्छा और आरम्भ से रहितता है। मूर्च्छा और आरम्भ से रहितता है, और **(२) उपयोग और योग की शुद्धि से युक्तता....** है। सारा शुद्ध उपयोग और योग-समाधि। योग अर्थात् समाधि, हाँ! शान्ति। इस शुद्धि से मुनि सहित हैं। निर्विकल्प समाधि, निर्विकल्प उपयोग और निर्विकल्प योग। कम्पन के योग की यहाँ बात नहीं। स्वरूप के

साथ निर्विकल्प शान्ति, समाधि से मुनि सहित हैं। आहा...हा...! (लोग) शान्ति से चरणानुयोग का भी स्वाध्याय नहीं करते और अपनी दृष्टि रखकर पढ़े और निकाले अपनी दृष्टि का पोषण करने को। आहा...हा...! ऐसे नहीं (चलता)।

मुनि **(२) उपयोग और योग की शुद्धि से युक्तता तथा (३) पर की अपेक्षा से रहितता होती ही है।** लो। पर की अपेक्षा से रहित ही होता है। विकल्प आया तो विकल्प की भी अपेक्षा नहीं कि इतना विकल्प आना, लाना है, इतनी भी अपेक्षा है नहीं। ओ...हो...! बहुत सूक्ष्म बात, भाई! समझ में आया? **पर की अपेक्षा से रहितता होती ही है। इसलिए यह अन्तरंग लिंग है।** यह अन्तरंग का लिंग है। पहले बहिरंग लिंग कहा था। दोनों साथ होते हैं, लो। आहा....हा...!

वास्तविक पदार्थ की स्थिति में एक पर्याय में राग का अभाव और उसके साथ निमित्त का कितना अभाव (होता है), यह अलौकिक चीज है। यह जैनदर्शन के अलावा है नहीं। उसमें भी दिगम्बर दर्शन (मैं है)। दिगम्बर दर्शन अर्थात् वीतराग दर्शन। इसके अलावा ऐसी स्थिति का वर्णन कहीं हो सकता नहीं। अन्यमति में तो है ही नहीं और जैन के दूसरे फिरके में (भी) ऐसी बात है नहीं। समझ में आया? दूसरे में कुछ सत्य का अंश है, बिल्कुल बात झूठ है। समझ में आया? सब को अच्छा लगे, ऐसी यह बात है नहीं। समन्वय करे न, समन्वय! तेरे में भी है, हमारे में भी है। तुम्हारे में भी है, (ऐसा कहे)। क्या धूल है? समझ में आया? समन्वय करे तो सबको अच्छा लगे। झूठा समन्वय है। मिथ्यात्व से तेरा नाश हो जाता है। आहा...हा...!

क्या 'अमृतचन्द्राचार्यदेव'! ओ...हो...हो...! व्यवहार की टीका भी कैसी की है!! **यह अन्तरंग लिंग है।** २०५-२०६ (गाथा पूरी) हुई।

गाथा - २०७

अथैतदुभयलिङ्गमादायैतदेतत्कृत्वा च श्रमणो भवतीति भवतिक्रियायां बन्धुवर्गप्रच्छनक्रियादि-शेषसकलक्रियाणां चैककर्तृकत्वमुद्योतयन्नियता श्रामण्यप्रतिपत्तिर्भवतीत्युपदिशति-

आदाय तं पि लिंगं गुरुणा परमेण तं णमंसित्ता।
सोच्चा सवदं किरियं उवट्ठिदो होदि सो समणो।।२०७।।

आदाय तदपि लिङ्गं गुरुणा परमेण तं नमस्कृत्य।
श्रुत्वा सव्रतां क्रियामुपस्थितो भवति स श्रमणः।।२०७।।

ततोऽपि श्रमणो भवितुमिच्छन् लिङ्गद्वैतमादत्ते, गुरुं नमस्यति, व्रतक्रिये श्रृणोति, अथोपतिष्ठते; उपस्थितश्च पर्याप्तश्रामण्यसामग्रीकः श्रमणो भवति। तथाहि-तत इदं यथाजातरूपधरत्वस्य गमकं बहिरङ्गमन्तरङ्गमपि लिङ्गं प्रथममेव गुरुणा परमेणार्हद्भट्टारकेण तदात्वे च दीक्षाचार्येण तदादानविधानप्रतिपादकत्वेन व्यवहारतो दीयमानत्वाद्दत्तमादानक्रियया सम्भाव्य तन्मयो भवति। ततो भाव्यभावकभावप्रवृत्तेतरेतरसंवलनप्रत्यस्तमितस्वपरविभागत्वेन दत्तसर्वस्वमूलोत्तरपरमगुरु-नमस्क्रियया सम्भाव्य भावस्तववन्दनामयो भवति। ततः सर्वसावद्ययोगप्रत्याख्यानलक्षणैक-महाव्रतश्रवणात्मना श्रुतज्ञानेन समये भवन्तमात्मानं जानन् सामायिकमधिरोहति। ततः प्रतिक्रमणालोचनप्रत्याख्यानलक्षणक्रियाश्रवणात्मना श्रुतज्ञानेन त्रैकालिककर्मभ्यो विविच्यमानमात्मानं जानन्नतीतप्रत्युत्पन्नानुपस्थितकायवाङ्मनः कर्मविविक्तत्वमधिरोहति। ततः समस्तावद्यकर्मायतनं कायमुत्सृज्य यथाजातरूपं स्वरूपमेकमेकाग्रेणालम्ब्य व्यवतिष्ठमान उपस्थितो भवति। उपस्थितो भवति। उपस्थितस्तु सर्वत्र समदृष्टित्वात् साक्षाच्छ्रमणो भवति।।२०७।।

अथैतलिङ्गद्वैतमादाय पूर्वं भाविनैगमनयेन यदुक्तं पञ्चाचारस्वरूपं तदिदानीं स्वीकृत्य तदाधारेणोपस्थितः स्वस्थो भूत्वा श्रमणो भवतीत्याख्याति-**आदाय तं पि लिंगं** आदाय गृहीत्वा तत्पूर्वोक्तं लिङ्गद्वयमपि। कथंभूतम्। दत्तमिति क्रियाध्याहारः। केन दत्तम्। **गुरुणा परमेण** दिव्यध्वनिकाले परमागमोपदेशरूपेणार्हद्भट्टारकेण, दीक्षाकाले तु दीक्षागुरुणा। लिङ्गग्रहणानन्तरं **तं णमंसित्ता** तं गुरुं

नमस्कृत्य, **सोच्चा** तदनन्तरं श्रुत्वा। काम्। **किरियं** क्रियां बृहतप्रतिक्रमणाम्। किंविशिष्टम्। **सवदं** सव्रतां व्रतारोपणसहिताम्। **उवट्ठिदो** ततश्चोपस्थितः स्वस्थः सन् **होदि सो समणो** स पूर्वोक्तस्तपोधन इदानीं श्रमणो भवतीति। इतो विस्तरः- पूर्वोक्तलिङ्गद्वयग्रहणानन्तरं पूर्वसूत्रोक्तपञ्चाचारमाश्रयति, ततश्चानन्तज्ञानादिगुणस्मरणरूपेण भावनमस्कारेण तथैव तद्गुणप्रतिपादकवचनरूपेण द्रव्यनमस्कारेण च गुरुं नमस्कारोति। ततः परं समस्त-शुभाशुभपरिणामनिवृत्तिरूपं स्वस्वरूपे निश्चलावस्थानं परमसामायिकव्रतमारोहति स्वीकरोति। मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च जगत्त्रये कालत्रयेऽपि समस्तशुभाशुभकर्मभ्यो भिन्ना निजशुद्धात्मपरिणतिलक्षणा या तु क्रिया सा निश्चयेन बृहत्प्रतिक्रमणा भण्यते। व्रतारोपणानन्तरं तां च श्रृणोति। ततो निर्विकल्पसमाधिबलेन कायमुत्सृज्योपस्थितो भवति। ततश्चैवं परिपूर्णश्रमणसामग्र्यां सत्यां परिपूर्णश्रमणो भवतीत्यर्थः।।२०७।।

अब (श्रामण्यार्थी) इन दोनों लिंगों को ग्रहण करके और इतना-इतना करके श्रमण होता है - इस प्रकार भवतिक्रिया[१] में, बंधुवर्ग से विदा लेनेरूप क्रिया से लेकर शेष सभी क्रियाओं का एक कर्ता दिखलाते हुए, इतने से (अर्थात् इतना करने से) श्रामण्य की प्राप्ति होती है, ऐसा उपदेश करते हैं—

कर परमगुरु से लिंग द्वय का, ग्रहण उनको नमन कर।
सुनकर व्रतों को आत्म में, होता सुस्थित श्रमण वह॥२०७॥

अन्वयार्थ - [**परमेण गुरुणा**] परम गुरु के द्वारा प्रदत्त [**तदपि लिंगम्**] उन दोनों लिंगों को [**आदाय**] ग्रहण करके, [**तं नमस्कृत्य**] उन्हें नमस्कार करके [**सव्रतां क्रियां श्रुत्वा**] व्रत सहित क्रिया को सुनकर [**उपस्थितः**] उपस्थित (आत्मा के समीप स्थित) होता हुआ [**सः**] वह [**श्रमणः भवति**] श्रमण होता है।

टीका - तत्पश्चात् श्रमण होने का इच्छुक दोनों लिंगों को ग्रहण करता है, गुरु को नमस्कार करता है, व्रत तथा क्रिया को सुनता है और उपस्थित होता है; उपस्थित होता हुआ श्रामण्य की सामग्री पर्याप्त (परिपूर्ण) होने से श्रमण होता है। वह इस प्रकार —

परम गुरु — प्रथम ही अरहन्तभट्टारक और उस समय (दीक्षाकाल में) दीक्षाचार्य — इस यथाजातरूपधरत्व के सूचक बहिरंग तथा अन्तरंग लिंग के ग्रहण की-विधि के प्रतिपादक होने से, व्यवहार से उस लिंग के देनेवाले हैं। इस प्रकार उनके द्वारा दिये गये

---

१. भवतिक्रिया=होनेरूप क्रिया।

उन लिंगों को ग्रहण किया के द्वारा संभावित-सम्मानित करके (श्रामण्यार्थी) तन्मय होता है। और फिर जिन्होंने सर्वस्व दिया है ऐसे मूल और उत्तर परमगुरु[१] को, भाव्यभावकता[२] के कारण प्रवर्तित इतरेतरमिलन* के कारण जिसमें से स्व-पर का विभाग अस्त हो गया है ऐसी नमस्कार क्रिया के द्वारा संभावित करके-सम्मानित करके भावस्तुति-वन्दनामय[३] होता है। पश्चात् सर्व सावद्ययोग के प्रत्याख्यानस्वरूप एक महाव्रत को सुननेरूप श्रुतज्ञान के द्वारा समय में परिणमित होते हुए आत्मा को जानता हुआ सामायिक[४] में आरूढ़ होता है। पश्चात् प्रतिक्रमण-आलोचना-प्रत्याख्यान-स्वरूप[५] क्रिया को सुननेरूप श्रुतज्ञान के द्वारा त्रैकालिक कर्मों से विविक्त (भिन्न) किये जानेवाले आत्मा को जानता हुआ, अतीत-अनागत-वर्तमान, मन-वचन-कायसंबंधी कर्मों से विविक्तता (भिन्नता) में आरूढ़ होता है। पश्चात् समस्त सावद्यकर्मों के आयतनभूत[६] काय का उत्सर्ग (उपेक्षा) करके यथाजातरूपवाले स्वरूप को, एक को एकाग्रतया अवलम्बित करके रहता हुआ, उपस्थित होता है। और उपस्थित होता हुआ, सर्वत्र समदृष्टिपने के कारण साक्षात् श्रमण होता है ॥२०७॥

प्रवचन नं. २०८ का शेष **आषाढ़ शुक्ल ६, शुक्रवार, २० जून १९६९**

अब (श्रामण्यार्थी).... साधुपना, साधकपना, अनुभवपना, वीतरागपना, उसका अर्थी **इन दोनों लिंगों को ग्रहण करके....** देखो, दोनों लिंगों को ग्रहण किया। व्यवहार भी ग्रहण किया, लिंग ग्रहण किया। देखो!

---

१. मूल परमगुरु अरहन्तदेव तथा उत्तर परमगुरु दीक्षाचार्य के प्रति अत्यन्त आराध्यभाव के कारण आराध्य परमगुरु और आराधक ऐसे निज का भेद अस्त हो जाता है।

२. भाव्य और भावक के अर्थ के लिए देखो पृष्ठ ८ का पाद टिप्पण।

* इसका स्पष्टीकरण प्रथम की ५ गाथाओं के टिप्पण पत्र में देखिये।

३. भावस्तुतिवन्दनामय = भावस्तुतिमय और भाववन्दनामय।

४. समय में (आत्मद्रव्य में, निजद्रव्यस्वभाव में) परिणमित होना सो सामायिक है।

५. अतीत-वर्तमान-अनागत, काय-वचन-मन सम्बन्धी कर्मों से भिन्न निजशुद्धात्मपरिणति वह प्रतिक्रमण-आलोचना-प्रत्याख्यानरूप क्रिया है।

६. आयतन = स्थान, निवास।

प्रश्न – पहला क्या लिया ?

समाधान – पहला क्या ? दोनों लिंगों को ग्रहण किया – ऐसा लिखा है।

मुमुक्षु – द्रव्यलिंग पहले लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री – लिखा है तो क्या (हुआ) ? दोनों लिंगों को एकसाथ ग्रहण किया। यह चरणानुयोग है न। ग्रहण क्या करना है ? लिंग को ग्रहण करना है ? और पर्याय में उसको ग्रहण करना है ? जानना है। जानना होता है न ! समझ में आया ? यहाँ व्यवहार से ग्रहण करना – ऐसा कहने में आया।

दोनों लिंगों को ग्रहण करके.... जो पहले पेरेग्राफ में यथाजात कहा, दूसरे में जो यथाजात भाव कहा (इन) दोनों को ग्रहण करके। **और इतना-इतना करके श्रमण होता है – इस प्रकार भवतिक्रिया में,....** (अर्थात्) होनेरूप क्रिया। **बंधुवर्ग से विदा....** यह क्रिया भी पहले ली न! **विदा लेनेरूप क्रिया से लेकर शेष सभी क्रियाओं का एक कर्ता दिखलाते हुए,....** उस जाति का भाव है। परिणमन है तो उस प्रकार का कर्ता दिखे। **इतने से (अर्थात् इतना करने से) श्रामण्य की प्राप्ति होती है, ऐसा उपदेश करते हैं—** आहा...हा... ! २०७ (गाथा)।

आदाय तं पि लिंगं गुरुणा परमेण तं णमंसित्ता।
सोच्चा सवदं किरियं उवट्ठिदो होदि सो समणो।।२०७।।

कर परमगुरु से लिंग द्वय का, ग्रहण उनको नमन कर।
सुनकर व्रतों को आत्म में, होता सुस्थित श्रमण वह॥२०७॥

आ...हा...हा... ! चरणानुयोग का कथन भी अलौकिक (है)। हमारे पण्डितजी पहले लिखते हैं कि ओ...हो... ! निश्चय और व्यवहार की सन्धिपूर्वक ऐसी बात कहीं 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' के अलावा 'अमृतचन्द्राचार्यदेव' (के अलावा) ऐसी बात और कहीं है नहीं। समझ में आया ? बात तो ऐसी है। आहा...हा... ! दर्शन की (बात) जैसे सुनने की है, ऐसे चारित्र की योग्यता की पर्याय में कितना राग नहीं (होता, यह समझना चाहिए)। ऐसी चीज है। कहीं पर उसमें न्यून, अधिक और विपरीत हो जाये तो वस्तु का

स्वरूप बदल जाता है। श्रद्धादोष हो जाये। ऐसी बात है। आहा...हा...! तलवार की धार, ऐसा वीतराग का मार्ग है, भाई! दु:ख नहीं, हाँ! सुखरूप (है)। आ...हा...!

साधुपद अर्थात् परमात्मा परमेश्वर का पंथ, परमेश्वर होने का मार्ग! परमेश्वर सिद्धपद होने मार्ग की बात चलती है न! 'सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्ग:' ऐसे पद की इस भूमिका में ऐसी दशा होती है। द्रव्यलिंग और भावलिंग (ऐसा होता है)। वह बात कही। उससे विरुद्ध होता नहीं। द्रव्य और भावलिंग विरुद्ध हो तो वह सच्चा है नहीं। समझ में आया?

तत्पश्चात् श्रमण होने का इच्छुक दोनों लिंगों को ग्रहण करता है,... वहाँ आया न? **गुरु को नमस्कार करता है,...** वन्दन करता है। गुरु की पहिचान पहले आ गयी थी (कि) गुरु कैसा है। उसके पास जाते हैं। **व्रत तथा क्रिया को सुनता है....** भाविनैगम से बात कही। व्रत और क्रिया सुन। समझ में आया? **व्रत तथा क्रिया को सुनता है....** कैसा है व्रत? कैसी क्रिया गुरु फरमाते हैं? उसे बराबर सुनते हैं।....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. २०९ आषाढ़ शुक्ल ६, शनिवार, २१ जून १९६९

'प्रवचनसार' २०७ गाथा। क्या कहते हैं? देखो! साधु होने की जिसे भावना है, वह कैसी-कैसी क्रिया व्यवहार में करते हैं और उसकी पदवी के योग्य कैसे राग का अभाव है और कितने राग का भाव है, वह बात बताते हैं। दृष्टि के विषय में तो अकेला अभेद चिदानन्द स्वरूप (का विषय आता है)। उसमें तो कोई भेद-बेद भी आश्रय करने योग्य नहीं परन्तु ऐसा होने पर भी, पर्याय में विवेक होता है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन अन्तर के आश्रय से हुआ तो उस समय एक कषाय और मिथ्यात्व का अभाव हुआ परन्तु अभी तीन कषाय का भाव है। इसलिए वह चारित्रवन्त हो गया या पूर्ण केवलज्ञानी हो गया – ऐसा नहीं। समझ में आया?

'बनारसीदास' में ऐसा पहले हो गया था न? सुना था न? नग्न होकर कोठरी में

रहे, बस! साधु हो गये। 'बनारसीदास' नग्न फिरे। ऐसे नग्न नहीं। अपने अन्तर में राग की गाँठ का नाश कर, स्वभाव का भान होता है तो धर्मी को, जिसको धर्म प्रगट हुआ है - मैं तो ज्ञानज्योति चिदानन्द आत्मा हूँ - ऐसा अन्तर में अनुभव सम्यग्दर्शन में आया है, उसके पास दृष्टि की अपेक्षा से दृष्टि में राग भी नहीं, विकार भी नहीं, भेद भी नहीं, कुछ है नहीं। वह तो अभेद चिदानन्द आत्मा है। ध्रुव, अखण्ड, अभेद, उसमें श्रद्धा चिपकती है, बस! वह पर्याय को भी गिनती नहीं। समझ में आया?

सम्यग्दर्शन वह चीज है कि अपना ध्रुव अभेद चिदानन्द भगवान, उस पर दृष्टि होते ही पर्याय भी गौण हो जाये। राग की तो बात ही कहाँ और संयोग की, निमित्त की तो बात ही कहाँ? ऐसा होने पर भी, जब वह साधु होने का भाव करते हैं तो पर्याय में किस-किस प्रकार का राग होता है और निमित्त में कैसा-कैसा सम्बन्ध रहता है, उसकी बात करते हैं। समझ में आया? सूक्ष्म है। साधुपद लेने की भावना है, वहाँ कैसा होता है, वह कहते हैं।

देखो! अपने यहाँ तक आया है। टीका पहले चली है न? **वह इस प्रकार —** चार पंक्ति (चली) है न? २०७ (गाथा)। चार पंक्ति आ गयी है न? कहते हैं कि जिसको आत्मज्ञान है, आत्मदर्शन है, (उसे) साधुपद अन्तर वीतरागदशा प्रगट करने की जिज्ञासा है, जो मोक्ष का खास साक्षात् कारण है। परमानन्द की दशा का साक्षात् कारण, चारित्र है। समझ में आया? यह चारित्र अंगीकार करनेवाला **परम गुरु — प्रथम ही अरहन्तभट्टारक....** यहाँ से लिया, देखो! पंचम काल के मुनि है तो भी। सामान्य बात करते हैं न! आहा...हा...! अरिहन्त परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव विराजते हों तो उनके पास जाते हैं। समझ में आया?

अरहन्तभट्टारक..... तीन काल-तीन लोक का जिन्हें ज्ञान है और भट्टारक (अर्थात्) पूज्य हैं। समझ में आया? तीन काल-तीन लोक के जीव हैं, उनको पूज्य हैं। **और उस समय (दीक्षाकाल में) दीक्षाचार्य....** अथवा कोई दीक्षाचार्य छद्मस्थ मुनि हो। **इस यथाजातरूपधरत्व के सूचक....** देखो! क्या कहते हैं? अन्तर में वीतरागदशा प्रगट हुई। जैसा आत्मा है, वैसा वीतरागपना प्रगट हुआ, उसका सूचक **बहिरंग तथा अन्तरंग लिंग के ग्रहण की-विधि के प्रतिपादक होने से,....** केवलज्ञानी परमात्मा अथवा दीक्षागुरु।

ये दीक्षागुरु भी परमज्ञानी (हैं)। समझे ? तीन कषाय का अभाव है, ये सब पहले आ गया है। ऐसे गुरु अथवा वीतराग अरहन्त। उनके पास **यथाजातरूपधरत्व के सूचक....** वीतरागता हुई है, उसका सूचक (अर्थात्) बतानेवाला। बहिरंग निर्ग्रन्थदशा, नग्नदशा और अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प, यह बहिरंग है। यह बहिरंग लिंग है। अन्तरंग वीतराग-भावरूपी लिंग है। स्वसंवेदन की प्रचुर आनन्द की दशा का वेदन, वह अन्तर लिंग है।

(उसके) **ग्रहण की-विधि के प्रतिपादक होने से,....** देने की विधि के प्रतिपादक या तो तीर्थंकर अरहन्त भगवान या दीक्षागुरु। **व्यवहार से उस लिंग के देनेवाले हैं।** देखो! व्यवहार से भावलिंग और द्रव्यलिंग दिया। निमित्त है न, निमित्त। निमित्त से कथन है। जब मुनि को अन्तर आनन्दसहित की वीतरागदशा प्रगट होती है, तब बहिरंग (में) भी निर्ग्रन्थ और अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प अन्दर होता है। उसमें देनेवाले तीर्थंकर अथवा दीक्षाचार्य निमित्त हैं तो व्यवहार से, उन्होंने दिया-ऐसा कहने में आया।

व्यवहार से दिया का अर्थ क्या ? पहले कहा न। 'मोक्षमार्गप्रकाशक' में कहा न। निमित्त का ज्ञान कराने को है। समझ में आया ? निमित्त कौन था, उसका ज्ञान कराना है। व्यवहार कहते हैं कि दिया किन्तु ऐसा नहीं। परन्तु देनेवाले में, विधि समझाने (में) निमित्त कौन था ? उसका ज्ञान कराने की बात करते हैं। **उस लिंग के देनेवाले हैं।**

इस प्रकार उनके द्वारा दिये गये.... देखो! सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा अथवा दीक्षागुरु **उनके द्वारा दिये गये....** अज्ञानी द्वारा दिये गये, ऐसा है ही नहीं। निमित्त में भी ऐसा है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? कोई कहे कि आत्मा की तो अनन्त शक्ति है, उसमें निमित्त ऐसा ही होता है, (उसका) क्या काम है ? समझ में आया ? वह कहते हैं। निमित्त तो सर्वज्ञ परमात्मा अथवा भावलिंगी सन्त, वे ही देने में निमित्त होते हैं। समझ में आया ? देने में अर्थात् निमित्त।

कहते हैं न, देशनालब्धि का प्रश्न चलता है न ? तो देशनालब्धि (कहा) तो आत्मा को इतनी पराधीनता क्या ? समझ में आया ? वह पराधीनता नहीं। उसमें जब अपने अनुभव, सम्यग्दर्शन प्राप्त (करने की) योग्यता-लायकात हो, तब ज्ञानी के वचन की निमित्त (से) उसे देशनालब्धि आती है। परन्तु देशनालब्धि की ओर लक्ष्य है और

सम्यग्दर्शन पाते हैं – ऐसा नहीं। समझ में आया ? परन्तु कोई अज्ञानी का निमित्त है और सम्यग्दर्शन (प्राप्त कर ले), ऐसा नहीं – ऐसा सिद्ध करना है। समझ में आया ? मिथ्यादृष्टि हो और उसके पास से उसे उपदेश मिला (और) उसे सम्यग्दर्शन हो जाये, इतनी आत्मा की ताकत है तो हो जाये, ऐसा नहीं – ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? अरे... !

क्षायिक समकित होता है, वह केवली और तीर्थंकर के समीप होता है परन्तु उससे होता है, ऐसा नहीं, परन्तु (जब) होता है, तब ऐसा निमित्त न हो – ऐसा नहीं। शास्त्र (में) तो ऐसा कहा, क्षायिक समकित केवली दुगे। केवली अथवा तीर्थंकर के समीप होता है। उसका अर्थ क्या ? क्या उनसे होता है ? उस समय में होता तो है अपने से। उस समय सामने निमित्त है, उसका ज्ञान कराना है। कोई कहे कि ना, ना। केवली और तीर्थंकर न हो तो हम भी, हमारे कारण से क्षायिक हुआ। तीर्थंकर होनेवाला जीव हो, क्षयोपशम समकिती हो, नरक में गये हो, वहाँ से निकले, तब क्षायिक समकित प्राप्त करे तो अपने से प्राप्त करते हैं। समझ में आया ? क्षयोपशम समकित, हाँ! क्षायिक तो जैसे 'श्रेणिक' राजा तो क्षायिक लेकर गये हैं न। वे तो क्षायिक समकिती हैं, जब आयेंगे मुनि होंगे, बारह अंग का ज्ञान होगा। वे तो क्षायिक समकिती हैं ही। परन्तु क्षयोपशम समकितवाले तीर्थंकर गोत्र बाँधकर नरक में गये और तीर्थंकर हुए तो क्षयोपशम समकित लेकर निकलते हैं, कोई समीप में तो पाते नहीं,समीप तो है नहीं, वे जब मुनि होंगे और उनको बारह अंग का ज्ञान होगा, (तब) अपने से क्षायिक समकित पायेंगे। समझ में आया ?

मुमुक्षु – बारह अंग की... पूरी हो जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री – हाँ। अन्दर स्वतः हो जाता है। समझ में आया ? परन्तु कोई कहे कि दूसरे को भी ऐसा हो जाये, ऐसा नहीं। उससे नहीं हुआ, परन्तु निमित्त से हुआ ऐसा भी नहीं। अरे... कठिन बात! ऐसा वीतराग का मार्ग है। इसमें कुछ भी इधर-उधर करने जायेगा तो वस्तु की दृष्टि यथार्थ नहीं रहेगी।

देखो! यहाँ कहते हैं कि परमगुरु ने ग्रहण की विधि दी – ऐसा कहा न ? **उनके द्वारा दिये गये....** ऐसा कहा। अरहन्त और दीक्षागुरु मुनि महा भावलिंगी सन्त हैं, आनन्दकन्द में झूलनेवाले! उसको दीक्षा देने में उनका निमित्त है। ऐसा कहते हैं। जैसे

देशनालब्धि में ज्ञानी ही निमित्त हैं तो ऐसा आत्म भावलिंग देने में, द्रव्यलिंग में भी भावलिंगी ज्ञानी ही निमित्त हैं। वे देते हैं। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बातें।

वैसे तो भावलिंगी साधु के पास द्रव्यलिंगी अनन्त बार हुआ। मिथ्यादृष्टिरूप से, समझे? अन्दर से भावलिंग प्रगट किया नहीं। उसके गुरु साधु भावलिंगी थे। (उनके पास) दीक्षा ली परन्तु अपने में अन्तर में अनुभव किया नहीं, (सम्यग्दर्शन) तो पाया नहीं। परन्तु पाते हैं, तब उसको उपदेश देने में भावलिंगी साधु ही निमित्त हैं। आहा...हा...! इतनी तकरार। न्याय से समझे नहीं और एकान्त हो जाये तो उसे दृष्टि में तत्त्व की खबर नहीं।

यहाँ कहते हैं, देखो! चरणानुयोग की विधि में कैसा निमित्त है, उस निमित्त के पास अपनी पर्याय तो होती है अपने से; कोई पर से होती नहीं। आहा...हा...! परन्तु कहते हैं कि **उनके द्वारा दिये गये...** ऐसे अरिहन्त और निर्ग्रन्थ वीतरागी मुनि। आ...हा...हा...! **उनके द्वारा दिये गये...** दिये गये अर्थात् निमित्त हुए। **उन लिंगों को ग्रहण क्रिया के.... लिंगों को ग्रहण क्रिया के द्वारा संभावित-सम्मानित करके....** बहुमान से लिया, (ऐसा कहते हैं)। **(श्रामण्यार्थी) तन्मय होता है।** अन्दर में-स्वरूप में तन्मय होता है। आ...हा...! लो, ये पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण। अन्दर ध्यान में तन्मय होता है। निमित्त और निमित्त की ओर सुनने का विकल्प था, वह भी रहता नहीं। समझ में आया? अभी तो आगे विशेष कहेंगे।

और फिर जिन्होंने सर्वस्व दिया है.... देखो! आहा...हा...! लो, यह 'अमृतचन्द्राचार्यदेव' का कथन। **जिन्होंने सर्वस्व दिया है....** सब दिया। आहा...हा...! यहाँ अपने में सर्वस्व प्राप्त हुआ है तो निमित्त था, तो चरणानुयोग की कथनी में वीतराग की वाणी में भी ऐसा आता है। समझ में आया? सन्तों की वाणी देखो, एक ओर 'अमृतचन्द्राचार्यदेव' ऐसा कहे कि पर्याय के लक्ष्य से भी धर्मदृष्टि सम्यक् (दृष्टि) होती नहीं, राग के लक्ष्य से होती नहीं, निमित्त के लक्ष्य से होती नहीं। और रागादि (रूप) परिणमने का आत्मा स्वभाव आत्मद्रव्य का स्वभाव है नहीं, अशक्य है। आहा...हा...! राग, दया, दान (के) विकल्प (रूप) परिणमना, वह आत्मद्रव्य का स्वभाव है ही नहीं। समझ में आया? अनेकान्त वस्तुस्थिति जानने के योग्य है। दिया है अर्थात् (गुरु ने) दे

दिया है, ऐसा है नहीं; परन्तु देनेवाला ऐसा था, ऐसा ज्ञान कराने को 'दिया', ऐसा कहने में आया। समझ में आया? आ...हा...! सबेरे की व्याख्या और अभी की व्याख्या दोनों का मेल समझना चाहिए न! समझ में आया?

फिर जिन्होंने सर्वस्व दिया है, ऐसे मूल और उत्तर परमगुरु को,.... अरिहन्त भगवान ने उसको भावलिंग और द्रव्यलिंग दिया अथवा उसके गुरु ने द्रव्यलिंग और भावलिंग (दिया)। परमगुरुओं (कहा)। **भाव्यभावकता के कारण....** लो, भाव्यभावक आया। सबेरे दूसरे बात थी, ('समयसार' की) ३२ वीं गाथा में दूसरी बात है, यह दूसरी बात है। भाव्यभावक एक प्रकार का नहीं। समझ में आया? ३२ वीं गाथा में यह है, भावक नोकर्म जड़ है और अपनी पर्याय में उस प्रकार का भाव्य होने योग्य था, उस ओर से आत्मा पीछे हटता है, (अर्थात्) अपने में आता है तो मोह को जीता - ऐसा कहने में आता है। भाव्य ऐसा नहीं हुआ। समझ में आया? सबेरे की (बात) दूसरी (थी)। रागादि जो विकल्प है, दया, दान, व्रत, भक्ति या व्यवहार श्रद्धा आदि, वह अचेतन हैं, वह भावक है। अपनी पर्याय (में) उसका ज्ञान करने योग्य है, परन्तु ऐसा नहीं समझकर, उस भावक से मेरी पर्याय उसरूप होने योग्य है, ऐसा जो भाव्य हो गया, (वह) मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? कर्ता-कर्म की बात है न? राग का परिणमन (का) कर्ता अपना है नहीं। समझ में आया? (यहाँ चलती गाथा में) भाव्यभावक नमस्कार की बात है।

इसमें कितना याद रखना? भाई! ये याद रहे? तीन बोल कहे थे। पूछे तो ये याद रहे? ना कहते हैं। यह तो सादी बात है, साधारण बात है। इसमें कहाँ (कठिन बात है?)

मुमुक्षु - आप कभी ऐसा कहो, कभी ऐसा कहो...

पूज्य गुरुदेवश्री - कौन-सी अपेक्षा से है? - यह समझना चाहिए न। जहाँ जीव-अजीव अधिकार है, वहाँ अजीव कर्म है, वह भावक और भाव्य होने योग्य पर्याय है, उसको छोड़ देते हैं। वहाँ ऐसी बात है। समझ में आया? शान्ति से समझने की चीज है, ऐसी चीज है।

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यवस्तु (है) - ऐसी जहाँ दृष्टि और सम्यग्दर्शन हुआ, पीछे राग मैं बनाऊँ या राग लाऊँ, ऐसा है नहीं। आ जाता है, उसका परिणमन मेरा है - ऐसा

ज्ञानी नहीं मानते। समझ में आया? चरणानुयोग में ऐसी विधि कहते हैं (कि), विकल्प की क्रिया उसने की। आया था न? पहले आया था। **क्रियाओं का एक कर्ता दिखलाते हुए....** २०७ गाथा के ऊपर (आया था)। **विदा लेनेरूप क्रिया से लेकर शेष सभी क्रियाओं का एक कर्ता दिखलाते हुए....** है न? भाई! आहा...हा...! उसका अर्थ-उस प्रकार का विकल्प सुनने में ज्ञानी को आता है। सुनने में ज्ञानी गुरु, व्रत की क्रिया सुनाते हैं तो उसे विकल्प आता है। समझ में आया? और गुरु ने व्रत दिये - ऐसा भी कहने में आता है। आहा...हा...! भाई! भगवान का मार्ग जैसा द्रव्य का है, द्रव्य की दृष्टि का (है) और पर्याय में क्षण-क्षण में विवेक है, उसका बराबर ज्ञान करना चाहिए। ऐसी पर्याय में क्षण-क्षण में लीनता और क्षण-क्षण में उसकी योग्यता कैसी है - उसका ज्ञान करना चाहिए। समझ में आया? व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है। यहाँ चरणानुयोग की शैली में ऐसा कहे कि परिणमता है - ऐसा कहे। परिणमन हैं अर्थात् पर्याय में होता है न। राग का भाव सम्यग्दृष्टि को, क्षायिक समकिती को भी (होता है)। समझ में आया? आहा...हा...! यह तो मध्यस्थपने समझे तो समझने की चीज है। कोई आग्रह रखकर करे कि ऐसा होता है, ऐसा-फैसा करे तो वह कोई चीज समझ में आती नहीं।

मूल और उत्तर परमगुरु को, भाव्यभावकता के कारण.... लो, मूल परमगुरु अरिहन्तदेव, उत्तर गुरु दीक्षाचार्य के प्रति अत्यन्त आराध्यभाव के कारण। देखो! आराध्य परमगुरु (अर्थात्) आराधने लायक परमात्मा गुरु और आराध्य निज का भेद, निज, ऐसा भेद अस्त हो जाता है। लो! समझ में आया? (मूल टीका में फुटनोट के अर्थ के लिये) एक किया है न? एक (१) है। और भाव्यभावक में दो (२) किया है। इसमें पहले एक किया है न? **ऐसे मूल और उत्तर परमगुरु....** उसमें एक है न? मूल और उत्तर परमगुरु। मूल अरिहंत परमात्मा, उत्तर गुरु दीक्षाचार्य सन्त छद्मस्थ परमगुरु।

भाव्यभावकता के कारण.... ऐसी एकता हो गई कि मानो भगवान को वन्दन करता हूँ और मैं वन्दन करनेवाला हूँ - ऐसा भेद छूट जाता है। ऐसे अपना आत्मा अन्दर तन्मय हो जाता है। **प्रवर्तित इतरेतरमिलन के कारण....** कहते हैं कि गुरु ने तो सर्वस्व दिया। 'वह तो प्रभु ने ही दिया' देखो! 'आत्मसिद्धि' में आता है।

मुमुक्षु – और दे कौन ? जिसके पास हो वह दे न !

पूज्य गुरुदेवश्री – दे क्या ? निमित्त है। देते हैं ऐसा कहने में आता है। 'ते तो प्रभुये आपियो' उसमें पहले क्या आता है ? 'शुं प्रभु चरण कने धरूँ ?' आत्मदर्शन पाया, वह गुरु से कहता है, 'शुं प्रभु चरण करने धरूँ ? आत्मा थी सौ दिन, ते तो प्रभुये आपियो वर्तुं चरणाधीन।' देखो ! चरणानुयोग में ऐसा आया। आपने सर्वस्व दिया। हमारे सर्वस्व की प्राप्ति में आप निमित्त हैं तो आपने सर्वस्व दिया – ऐसा कहने में आता है। उसमें भी विवाद था। गुरु के पास ऐसा कहना कि आपने सर्वस्व दिया और अन्दर में समझना कि मेरे से पाया, वह तो माया है... माया नहीं, विनय कहते हैं। समझ में आया ? आहा...हा... ! बहुत वर्ष पहले वह चर्चा हो गई। हिन्दी की ओर से (चर्चा हुई थी)। समझ में आया ? कहते थे कि ऐसा बोलना ? निमित्त से तो कुछ होता नहीं, ऐसा तो तुम मानते हो। और गुरु के पास कहना कि आपसे मुझे ज्ञान हुआ। (वह तो) माया हुई। समझ में आया ? माया है यह ? विनय है। ऐसा विकल्प धर्मी को आये बिना रहता नहीं। आता है, लाते हैं – ऐसा नहीं। बहुत सूक्ष्म। समझ में आया ? विनय का वाक्य आता है, स्वच्छन्दी नहीं होता है। जिनके पास से सम्यग्दर्शन पाया और जिसके पास सम्यग्ज्ञान लिया, उन्हें भूलते नहीं, बहुमान करते हैं। ऐसा विकल्प आये बिना रहे नहीं। ऐसा विकल्प न आये तो या तो वीतराग हो जाये या मिथ्यादृष्टि हो जाये। समझ में आया ? ऐसी बात है, भाई ! देखो, 'अमृतचन्द्राचार्यदेव' !

एक ओर कहे '**दिट्ठी जहेव णाणं**' जैसे दृष्टि, पर की कर्ता-हर्ता है नहीं; वैसे भगवान चैतन्य-नेत्र, उदय और बन्ध और निर्जरा और मोक्ष का कर्ता-फर्ता है नहीं। ('समयसार' की) ३२० गाथा। समझ में आया ? केवलज्ञान का भी कर्ता नहीं। आहा...हा... ! वह पर्याय है। पर्याय पर्याय करे, द्रव्य क्या करे ? समझ में आया ? ऐसी दृष्टि के कहनेवाले यहाँ कहते हैं कि तुमने हमको सर्वस्व दिया। ऐसा मुनि मानते, कहते हैं। मान्यता व्यवहार है न, व्यवहार मानते हैं न। अद्भुत, भाई ! जैनदर्शन समझना वास्तविकता चारों पहलू से (समझना) बहुत अलौकिक बात है।

मुमुक्षु – इतना व्यवहार तो मानना चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री – मानना अर्थात् है। नहीं है – ऐसा नहीं। है, लेकिन उससे

अन्दर में प्राप्त हुआ, ऐसा नहीं। प्राप्त हुआ वह निमित्त का कथन है। व्यवहारनय का आया न। व्यवहारनय एक द्रव्य दूसरा द्रव्य का कर्ता कहता है, एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य में मिला के कहता है, एक कारण को दूसरे में मिलाकर कहता है। ऐसी मान्यता मिथ्यादृष्टि की है, ऐसा आया है। आया है या नहीं? परन्तु ज्ञान कराने में ऐसा भाव आया है, वह जानते हैं। कारण-कार्य भाव आया था न? एक द्रव्य (को) दूसरे द्रव्य (के साथ) मिलाकर, एक भाव का दूसरे भाव (के साथ) मिलान करके, एक-दूसरे के कारण-कार्य मिलान करके कहता है। ऐसी श्रद्धा मिथ्यात्व है। समझ में आया?

वहीं यहाँ कहते हैं, वह जानने योग्य है। निमित्त क्या है, निमित्त का ज्ञान, निमित्तादि का ज्ञान - ऐसा उसमें लिखा था? व्यवहारनय कहता है ऐसा है नहीं। तो कहने में आया न? निमित्त, भेद क्या है, उसका ज्ञान कराने की बात है। समझ में आया? सूक्ष्म है, भाई! आहा...हा...!

कहते हैं कि अ...हो...! **भाव्यभावकता के कारण प्रवर्तित इतरेतरमिलन के कारण...** यह और यह मैं, ऐसा मिलन एकरूप हो गया। वास्तव में तो अपनी आराधक दशा, वही एक पर और स्व एक हो गया, ऐसा कहते हैं। अपने में आराध्य और आराधक मैं ही हूँ। समझ में आया? पर आराध्य और मैं आराधक - ऐसा अन्तर में से विलय हो जाता है - ऐसा कहते हैं। दो एक जाता है, ऐसा नहीं। अपने में आराध्य-आराधक एक हो जाता है तो पर के साथ वन्दन में एक हो गया - ऐसा कहने में आया।

स्व-पर का विभाग अस्त हो गया है.... भगवान आराधन करने योग्य और मैं आराधन करनेवाला, ऐसा भेद, वन्दन की एकाकार दशा में, उस भेद का नाश होता है। अपना आनन्दकन्द में शुद्ध परिणमन (होना), उसका नाम इतरेतर मिलन की स्तुति (है)। ओ...हो...हो...! **ऐसी नमस्कार क्रिया के द्वारा....** अन्तर में भगवान आत्मा, अतीन्द्रिय वीतरागस्वरूप, उसमें नमने से-परिणमन करने से ऐसी क्रिया के द्वारा **सम्भावित करके-सम्मानित करके....** आदर करके। **भावस्तुति-वन्दनामय होता है।** लो। ऐसी भावस्तुति वन्दनामय (है)। भावस्तुतिमय और भावन्दनामय होता है, लो।

पश्चात् सर्व सावद्ययोग के प्रत्याख्यानस्वरूप.... सर्व सावद्ययोग, मुनि को

कोई सावद्य की पर्याय होती नहीं। **सर्व सावद्ययोग के प्रत्याख्यानस्वरूप एक महाव्रत को सुननेरूप....** आ...हा...हा... ! देखो तो दशा ! **एक महाव्रत को सुननेरूप श्रुतज्ञान के द्वारा समय में परिणमित होते हुए....** समय में परिणमित होता हुआ। आहा...हा... ! मुनि पहले गुरु के पास सुनते हैं (कि) ऐसा सामायिक है, ऐसी सामायिक है। तो उस सामायिक में एक महाव्रत हुआ। पंच महाव्रत का भेद उसमें नहीं। वीतरागस्वरूप आत्मा, उसमें एकाकार होकर एक महाव्रतरूप अंगीकार किया तो समय में परिणमित होते हैं। (मूल ग्रन्थ में फुटनोट में) स्पष्टीकरण किया है। देखो ! *'(आत्मद्रव्य में, निजद्रव्यस्वभाव में) परिणमित होना सो सामायिक है।'* उसका नाम सामायिक है। लो, यह सामायिक की व्याख्या। समझ में आया ? एक घण्टे बैठे (लेकिन) अन्तरदृष्टि का अनुभव नहीं होता। फिर विकल्प द्वारा एक घण्टा सामायिक कर ली। सुबह, दोपहर, शाम (को बैठ जाता है)। वह तो मिथ्यात्व भाव है। ऐ...ई... !

सम्यग्दर्शन, ज्ञान की प्रकाश की शक्तिपूर्वक अन्दर समय अर्थात् आत्मा में राग और विकल्प से रहित, समतारूप वीतरागरूप परिणमन हुआ, होता है, उसका नाम सामायिक कहते हैं। भाई ! आपने 'नाग्नेश' (गाँव में ऐसी) सामायिक बहुत की होगी। देखो, यह सामायिक। आ...हा...हा... ! पुण्य-पाप अधिकार में भी आता है न, स्थूल संक्लेश परिणाम को छोड़ा है परन्तु स्थूल विशुद्ध परिणाम जिसने छोड़ा नहीं तो उसको भावसामायिक होती नहीं। समझ में आया ? पुण्य-पाप अधिकार में आता है न वह ? सर्व सावद्ययोग का त्याग, वह शब्द (है)। पूर्ण स्वरूप लेकर भी पुरुषार्थ की उसकी उल्टी दशा के कारण अशुभ राग से भूल छूटे, परन्तु शुभ विकल्प से छूटे नहीं, तब तक मोह का त्याग नहीं तो सामायिक का परिणमन नहीं (है)। समझ में आया ? ओ...हो... !

समय में परिणमित होते हुए आत्मा को जानता हुआ.... भाषा देखो ! भगवान आत्मा अपने को जानता हुआ। विकल्प को भी नहीं और निमित्त को भी नहीं (जानता हुआ)। समझ में आया ? समय में परिणमता, राग में परिणमता – ऐसा नहीं। सुनते समय विकल्प था और उन्होंने दिया – ऐसा कहा परन्तु अपने में परिणमन हुआ, वह दिया – ऐसा कहने में आया। आहा...हा... ! समझ में आया ? वही शब्द है न, उसमें क्या है ?

('समयसार') 'पुण्य-पाप अधिकार' १५४ (गाथा) है न? '**समस्त कर्मों के पक्ष का नाश करने से उत्पन्न होनेवाले (निजस्वरूप की प्राप्ति) आत्मलाभस्वरूप मोक्ष को इस जगत् में कितने ही जीव चाहते हुए भी, मोक्ष की कारणभूत सामायिक की-जो (सामायिक) सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रस्वभाववाले परमार्थभूत ज्ञान की भवनमात्र है,...**' सामायिक तो आत्मा आनन्द और ज्ञानरूप होना, वह सामायिक है। '**एकाग्रतालक्षणयुक्त है, और समयसारस्वरूप है, उसकी-प्रतिज्ञा लेकर भी,...**' ऐसी प्रतिज्ञा ली कि मुझे ऐसी सामायिक करना है। समझ में आया? फिर भी '**दुरन्त कर्मचक्र को पार करने की नपुंसकता के कारण....**' अशुभ विकल्प को तो छोड़ते हैं परन्तु शुभ विकल्प को छोड़ते नहीं, (वह) नपुंसक है, कहते हैं। आहा...हा...! भारी बात, भाई! क्लीब है। संस्कृत में 'क्लीब' (शब्द) है, 'क्लीब'। '**दुरंतकर्मचक्रोत्तरण-क्लीबतया**' आ...हा...हा...!

कहते हैं कि सामायिक की प्रतिज्ञा तो करते हैं कि हमें तो पुण्य-पाप विकल्परहित वीतराग स्वसमय में परिणमन करना, यह हमारा सामायिक है। समझे? यह समयसार है। उसकी प्रतिज्ञा लेते हैं परन्तु प्रतिज्ञा (लेने के बाद) परिणमन होता नहीं। तो वह शुभभाव में रूक जाता है कि शुभ विकल्प उठता है, वह सामायिक (है)। शुभ में रुके और शुभ छोड़े नहीं, (वह) नपुंसक है। ओ...हो...हो...! लो, यह सामायिक आयी। भाई! गृहस्थ की सामायिक इस प्रकार की होती है। उसकी भूमिका अनुसार शुद्ध परिणमन (होना), वह सामायिक है। णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं (का) विकल्प एक घण्टा करे, वह सामायिक, सामायिक है नहीं। वह तो विषमता है, राग है। सामायिक कहाँ से आयी? मानी हुई है।

'**परमार्थभूत ज्ञान के भवनमात्र सामायिकस्वरूप आत्मस्वभाव को न प्राप्त होते हुए,...**' लो! भगवान आत्मा! दया, दान, व्रत, नामस्मरण, भक्ति, णमोकार मन्त्र, ऐसा विकल्प है, उसको पार नहीं कर सका तो उसको सामायिक है नहीं। आ...हा...! समझ में आया? '**जिनके अत्यन्त स्थूल संक्लेशपरिणामरूप कर्म निवृत्त हुए हैं...**' अशुभ विकल्प है, वह छोड़ दिया '**और अत्यन्त स्थूल विशुद्धपरिणामरूप कर्म प्रवर्त**

रहे हैं,...' विकल्प – नामस्मरण भगवान... भगवान... भगवान (करे), ऐसा शुभ विकल्प है, वह अत्यन्त स्थूल विशुद्ध परिणाम है। भगवान का नामस्मरण करना, नवकार गिनना, वह अत्यन्त स्थूल विशुद्ध–शुभपरिणाम है। पुण्यबन्ध का कारण है, वह धर्म नहीं।

प्रश्न – सूक्ष्म क्या है ?

समाधान – सूक्ष्म आत्मा निर्विकारी परिणाम (है)। समझ में आया ? यहाँ परिणाम की अपेक्षा से बात चलती है न। अशुभ परिणाम अत्यन्त स्थूल, शुभ भी अत्यन्त स्थूल। सूक्ष्म निर्विकारी परिणाम होना, वह सूक्ष्म (है)। समझ में आया ? अत्यन्त सूक्ष्म अन्तर तत्त्व ज्ञायकभाव (है) वह (है)। समझ में आया ? भगवान आत्मा अत्यन्त सूक्ष्म, परिणति निर्मल हुई, (वह) सूक्ष्म और अशुभ और शुभ परिणाम अत्यन्त स्थूल (हैं)। उसको छोड़ने के योग्य नहीं। यहाँ तो (कहते हैं) सम्यग्दर्शन (होने के) बाद भी शुभभाव रहे, वह सामायिक नहीं। समझ में आया ? और समाायिक माने कि मैंने सामायिक की, तो है राग और मानी सामायिक (तो) दृष्टि मिथ्यात्व है। सामायिक कहाँ से आयी ?

अन्दर सामायिक तो रागरहित, विकल्परहित निर्विकल्प आनन्द में एकाकार होना, वह सामायिक है। इस सामायिक की तो खबर भी नहीं। समझ में आया ? और फिर एक घण्टा कुछ बोले नहीं। कुछ विकल्प तो होते हैं, न हो तो बैठे कैसे ? अशुभभाव को छोड़ दिया। (मान लिया कि) सामायिक हो गई। राग की मन्दता के भाव में सामायिक हो गई।

मुमुक्षु – कोशिश तो करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री – क्या कोशिश है ? राग कोशिश है ? राग की कोशिश वह तो विकार का प्रयोग है। विकार का प्रयोग मैं करता हूँ (–ऐसा माने), वह तो मिथ्यात्व भाव है। आ...रे...! कठिन बात है। समझ में आया ?

मुमुक्षु – अभ्यन्तर मिथ्यात्व लागू पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री – मिथ्यात्व है ही। आहा...हा...! इसलिए तो बात चलती है। विकल्प है, वह सामायिक है – ऐसी मैंने सामायिक की, एक घण्टा, सवा घण्टा सुबह, दोपहर, शाम (को) सामायिक की। कहते हैं कि सामायिक में क्या किया ? नामस्मरण करते थे, गुणस्मरण करते थे। गुणस्मरण करते थे लो न! माला फेरते थे, तब अपना

गुणस्मरण करते थे। आत्मा... आत्मा... आत्मा... आत्मा... शुद्ध आत्मा, शुद्ध पवित्र आत्मा। वह भी विकल्प है। शुद्ध चिद्रूपो अहं, शुद्ध चिद्रूपो अहं, लो। कल कहा था। शुद्ध स्वरूपो अहं, ज्ञायकभावो अहं, उदासीनो अहं।

मुमुक्षु – पाठ बड़ा आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री – बड़ा पाठ आता है, 'बन्ध अधिकार' में, 'सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार' दो जगह आता है। समझ में आया? आहा...हा...! कैसी बात की है! देखो!

मुमुक्षु – .....वह अपवाद है।

पूज्य गुरुदेवश्री – अपवाद-फपवाद क्या? अपवाद अर्थात् निन्दा।

प्रश्न – कहीं भी गुंजाईश नहीं?

समाधान – विकल्प में कोई गुंजाईश है नहीं। कुछ भी गुंजाईश मानना विपरीत अभिप्राय है। आ...हा...! ऐसी बात है, भाई! समझ में आया? दूसरे (लोग) दो घड़ी, चार घड़ी विकल्प में न रहे और मैं रहता हूँ, मुझे सामायिक हुई। (ऐसा लगे तो) उसे अधिक अभिमान हो गया कि वह तो सामायिक करता नहीं। हम तो दो घड़ी करते हैं। मिथ्यात्व हुआ, मिथ्यात्व... हुआ। समझ में आया?

व्रत, नियम, शील, तप इत्यादि सब शुभकर्म है। (ऐसे) शब्द उसमें लिये हैं न? **'अशुभकर्म को ही बन्ध का कारण मानकर व्रत, नियम, शील, तप इत्यादि शुभकर्मों को बन्ध का कारण होने पर भी उन्हें बन्ध का कारण न मानते हुए...'** व्रत, शील, तप, नियम ये सब शुभभाव विकल्प राग, बन्ध का कारण है।

प्रश्न – मिथ्यादृष्टि को बन्ध का कारण या सम्यग्दृष्टि का बन्ध कारण?

समाधान – सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि में फर्क क्या? विकल्प दोनों को बन्ध का कारण है। सम्यग्दृष्टि को (भी बन्ध कारण है)। यह उसकी तो बात चलती है। व्रत, नियम, शील, तप इत्यादि शुभ परिणाम मुझे मोक्ष का कारण हुआ (– ऐसा मानना) मिथ्यात्व है। ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! कठिन बहुत। देखो न! **'बन्ध का कारण न जानते हुए मोक्ष के कारणरूप में अंगीकार करते हैं,....'** मोक्ष के कारणरूप अंगीकार करते हैं। मार्ग भाई! अलौकिक बात है। समझ में आया?

देखो, यहाँ **श्रुतज्ञान के द्वारा समय में परिणमित होते हुए....** देखो! पहले सुना इसलिए श्रुतज्ञान लिया। विकल्प था न, वह छूट गया। भावश्रुतज्ञान द्वारा, (वह) छूट गया। भावश्रुतज्ञान द्वारा सामायिक अर्थात् आत्मा में-समय में भावश्रुतज्ञान के द्वारा। विकल्प के द्वारा नहीं, निमित्त के द्वारा नहीं। **महाव्रत को सुननेरूप श्रुतज्ञान के....** ऐसा लिया न? **एक महाव्रत को सुननेरूप श्रुतज्ञान के द्वारा....** अर्थात् कि पहले सुननेरूप विकल्प तो है परन्तु फिर भावश्रुतज्ञान हो गया। तभी अन्दर आत्मा में परिणमित होते हुए। तन्मय निर्विकल्प आनन्दमय होते हुए **आत्मा को जानता हुआ सामायिक में आरूढ़ होता है।** लो, ऐसे आत्मा में लीन होता हुआ और आत्मा को जानता हुआ। भाषा देखो! व्यवहार को जानता हुआ, विकल्प को जानता हुआ, निमित्त को जानता हुआ, वह बात ही नहीं ली, छोड़ दी। आहा...हा...! देखो न! चरणानुयोग में बात निमित्त से कहते हैं परन्तु अन्दर में कैसी चीज होती है, वह बताते हैं। समझ में आया?

कहते हैं कि भगवान आत्मा, सम्यग्दर्शन में आत्मा की सामायिक (होती है)। सम्यग्दर्शन एक सामायिक है। सम्यग्ज्ञान, वह भी एक सम्यग्ज्ञान सामायिक है। उसके उपरान्त की बात चलती है। चारित्र की सामायिक। चारित्र सामायिक के दो भेद — देशसंयम, सकलसंयम। समझ में आया? सामायिक चार भेद हम लेते थे। सम्प्रदाय में लेते थे। अनुयोग द्वार में वहाँ लेते थे। सम्प्रदाय में अनुयोग द्वार में से निकालते थे। एक सम्यग्दर्शन सामायिक, एक सम्यग्ज्ञान सामायिक, देशविरति सामायिक और सर्वविरति सामायिक। सामायिक के चार भेद हैं।

सम्यग्दर्शन—अभेद अनुभव में दृष्टि हुई, राग से भिन्न पड़ गया, आनन्द का स्वाद आया, वह सम्यग्दर्शन की सामायिक (है) और इस सम्यग्दर्शन की सामायिक बिना सम्यग्ज्ञान की सामायिक होती नहीं। फिर ज्ञान सामायिक। समतारूप ज्ञान, श्रुतज्ञान परिणमित हो गया। भावश्रुतज्ञान परिणमित हो गया, वह श्रुतज्ञान सामायिक (है)। इसके उपरान्त पंचम गुणस्थान में देशविरति सामायिक (होती है)। समझ में आया? आंशिक जो कषाय मन्द है, उसका अभाव करके आंशिक वीतरागता का परिणमन हुआ, वह देशविरति / अरागी परिणतिरूप सामायिक है। मुनि को तो सर्वविरति वीतराग परिणति है। उसका नाम सामायिक कहने में आता है। कठिन काम। समझ में आया?

समय में परिणमित होते हुए, आत्मा को जानता हुआ सामायिक में आरूढ़ होता है। भाषा देखो! अन्दर अपने आत्मा को ज्ञेय बनाकर, अन्दर में आरूढ़–स्वभाव पर आरूढ हुआ, व्यवहार का आरूढपना छूट गया, ऐसा कहते हैं। ज्ञेय बनाकर, जानता हुआ कहा न? **आत्मा को जानता हुआ....** अन्तर वस्तु अभेद चिदानन्द ज्ञायक शुद्ध चिद्रूप अभेद, उसको ज्ञेय बनाकर, उसको जानता हुआ, उसमें लीनतारूप आरूढ़ता करते हैं। लो, इसका नाम मुनि का सामायिक, व्रत और सामायिक कहने में आता है। आ...हा...हा...! ये तो चरणानुयोग के कथन में ऐसी बात है। वस्तु यह है या नहीं? भाई! यह सामायिक की व्याख्या चलती है।

मुमुक्षु – नया काल है तो नयी सामायिक।

पूज्य गुरुदेवश्री – पुराने समय में दूसरी सामायिक थी, ऐसा कहते हैं। नये समय में नयी सामायिक होती होगी, ऐसा है? थी कब सामायिक? अभी सम्यग्दर्शन की खबर नहीं, पहली सम्यग्दर्शन सामायिक बिना सम्यग्ज्ञान सामायिक नहीं और सम्यग्ज्ञान सामायिक बिना देशविरति सामायिक नहीं और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान बिना सर्वविरति सामायिक नहीं। भले देशविरति किसी को न आवे। समझ में आया? परन्तु सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानरूपी सामायिक बिना देशविरति आंशिक वीतराग सामायिक और सर्वविरति – सर्व राग का अभावरूप वीतराग परिणति, सम्यग्दर्शन–सम्यग्ज्ञान बिना होती नहीं।

सामायिक में आरूढ़ होता है। एक महाव्रत को सुननेरूप सामायिक यहाँ ली। अब उसके भेद करते हैं। समझ में आया?

मुमुक्षु – यथाख्यात चारित्र...

पूज्य गुरुदेवश्री – यथाख्यात नहीं, यह तो सामायिक की बात है। यथाख्यात तो बात कहाँ है? वह तो आगे अकषाय परिणति हुई। यहाँ तो अभी मुनि को (जो) दशा होती है – ऐसी दशा की बात करते हैं। यथाख्यात है नहीं। यथाख्यात की बात है न? (ऐसा पूछते हैं)। यह तो छट्ठे गुणस्थान की सामायिक ऐसी है। छट्ठे में से सातवें में सामायिक होती है, उसकी बात करते हैं। आहा...हा...! पंचम गुणस्थान में भी ऐसी सामायिक (होती है), परन्तु वहाँ थोड़ी स्थिरता है। समझ में आया? चौथे गुणस्थान में यह सामायिक नहीं

है, परन्तु स्वरूपाचरणरूप दशा है। अनन्तानुबन्धी का अभाव हुआ, उतनी स्थिरता सदा-कायम है; और पंचम गुणस्थान में तो दूसरे कषाय का अभाव है, वीतरागता है। चाहे तो चौथे गुणस्थानवाला वास्तव में तो निर्विकल्प उपयोग में जब हो, उससे भी दो कषाय के अभाववाला श्रावक खाने-पीने में बैठा हो तो भी उसे निर्जरा विशेष है। समझ में आया? बाह्य क्रिया पर आधार नहीं। चौथे गुणस्थानवाला अपने में निर्विकल्प उपयोग में हो। तुम्हारे यहाँ चिन्तन में लिखा है न? 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' में आया है। चिन्तन में लिखा है परन्तु उसका अर्थ ध्यान में हो कदाचित्। आत्मा के ध्यान में हो, निर्विकल्प उपयोग (हो), फिर भी उससे, पंचम गुणस्थानवाला खाता-पीता हो, अरे...! भोग के विकल्प की दशा में हो तो भी उसकी निर्जरा विशेष है। समझ में आया? और उससे मुनि हरते-फिरते हो, बोलते हो, उस समय में भी पंचम गुणस्थान से संवर, निर्जरा विशेष है। क्योंकि अकषाय परिणमन पर सामायिक और संवर, निर्जरा है। आधार अकषाय परिणाम है। आहा...हा...! वीतराग मार्ग ऐसा है, भाई! वीतराग दृष्टि से शुरु होता है। समझ में आया?

पश्चात् प्रतिक्रमण-आलोचना-प्रत्याख्यान-स्वरूप क्रिया को सुननेरूप.... (मूल ग्रन्थ में फुटनोट दी है।) *'अतीत-वर्तमान-अनागत, काय-वचन-मन सम्बन्धी कर्मों से भिन्न निजशुद्धात्मपरिणति, वह प्रतिक्रमण-आलोचना-प्रत्याख्यानरूप क्रिया है।'* वह भी अन्तर निज शुद्धपरिणति है, वह प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान आदि है। आ...हा...! समझ में आया? प्रतिक्रमण, विकल्प उठता है, कि 'मिच्छामी दुक्कडम्' वह प्रतिक्रमण है नहीं। वह तो शुद्ध अनुभव की दृष्टिपूर्वक स्थिरता हो तो उस विकल्प को व्यवहार प्रतिक्रमण कहते हैं। निश्चय प्रतिक्रमण तो मिथ्यात्व, अज्ञान, रागादि से हटकर अपने स्वरूप में शुद्ध परिणति वीतरागदशा होनी, उसका नाम प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान, आलोचना, संवर कहने में आता है।

यह तो बोलते या नहीं? कि भूतकाल का प्रतिक्रमण, वर्तमान काल का संवर, अनागत काल का प्रत्याख्यान। ऐसा बोलते हैं, भाई! ये (भाई) तो वहाँ मुख्य थे। समझ में आया? शेठ थे न, शेठ? अरे...! किसके शेठ? आहा...हा...! भगवान आत्मा! देखो!

पश्चात् प्रतिक्रमण-आलोचना-प्रत्याख्यान-स्वरूप क्रिया को सुननेरूप....

वहाँ विकल्प है, देखो! फिर भी 'सुननेरूप' वहाँ भी कहा था न? **सुननेरूप श्रुतज्ञान के द्वारा....** यहाँ भी (कहा) **सुननेरूप श्रुतज्ञान के द्वारा....** आहा...हा...! सुनते हैं, ऐसा श्लोक है। सन्धि की है। प्रतिक्रमण ऐसा है, प्रत्याख्यान ऐसा है, आलोचना, संवर ऐसा है – ऐसा गुरु कहते हैं तो सुनते हैं। सुने, तब तक तो विकल्प है। बाद में **सुननेरूप श्रुतज्ञान के द्वारा....** उससे हटकर भावश्रुतज्ञान द्वारा, ऐसा (कहते हैं)। भाषा तो ऐसी है कि सुनने द्वारा परन्तु सुना था ऐसा जो भाव, ऐसे श्रुतज्ञान के द्वारा। आहा...हा...!

त्रैकालिक कर्मों से विविक्त (भिन्न) किये जानेवाले.... लो। आहा...हा...! देखो, उसमें भी था। **परिणमित होते हुए आत्मा को जानता हुआ सामायिक में आरूढ़ होता है।** आहा...हा...! **त्रैकालिक कर्मों से विविक्त (भिन्न) किये जानेवाले आत्मा को जानता हुआ,....** देखो! अन्तर में तीनों काल के विकल्प को छोड़कर, अन्तर आनन्द की वीतराग धारा में बहता हुआ, आत्मा को जानता हुआ। **अतीत-अनागत-वर्तमान, मन-वचन-कायसम्बन्धी कर्मों से विविक्तता (भिन्नता) में आरूढ़ होता है।** पहले में कहा, **सामायिक में आरूढ़ होता है।** हुआ। समझ में आया? कठिन, भाई! ऊँची बात है, ऐसा कोई कहता था। लेकिन यह वस्तु ही ऐसी है, भाई! आहा...हा...! लोगों ने कल्पना कर ली हो कि हम सुबह-शाम प्रतिक्रमण करते हैं। समझ में आया? प्रत्याख्यान करते हैं। प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान की व्याख्या ही अलग है। समझ में आया?

आत्मा आनन्दस्वरूप, ज्ञायकस्वरूप चिद्रूपो अहं – ऐसा अनुभवपूर्वक राग और शुभ विकल्प जो है, उससे हटकर अपने में वीतरागभाव में आरूढ़ है, उसका नाम प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान और आलोचना कहने में आता है। समझ में आया? कठिन बातें, भाई! दो बात हुई। **पश्चात्....** कहना है तो क्या करे? एक के बाद एक बात करते हैं। पहले सामायिक में आरूढ़ हो गया, फिर प्रतिक्रमण में आरूढ़ हुआ (– ऐसा है नहीं)। विशेष क्रम बताते हैं। तीनों एक साथ है। सामायिक में आरूढ़ हुआ, तीनों काल के कर्म से आरूढ़ हुआ (– ऐसा कहा), वह तो त्यागी उसमें हुआ ही। समझने में शैली कैसी आये? समझने में क्रम पड़ता है। समझ में आया?

पश्चात् समस्त सावद्यकर्मों के आयतनभूत काय का उत्सर्ग (उपेक्षा)

करके.... देखो ! (आयतन अर्थात्) स्थान, निवास। समस्त सावद्य कर्मों के आयतन-स्थान काया (अर्थात्) यह काया। **यथाजातरूपवाले स्वरूप को,....** नग्नदशा हो गयी। काया से भी विकल्प छूट गया। समझ में आया ? **एक को एकाग्रतया अवलम्बित करके....** भगवान आत्मा को ही, यथाजातरूप स्वरूप को। यथाजातरूप वीतरागभावरूप स्वरूप को। **एक को एकाग्रतया....** ऐसे एक को **अवलम्बित करके रहता हुआ, उपस्थित होता है।** आहा...हा... ! **और उपस्थित होता हुआ, सर्वत्र समदृष्टिपने के कारण साक्षात् श्रमण होता है।** अब यहाँ साधु हुआ। पहले तो भाविनैगम से बात की थी। ऐसी दशा को भगवान साधुपद कहते हैं। ऐसी दशा बिना (साधुपद) मानना, वह बात मिथ्या है, झूठी है। (विशेष लेंगे)....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

गाथा - २०८-२०९

अथाविच्छिन्नसामायिकाधिरूढोऽपि श्रमणः कदाचिच्छेदोपस्थानमर्हतीत्युपदिशति-

वदसमिदिंदियरोधो लोचावस्सयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेगभत्तं च।।२०८।।

एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
तेसु पमत्तो समणो छेदोवट्ठावगो होदि।।२०९।। [जुम्मं]

व्रतसमितीन्द्रियरोधो लोचावश्यकमचेलमस्नानम्।
क्षितिशयनमदन्तधावनं स्थितिभोजनमेकभक्तं च।।२०८।।

एते खलु मूलगुणाः श्रमणानां जिनवरैः प्रज्ञप्ताः।
तेषु प्रमत्तः श्रमणः छेदोपस्थापको भवति।।२०९।। [युग्मम्]

सर्वसावद्ययोगप्रत्याख्यानलक्षणैकमहाव्रतव्यक्तिवशेन हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहविरत्यात्मकं पञ्चतयं व्रतं, तत्परिकरश्च पञ्चतयी समितिः पञ्चतय इन्द्रियरोधो लोचः षट्तयमावश्यक-मचेलक्यमस्नानं क्षितिशयनमदन्तधावनं स्थितिभोजनमेकभक्तश्चैवं एते निर्विकल्पसामायिक-संयमविकल्पत्वात् श्रमणानां मूलगुणा एव। तेषु यदा निर्विकल्पसामायिकसंयमाधिरूढ-त्वेनानभ्यस्तविकल्पत्वात्प्रमाद्यति तदा केवलकल्याणमात्रार्थिनः कुण्डलवलयाङ्गुलीयादिपरिग्रहः किल श्रेयान्, न पुनः सर्वथा कल्याणलाभ एवेति सम्प्रधार्य विकल्पेनात्मानमुपस्थापयन् छेदोपस्थापको भवति।।२०८।२०९।।

एवं दीक्षाभिमुखपुरुषस्य दीक्षाविधानकथनमुख्यत्वेन प्रथमस्थले गाथासप्तकं गतम्। अथ निर्विकल्पसामायिकसंयमे यदा च्युतो भवति तदा सविकल्पं छेदोपस्थानचारित्रमारोहतीति प्रतिपादयति- **वदसमिदिंदियरोधो** व्रतानि च समितयश्चेन्द्रियरोधश्च व्रतसमितीन्द्रयरोधः। **लोचावस्सयं** लोचश्चावश्यकानि च लोचावश्यकं, `समाहारस्यैकवचनम्'। **अचेलमण्हाणं खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेगभत्तं च** अचेलकास्नानक्षितिशयनादन्तधावनस्थिति- भोजनैकभक्तानि। **एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं**

पण्णत्ता एते खलु स्फुटं अष्टाविंशतिमूलगुणाः श्रमणानां जिनवरैः प्रज्ञप्ताः। **तेसु पमत्तो समणो छेदोवट्ठावगो होदि** तेषु मूलगुणेषु यदा प्रमत्तः च्युतो भवति। सः कः। श्रमणस्तपोधनस्तदाकाले छेदोपस्थापको भवति। छेदे व्रतखण्डने सति पुनरप्युपस्थापकश्छेदोपस्थापक इति। तथाहि-निश्चयेन मूलमात्मा, तस्य केवलज्ञानाद्यनन्तगुणा मूलगुणास्ते च निर्विकल्पसमाधिरूपेण परमसामायिकाभिधानेन निश्चयैकव्रतेन मोक्षबीजभूतेन मोक्षे जाते सति सर्वे प्रकटा भवन्ति। तेन कारणेन तदेव सामायिकं मूलगुणव्यक्तिकारणत्वात् निश्चयमूलगुणो भवति। यदा पुनर्निर्विकल्पसमाधौ समर्थो न भवत्ययं जीवस्तदा यथा कोऽपि सुवर्णार्थी पुरुषः सुवर्णमलभमानस्तत्पर्यायानपि कुण्डलादीन् गृह्णाति, न च सर्वथा त्यागं करोति; तथायं जीवोऽपि निश्चयमूलगुणाभिधानपरमसमाध्यभावे छेदोपस्थानं चारित्रं गृह्णाति। छेदे सत्युपस्थापनं छेदोपस्थापनम्। अथवा छेदेन व्रतभेदेनोपस्थापनं छेदोपस्थापनम्। तच्च संक्षेपेण पञ्चमहाव्रतरूपं भवति। तेषां व्रतानां च रक्षणार्थं पश्चसमित्यादिभेदेन पुनरष्टाविंशतिमूलगुणभेदा भवन्ति। तेषां च मूलगुणानां रक्षणार्थं द्वाविंशतिपरीषहजय-द्वादशविधतपश्चरणभेदेन चतुस्त्रिंशदुत्तरगुणा भवन्ति। तेषां च रक्षणार्थं देवमनुष्यतिर्यगचेतन-कृतचतुर्विधोपसर्गजयद्वादशानुप्रेक्षाभावनादयश्चेत्यभिप्रायः ।।२०८।२०९।।

अविच्छिन्न सामायिक में आरूढ़ हुआ होने पर भी, श्रमण कदाचित् छेदोपस्थापना के योग्य है, ऐसा अब उपदेश करते हैं—

व्रत समिति इन्द्रियरोध आवश्यक, लोच भूमि-शयन हो।
अचेल भोजन एक स्थित, नहीं दन्तधौवन अस्नान हो ॥२०८॥

ये मूलगुण हैं श्रमण के, जिनदेव ने जो हैं कहे।
उनमें प्रमत्त हैं जो श्रमण, छेदोपस्थापक वे बनें ॥२०९॥

अन्वयार्थ – [**व्रतसमितीन्द्रियरोधः**] व्रत, समिति, इन्द्रियरोध, [**लोचावश्यकम्**] लोच, आवश्यक, [**अचेलम्**] अचेलपना, [**अस्नानं**] अस्नान, [**क्षितिशयनम्**] भूमिशयन, [**अदंतधावनं**] अदंतधावन, [**स्थितिभोजनम्**] खड़े-खड़े भोजन, [**च**] और [**एक भक्तं**] एक बार आहार — [**एते**] ये [**खलु**] वास्तव में [**श्रमणानां मूलगुणाः**] श्रमणों के मूलगुण [**जिनवरैः प्रज्ञप्ताः**] जिनवरों ने कहे हैं; [**तेषु**] उनमें [**प्रमत्तः**] प्रमत्त होता हुआ [**श्रमणः**] श्रमण [**छेदोपस्थापकः भवति**] छेदोपस्थापक होता है।

टीका – सर्व सावद्ययोग के प्रत्याख्यानस्वरूप एक महाव्रत की व्यक्तियाँ (विशेष,

प्रगटताएँ) होने से हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह की विरतिस्वरूप पाँच प्रकार के व्रत तथा उसकी परिकरभूत[१] पाँच प्रकार की समिति, पाँच प्रकार का इन्द्रियरोध, लोच छह प्रकार के आवश्यक, अचेलपना[२] अस्नान, भूमिशयन, अदंतधावन (दातुन न करना), खड़े-खड़े भोजन, और एक बार आहार — इस प्रकार ये (अट्ठाईस), निर्विकल्प सामायिकसंयम के विकल्प (भेद) होने से श्रमणों के मूलगुण ही हैं। जब (श्रमण) निर्विकल्प सामायिकसंयम में आरूढ़ता के कारण, जिसमें विकल्पों का अभ्यास (सेवन) नहीं है, ऐसी दशा में से च्युत होता है, तब 'केवलसुवर्णमात्र के अर्थी को कुण्डल, कंकण, अंगूठी आदि को ग्रहण करना (भी) श्रेय है, किन्तु ऐसा नहीं है कि (कुण्डल इत्यादि का ग्रहण कभी न करके) सर्वथा स्वर्ण की ही प्राप्ति करना ही श्रेय है' ऐसा विचार करके मूलगुणों में विकल्परूप से (भेदरूप से) अपने को स्थापित करता हुआ छेदोपस्थापक होता है॥२०८-२०९॥

प्रवचन नं. २१० **आषाढ़ शुक्ल ७, रविवार, २२ जून १९६९**

यह 'प्रवचनसार' है। २०८-२०९ (गाथा)। क्या चलता है? चरणानुयोग का अधिकार चलता है। जिसे पूर्ण सुखी होना हो, उसे ऐसा चारित्र अंगीकार करना पड़ेगा। समझ में आया? आत्मा में पूर्ण आनन्द प्राप्त करना हो, उसे ऐसा चारित्र अंगीकार करना पड़ेगा। उसमें विशेष भेद कहेंगे और चारित्र - पहले उसे सम्यग्दर्शन होना चाहिए। पहले आ गया है-हमारी ज्ञानज्योति प्रगट हुई है। माता! मुझे विदा दो। ऐसा आठ साल के बालक हो या वृद्ध हो, जिसको आत्मज्ञान की ज्योति अन्दर प्रगट हुई, वह जब चारित्र अंगीकार करने की भावना करते हैं, तब माता-पिता, स्त्री आदि, जिसको जो हो, (उनकी) विदा लेने को आज्ञा लेते हैं। मैं तो चारित्र अंगीकार करना चाहता हूँ। मेरा और तुम्हारा कुछ सम्बन्ध है नहीं। मैं तो वनवास में वन-वास — वन की वाट लेना चाहता हूँ। आ...हा...! समझ में आया? अन्तर में आनन्दस्वरूप पूर्ण आनन्द का कारण जो आत्मा का कार्य जो

१. परिकर = अनुसरण करनेवाला समुदाय; अनुचरसमूह; [समिति, इन्द्रियरोध, इत्यादि गुण, पाँच व्रतों के पीछे-पीछे होते ही हैं, इसलिए समिति इत्यादि गुण पाँच व्रतों का परिकर अर्थात् अनुचर समूह है।]

२. अचेलपना = वस्त्ररहितपना, दिगम्बरपना।

मोक्ष, उस आनन्द का कारण चारित्र (है) और उसका कारण सम्यग्दर्शन (है)। वह तो प्राप्त है। फिर यह भावना करते हैं। यहाँ तक आया है। विदा ली, पंचाचार लिया ऐसा पहले (भावनैगम) नय से कथन किया है न? पीछे श्रमण होता है। २०७ (गाथा)। **साक्षात् श्रमण होता है।**

अन्तर में वीतरागभाव प्रगट हुआ है, उसका नाम चारित्र और उसका नाम परमार्थ से श्रमण अर्थात् साधु कहने में आता है। वह कल आया। श्रुतज्ञान के द्वारा समय में परिणमित होते हुए। जो कुछ गुरु से सुना, श्रुतज्ञान के द्वारा समय में परिणमित। जो गुरु ने कहा, भगवान! तेरा आत्मा तो आनन्द है न! शुद्ध चिदानन्द है, ऐसा सुनकर चिदानन्द स्वरूप में जिसका परिणमन हुआ, वह दशा जिसको हुई, उसे श्रमण कहते हैं। समझ में आया?

पहले के काल में तो आठ-आठ साल के राजकुमार दीक्षित होते थे। राजकुमार तो महापुण्यवन्त, जिनके घर में करोड़ों-अरबों रुपये की कमाई-आमदनी, वह भी आठ-आठ वर्ष के राजकुमार (ऐसा) सुनकर... ओ...हो...! अकेला जन्मता है, अकेला मरता है, अकेला चार गति में परिभ्रमण करता है - ऐसा मैं दुखी हूँ। चार गति में पराधीनदृष्टि से दुःखी हूँ। इसलिए स्वाधीनदृष्टिपूर्वक स्वाधीन चारित्र अंगीकार करूँ तो मेरी मुक्ति अर्थात् पूर्ण आनन्द की प्राप्ति हो। समझ में आया? कुछ लोग कहते हैं कि वहाँ सम्यग्दर्शन और ज्ञान की बात करते हैं परन्तु त्याग-चारित्र की बात नहीं करते हैं, ऐसा कहते हैं। तो यह क्या चलता है? अरे...! सम्यग्दर्शन के भान बिना ये व्रत ले ले, तप ले ले, प्रतिमा ले ले, उसे त्याग कहते हैं। (उसमें) तो मिथ्यात्व (है), समकित का त्याग है।

'नियमसार' में आता है। स्वधर्म त्याग नहीं आता है? स्वधर्म त्याग 'नियमसार' में आता है। अपना-स्वधर्म का त्याग किया। राग का ग्रहण किया, ऐसा करूँ, ऐसी कर्ताबुद्धि (में) ज्ञाता-दृष्टा के स्वधर्म की श्रद्धा का त्याग किया। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि अ...हो...! आत्मदर्शन और आत्मज्ञान हुआ तो बाद में तो कोई त्याग-ग्रहण रहता ही नहीं। फिर भी कर्म के सम्बन्ध में जो राग, शुभ रागादि उत्पन्न होता है उसे ऐसी चरणानुयोग की विधि उत्पन्न होती है। समझ में आया? २०८-२०९ (गाथा)।

अविच्छिन्न सामायिक में आरूढ़ हुआ.... उपोद्घात है न? सामायिक —

समता... समता... समता... ओ...हो... ! वीतरागी समरस, वीतरागी समरस आनन्द, उसमें – आनन्द में आत्मा डूब गया, तल्लीन हो गया। ऐसे आनन्द में आया कि जिसको विकल्प में बाहर आना जँचता नहीं। समझ में आया ? ऐसे अविच्छिन्न (अर्थात्) छिन्न न पड़े, टूटे नहीं ऐसी **सामायिक में आरूढ़ हुआ होने पर भी, श्रमण कदाचित् छेदोपस्थापना के योग्य है,....** अब छेदोपस्थान के दो प्रकार हैं। (सामायिक में) आरूढ़ हुआ तो जब अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प उत्पन्न होता है, उसको भी छेदोपस्थान कहते हैं। और जो वस्तु स्वरूप है, उसमें कोई दोष लग गया और प्रायश्चित्त (करे), उसको भी छेदोपस्थान कहते हैं। छेदोपस्थान के दो प्रकार हैं। दो प्रकार का यहाँ वर्णन है। समझ में आया ?

वदसमिदिंदियरोधो लोचावस्सयमचेलमण्हाणं।
खिदिसयणमदंतवणं ठिदिभोयणमेगभत्तं च।।२०८।।

एदे खलु मूलगुणा समणाणं जिणवरेहिं पण्णत्ता।
तेसु पमत्तो समणो छेदोवट्टावगो होदि।।२०९।। [जुम्मं]

देखो ! भगवान तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ की दिव्यध्वनि में ऐसे अट्ठाईस मूलगुण (का वर्णन आया)। यह व्यवहार मूलगुण है। निश्चय मूलगुण तो अनन्त आनन्द, ज्ञान, केवलज्ञान ये मूलगुण हैं। समझ में आया ? निश्चय में तो अनन्त आनन्द ज्ञान, केवल आदि मूलगुण हैं परन्तु अनुभवपूर्वक जहाँ शान्ति प्रगट हुई, उसमें व्यवहाररूप मूलगुण क्या है, उसकी बात चलती है। यहाँ तो व्यवहार से सामायिक के भेद कहेंगे।

पीछे (हरिगीत) है न ?

व्रत समिति इन्द्रियरोध आवश्यक, लोच भूमि-शयन हो।
अचेल भोजन एक स्थित, नहीं दन्तधौवन अस्नान हो॥२०८॥

ये मूलगुण हैं श्रमण के, जिनदेव ने जो हैं कहे।
उनमें प्रमत्त हैं जो श्रमण, छेदोपस्थापक वे बनें॥२०९॥

अब इसकी टीका—**सर्व सावद्ययोग के प्रत्याख्यानस्वरूप एक महाव्रत की व्यक्तियाँ....** देखो भाषा ! अपना आनन्द स्वरूप ऐसी सामायिक, वीतराग सामायिक अंगीकार की। वह तो सर्व सावद्ययोग के प्रत्याख्यान (अर्थात्) त्याग। **एक महाव्रत की**

व्यक्तियाँ.... देखो! सामायिक को एक महाव्रत कहते हैं। समझ में आया? सामायिक को एक ही महाव्रत (कहा)। वीतरागी दशा का भाव प्रगट हुआ, वह एक महाव्रत (है)। आ...हा...हा...! उसकी व्यक्ति, यह व्यवहार व्यक्ति है। एक महाव्रत है, (वह) तो वीतरागभाव है। उसकी व्यक्ति है, वह तो विकल्प है। समझ में आता है? चरणानुयोग की शैली है न! नहीं तो एक वीतरागभाव है, वह अहिंसा, सत्यदत्त, ब्रह्मचर्य विकल्प उसका भेद नहीं।

मुमुक्षु – सामान्य में वही एक होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री – एक ही भाव होता है। परन्तु (यहाँ) दूसरी बात कहते हैं। एक महाव्रत की व्यक्ति कहते हैं न? एक महाव्रत की व्यक्ति कौन? कि, अहिंसा, सत्य, अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प उठना। (वह) वास्तव में वीतरागभाव की व्यक्ति प्रगट नहीं है, शुभभाव है परन्तु व्यवहारनय से, उस भूमिका में ऐसा विकल्प होता है तो व्यवहारनय से वीतरागभाव की व्यक्ति है – ऐसा कहने में आया है। ऐसा भाव हो, जहाँ तीन कषायरहित आनन्दकन्द में झूलते हो, वहाँ ऐसा पंच महाव्रत, षट् आवश्यक आदि का विकल्प होता है। उस अपेक्षा से एक महाव्रतरूपी सामायिक, उसकी व्यक्ति प्रगटता, प्रसिद्धि – ऐसा कहने में आता है। नहीं तो वास्तव में एक महाव्रतरूप तो वीतरागभाव है, तो उसमें प्रगटता तो वीतराग भाव होना चाहिए परन्तु यहाँ चरणानुयोग की अपेक्षा से कथन है, वहाँ व्यवहारनय की प्रधानता (है)। वीतरागभाव की प्रगटता है क्योंकि उस समय में ऐसा अट्ठाईस मूलगुण का भाव आता है। भाई! मुनिपना समझना क्या चीज है, वह कठिन है।

श्रद्धा में उसको लेना पड़ेगा कि मुनिपना ऐसा है। इसके अलावा दूसरे प्रकार से मुनिपना होता नहीं। आहा...हा...! धन्य अवतार! केवलज्ञान प्राप्त करने का पंथ! पूर्णानन्द की प्राप्ति का कारण चारित्र। समझ में आया? सम्यग्दृष्टि चारित्रमोह के वश 'लेश न संयम' फिर भी चारित्र की भावना तो उन्हें होती है। होती है तो तुरन्त (चारित्र) हो जाये – ऐसा भी नहीं। आहा...हा...! समझ में आया?

'ऋषभदेव' भगवान जैसे, तीन ज्ञान लेकर, क्षायिक समकित लेकर आये थे। तीन

ज्ञान और क्षायिक समकित। फिर भी ८३ लाख पूर्व तक चारित्र नहीं आया। ८३ लाख पूर्व। एक पूर्व सत्तर लाख करोड़ वर्ष, छप्पन हजार करोड़ वर्ष, उसका एक पूर्व। ऐसे ८३ लाख पूर्व। तीर्थंकर का आत्मा, क्षायिक समकित और तीन ज्ञान लेकर आया। निश्चित है कि मुझे इस भव में सिद्ध होना है। आता है न? ....'अष्टपाहुड़' में (आता है)। परन्तु चारित्र बिना उसकी सिद्धि नहीं होगी। समझ में आया? राजपाट, भोगादि की वासना में ८३ लाख पूर्व गये। ८३ लाख पूर्व, तीर्थंकर जैसा आत्मा। क्षायिक समकित और तीन ज्ञान लेकर माता के गर्भ में आये परन्तु चारित्र बाहर से ले ले तो आ जाता है, ऐसा कोई चारित्र नहीं है।

मुमुक्षु - गुरु दे तब आये।

पूज्य गुरुदेवश्री - गुरु क्या दे? अन्दर में से वीतरागदशा हो, तब गुरु ने दिया - ऐसा कहने में आया। वह सब तो पहले आ गया है-गुरु ने दिया। क्या दिया? गुरु के पास उसकी चारित्रदशा है? चरणानुयोग में ऐसा निमित्त का कथन चलता है। दोनों लिंग गुरु ने दिये। वीतरागता दी और द्रव्यलिंग अट्ठाईस मूलगुण आदि भी उन्होंने दिया, ऐसा पहले आ गया। आहा...हा...! बापू! व्यवहारनय चरणानुयोग की शैली ऐसी है। समझ में आया? जहाँ दृष्टि के विषय में तो पर्याय का भी आदर नहीं।

ध्रुव भगवान आत्मा, जिसके (समक्ष) सब परिणाम व्यवहार है। सारा परिणाम व्यवहार (है)। मोक्ष, मोक्ष का मार्ग, बन्ध और बन्ध का मार्ग, सब व्यवहार है (और) व्यवहार अभूतार्थ हेय है। आहा...हा...! ऐसा दृष्टि का विषय और अनुभव होने पर भी... समझ में आया? जब स्वरूप की रमणता चारित्र के पुरुषार्थ से होती है, तब चारित्र की दशा में वीतरागभाव प्रगट होता है। समझ में आया?

'ऋषभदेव' भगवान भी जब णमो सिद्धाणं, यह कहकर दीक्षित हुए, तब तक तो अभी गुणस्थान पाँचवाँ था। समझ में आया? 'उत्तर पुराण' में ऐसा चलता है, जितने तीर्थंकर हैं, (उन्हें) आठ वर्ष में पंचम गुणस्थान होता है। अणुव्रत धारण करते हैं, ऐसा पाठ 'उत्तर पुराण' में है। आता है। समझे? पाँचवें में रहे। चारित्र नहीं आया। अरबों-अरबों वर्ष चारित्र नहीं, अरबों-अरबों वर्ष चारित्र नहीं! समझ में आया? चारित्र तो सहज (है)।

जैसी वस्तु सहज, गुण सहज (है), वैसे सहज पुरुषार्थ से जहाँ चारित्र का परिणमन होता है, वह चारित्र सहज स्वभावी वस्तु है। ऐसे हठ से ले ले, लो मैंने पंच महाव्रत लिये, अट्ठाईस मूलगुण (लिये)। वह तो हठ है। समझ में आया? अन्दर कहेंगे, हाँ! हठ का कहीं पर है। आगे आयेगा। २११-२१२ में आयेगा। समझ में आया?

ओ...हो...! ऐसी दशा अंगीकार किये बिना उसे परमानन्द नहीं मिलेगा। समझ में आया? ऐसे चारित्र को प्राप्त हुए बिना (परम आनन्द नहीं मिलेगा)। चारित्र है पर्याय है शुद्ध उपयोगरूपी वीतरागी पर्याय परन्तु द्रव्य की दृष्टि में तो पर्याय की भी गौणता है, उसे मैं प्राप्त करूँ (-ऐसा भाव आया), वह तो प्रगट करने के लिये प्राप्त करूँ ऐसा है। समझ में आया? उस पर वजन नहीं, जोर तो द्रव्य पर है। परन्तु द्रव्य पर के जोर में विशेष स्थिर होऊँ, ऐसा चारित्र का अनन्त पुरुषार्थ है। सम्यग्दर्शन से भी चारित्र का पुरुषार्थ अनन्तगुना है। समझ में आया? चारित्र में क्रम पड़ता है। दर्शन में क्रम नहीं पड़ता कि दर्शन में पहले इतनी श्रद्धा हो और फिर इतनी श्रद्धा हो, ऐसा नहीं है। दर्शन में तो एक समय में सारा द्रव्य अनन्त गुण का पिण्ड कब्जे में ले लिया, अनुभव में आ जाता है। उसमें क्रम नहीं। समझ में आया? आहा...हा...!

ज्ञानी को भी राग आता है। कितने काल आया? अरबों-अरबों वर्ष राग रहा। तीर्थंकर जैसे आत्मा को! ओ...हो...हो...! कोई कहते हैं कि समकिती हैं तो चारित्र क्यों नहीं लेते? ज्ञान का फल तो चारित्र है, ज्ञान का फल तो व्रत है। इसलिए व्रत न हो, तब तक उसका ज्ञान भी सच्चा नहीं। ऐसा कहते हैं। अरे भगवान...!

मुमुक्षु - ज्ञान का फल तो विरति है।

पूज्य गुरुदेवश्री - परन्तु विरति कब? कि प्रगट करे तब। या चीज का ज्ञान हुआ इसलिए विरति आ जाये?

मुमुक्षु - आये बिना रहती नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री - आये बिना रहती नहीं, परन्तु कितने काल में? ज्ञान हुआ (कि तुरन्त) विरति आ जाये? समझ में आया? लोग अभी बहुत लेख लिखते हैं। सम्यग्दर्शन और ज्ञान की खबर नहीं। दर्शन क्या है, कैसे अनुभव होता है? और अनुभव में क्या दशा

होती है ? अनुभवी की कैसी स्थिति है ? समझे ? उसकी खबर बिना (कहे), ज्ञान का फल तो विरति है। चारित्र ले लो, व्रत ले लो, नहीं तो ज्ञान का फल आया नहीं तो ज्ञान भी नहीं। अभी पेपर में आया था। 'जैनगजट' में (आया था)। अरे... भगवान! भाई! तू कहता है, ऐसा नहीं है, हाँ!

यहाँ तो आत्मा ज्ञानस्वरूप परम ध्रुव निर्विकल्प स्वभाव का भान हुआ, वेदन हुआ, आनन्द का वेदन हुआ; एक विकल्प का स्वामी नहीं, पर्याय की भी जहाँ मुख्यता नहीं। समझ में आया ? ऐसी दृष्टि हुई, क्षायिक समकित हुआ या क्षयोपशम (समकित) हुआ तो भी चारित्र अंगीकार करने में अरबो-अरबों वर्ष तीर्थंकर जैसे आत्मा को लगते हैं! भगवान 'महावीर' लो। समझ में आया ? तीस वर्ष रहे या नहीं ? तीस वर्ष क्यों रहे ? क्षायिक समकित तो लेकर आये थे, तीन ज्ञान को लेकर आये थे। अन्तिम तीर्थंकर थे, उनको भी मालूम है कि मैं तीर्थंकर होनेवाला (हूँ), इस भव में केवलज्ञान होकर (मोक्ष में जाऊँगा)। मेरा अन्तिम देह है। तो तीस वर्ष क्यों रहे ? भाई! वह दशा सहज आती है। ऐसे बाहर से हठ से ले ले, यह विकल्प लिया और ये लिया, वह तो सब मिथ्यात्व का हठ भाव है। समझ में आया ? उस भूमिका में है नहीं, ऐसी दशा को मानना और मनाना, वह तो विपरीत मान्यता है। लोगों को तत्त्व की श्रद्धा और ज्ञान की क्या कीमत है मालूम नहीं। सम्यक्त्व (हो उसे) यह आये बिना रहता नहीं लेकिन आये वह सहज आता है। समझ में आया ? आहा...हा...!

कहते हैं, **सर्व सावद्ययोग के प्रत्याख्यानस्वरूप....** बिल्कुल एक हिंसा का भाव, विकल्प भी छोड़ दिया। एक महाव्रत की दशा ली। उसकी **व्यक्तियाँ....** देखो भाषा! वीतराग भाव की व्यक्ति राग। ऐ...ई...! व्यवहारनय का ग्रन्थ है न! तो उस भूमिका में ऐसा भेद आता है। अन्दर चारित्र में तो वीतरागभाव आत्मा है। महा प्रचुर स्वसंवेदन में रमते हैं। ऐसी दशा में मुनि को **एक महाव्रत की....** एकरूप वीतराग (दशा)। महाव्रत शब्द (का अर्थ) एकरूप वीतरागदशा। समझ में आया ? एकरूप वीतरागदशा में व्यक्ति अर्थात् उसकी प्रगटता, विशेष, वीतराग भाव का विशेष, वीतराग भाव की प्रगटता।

(इसके) अर्थ में गड़बड़ करते हैं। समझ में आया ? देखो! वीतरागभाव की

विशेषता। महाव्रत के परिणाम आदि छेदोपस्थानीय है और चारित्र है; इसलिए वीतराग भाव का विशेष भाव वह है। (ऐसा कहते हैं)। अरे... भगवान! छेदोपस्थान चारित्र भी वीतरागभाव ही है। यह तो निमित्त से उसका कथन किया है।

कहते हैं कि चारित्र आत्मा का आनन्द, प्रचुर आनन्द, प्रचुर वीतरागता (है)। चौथे (गुणस्थान में) वीतरागता है, उससे पाँचवें में विशेष (है) और उससे छठ्ठे विशेष (है) और सातवें में इससे विशेष (है)। ऐसी वीतरागता, उसका भेद-छठ्ठे गुणस्थान की अपेक्षा। **हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह की विरतिस्वरूप पाँच प्रकार के व्रत....** लो! हिंसा से निवृत्तिरूप विकल्प, है तो शुभराग। हिंसा अशुभराग है। हिंसा अशुभराग से निवृत्तिरूप अहिंसा का शुभभाव। असत्य से निवृत्तिरूप-सत्य बोलने का शुभराग, वह राग (है)। चोरी की निवृत्तिरूप अचौर्य का शुभराग। अब्रह्म मैथुन से निवृत्तिरूप ब्रह्मचर्य पालने का विकल्प शुभराग, और परिग्रह की विरति-परिग्रह से निवृत्तिरूप, मैं नग्न हूँ, अपरिग्रह - ऐसा विकल्प। समझ में आया? वीतरागभाव की भी प्रगटता (है)। आया न?

परिग्रह की विरतिस्वरूप पाँच प्रकार के व्रत.... देखो! वीतरागभाव का भेदरूप पाँच राग। भाषा देखो! आ...हा...हा...! कथन शैली समझनी चाहिए न, भाई!

प्रश्न - पर्याय सिद्ध करनी है न?

समाधान - यहाँ पर्याय का कथन है। वीतरागभाव है, वहाँ ऐसा पंच महाव्रत का रागादि आता है तो उसको वीतरागभाव का भेद व्यवहार से कहा है। निश्चय से भेद होता नहीं; वीतराग भाव में राग (का) भेद हो? एक भी भेद होता है? चरणानुयोग की कथनी की रीत समझे बिना उसका अर्थ करे तो उल्टा अर्थ हो जाये। उसमें से (लोग) लेते हैं, देखो! अट्ठाईस मूलगुण है, वह वीतरागभाव का भेद है। आहा...हा...! यह लिखा, 'अमृतचन्द्राचार्यदेव' कहते हैं, क्या हमारे घर का कहते हैं? ऐसा कहते हैं। लोग ऐसा कहते हैं। भाई! यह किस अपेक्षा से कथन है? भाई! यह तो चरणानुयोग की कथन की बात है। चरणानुयोग में, वीतरागभाव जहाँ हुआ, वहाँ उस भूमिका में कैसा राग है, यह बताने को वीतराग का भेद राग है - ऐसा कहा गया है। ऐसी राग की मन्दता होती है। उस

भूमिका में पंच महाव्रतादि का (भाव होता है)। उसको कपड़ा लेने का भाव, उसके लिये भोजन बनाने का भाव आता नहीं, उस अपेक्षा से उसको वीतरागभाव की भूमिका में ऐसे भाव को वीतरागभाव का भेद है - ऐसा कहने में आया है। समझ में आया?

तथा उसकी परिकरभूत.... लो, ठीक! पाँच व्रत, विकल्प शुभराग है, उसका परिकर अर्थात् वाड़। देखो! परिकर (का अर्थ मूल ग्रन्थ में फुटनोट में दिया है)। अनुसरण करनेवाला समुदाय, अनुचरसमूह। देखो! समिति। है न? पाँच प्रकार की समिति। देखकर चलना। है तो वह विकल्प-राग। विचार करके बोलना, विकल्प (है), एषणा—निर्दोष आहार लेना, वह है शुभराग। भूमिका-अनुसार मुनि को निर्दोष आहार लेना, ऐसा विकल्प आता है। ले सकता हूँ, वह प्रश्न अभी है नहीं। ऐसा विकल्प आता ही है तो उस विकल्प को पंच व्रत की वाड़ कहने में आया है। परिकर — समुदाय, उसका समुदाय है। राग का राग समुदाय है - ऐसा कहते हैं। कठिन बातें!

मुमुक्षु - महाव्रत की रक्षा।

पूज्य गुरुदेवश्री - हाँ, राग की रक्षा। बात ऐसी है, भाई! चरणानुयोग की शैली की कथन पद्धति नहीं जाने और कल्पना से अर्थ करे (तो) सारा न्याय से उल्टा हो जाये। समझ में आया? दृष्टि के विषय की बात चलती हो और उसके साथ यह नहीं मिलान करे तो (- ऐसा लगे कि) यह तो दुःख हुआ, त्याग दशा हुई। अरे...! सुन तो सही। भाई! ज्ञानी को तो केवलज्ञान लेने का-करने का भाव नहीं। तो यह अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प लाना, वह कहाँ से आया? आया, सुन तो सही। उस भूमिका में... आ...हा...! छठी भूमिका में जहाँ वीतरागभाव प्रगट हुआ, वहाँ पंच महाव्रत का विकल्प उस भूमिका में शुभराग होता है, बस। उस शुभराग का परिकर—अनुसरण करनेवाला। जहाँ ऐसा शुभभाव है, उसको अनुसरण करनेवाला। अनुचर उसका दास। लो! पाँच समिति, पाँच महाव्रत राग का दास है। ऐसा होता है। है राग, हाँ!

पंच समिति — ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेप — लेना-रखना। वह सब क्रिया जड़ की है परन्तु लेना-रखने का विकल्प उठता है, वह व्रत का समुदाय है, व्रत का अनुचर है। उसके सेवक के सब समूह हैं। शुभराग, एक तो शुभराग वीतरागभाव का भेद

किया और ये भेद शुभराग के सब अनुचर — दास हैं। आहा...हा... ! कैसी कथनी है यह ! भाई ! (चलने में) कहीं भी जीव पर (पैर नहीं आये)। नीम का फूल हो, नीचे हरियाली हो, उस पर पैर नहीं आ जाये। समझ में आया ? ऐसे नीचे देखकर चलने का विकल्प है, वह राग है। कहीं हरियाली न हो, सचेत पृथ्वी का कण न हो। पृथ्वी होती है न ? सचेत खान में से निकला हो। गधे ले जाते हैं न ? वह सचेत है। एक कण में असंख्य जीव हैं। पानी का एक बिन्दु ऊपर से गिरता है तो उसमें असंख्य जीव हैं। ऊपर से गिरता है न ? वर्षा कहते हैं न ? वर्षा। पानी गिरता है। तिल जितने बिन्दु में पानी के — जल के असंख्य जीव हैं। मुनि तो छह काय की हिंसा के त्यागी हैं। समझ में आया ? वनस्पति के कण पर या पृथ्वी के कण पर उनके पैर न पड़े – ऐसा विकल्प उनको आता है। समझ में आया ? जड़ की क्रिया स्वतन्त्र होती है। समिति हुई न ? पंच समिति।

पाँच प्रकार का इन्द्रियरोध,.... वह परिकर है। अभी विकल्प है, हाँ! इन्द्रिय से निरोध। इन्द्रिय का भोग आदि वासना जो है, उसका निरोध करते हैं, (वह) शुभराग है। पंच महाव्रत, वीतरागभाव का राग भेद और ये सब राग के अनुचर — दास (हैं)। साथ में ऐसा होता है। बड़ा राजा निकले तो उसके साथ पाँच-पच्चीस नौकर तो साथ में होते ही हैं। अकेला नहीं निकलता। राजा निकलता है न, राजा! उसमें कुछ है नहीं, हाँ! यह तो पुण्य का परिकर समुदाय कैसा है ? यह बताना है। ऐसे पंच महाव्रत का विकल्प का परिकर — समुदाय कैसा है ? यह बताना है। जो हो उसका रूप तो बराबर बताना चाहिए न! पुण्य के फल में आत्मा को लाभ (है), वह प्रश्न यहाँ है नहीं।

यहाँ तो पंच महाव्रत का राग, जब वीतरागभाव सम्यग्दर्शन, ज्ञानपूर्वक हुआ, तब महाव्रत का राग हुआ उसके पास ऐसा अनुचरण / दास / समुदाय होता है – ऐसा कहते हैं। अकेला पंच महाव्रत का राग रहता नहीं। समझ में आया ? पाँच इन्द्रिय का निग्रह। श्रोत, चक्षु (आदि का) निग्रह होता है। और **लोच,...** एक विकल्प है। क्रिया जड़ की (है)। परन्तु विकल्प है। दाढ़ी, मूंछ के बालों का रक्षण करना, वह तो राग है। उसे छोड़ने का भाव विकल्प (होता है)। लोच की क्रिया कर सके (– ऐसा नहीं), वह जड़ की क्रिया है, वह अपनी क्रिया है नहीं। वह तो अजीव की क्रिया है।

प्रश्न – अपने आप होता है ?

समाधान – अपने आप होता है। आ गया नहीं ? हस्तादिक की क्रिया स्वयमेव होती है। उसमें आया है। 'द्रव्यसंग्रह'! वह तो (संवत) २००० की साल में बात चली थी। (एक) ब्रह्मचारी सेठ थे। कुछ खबर नहीं, सब त्यागी नाम धारण करते हैं लेकिन तत्त्व की कुछ खबर नहीं। हमारे साथ दो मास रहे। (फिर कहा), आप जो बात कहते हो, उस बात की तो हमें कुछ खबर नहीं। हाथ की क्रिया आत्मा नहीं कर सकता। (संवत्) २००० की बात है, २५ वर्ष पहले। यहाँ रहे थे, एक कमरे में रहे थे। विहार में दो महीने साथ में थे।

गन्ने का रस लेने गये थे। गन्ने का रस लेने गये तो वहाँ उसके पास पूरा साफ कराये, क्या कहते हैं ? यन्त्र। साफ करावे, हाथ साफ करावे। परन्तु ऐसा खाने का काम क्या है आपको ? गन्ना साफ कराये, यन्त्र साफ कराये फिर गन्ने का रस लिया। फिर हमें कहा, लो, महाराज! इतना तो हमारे पास से लो। मैं साफ लाया हूँ, हाँ! लेकिन यह खाने का काम क्या है आपको ? (गन्नेवाले को) बारह आने-आठ आने लेने को कहा तो उसने नहीं लिया। महाराज के लिये है, ऐसा कहा तो साफ करके रस भर दिया। हमने कहा, ऐसा रस खाने का काम क्या है ? हमारे पास पैसे तो न ले लेकिन उसे कितनी मेहनत पड़ी। गन्ना साफ करे, यन्त्र साफ करे, आदमी का हाथ साफ हो। ऐसा गन्ने का रस खाकर काम क्या है आपको ? हम तो रस-बस लेते नहीं। आहा...हा...! अरे... भगवान!

फिर बात करते-करते कहा, हस्त की क्रिया आत्मा नहीं कर सकता। 'इन्दौर' में एक बाई है, उसको जानते हैं न ? 'इन्दौर' में बहुत जानपनावाली बाई है। उसे वांचन बहुत है, आजीवन पर्यन्त उसने प्रतिमा नहीं ली, क्योंकि प्रतिमा के योग्य हमारी दशा है नहीं। एक भी प्रतिमा नहीं ली। प्रतिमा किसको (होती है ?) पंचम गुणस्थान हो, अनुभव हो, शान्ति बढ़ गयी हो, फिर विकल्प आये तो प्रतिमा कहने में आती है। पूरी जीवन (प्रतिमा) नहीं ली। (ब्रह्मचारी ने कहा उस बाई को) पूछूँगा। (हमने कहा), यहाँ आत्मा को पूछ न! बाई क्या ? यह तो २५ वर्ष पहले की बात है। हस्तादिक की क्रिया, जड़ की क्रिया जड़ कर सके ? प्रश्न क्या है यहाँ ? यह हाथ चलाना, हिलाना आत्मा की क्रिया है ?

हिलना-चलना तो जड़ की क्रिया होती है। आत्मा में राग हो, वह तो कहते हैं। समझे? विकल्प होता है।

प्रश्न – राग...

समाधान – राग के कारण वह क्रिया नहीं हुई।

मुमुक्षु – आप उसकी भी तो ना कहते हो।

पूज्य गुरुदेवश्री – ना कहते हैं न! राग राग में रहा, राग के कारण चलने की क्रिया हुई? राग के कारण लोच की क्रिया हुई? बिल्कुल झूठ बात है। क्या बात है? वह तो जड़ की क्रिया है। जड़ की क्रिया जड़ के कारण अपने से होती है। राग आया तो हुई, ऐसा भी नहीं और वह क्रिया जड़ की होनी थी, इसलिए राग आया – ऐसा भी नहीं। ऐसी बात है। और वह राग आया तो वीतराग का भाव टिकता है, पंच महाव्रत का ऐसा राग है तो वीतराग भाव टिकता है – ऐसा भी नहीं। आहा...हा...! और वीतरागभाव है तो अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प उसके कारण से आता है – ऐसा भी नहीं। यहाँ चरणानुयोग (का अधिकार) है तो वह बात समझाने में आती है।

ऐसी जब वीतरागदशा हो, मुक्ति-आनन्द का कारण, परमानन्द का कारण सादि-अनन्त आनन्द का कारण ऐसी चारित्रदशा हो, उस समय ऐसा अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प में पंच महाव्रत मूल आता है। मूलगुण कहा न? मूलगुण कहा, उसकी व्याख्या चलती है। समझे? क्या आया?

लोच... लोच क्रिया। विकल्प, हाँ! लोच की क्रिया आत्मा कर सकता है, (ऐसा) तीन काल में नहीं। समझ में आया? हजारो आदमी इकट्ठे होते हैं (उन्हें ऐसा लगे), ओ...हो...हो...! कितना लोच करते हैं!

मुमुक्षु – आश्चर्य लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री – धूल भी आश्चर्यकारी नहीं। उसमें क्या है? भेड़ भी लोच कराते हैं।

मुमुक्षु – उस प्रकार का नहीं करते?

पूज्य गुरुदेवश्री – उस प्रकार का नहीं, यह तो उसका बाप है। यहाँ अभिमान है। मैं करता हूँ, दुनिया जाने, दुनिया जाने कि मैं ऐसी क्रिया करता हूँ, वह तो अभिमान है। प्रसिद्धि में आना है ? समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं कि विकल्प आता है परन्तु उसकी मर्यादा विकल्प तक है। **छह प्रकार के आवश्यक,....** देखो ! ये व्यवहार सामायिक का प्रश्न। निश्चय सामायिक तो एक व्रतरूप ली। उसका भेदरूप जो भाव (है), उसमें छह आवश्यकवाली सामायिक आयी न ! सामायिक, चौबीसी को, वंदन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, प्रत्याख्यान। इसमें सामायिक तो आयी परन्तु यह सामायिक विकल्प है। समझ में आया ?

वीतरागरूप सामायिक तो एक प्रकार की वास्तविक सामायिक है। उसमें पंच महाव्रत का शुभरागरूपी भाव, उसका समुदाय दास, अनुचरण उसमें यह सामायिक का विकल्प आये, आता है। समझ में आया ? कहते हैं कि सामायिक का विकल्प। चौवीसंथो — चौबीस तीर्थंकरों को वन्दन का राग, गुरु के वन्दन का राग। प्रतिक्रमण (अर्थात्) अशुभ से हटकर शुभभाव का राग। प्रत्याख्यान (अर्थात्) अशुभ से छूटकर शुभ का प्रत्याख्यान भाव और कायोत्सर्ग। है सब छह प्रकार का राग। आहा...हा... ! समझ में आया ? छह प्रकार हो गये न ? सामायिक, चोबीसंथो, वन्दन, प्रतिक्रमण, काउसग्ग और प्रत्याख्यान।

छह प्रकार के आवश्यक,.... देखो ! भाषा आवश्यक है। जरूर करना। वह व्यवहार की भाषा है। ए...ई... ! 'नियमसार' में आता है। '**णियमेण य जं कज्जं**' भगवान 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' कहते हैं, नियम से निश्चय करने योग्य है तो अपना स्वरूप दर्शन-ज्ञान-चारित्र वीतरागभाव '**णियमेण य जं कज्जं**' (नियम से करने योग्य है)। यह 'नियमसार' की तीसरी गाथा है। '**णियमेण य जं कज्जं**' ओ...हो... ! भगवान आत्मा निश्चय से जो करने योग्य है, वह तो निर्विकल्प सम्यग्दर्शन, निर्विकल्प स्वसंवेदन और निर्विकल्प वीतरागदशा। '**णियमेण य जं कज्जं**' ऐसा पाठ है।

(यहाँ जो कहते हैं) यह व्यवहार कार्य है। चरणानुयोग में ऐसा विकल्प आता है। नहीं तो आवश्यक का जो विकल्प है, वह करने योग्य है – ऐसा नहीं। ऐसी बुद्धि नहीं है।

आहा...हा... ! कठिन बात, भाई ! परन्तु आता है उसको आवश्यक है – ऐसा कहने में आया। कठिन मार्ग, भाई ! आया न ? छह आवश्यक-आवश्यक क्रिया। अवश्य करने योग्य – ऐसा कहा। व्यवहारनय से कहा है। अर्थात् कि ऐसा है नहीं, परन्तु आता है। उसको निमित्त का ज्ञान कराने को कहने में आया। आहा...हा... !

मुमुक्षु – .....क्रिया अवश्य होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री – ऐसा विकल्प आता है, बस इतना। आता है। लाता है, वह चरणानुयोग का व्यवहारनय का कथन है। उस भूमिका में आता है। उस प्रकार की योग्यता है तो राग का विकल्प आता है। उसको चरणनुयोग में अट्ठाईस मूलगुण पालते हैं। राग को पालते हैं – ऐसा अर्थ नहीं करना। पालता है, ऐसा चरणानुयोग की शैली में कथन चले। पालते हैं तो वीतरागभाव परन्तु ऐसा राग आता है तो व्यवहारनय से पालते हैं – ऐसा कहने में आता है। आहा...हा... !

मुमुक्षु – ....

पूज्य गुरुदेवश्री – लेकिन न पाले क्या ? होता है (वह) होता है। पाले क्या ? राग को पालना है ? रक्षा करनी है ? राग की रक्षा करनी जाये तो मिथ्यात्व हो जाता है।

मुमुक्षु – उसके बिना मुनिपना रहता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री – उसके बिना रहता नहीं अर्थात् ऐसा भाव होता है, उतना। उससे मुनिपना है ? मुनिपना वीतरागभाव से है। यह तो अचारित्र है। पंच महाव्रत (का) राग भाव तो अचारित्र है। अचारित्र, चारित्र का भेद ! देखो ! अट्ठाईस मूलगुण, वीतरागभाव का भेद है, (ऐसा कहते हैं) । सोने का दृष्टान्त आयेगा। दे, दृष्टान्त तो दे न ! व्यवहार की शैली है वहाँ, उस प्रकार का भाव होता है – ऐसी कथन पद्धति आती है। 'सद्गुरु कहे सहज का धन्धा, वाद-विवाद करे सो अन्धा' वाद-विवाद की यह चीज है नहीं, बापू ! ऐसी बात है, भाई ! आहा...हा... ! समझ में आया ?

देखो ! विवेक। दृष्टि (में) तो पर्याय को प्रगट करूँ – ऐसा भाव नहीं, क्योंकि परिणमन चालू है, उसमें प्रगट करूँ, (ऐसा) कहाँ आया ? समझ में आया ? दृष्टि तो द्रव्य पर पड़ी है, इतना बस। अब मैं परिणमूँ (ऐसा नहीं) । परिणाम तो है, उसमें परिणमूँ कहाँ

आया ? वीतरागभावरूप परिणमूँ – ऐसा भी नहीं। वह तो परिणमनशील भाव है तो होता ही है। उस समय में भी रागादि आता है तो होता है, उसको यहाँ व्यवहार से वीतरागभाव का भेद कहने में आता है। आहा...हा... ! कठिन शैली। निश्चय और व्यवहार की सन्धि।

कोई ऐसा कहते हैं कि हमें वीतरागभाव है। अब विकल्प का क्या काम है ? ऐसा विकल्प हमें होता नहीं। यहाँ एक साधु आये थे न ? 'समयसार' पढ़ते हैं न। वह जानता था कि यहाँ निश्चय की बात चलती है। (इसलिए कहता था), हमें विकल्प का क्या (काम है) ? व्यवहार का मुनियों को क्या काम है ? हम तो निश्चय में रहते हैं। ओ...हो... ! (संवत) २००९ की साल में आये थे। वह जानता था कि यहाँ निश्चय की बात चलती है। (इसलिए कहा), हम साधुओं को व्यवहार का क्या काम है ? और विकल्प उठते हैं, विकल्प है, वह मिथ्यात्व है। अरे... ! ऐसा नहीं होता। कुछ मालूम नहीं और 'समयसार' पढ़े। विकल्प मिथ्यात्व है... विकल्प मिथ्यात्व नहीं है, भाई ! विकल्प से धर्म माने तो मिथ्यात्व है। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करना, वह मिथ्यात्व नहीं। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा करना, वह तो राग है परन्तु उसको परमार्थ धर्म माने तो मिथ्यात्व है। समझ में आया ? आहा...हा... ! रागभाव तो नपुंसकता है। ए...ई... ! शास्त्र में ऐसा आया है न ? वीर्य तो स्वरूप की रचना करे। ऐसा आया या नहीं ? ४७ शक्ति। वीर्य तो स्वरूप के रचे, उसे वीर्य कहते हैं। राग को रचे उसे वीर्य कहते हैं ? शास्त्र में तो ऐसा कहा। 'पुण्य-पाप अधिकार' में पीछे (आता है), नपुंसक है। वह तो 'पुण्य-पाप' में आया। यह तो 'अजीव अधिकार' में आया न ? क्लीब। अजीव अधिकार। ४४ गाथा में आया है। क्लीब-नपुंसक है, आया है। राग का करना और राग में रहना, वह तो नपुंसक है।

यह बात यहाँ कहते हैं कि पंच महाव्रत का मूलगुण चारित्र का भेद है और उसके साथ ऐसा परिवार रहता है। भाई ! व्यवहार... व्यवहार... व्यवहार आता है, उसे करनेयोग्य है कहने में आता है। आता है। ऐसी बातें हैं, भाई ! यही 'अमृतचन्द्राचार्यदेव' ऐसा कहे, निश्चय से तो एक ही आवश्यक है। चरणानुयोग में (ऐसा कहे) छह आवश्यक है।

'सोगानी' कई बार ऐसा कहते हैं न कि 'हमें एक आवश्यक है पढ़कर चोट लगी थी।' तो ये सब छह आवश्यक में बोझा लगता है। बोझा लगताा है। बात सच्ची है।

ऐ...ई... ! क्या है ? 'न्यालचन्दभाई सोगानी' लिखते हैं, हमको आत्मधर्म मिला और उसमें जब एक आवश्यक की बात आई कि आवश्यक एक है। निश्चय से करने योग्य वीतरागभाव (है)। (ऐसा पढ़कर) हमको चोट लगी। तो हमारा कार्य हमने कर लिया, ऐसा लिखते हैं। 'गुरुदेव' ने कहा, ऐसा हमने किया। वह कार्य हमने किया। समझ में आया ? बहुत काम करके चले गये, देह छूटकर, पाँच वर्ष हो गये। अनुभव की दृष्टि, निर्विकल्प की दृष्टि को जोर इतना कि द्रव्यदृष्टि प्रधान ही उसका कथन चलता था, बस ! उसे कहाँ उपदेश देना था। उसे सभा इकट्ठी करे, बहुत (लोग) हो, ऐसा उन्हें कुछ था ? उस समय ऐसा आया। भाई ! उसे तो कोई जरूरत नहीं थी। समझ में आया ? कैसी बात है, देखो न ! ऐ...ई... ! आहा...हा... ! 'हमको भगवान का नाम सन्मुख का विकल्प आता है, वह भट्टी लगती है' - ऐसा लिखा। बात सच्ची (है)। भगवान के नाम की ओर लक्ष्य जाता है, भगवान यह तीर्थंकर है - ऐसा लक्ष्य जाता है तो भट्टी लगती है। शुभराग है न ! आग है, कषाय है या नहीं ? 'छहढाला' में कहा नहीं ? 'राग आग दहै सदा' भाषा तो लोग बहुत बोल लेते हैं परन्तु राग विकल्प हो तो भी दाह और अग्नि है, कषाय है। ये अट्ठाईस मूलगुण कषाय भट्टी है। आहा...हा... ! ऐ...ई... !

मुमुक्षु - वह तो निश्चय की बात है, व्यवहार से अमृत है।

पूज्य गुरुदेवश्री - व्यवहार से अमृत है, उसका अर्थ क्या ? (अमृत) है नहीं। व्यवहार का अर्थ क्या ? 'मोक्ष अधिकार' में कहा नहीं ? द्रव्य प्रतिक्रमण व्यवहार से अमृत है। व्यवहार से अमृत का अर्थ क्या ? व्यवहार से कहा, ऐसा है नहीं। समझ में आया ? व्यवहार तो ऐसा कहता है कि देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का राग, व्यवहार समकित है। व्यवहार समकित है। (तो क्या) राग व्यवहार समकित है ?

मुमुक्षु - लिखा तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री - परन्तु लिखा है उसका अर्थ क्या ? कि राग है, उसको समकित कहना वह व्यवहार है। व्यवहार अर्थात् ऐसा है नहीं; फिर भी राग, व्यवहार का विषय है परन्तु समकित कहते हैं, ऐसा नहीं।

मुमुक्षु - व्यवहार हो तो निश्चय शोभा देता है।

पूज्य गुरुदेवश्री – व्यवहार के बिना शोभा देता है। भगवान! ऐसी बात है, प्रभु! व्यवहार बिना निश्चय शोभा देता है। यह ठीक एक लाकडूँ नाख्यूँ। (एक और विपरीत मान्यता डाली)। आहा...हा...! भाई! व्यवहार के स्थान में व्यवहार हो। वह बात तो चलती है परन्तु उससे वीतरागभाव शोभे? रागभाव से वीतरागभाव शोभे? भाई! बापू! ऐसा है, भाई! चरणानुयोग की कथनी में जो आता है, वह आता है। आहा...हा...! यहाँ तो जितने बोल कहते हैं, वह सब शुभभाव के हैं।

मुमुक्षु – दीक्षा लेने का भाव तो आवे न!

पूज्य गुरुदेवश्री – दीक्षा का भाव था कब?...

पुण्य का योग हो तो (पैसा मिलता है)। किसी के कारण कुछ होता नहीं। पुण्य का योग हो, उसमें आत्मा को क्या लाभ है? करोड़ हो या दो करोड़ हो या पाँच करोड़ हो, शरीर सुन्दर हो, उसमें आत्मा को क्या लाभ है? समझ में आया? वह तो नुकसान है। उस ओर लक्ष्य जाता है, (उसमें) नुकसान... नुकसान... नुकसान, खोट का धन्धा करता है। ये अट्ठाईस मूलगुण भी खोट का धन्धा है। खोट का समझे? नुकसान का धन्धा परन्तु आये बिना रहता नहीं, अत: चरणानुयोग में अट्ठाईस मूलगुण करना आवश्यक है, पालते हैं – ऐसा कहने में आता है। पूर्ण वीतराग न हो, (तब तक आता है)। वीतरागभाव तो है परन्तु पूर्ण वीतराग न हो तो ऐसा भाव आता है, परन्तु आदरणीय है, आश्रय करने योग्य है, उसमें सुखबुद्धि है, हितबुद्धि है (– ऐसा) है नहीं। हेयबुद्धि से आता है। समझ में आया? कठिन काम। शास्त्र की शैली पद्धति को समझना। 'जहाँ-जहाँ जो-जो योग्य है, वहाँ समझना वही', भाई! 'वहाँ-वहाँ वह-वह आचरे, आत्मार्थीजन सही।' भगवान! ऐसी चीज है।

अचेलपना,.... देखो! अचेलपना आये बिना रहे नहीं। वस्त्ररहितपना। समझ में आया? मुनिपना वीतरागता हुई और किसी को वस्त्र रखने का भाव रहे, (–ऐसा) तीन काल में होता नहीं। समझ में आया? (कोई कहे कि) हमें वस्त्र के प्रति मूर्च्छा नहीं है, मूर्च्छा नहीं है। हम तो परीषह सहन नहीं होता है तो रखते हैं; तो कहते हैं, झूठ बात है। समझ में आया? वस्त्र की लंगोटी एक धागा भी रखे तो भी वहाँ मुनिपना के योग्य नहीं है ऐसा राग है। ऐसा राग है, वहाँ मुनिपना है नहीं। ऐसी दशा की बात है, भाई! यहाँ किसी

का पक्ष करके ऐसा (कहे) ऐसी बात नहीं। यह तो वीतराग मार्ग है। जैसा सत्य का स्तर अनादि से है, वह बात है। समझ में आया ?

एक साधु यहाँ आया था। विद्वान था। चार मास सुना। श्वेताम्बर साधु। उसने कहा, बहुत बात है। बाद में बाहर निकलकर कहे, (महाराज) कहते हैं कि निर्विकल्पता मार्ग है, फिर कहते हैं मुनिपने में वस्त्र भी बाधा करता है। वस्त्र भी बाधा करता है। (हमने कहा) वस्त्र बाधा करता है – ऐसा किसने कहा ? वह तो परद्रव्य है। परन्तु (वस्त्र) ग्रहण का भाव है, वह विरोध है। वस्त्र ग्रहण का भाव है, वहाँ मुनिपना है नहीं। ऐसा अचेलपना का भाव—शुभराग आये बिना रहता नहीं। विशेष बात करेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. २११ **आषाढ़ शुक्ल ९, मंगलवार, २४ जून १९६९**

यह 'प्रवचनसार' चरणानुयोगसूचक चूलिका (अधिकार) चलता है। साधुपद लेने की विधि। प्रथम तो उसे आत्मा का अनुभव होना चाहिए। पहले सामायिक कहा न ? समय में परिणमित होते। सम्यग्दर्शन उपरान्त सामायिक में साधु (का) परिणमन होता है। वीतरागरूप शुद्ध उपयोग परिणमित होता है। यहाँ तो चौथे से (शुद्धोपयोग) शुरु होता है और मुनिपना में मुख्यपने सातवें में है और गौणपने छठे (गुणस्थान में) भी शुद्ध उपयोग कहने में आया है। ए...ई... ! चरणानुयोग में आयेगा। छठे गुणस्थान में विकल्प हुआ, फिर भी शुद्ध उपयोग गिनने में आया है। उस भूमिका के योग्य शुद्ध उपयोग की परिणति है तो उसके योग्य विकल्प से विरुद्ध विकल्प न हो तो शुद्ध उपयोग गिनने में आया है। शुद्ध की परिणति के साथ ऐसा विकल्प है। यह तो 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' मुनि अपनी बात करते हैं। हमारा अनुभूत मार्ग है, वह तुमको कहते हैं, जिसको अंगीकार करना हो तो इस विधि से अंगीकार करो। मार्ग तो दोनों बताये न !

कहते हैं, पहले तो सामायिक एक महाव्रत की व्यक्ति। भगवान आत्मा ! शुद्ध पूर्ण कृतकृत्य परमात्मस्वरूप (है), ऐसी पहले अनुभवदृष्टि हुई, ज्ञानज्योति प्रगट हुई, उसका

नाम तो सम्यग्दर्शन है। आनन्द का अनुभव, शान्ति का वेदन और रागादि (से) पृथक् - ऐसा अनुभव होता है, यह ज्ञानज्योति प्रगट हुई। तब से सम्यग्दृष्टि कहने में आया है। बाद में जब साधुपना लेते हैं तो सामायिक का परिणमन होता है। शुद्ध उपयोग वीतरागरूपी परिणति होती है। समझ में आया? ये अट्ठाईस मूलगुण उसका व्यवहार से भेद है। अट्ठाईस मूलगुण है, वह व्यवहार से सामायिक का भेद है। व्यवहार से भेद है। वह कहते हैं, देखो! अपने बोल आ गया है।

पहले तो उसे पंच महाव्रत का परिणाम होता है और पंच महाव्रत के परिणाम में अनुचर, उसका सेवक। है न अनुचरसमूह? सेवक का समूह होता है। अहिंसादि पंच महाव्रत का विकल्प; है विकल्प, शुभराग है, परन्तु अनुभव की शुद्ध परिणतिपूर्वक / शुद्ध निर्विकल्प की परिणति—पर्यायपूर्वक मुनि को ऐसी सामायिक के भेदरूप अट्ठाईस (प्रकार के) विकल्प आते हैं। पंच महाव्रत, उसकी परिकर (अर्थात्) अनुचर समूह। **पाँच प्रकार की समिति, पाँच प्रकार का इन्द्रियरोध, लोच, छह प्रकार के आवश्यक,....** वहाँ (तक) आया है न? बाईस बोल हुए। बाईस बोल। छह बोल रहे। क्या? समझ में आया? मुनिपने की ऐसी विधि समझनी तो पड़ेगी या नहीं? मुनिपना जैसा है - ऐसा श्रद्धा में न आवे तो श्रद्धा विपरीत हो जायेगी। समझ में आया?

आत्मा का भान है, चिदानन्द आत्मा आनन्दस्वरूप सच्चिदानन्द प्रभु, ऐसा आनन्द के वेदन के उपरान्त प्रचुर आनन्द के वेदन में सामायिक की परिणति—दशा वीतराग होती है। इस भूमिका में अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प होता है। यहाँ तक आया है, देखो!

उसे **अचेलपना....** आता है। ऐसा मुनि हो, उसको तो दिगम्बरदशा हो जाती है। वस्त्र का बिल्कुल धागा नहीं (होता) - ऐसी वस्तु की स्थिति है। यह कोई सम्प्रदाय की बात नहीं। श्वेताम्बर में कहते हैं कि अचेलत्व अर्थात् बहुत थोड़ा वस्त्र, अल्प वस्त्र (होता है)। जैसे कहते हैं न, छोटी कन्या हो तो उसे पेटे ऊणोदरी है, (ऐसा कहते हैं)। उसे पेट ही कहाँ है? पेट ही नहीं है, ऐसा कहते हैं न? पेट नहीं है (कहते हैं) परन्तु है तो सही, किन्तु थोड़ा छोटा पेट है। पेट नहीं दिखे तो कहते हैं, देखो! उसको पेट ही कहाँ है? ऐसे बहुत थोड़े वस्त्र हो तो उसको वस्त्र है नहीं - ऐसा कहते हैं। ऐसी बात यहाँ है नहीं।

मुमुक्षु – .....

पूज्य गुरुदेवश्री – वह दूसरी बात है और यह दूसरी बात है। भेद किये हैं तो वस्त्र होता है ? ऐसा है नहीं। स्थविरकल्पी है, बहुत समुदाय में साधु रहते हैं; जिनकल्पी अकेले रहते हैं। है तो दोनों नग्न मुनि। उसमें कोई फर्क है नहीं। समझ में आया ? आगे आयेगा कि परप्राणी की हिंसा हो, उससे बन्ध नहीं। वह तो वीतरागभाव से अबन्ध परिणाम है परन्तु परिग्रह रखने से बन्ध एकान्त होगा। समझ में आया ? वस्त्र आदि का खण्ड, टुकड़ा रखे और कहे कि मैं साधु हूँ (तो यह) बिल्कुल झूठ बात है। समझ में आया ? वस्तु की मर्यादा ऐसी है। आहा...हा... !

मुमुक्षु – ....

पूज्य गुरुदेवश्री – यह भी अपवाद है। नग्नपना का रहना, वही अपवाद / विकल्प (है), वह अपवाद है। उत्सर्गमार्ग तो अन्दर वीतरागपने परिणमित होना, वही उत्सर्गमार्ग है परन्तु उस भूमिका में जब तक पूर्ण वीतरागता न हो तो ऐसा अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प आये बिना रहते नहीं। ऐसी चीज है। वही अपवाद है। ओ...हो...हो... ! विवाद... विवाद... विवाद। लोगों को अपना पक्ष (छूटता नहीं)। जिसमें जो पक्ष ले लिया, उसको सिद्ध करने को फिर कुतर्क लगावे। यह तो वीतरागमार्ग है, भाई ! पंचम काल कहाँ छूता है ? पंचम काल क्या ? पंचम काल में क्या कोई (अलग विधि से) शीरा बनता है ? क्या कहते हैं ? हलुवा ! उसमें धूल डालकर हलुवा बनता है ? हलुवा तो आटा, घी और दूध तीन से बनता है या चौथे से बनता है ? इस अलौकिक बात में बिल्कुल फर्क है नहीं।

मुमुक्षु – लौकिक में भी फर्क नहीं है तो अलौकिक में तो फर्क कहाँ हो सकता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री – लौकिक में फर्क भी होता है। घी नहीं डालकर तेल डाले। हलुआ में ऐसा होता है। गरीब आदमी होता है, वह तेल का हलुआ बनाता है। समझ में आया ? हम तो छोटी उम्र से सब देखा है न ! उस समय सब देखा है।

(वस्त्र का) एक टुकड़ा हो तो भी वह साधु नहीं। सत्ताईस (भेद) भी नहीं। एक भी नहीं। एक खण्ड / अपूर्ण है तो सब झूठा है। बात ऐसी है। समझ में आया ?

अचेलपना,.... दिगम्बरपना। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। जैसे अन्तर में सम्यग्दर्शनपूर्वक सामायिक की वीतरागदशा प्रगट हो; सामायिक है न? देखो! उसमें आया है। (२०७ गाथा की फुटनोट में लिखा है) 'समय में (आत्मद्रव्य में, निजद्रव्यस्वभाव में) परिणमित होना सो सामायिक है।' इस ओर आ गया है। आ...हा...! भगवान आत्मा! आत्मद्रव्य में परिणमना। (तो) राग, आत्मद्रव्य है? वह तो आस्रव है, विकल्प है। मार्ग बापू (ऐसा है)। बचाव करे, (ऐसा) नहीं चले। समझ में आया? आत्मज्ञान और इसके उपरान्त जहाँ मुनिपना (है), वहाँ तो उसको अचेलपना ही होता है। भगवान तीर्थंकर ने भी पहले से अचेलपना ग्रहण किया। (सबको) बता दिया कि मार्ग तो ऐसा है, भाई! समझ में आया?

अस्नान,.... बिल्कुल स्नान नहीं। मुनि को स्नान होता नहीं। ...का भाव राग है। ऐसा राग मुनि को होता नहीं। **भूमिशयन,....** भूमि में सोना। समझ में आया? घास का बिछाना, ऐसा बिछाना करके सोना, वह मुनि का मार्ग है नहीं। समझ में आया? घास बिछाकर बैठ जाना, चारों ओर घास (बिछाकर बैठना), वह मुनिमार्ग नहीं। वह मार्ग नहीं है, बापू!

एक संज्वलन का देशघाति स्पर्धक है। तीन कषाय का अभाव (है)। संज्वलन का सर्वघाती स्पर्धक का, संज्वलन है देशघाति प्रकृति। देशघाति का स्पर्धक दो प्रकार का है। उसमें सर्व स्पर्धक, सर्वघाति और देशघाति। देशघाति स्पर्धक है, वह छठे होते हैं। ऐसा मार्ग है, भाई! समझ में आया? स्पर्धक हाँ! उसकी प्रकृति देशघाती है। दो प्रकार के स्पर्धक होते हैं। सर्वघाती स्पर्धक होता नहीं। वीतरागभाव... ओ...हो...हो...! जिसमें चारित्रदशा, आनन्ददशा, परमेश्वरदशा। परमेष्ठी में मिल गये न! समझे?

'श्रीमद्' में वह आता है, 'नग्नभाव मूंडभाव सह अस्नानता... नग्नभाव मूंडभाव सह अस्नानता, अदंतधोवन आदि परम प्रसिद्ध जो, अदंत धोवन आदि परम प्रसिद्ध जो, अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा? कब होऊँगा बाह्यांतर निर्ग्रन्थ जो...' देखो! सम्यग्दृष्टि है, आत्मज्ञानी है, भावना भाते हैं। समझ में आया? अ...हो...! बाह्य-अभ्यन्तर निर्ग्रन्थ। 'देह मात्र संयमहेतु होय जो,' उसमें आता है। 'देहमात्र संयमहेतु होय जो, अन्य कारणे अन्य कशुं कल्पे नहीं, अन्य कारणे अन्य कशुं कल्पे नहीं, देहे पण किंचित् मूर्छा नव होय जो, अपूर्व अवसर ऐसा कब आयेगा?'

यह अपूर्व अवसर (संवत्) १९७७ की साल में 'बोटाद' में बोलते थे। ऐसा विरोध किया, बहुत विरोध किया। १९७७ की साल की बात है, ४८ वर्ष हुए। विरोध किया कि ऐसी भावना क्यों की ? साधुपना लेना हो तो उन्हें कौन रोकता था ? मूर्ख ऐसा बोलते थे। साधुपना की ऐसी भावना भावे, इसलिए तुरन्त साधुपना आ जाता है, ऐसा है ? और साधुपना इसलिए एकदम ले लिया, पर छोड़ दिया और वस्त्र छोड़ दे, इसलिए साधुपना आ जाये – ऐसी चीज है ? अन्तर में वीतरागता प्रगट हो और उस प्रकार से नग्न आदि दशा हो, उसकी बात—भावना (है)। समझ में आया ? हमारे तो बहुत प्रश्न चला। १९७७ की साल। ७७ कहते हैं ? संवत् १९७७। श्रावक ऐसी भावना न भाये ? अरे... ! कब हम सर्व परिग्रह छोड़े। वह भी कहा था कि कब हम अल्प और महापरिग्रह छोड़ दे ? कब मैं यह छोड़कर मैं सल्लेखना करूँ, समाधिमरण करूँ ? ऐसी भावना करते हैं। आता है न, तीन बोल की भावना आती है। भावना भावे, इसलिए वह तुरन्त ही कर दे तो उसकी भावना सच्ची है, ऐसी बात है ?

मैंने उसकी बात करी न कि, श्वेताम्बर में... वह बात उसी दिन कही। भाई ! ये तो ऐसा कहते हैं। श्रावक समकिती ज्ञानी पंचम गुणस्थान में हो तो (ऐसी) भावना भाते हैं। परन्तु मुनिपना ले सकते नहीं। ले सकते नहीं तो भावना झूठी है ? ले ले साधुपना। स्वयं साधु है न (इसलिए ऐसा कहते हैं)। हम वस्त्र छोड़कर बैठ गये। (साधुपना) था कब ? वस्त्र अर्थात् गृहस्थ का (कपड़ा)। चोरणा, कोट इत्यादि। वस्त्र छोड़ दिया। अरे... भगवान ! बापू ! साधुपना अलग चीज है, भाई ! १९७७ में हाँ ! १९७७ की साल, ४८ वर्ष हुए। पचास में दो कम। बहुत विवाद करते थे। अरे... ! भाई ! मुनिपना तो अलौकिक चीज है। 'श्रीमद्' तो गृहस्थाश्रम में भावना भाते हैं। आ...हा... ! धन्य अवतार ! धन्य समय ! वह काल ! हमारी दशा बाह्य और अभ्यन्तर (दिगम्बर हो), हम मुनिपना अंगीकार करे। वह अपूर्व अवसर ऐसा कब आये ? समझ में आया ? और अन्तर सम्यग्दर्शन बिना अथवा सम्यक्चारित्र बिना ऐसे बाह्य का त्याग कर दे तो साधुपना हो जाता है ? समझ में आया ?

श्वेताम्बर में तीन बोल आते हैं। वह बात उस दिन कही थी। (उसमें) विवाद (करते थे)। (हमने कहा था), भाई ! 'ठाणांगसूत्र' में ये तीन प्रकार आते हैं न ! (उसमें

तो) यह भावना करते हैं। (वे कहने लगे), 'मूर्ख हो। मूर्ख को साधुपना लेना नहीं था और भावना भावना करते हैं। साधुपना लेना था तो कहाँ तकलीफ थी ?' भाई! ऐसा विवाद। अरे... भगवान! बापू! भाई! साधुपद किसे कहना ? वह तो अलौकिक चीज है! साधुपद तो परमेश्वरपद है। परमेश्वरपद में तो एक संज्वलन का एक मन्द कषाय का विकल्प रह जाता है। ऐसी वीतरागदशा में झूलनेवाला, उसको यह अट्ठाईस मूलगुण होता है।

अस्नान, भूमिशयन, अदंतधावन.... दन्त को धोवे नहीं। समझ में आया ? सरितावाले हैं न, वह निन्दा बहुत करता है। (एक) अखबार है। (उसमें लिखता है), मुनि के दाँत ऐसे होते हैं। अरे... भगवान! तुझे मालूम नहीं। भाई! निन्दा मत कर। नग्न साधु तो भगवान हुआ। अन्दर स्वरूपसहित की बात है, हाँ! अकेला नग्न (हो जाये उसकी बात नहीं)। बहुत निन्दा करते थे। ऐसा लिखा है, ...भाई! तुझे नग्नपना लगता है। बालक नग्न नहीं होता ? और नग्नपने जन्म लेता है या नहीं ? क्या कोई वस्त्र लेकर जन्म लेता है ? वस्त्रसहित जन्म ले सके नहीं, वस्त्रसहित कोई जल सके नहीं। जलाने में भी वस्त्र का टुकड़ा होता है, उसे ले लेते हैं। ऐसा है न ? भाई! (वस्त्र) हो तो जले नहीं। इसलिए कपड़ा ले लेते हैं तो जलता है। जन्म समय ऐसा आया, वैसा मरते समय करते हैं। बीच में भी मुनि की दशा ऐसी होती है।

अदन्तधावन (दातुन न करना), खड़े-खड़े भोजन,.... एक बार खड़े (रहकर) भोजन करना। कोई खड़े न रह सके तो सल्लेखना कर ले, समाधिमरण कर ले। समझ में आया ? परन्तु दूसरे का सहारा लेकर खड़े हो, ऐसी चीज है नहीं। आहा...हा...! सिंहवृत्ति है। ओ...हो...! अवतार... धन्य चारित्रदशा! मुनिदशा, इन्द्रों को पूज्य है। गणधरों भी जिनको नमस्कार करते हैं। अ...हो...! उस चीज का कौन विरोध करे, निन्दा करे ? भाई! वह वस्तु होनी चाहिए न!

कहते हैं, **खड़े-खड़े भोजन,....** आ...हा...! शरीर में ऐसा हो जाये (तो) समाधिमरण करे। सिंहवृत्ति है। सन्तों तो खापण साथ में लेकर निकलते हैं ? खापण समझते हैं ? मरण का साधन। आँख से दिखे नहीं तो वे चश्मा लगाते नहीं। समझ में आया ? ऐसा मार्ग है, बापू! मार्ग तो यही है। उसमें कुछ भी गड़बड़ करनी नहीं। यह चीज अलौकिक है।

और एक बार आहार.... लेना। लो। एक ही बार आहार (लेना)। थोड़ा पानी पी लिया, फिर नहीं लेना हो तो फिर पूरा हो गया, दूसरी बार (नहीं लेते)। ऐसी बात है। **इस प्रकार ये (अट्ठाईस) निर्विकल्प सामायिकसंयम के विकल्प (भेद)....** हैं। लो। निमित्त से व्यवहारनय का भेद (बताते हैं)। चरणानुयोग है न! **निर्विकल्प सामायिक....** आत्मा की वीतराग दशा। प्रचुर आनन्द का वेदन। आ...हा...हा...! अतीन्द्रिय आनन्द का उत्थान, ऐसी उत्थान दशा, आनन्द में लीन, आनन्द में लीन। दु:ख है नहीं। परीषह में दु:ख लगता नहीं। ऐसी निर्विकल्प सामायिक का भेद है। व्यवहार की बात है। निमित्त है न! निमित्त है।

श्रमणों के मूलगुण ही हैं। लो, व्यवहार। मूलगुण तो अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि ये अपने मूलगुण (हैं)। अनन्त केवलज्ञान, दर्शन, आनन्द भगवान मूलगुण है। उसका आश्रय करके सम्यग्दर्शन प्रगट किया, उसमें स्थिरता (करके) चारित्र प्रगट किया (तो) ऐसा व्यवहारनय से अट्ठाईस मूलगुण को व्यवहार मूलगुण कहने में आता है। **जब (श्रमण) निर्विकल्प सामायिकसंयम में आरूढ़ता के कारण....** वीतरागस्वरूप आत्मा में लीन है, आरूढ़ है। **जिसमें विकल्पों का अभ्यास (सेवन) नहीं है....** ऐसे विकल्प का-भेद का अभ्यास नहीं है। **ऐसी दशा में से च्युत होता है,....** विकल्प आता है, ऐसा (कहना है)।

तब 'केवल सुवर्णमात्र के अर्थी को.... जैसे सोना-सुवर्ण लेना है, तो सुवर्ण अकेला नहीं मिले तो **कुण्डल, कंकण, अंगूठी आदि को ग्रहण करना (भी) श्रेय है,....** व्यवहार से दृष्टान्त दिया है, हाँ! **किन्तु ऐसा नहीं है कि (कुण्डल इत्यादि का ग्रहण कभी न करके) सर्वथा स्वर्ण की ही प्राप्ति करना ही श्रेय है।'** ऐसा (कहते हैं) कि सामायिक की स्थिरता वीतराग की न रहे तो ऐसा अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प आये बिना रहे नहीं; तो विकल्प में भी अशुभभाव घटते हैं - ऐसा कहते हैं। अकेला सुवर्ण मिले तो तो बहुत (अच्छा है), स्थिरता बहुत हो जाये तो (अच्छा है)। परन्तु ऐसा न हो तो अट्ठाईस मूलगुण का अशुभराग घटता है। (जैसे) कंकण में से सोना निकाल लेना, ऐसे कहते हैं कि अशुभराग घटा देना, घटते हैं, ऐसा ले लेना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

शुभ में अशुभभाव घटते हैं न! शुद्ध परिणति है, वीतरागदशा है। उसमें स्थिर उपयोग न रख सके, आनन्द है, सब परिणति शुद्ध ही है, जब (शुद्ध से च्युत) होकर शुभभाव में आया तो इतना अशुभ घटता है। शुभ के कारण अशुभ घटता है, ऐसा यहाँ लेना है। समझ में आया? इसलिए कहा न, श्रेय है। शुभभाव करना, यह श्रेय है। इसका अर्थ कि उसमें अशुभभाव घटते हैं, ऐसे लेना।

श्रेय है, किन्तु ऐसा नहीं है कि (कुण्डल इत्यादि का ग्रहण कभी न करके) सर्वथा स्वर्ण की ही प्राप्ति करना ही श्रेय है'.... शुद्ध हो तो शुद्ध हो, नहीं तो शुभभाव होता ही नहीं - ऐसा है नहीं। शुभ होता है, शुद्ध के भानसहित, आनन्द वीतराग सहित शुभभाव होता है तो उसमें अशुभभाव घटता है, ऐसा श्रेय लेना - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? **ऐसा विचार करके मूलगुणों में विकल्परूप से (भेदरूप से) अपने को स्थापित करता हुआ छेदोपस्थापक होता है।** लो। ये छेदोपस्थानक, हाँ! अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प हुआ, वही छेद (है)। वैसे तो छेदोपस्थान चारित्र है। चारित्र तो संवर और निर्जरा है परन्तु यहाँ अन्तर आनन्द में स्थिर नहीं रह सकता तो अट्ठाईस मूलगुण (का विकल्प) आया, उसको भी छेदोपस्थानक व्यवहार से कहने में आता है। वास्तव में तो मात्र वीतरागता ही छेदोपचारित्र है। समझ में आया? ...चारित्र है या नहीं? चारित्र के पाँच भेद है या नहीं? तो पाँचों चारित्र संवर, आनन्दरूप है, संवररूप है। आहा...हा...! परन्तु साथ में ऐसा आया और स्थिर नहीं रह सकता तो उसको भी छेदोपस्थानक व्यवहार से कहने में आया। चरणानुयोग का ग्रन्थ है न! २०८-२०९ (गाथा पूरी हुई)।

गाथा - २१०

अथास्य प्रव्रज्यादायक इव छेदोपस्थापकः परोऽप्यस्तीत्याचार्यविकल्पप्रज्ञापनद्वारेणोपदिशति-

लिंगग्गहणे तेसिं गुरु त्ति पव्वज्जदायगो होदि।
छेदेसूवट्ठवगा सेसा णिज्जावगा समणा।।२१०।।

लिङ्ग्ग्रहणे तेषां गुरुरिति प्रव्रज्यादायको भवति।
छेदयोरुपस्थापकाः शेषा निर्यापकाः श्रमणाः।।२१०।।

यतो लिङ्ग्ग्रहणकाले निर्विकल्पसामायिकंसंयमप्रतिपादकत्वेन यः किलाचार्यः प्रव्रज्यादायकः स गुरुः, यः पुनरनन्तरं सविकल्पच्छेदोपस्थापनसंयमप्रतिपादकत्वेन छेदं प्रत्युपस्थापकः स निर्यापकः, योऽपि छिन्नसंयमप्रतिसन्धानविधानप्रतिपादकत्वेन छेदे सत्युपस्थापकः सोऽपि निर्यापक एव। ततश्छेदोपस्थापकः परोऽप्यस्ति।।२१०।।

एवं मूलोत्तरगुणकथनरूपेण द्वितीयस्थले सूत्रद्वयं गतम्। अथास्य तपोधनस्य प्रव्रज्यादायक इवान्योऽपि निर्यापकसंज्ञो गुरुरस्ति इति गुरुव्यवस्थां निरूपयति-**लिंगग्गहणे तेसिं** लिङ्गग्रहणे तेषां तपोधनानां **गुरु त्ति होदि** गुरुर्भवतीति। स कः। **पव्वज्जदायगो** निर्विकल्पसमाधिरूपपरमसामायिक-प्रतिपादको यौऽसौ प्रव्रज्यादायकः स एव दीक्षागुरुः, **छेदेसु अ वट्टगा** छेदयोश्च वर्तकाः ये **सेसा णिज्जावगा समणा** ते शेषाः श्रमणा निर्यापका भवन्ति शिक्षागुरुवश्च भवन्तीति। अयमत्रार्थः- निर्विकल्पसमाधिरूपसामायिकस्यैकदेशेन च्युतिरेकदेशच्छेदः, सर्वथा च्युतिः सकलच्छेद इति देशसकल-भेदेन द्विधा छेदः। तयोश्छेदयोर्ये प्रायश्चित्तं दत्वा संवेगवैराग्यजनकपरमागमवचनैः संवरणं कुर्वन्ति ते निर्यापकाः शिक्षागुरवः श्रुतगुरवश्चेति भण्यन्ते। दीक्षादायकस्तु दीक्षागुरुरित्यभिप्रायः।।२१०।।

अब, इनके (श्रमण के) प्रव्रज्यादायक की भाँति छेदोपस्थापक, पर (दूसरा) भी होता है ऐसा, आचार्य के भेदों के प्रज्ञापन द्वारा उपदेश करते हैं—

दीक्षा-ग्रहण में जो गुरु, दीक्षा-गुरु वे जानना।
अरु शेष निर्यापक-गुरु, करें छेद-द्वय उपस्थापना॥२१०॥

अन्वयार्थ – **[लिंगग्रहणे]** लिंगग्रहण के समय **[प्रव्रज्यादायकः भवति]** जो प्रव्रज्या (दीक्षा) दायक हैं वह **[तेषां गुरुः इति]** उनके गुरु हैं और **[छेदयोः उपस्थापकाः]** जो छेदद्वय[१] में उपस्थापक हैं (अर्थात् १-जो भेदों में स्थापित करते हैं तथा २- जो संयम में छेद होने पर पुनः स्थापित करते हैं) **[शेषाः श्रमणाः]** वे शेष श्रमण **[निर्यापकाः]** निर्यापक[२] हैं।

टीका – जो आचार्य लिंगग्रहण के समय निर्विकल्प सामायिकसंयम के प्रतिपादक होने से प्रव्रज्यादायक हैं, वे गुरु हैं; और तत्पश्चात् तत्काल ही जो (आचार्य) सविकल्प छेदोपस्थापनासंयम के प्रतिपादक होने से 'छेद के प्रति उपस्थापक (भेद में स्थापित करनेवाले)' हैं, वे निर्यापक हैं; उसी प्रकार जो (आचार्य) छिन्न[३] संयम के प्रतिसंधान[४] की विधि के प्रतिपादक होने से 'छेद होने पर उपस्थापक (संयम में छेद होने पर उसमें पुनः स्थापित करनेवाले)' हैं, वे भी निर्यापक ही हैं। इसलिए छेदोपस्थापक[५], पर भी होते हैं ॥२१० ॥

प्रवचन नं. २११ का शेष **आषाढ़ शुक्ल ९, मंगलवार, २४ जून १९६९**

अब, इनके (श्रमण के) प्रव्रज्यादायक की भाँति छेदोपस्थापक पर (दूसरा) भी होता है.... उसको दीक्षा देते हैं और फिर छेदोपस्थानक दूसरे आचार्य भी होते हैं। **भेदों के प्रज्ञापन द्वारा उपदेश करते हैं—**

लिंगग्गहणे तेसिं गुरु त्ति पव्वज्जदायगो होदि।
छेदेसूवट्ठवगा सेसा णिज्जावगा समणा।।२१०।।

१. छेदद्वय = दो प्रकार के छेद। [यहाँ, (१) संयम में जो २८ मूलगुणरूप भेद होते हैं, उसे भी छेद कहा है और (२) खण्डन अथवा दोष को भी छेद कहा है।]

२. निर्यापक = निर्वाह करनेवाला; सदुपदेश से दृढ़ करनेवाला; शिक्षागुरु, श्रुतगुरु।

३. छिन्न = छेद को प्राप्त; खण्डित; टूटा हुआ, दोष प्राप्त।

४. प्रतिसंधान = पुनः जोड़ देना वह; दोषों को दूर करके एकसा (दोष रहित) कर देना वह।

५. छेदोपस्थापक के दो अर्थ : (१) जो 'छेद (भेद) के प्रति उपस्थापक' है, अर्थात् जो २८ मूलगुणरूप भेदों को समझाकर उसमें स्थापित करता है, वह छेदोपस्थापक है; (२) जो 'छेद के होने पर उपस्थापक' है, अर्थात् संयम के छिन्न (खण्डित) होने पर उसमें पुनः स्थापित करता है, वह भी छेदोपस्थापक है।

दीक्षा-ग्रहण में जो गुरु, दीक्षा-गुरु वे जानना।
अरु शेष निर्यापक-गुरु, करें छेद-द्वय उपस्थापना ॥२१०॥

गुजराती है। गुजराती है तो हिन्दी तो दूसरा ही करना पड़े। हिन्दीवाले करते नहीं। कौन मंजूर नहीं करते ? ऐसा हिन्दी बनाये तो कौन ना कहता है ? वह बनाये तो भी पाठ ठीक होना चाहिए न। उसमें फेरफार न हो-ऐसा पाठ होना चाहिए न! समझ में आया ?

उसकी टीका। **जो आचार्य लिंगग्रहण के समय....** भावलिंग और द्रव्यलिंग ग्रहण के समय। मुनि ने भावलिंग और द्रव्यलिंग ग्रहण किया, उस काल में। **निर्विकल्प सामायिकसंयम के प्रतिपादक होने से....** वीतरागपना की सामायिक को कहनेवाले होने से। **प्रव्रज्यादायक हैं, वे गुरु हैं;....** सामायिक दिया, वे प्रव्रज्यादायक गुरु हैं। समझ में आया ?

और तत्पश्चात् तत्काल ही.... देखो! **जो (आचार्य) सविकल्प छेदोपस्थापना-संयम के प्रतिपादक होने से 'छेद के प्रति उपस्थापक (भेद में स्थापित करनेवाले)' हैं,....** यह छेद अर्थात् दोष नहीं। भेद में स्थापन करना। भेद अट्ठाईस मूलगुण स्थापन करते हैं, **वे निर्यापक हैं;....** निर्वाह करानेवाले कहने में आता है। **उसी प्रकार जो (आचार्य) छिन्न संयम के प्रतिसंधान की विधि के प्रतिपादक होने से....** दूसरा। उसमें जो दोष लगे, आत्मा की वीतरागता सामायिक अंगीकार की, उसमें रह सके नहीं। अट्ठाईस मूलगुण का (विकल्प) आया, उसको भी छेदोपस्थान कहते हैं और उसमें कोई दोष लगे और दोष लगे तो उसका प्रायश्चित्त ले, उसको भी छेदोपस्थान कहने में आता है। छेदोपस्थान दो प्रकार का है। समझ में आया ? भेद जो है, सामायिक का भेदरूप विकल्प तो उसकी भूमिका में होता है, फिर भी भेद को छेदोपस्थान कहा; और उसमें कोई दोष लगे, उस भूमिका के योग्य अट्ठाईस मूलगुण में भी विचलित हो जाये तो फिर उसको दण्ड दे, छेद करे, प्रायश्चित्त दे, उसको भी यहाँ छेदोपस्थान कहने में आया है। समझ में आया ? साधु की स्थिति समझनी पड़ेगी या नही ? जहाँ-तहाँ सबको साधु मान ले, ये साधु है और ये साधु है (ऐसा नहीं चलता)। देव-गुरु और शास्त्र यथार्थ क्या है ? - उसकी प्रतीत बराबर पहिचानना चाहिए। समझे ? ऐसे ही पहचान बिना किसी को भी गुरु मान ले, देव मान ले, शास्त्र मान ले, (वह) विपरीत दृष्टि हो जाये। समझ में आया ?

कहते हैं, **छिन्न संयम के प्रतिसन्धान....** सन्धान है न ? (मूल ग्रन्थ में फुटनोट में

अर्थ दिया है) *'जोड़ देना वह; दोषों को दूर करके एक सा (दोषरहित) कर देना वह।'* छिन्न का अर्थ किया है, देखो! छेद को प्राप्त; खण्डित; दोष प्राप्त। दोष प्राप्त है, हाँ! अट्ठाईस मूलगुण प्राप्त है, वह एक प्रकार का छेदोपस्थापनीय और उसमें दोष लगे, वह दूसरा। यह जानना कि वस्तु चारित्र कैसा है और चारित्र में कैसा प्रकार होता है? – उसको जानना चाहिए। वह संवर, निर्जरा की दशा, नव तत्त्व की श्रद्धा में जानना पड़े। ऐसे ही किसी को मान लो, किसी को कुछ मान ले (तो) श्रद्धा विपरीत हो जायेगी। समझ में आया? वस्त्रसहित हो और मुनिपना मान ले तो विपरीत दृष्टि है; और मुनि के बाह्य के अट्ठाईस मूलगुण आदि हैं परन्तु अन्दर वीतराग सम्यग्दर्शन नहीं है तो भी विपरीत दृष्टि है; और अट्ठाईस मूलगुण में खण्ड करते हो और प्रायश्चित्त न लेते हो तो भी साधुपना मानना, वह विपरीत है – ऐसा कहते हैं। समझ में आया? आहा...हा...! मार्ग ऐसा है।

(पुनः स्थापित करनेवाले)' हैं, वे भी निर्यापक ही हैं। इसलिए छेदोपस्थापक, पर भी होते हैं। सामायिक देनेवाले एक हैं और छेदोपस्थापन करनेवाले दूसरे भी होते हैं। (मूल ग्रन्थ में छेदोपस्थापक का अर्थ दिया है)। *'छेदोपस्थापक के दो अर्थ : (१) जो छेद (भेद) के प्रति उपस्थापक हैं, अर्थात् जो २८ मूलगुणरूप भेदों को समझाकर उसमें स्थापित करता है, वह छेदोपस्थापक है;...'* वह दोष बिना की स्थिति है। और *'(२) जो छेद के होने पर उपस्थापक है, अर्थात् संयम के छिन्न (खण्डित) होने पर उसमें पुनः स्थापित करता है, वह भी छेदोपस्थापक है।'* समझ में आया?

एक तो सम्यग्दर्शन सहित संयम की सामायिक दशा, वीतराग दशारूप परिणमन है, उसमें रह न सके तो अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प आना, वह पहला नम्बर का छेदोपस्थापन है और दूसरा, उसमें कोई दोष लगे और छेद—प्रायश्चित्त करके अंगीकार करे तो दूसरा नम्बर का छेदोपस्थान है। समझ में आया? यह विधि जैन वीतराग के अतिरिक्त कहीं होगी? जिसको-किसको भी सन्त मान लिया, अमुक सन्त... अमुक सन्त... कहाँ सन्त है? आहा...हा...! बात बहुत सूक्ष्म, बापू!

सर्वज्ञ परमेश्वर ने कहा मार्ग, अन्तर आनन्दस्वरूप का अनुभव (होता है) फिर सम्यग्दर्शन के बाद वीतरागता की स्थिरता, वीतराग की (स्थिरता), ऐसी दशा को चारित्र कहते हैं। उसको सन्त और मुनि कहते हैं। समझ में आया?

गाथा - २११-२१२

अथ छिन्नसंयमप्रतिसन्धानविधानमुपदिशति-

पयदम्हि समारद्धे छेदो समणस्स कायचेट्ठम्हि।
जायदि जदि तस्स पुणो आलोयणपुव्विया किरिया।।२११।।

छेदुवजुत्तो समणो समणं ववहारिणं जिणमदम्हि।
आसेज्जालोचित्ता उवदिट्ठं तेण कायव्वं।।२१२।। (जुगलं)

प्रयतायां समारब्धायां छेदः श्रमणस्य कायचेष्टायाम्।
जायते यदि तस्य पुनरालोचनपूर्विका क्रिया।।२११।।

छेदोपयुक्तः श्रमणः श्रमणं व्यवहारिणं जिनमते।
आसाद्यालोच्योपदिष्टं तेन कर्तव्यम्।।२१२।। (युगलम्)

द्विविधः किल संयमस्य छेदः, बहिरङ्गोऽन्तरङ्गश्च। तत्र कायचेष्टामात्राधिकृतो बहिरङ्गः, उपयोगाधिकृतः पुनरन्तरङ्गः। तत्र यदि सम्यगुपयुक्तस्य श्रमणस्य प्रयत्नसमारब्धायाः कायचेष्टयाः कथञ्चिद्बहिरङ्गच्छेदो जायते तदा तस्य सर्वथान्तरङ्गच्छेदवर्जितत्वादालोचनपूर्विकया क्रिययैव प्रतीकारः। यदा तु स एवोपयोगाधिकृतच्छेदत्वेन साक्षाच्छेद एवोपयुक्तो भवति तदा जिनोदितव्यवहार-विधिविदग्धश्रमणाश्रययालोचनपूर्वकतदुपदिष्टानुष्ठानेन प्रतिसन्धानम्।।२११।२१२।।

अथ पूर्वसूत्रोक्तच्छेदद्वयस्य प्रायश्चित्तविधानं कथयति-**पयदम्हि समारद्धे छेदो समणस्स कायचेट्ठम्हि जायदि जदि** प्रयतायां समारब्धायां छेदः श्रमणस्य कायचेष्टायां जायते यदि चेत्। अथ विस्तरः-छेदो जायते यदि चेत्। स्वस्थभावच्युतिलक्षणः छेदो भवति। कस्याम्। कायचेष्टायाम्। कथंभूतायाम्। प्रयतायां स्वस्थभावलक्षणप्रयत्नपरायां समारब्धायां अशनशयनयानस्थानादिप्रारब्धायाम्। **तस्स पुणो आलोयणपुव्विया किरिया** तस्य पुनरालोचनपूर्विका क्रिया। तदाकाले तस्य तपोधनस्य स्वस्थभावस्य बहिरङ्गसहकारिकारणभूता प्रतिक्रमणलक्षणालोचनपूर्विका पुनः क्रियैव प्रायश्चित्तं प्रतिकारो

भवति, न चाधिकम्। कस्मादिति चेत्। अभ्यन्तरे स्वस्थभावचलनाभावादिति प्रथमगाथा गता। **छेदपउतो समणो** छेदे प्रयुक्तः श्रमणो, निर्विकारस्वसंवित्तिभावनाच्युतिलक्षणच्छेदेन यदि चेत् प्रयुक्तः सहितः श्रमणो भवति। **समणं ववहारिणं जिणमदम्हि** श्रमणं व्यवहारिणं जिनमते, तदा जिनमते व्यवहारज्ञं प्रायश्चित्तकुशलं श्रमणं **आसेज्ज** आसाद्य प्राप्य, न केवलमासाद्य **आलोचित्ता** निःप्रपञ्चभावेनालोच्य दोषनिवेदनं कृत्वा। **उवदिट्ठं तेण कायव्वं** उपदिष्टं तेन कर्तव्यम्। तेन प्रायश्चित्तपरिज्ञानसहिताचार्येण निर्विकारस्वसंवित्तिभावनानुकूलं यदुपदिष्टं प्रायश्चित्तं तत्कर्तव्यमिति सूत्रतात्पर्यम्।।२११।२१२।।

अब, छिन्नसंयम के प्रतिसंधान की विधि का उपदेश करते हैं—

यत्नपूर्वक काय-चेष्टा, में जो कोई दोष हो।
आलोचनापूर्वक क्रिया, कर्तव्य है उन साधु को॥२११॥

छेदोपयुक्त हो श्रमण तो, विधि-कुशल आचार्य से।
आलोचना कर, करें हैं, जैसा वे उपदेश दें॥२१२॥

अन्वयार्थ - **[यदि]** यदि **[श्रमणस्य]** श्रमण के **[प्रयतायां]** प्रयत्नपूर्वक[१] **[समारब्धायां]** की जानेवाली **[कायचेष्टायां]** कायचेष्टा में **[छेदः जायते]** छेद होता है तो **[तस्य पुनः]** उसे तो **[आलोचनापूर्विका क्रिया]** आलोचनापूर्वक[२] क्रिया करना चाहिए।

[श्रमणः छेदोपयुक्तः] (किन्तु) यदि श्रमण छेद में उपयुक्त हुआ हो तो उसे **[जिनमते]** जैनमत में **[व्यवहारिणं]** व्यवहारकुशल **[श्रमणं आसाद्य]** श्रमण के पास जाकर **[आलोच्य]** आलोचना[३] करके (अपने दोष का निवेदन करके), **[तेन उपदिष्टं]** वे जैसा उपदेश दें वह **[कर्तव्यम्]** करना चाहिए।

टीका - संयम का छेद दो प्रकार का है; बहिरंग और अन्तरंग। उसमें मात्र कायचेष्टा सम्बन्धी वह बहिरंग है और उपयोग सम्बन्धी वह अन्तरंग है। उसमें, यदि भलीभाँति उपर्युक्त श्रमण के प्रयत्नकृत कायचेष्टा का कथंचित् बहिरंग छेद होता है, तो

---

१. **मुनि के (मुनित्वोचित) शुद्धोपयोग वह अन्तरंग अथवा निश्चयप्रयत्न है, और उस शुद्धोपयोगदशा में प्रवर्तमान (हठ रहित) देहचेष्टादि सम्बन्धी शुभोपयोग वह बहिरंग अथवा व्यवहारप्रयत्न है। [जहाँ शुद्धोपयोगदशा नहीं होती वहाँ शुभोपयोग हठसहित होता है; वह शुभोपयोग व्यवहार-प्रयत्न को भी प्राप्त नहीं होता।]**

२. *आलोचना = सूक्ष्मता से देख लेना वह, सूक्ष्मता से विचारना वह, ठीक ध्यान में लेना वह।)*

३. **निवेदन; कथन। [२११ वीं गाथा में आलोचना का प्रथम अर्थ घटित होता है और २१२वीं में दूसरा]**

वह सर्वथा अन्तरंग छेद से रहित है, इसलिए आलोचनापूर्वक क्रिया से ही उसका प्रतीकार (इलाज) होता है। किन्तु यदि वही श्रमण उपयोगसम्बन्धी छेद होने से साक्षात् छेद में ही उपयुक्त होता है तो जिनोक्त व्यवहारविधि में कुशल श्रमण के आश्रय से, आलोचनापूर्वक, उनके द्वारा उपदिष्ट अनुष्ठान द्वारा (संयम का) प्रतिसन्धान होता है।

भावार्थ - यदि मुनि के स्वस्थभावलक्षण प्रयत्न सहित की जानेवाली अशन-शयन-गमनादिक शारीरिक चेष्टासम्बन्धी छेद होता है तो उस तपोधन के स्वस्थभाव की बहिरंग सहकारीकारणभूत प्रतिक्रमणस्वरूप आलोचनापूर्वक क्रिया से ही उसका प्रतीकार-प्रायश्चित्त हो जाता है, क्योंकि वह स्वस्थभाव से चलित नहीं हुआ है। किन्तु यदि उसके निर्विकार स्वसंवेदनभावना से च्युतिस्वरूप छेद होता है, तो उसे जिनमत में व्यवहारज्ञ-प्रायश्चित्तकुशल-आचार्य के निकट जाकर, निष्प्रपंचभाव से दोष का निवेदन करके, वे आचार्य निर्विकार स्वसंवेदनभावना के अनुकूल जो कुछ भी प्रायश्चित्त उपदेशें वह करना चाहिए॥२११-२१२॥

प्रवचन नं. २११ का शेष **आषाढ़ शुक्ल ९, मंगलवार, २४ जून १९६९**

अब, छिन्नसंयम के प्रतिसन्धान की विधि का उपदेश करते हैं— छेद, छेद आया न? दोष।

पयदम्हि समारद्धे छेदो समणस्स कायचेट्ठम्हि।
जायदि जदि तस्स पुणो आलोयणपुव्विया किरिया।।२११।।

छेदुवजुत्तो समणो समणं ववहारिणं जिणमदम्हि।
आसेज्जालोचित्ता उवदिट्ठं तेण कायव्वं।।२१२।। (जुगलं)

यत्नपूर्वक काय-चेष्टा, में जो कोई दोष हो।
आलोचनापूर्वक क्रिया, कर्तव्य है उन साधु को॥२११॥

छेदोपयुक्त हो श्रमण तो, विधि-कुशल आचार्य से।
आलोचना कर, करें हैं, जैसा वे उपदेश दें॥२१२॥

आहा...हा...! समझ में आया? प्रथम तो आत्मज्ञान बिना साधुपना होता नहीं। समझ में आया? एक विकल्प का भी कर्ता मैं नहीं; पर की क्रिया तो मैं करता ही नहीं, पर की क्रिया तो मैं साक्षी से जानता-देखता हूँ। मेरे से क्रिया हुई नहीं। ऐसा अपने में सम्यग्दर्शन और ज्ञाता-दृष्टा का भान हो, तब तो धर्म की शुरुआत की पहली सीढ़ी कहने में आता है। पश्चात् जब साधु होता है तो उसे साधु कहते हैं कि जिसके पास वस्त्र का कण-टुकड़ा भी नहीं (होता)। दागीना तो कहाँ से हो? दागीना को क्या कहते हैं? समझे? जेवर। जेवर तो कहाँ से हो? जेवर रखे और मुनि माने, साधु माने वह तो महा अज्ञान और पाखण्ड है। समझ में आया? आहा...हा...! यहाँ तो कहते हैं कि वस्त्र का टुकड़ा रखे और साधुपद माने (तो) निगोदं गच्छई। ऐसा वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने जाना हुआ, कहा हुआ ऐसा मार्ग है। समझ में आया? आहा...हा...!

(किसी ने कहा कि) ''पागलखाना है। 'सोनगढ़' शान्ति के लिये जाते हैं। पागलखाना है।'' कोई कहता था। क्या करे? क्या बुद्धि सूझती है! उसका कितना फल आयेगा और इसका क्या फल है, बाहर में लोगों को मालूम नहीं। समझ में आया? व्यवहार से धर्म मानते नहीं, यह लोगों को खटकता है। समझ में आया? निमित्त से कुछ होता नहीं (- ऐसा कहते हैं वह) खटकता है और कर्म से आत्मा में विकार होता है, यह न माने तो खटकता है। भाई! कर्म से क्या (होता है)? 'कर्म विचारे कौन? भूल मेरी अधिकाई' कर्म तो दूसरी चीज है। अपने अपराध से, अपने दोष से विकार होता है। (जिसे) इतना भी स्वीकार नहीं, उसे तो नव तत्त्व की श्रद्धा का ठिकाना नहीं।

यहाँ तो आचार्य महाराज, अनादि सनातन सर्वज्ञ परमेश्वर परमात्मा ने सन्त का मार्ग कैसा है,... समझ में आया? इसका वर्णन करते हैं। टीका, २११-२१२ (गाथा)।

संयम का छेद दो प्रकार का है;.... आत्मा में शान्ति और आनन्द का ग्रहण किया और शुभराग आदि का भाव छेदोपस्थान हो तो उसमें कहते हैं कि **संयम का छेद दो प्रकार का है; बहिरंग और अन्तरंग।** क्या? छेदोपस्थान का दो प्रकार कहा, वह दूसरी बात हो गई और यहाँ छेद के दो प्रकार हैं। दोष लगता है, उसके दो प्रकार हैं।

उसमें मात्र कायचेष्टा सम्बन्धी वह बहिरंग है.... देखो! आत्मा आनन्दस्वरूप

वीतरागस्वरूप का अन्दर परिणमन है और चलते हैं, उसमें कोई काया, हरितकाय.... लीलोतरी समझे ? हरितकाय ! हरितकाय को छू गये, स्पर्श हो गया। प्रयत्न है, बराबर सावधानी (है परन्तु) कायचेष्टा हो गई तो उस प्रकार का बहिरंग प्रायश्चित कहने में (आता है)। वह बहिरंग है, उसकी कीमत नहीं।

और उपयोग सम्बन्धी वह अन्तरंग है। हरितकाय, एकेन्द्रिय जीव इत्यादि (का) अन्दर ध्यान रखे बिना चले और राग तीव्र आया तो (वह) अन्तरंग छेद दोष है। स्वरूप का, संयम का वहाँ छेद होता है - ऐसा कहते हैं। हिंसा होती है। समझ में आया ? राग आया न पर का ! ऐसे यत्न बिना चले तो वह राग है, वही हिंसा है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

उसमें, यदि भलीभाँति उपर्युक्त श्रमण के प्रयत्नकृत कायचेष्टा का कथंचित् बहिरंग छेद होता है,.... साधु आत्मा के आनन्दस्वरूप (में) चलते हैं, ध्यान से प्रमत्त दशा छोड़कर, प्रमत्तदशा अर्थात् छठ्ठे गुणस्थान की प्रमत्त (दशा) है, परन्तु प्रमत्त, (अर्थात्) आलस आदि छोड़कर चलते हैं। **सर्वथा अन्तरंग छेद से रहित है.... भलीभाँति उपर्युक्त श्रमण के प्रयत्नकृत....** प्रयत्न बराबर (है) कि कोई जीव को दुःख देना नहीं, ऐसे भाव से चलते हैं। प्रमादभाव रहित हैं। **प्रयत्नकृत कायचेष्टा का कथंचित् बहिरंग छेद होता है,....** परन्तु उतना चलने का भाव है न ! तो उसमें काया (से) किसी को छू ले तो इतनी कायचेष्टा का आलोचना करने का विचार (करते हैं)।

सर्वथा अन्तरंग छेद से रहित है.... अन्तरंग छेद है नहीं। **इसलिए आलोचनापूर्वक क्रिया से ही उसका प्रतीकार (इलाज) होता है।** बात तो ऐसी है कि आत्मा का आनन्द और ज्ञान का तो अनुभव है, वीतराग भाव है। साथ में चलने से, चलते-चलते कोई प्रमाद ऐसा न हो कि शरीर से कोई हिंसा हो जाये, ऐसा प्रयत्नपूर्वक भाव है। फिर भी इतने राग में आया न ! और उसके साथ काया है न ! तो काया से चेष्टा से (कुछ) हो गया तो उसकी आलोचना करना, उतनी बात है। अन्तर छेद नहीं। बहुत सूक्ष्म, भाई ! समझ में आया ?

आत्मा आनन्दस्वरूप है - ऐसा अनुभव है, वीतराग भाव का अनुभव है परन्तु चलने का विकल्प है, वह भी प्रमाद (है), तीव्र प्रमाद नहीं। वह भूमिका के योग्य हुआ।

प्रयत्नपूर्वक चलते हैं। किसी को दु:ख न हो, ऐसा भाव है। उस भाव में भी आया न! तो शरीर का निमित्त हो तो उतनी आलोचना उसमें लेनी, ऐसा कहते हैं। थोड़ी सूक्ष्म बात है। समझ में आया या नहीं? कायचेष्टा में साधु चलते हैं। चलते (समय) ध्यान तो बराबर है (कि) किसी को दु:ख (न हो)। परन्तु ऐसा कोई फूल, नीम का फूल (हो), नीम के फूल में अनन्त जीव हैं, अनन्त जीव (हैं)। चलते-चलते नीचे आ गया, नीचे (पहले से) नहीं था, ऊपर से गिरा, ऊपर से गिरा। उतनी कायचेष्टा निमित्तरूप हुई न! भाव नहीं है। ईर्यासमिति के प्रत्यनपूर्वक चलते हैं। समझ में आया? फिर भी चलने का भाव (आया), वह राग है, तो इस स्थिति में काया से फूल की हिंसा हुई, कायचेष्टा से इतनी (हिंसा हुई तो उसकी) आलोचना करना। आलोचना करना। व्यवहार से लिया न! भाव हुआ न, भाव तो हुआ न! भाव हुआ तो उसमें उतनी कायचेष्टा निमित्त हुई। फूल को स्पर्श हो गया। ऊपर से (फूल) गिरा, नीचे तो (देखकर) ध्यान से तो चलते हैं। नीचे ध्यान रखे। (परन्तु) फूल उड़कर (गिरा) तो शरीर को तिरछा स्पर्श हो गया, चलते-चलते स्पर्श हो जाता है तो उनका भाव तो किसी प्राणी को नहीं मारना, ऐसे प्रयत्नपूर्वक और विकल्प के ख्यालपूर्वक चलते हैं, परन्तु चलने का ऐसा प्रमादभाव तो है न! प्रमत्तभाव है न! है तो वह भूमिका के योग्य। प्रयत्न यथार्थ (है)।

मुमुक्षु – वृत्ति में....

पूज्य गुरुदेवश्री – वृत्ति में तो विकार है नहीं, वृत्ति में आहार-फाहार है नहीं। ऐसी बात है। आहा...हा...! निश्चय में तो कहते हैं कि मैंने जब मुनिपना लिया था, तब आहार का त्याग किया था। 'जयधवल' में ऐसा आता है। आहार नहीं करना, मुझे तो शुद्ध उपयोग में रहना, वही मेरा त्याग था, प्रत्याख्यान (था)। आहा...हा...! 'जयधवल' में ऐसा लिया है। 'जयधवल' में! शुद्ध उपयोग में ही रहना – ऐसा मैंने प्रत्याख्यान किया था। परन्तु आहार लेने का, निर्दोष आहार लेना का विकल्प (आया) तो मेरा प्रत्याख्यान छूट गया। संथारा के समय फिर से प्रत्याख्यान करते हैं – ऐसा पाठ है। यह वीतरागमार्ग है, भाई! समझ में आया? अनादि सत्य परमेश्वरमार्ग है।

कहते हैं, ऐसा वीतरागभाव से,... इतना भाव तो आया न (कि मैं), चलूँ। ईर्यासमिति

शोधकर चलते हैं। परन्तु शोधकर चलते हैं, इतना राग तो है न! उस राग के कारण थोड़ी चेष्टा बीच में हो गई (तो) आलोचना (करते हैं)। यह बात करते हैं। इसमें से (लोग) दूसरा निकालते हैं (कि) देखो! शरीर का चेष्टा से भी पाप हुआ, अतः शरीर की चेष्टा से भी धर्म होता है। ऐसा इसमें से निकालते हैं। पत्र में आ गया है, एक पत्र में आ गया है।

मुमुक्षु – चर्चा में आ गया है।

पूज्य गुरुदेवश्री – हाँ, चर्चा में आ गया है। 'खानियाचर्चा'! 'खानियाचर्चा' में आ गया है। 'खानियाचर्चा' देखी, पढ़ी? 'खानिया' में बहुत चर्चा हुई। समझ में आया? कहते हैं कि देखो! यहाँ यह दृष्टान्त देते हैं। मुनि की काया भी ऐसे प्रयत्नपूर्वक है। किसी को दुःख देना (नहीं) – ऐसा ईर्यासमितिपूर्वक है। उनको इतना आलोचना करने का आया कि नहीं? अरे...! वह तो एक जानने की चीज (है)। जीवित शरीर से भी धर्म होता है, यह उसमें (खानियाचर्चा में) पहला प्रश्न था। अरे... भगवान!

मुमुक्षु – जीवित शरीर क्या, यह तो मुर्दा है।

पूज्य गुरुदेवश्री – वह तो अभी आयेगा। सबेरे (चलता है)। ('समयसार' की) ९६ गाथा में आयेगा। मृतक कलेवर है। भगवान अमृतसागर आत्मा, विज्ञानघन अमृतसागर प्रभु! (शरीर) मृतक—मुर्दा जड़ (है), उसमें मूर्च्छित हो गया। अमृतसागर भगवान आत्मा (है), ऐसी दृष्टि नहीं करके 'शरीर मेरा है और शरीर से मुझे लाभ होगा' (ऐसे) मूर्च्छित हो गया। मृतक—मुर्दे में मूर्च्छित हो गया। ऐसा पाठ है। कल सबेरे आयेगा। समझ में आया? यह तो मुर्दा है। आहा...हा...!

परसों रात को (एक मुमुक्षु को) देखने गये थे। (अपने एक मुमुक्षु ने) ऐसे पैर डाला। (और कहा), 'देखो, मुर्दा है।' श्वास नहीं (चलता था)। पैर ऐसा करते थे परन्तु ऐसे नहीं रहता था, गिर जाता था। पैर ऐसे करते थे (परन्तु) गिर जाता था। पैर और हाथ दोनों मुर्दा हो गया। जीवित मुर्दा! जीव था और (मुर्दा हो गया)। (अपने डॉक्टर मुमुक्षु ने) बताया। पैर ऐसे किया (परन्तु) गिर गया। जीव नहीं। ऐसा भाव होता है न अभी! नीचे गिर जाता है, वह जीव के कारण से नहीं। जीव न हो तो शरीर की अवस्था ऐसे हो जाती है। समझ में आया? आहा...हा...! मुर्दा ही है।

मुमुक्षु – 'भावपाहुड़' मैं है।

पूज्य गुरुदेवश्री – 'भावपाहुड़' में लिया है, सम्यग्दर्शन बिना चलता मुर्दा (है)। चलता मुर्दा! उस मुर्दे के उठाकर चलाते हैं, अर्थी में। यह चलता है आत्मा क्या है? कैसी चीज है? कैसा स्वरूप है, उसका भान नहीं (तो) मुर्दा, चलता मुर्दा है। आहा...हा...! भाई! मार्ग तो ऐसा है, बापू! यह तो प्रभु होने का मार्ग है, भाई! आहा...हा...! दुनिया से अलग मार्ग है। आहा...हा...! भाई को देखो न! आँखों में देखा तो आँखों में कुछ नहीं था। समाप्त! छोड़, मुर्दा है, मुर्दा ही है। चैतन्य तो अन्दर निमित्त है। समझ में आया?

आत्मा में भान है, वीतराग भाव (है) और साथ में विकल्प भी बराबर (है कि), किसी को दु:ख नहीं देना – ऐसा ईर्यासमिति का विकल्प भी है, परन्तु इतने विकल्प में आया क्यों? तो ऐसा लिया कि कायचेष्टा में हो तो आलोचना करना। आहा...हा...!

जहाँ सम्यग्दृष्टि का विषय चले, वहाँ तो अशुभराग आये तो निर्जरा का कारण है, ऐसा कहे। वह प्रश्न अलग बात है। अशुभभाव भोग, निर्जरा का हेतु (है)। यहाँ चारित्र दशा के वर्णन में कहे कि वीतराग चारित्र अन्दर आनन्दकन्द में झुलते हैं, फिर भी विकल्प आया; चलने में प्रयत्न यथार्थ है। समझ में आया? यथार्थ अर्थात् प्रमाद नहीं। प्रयत्नपूर्वक है – ऐसा लिया न! **प्रयत्नकृत कायचेष्टा....** प्रयत्न है, किसी को दु:ख नहीं देना – ऐसा प्रयत्न है। समझ में आया? काया ऐसे किसी को छू गई (तो) आलोचना करना। बस, इतना। ऐसी बात है। ईर्यासमिति / शोधकर चलना – ऐसे विकल्प में आया क्यों? आया तो काया का निमित्त में हो तो उसकी आलोचना करना – ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया? ओ...हो...हो...! ऐसा मार्ग है, भाई! समझ में आया?

आत्मा का वीतरागभाव–चारित्र है परन्तु वह विकल्प आया न (कि), प्रयत्नपूर्वक चलना। किसी को दु:ख न हो, ईर्यासमिति (है परन्तु) इतना भी राग आया न! तो उस कारण से चरणानुयोग की दृष्टि में ऐसा गिना कि, राग है। राग है तो उसे शुभोपयोग में गिनने में आता है। परन्तु काया ने किसी छू लिया तो उतना भी आत्मा को छोड़कर राग में प्रयत्नपूर्वक चलने का भाव आया, ऐसा क्यों आया? आया तो काया की चेष्टा में कुछ हो तो आलोचना करना – ऐसा कहते हैं। मार्ग ऐसा है, यथार्थ है। समझ में आया? (ऐसा)

कौन पढ़ता है ? खबर कहाँ है ? क्या है ? दृष्टि क्या ? ज्ञान क्या ? वीतरागता क्या ? राग आया, किसी को देखकर (चलना) वह क्या ? और राग आया तो काय की चेष्टा में जीव मर गया तो उसकी आलोचना करना। ओ...हो...हो... ! मार्ग तो मार्ग (है) ! समझ में आया ? (ये सब) बहिरंग है, अन्तरंग नहीं। वे तो चलते हैं। शान्ति से समझने की चीज है, भाई ! यह कोई विद्वत्ता की चीज (नहीं है)।

भगवान आत्मा अपने स्वरूप का भान करके... समझ में आया ? अन्य में भी कहते हैं न, 'नरसिंह महेता' (कहते हैं) 'ज्यां लगी आत्मा तत्त्व चिन्यो नहीं, त्यां लगी साधना (सर्व झूठी)..' ऐ...ई... ! कल कहते थे न ? सब झूठी है, उसमें धर्म-बर्म है नहीं - ऐसा कहते हैं। क्या किया ? उसमें लिखा है, 'शुं कर्युं तप ने तीरथ करवा थकी ? शुं कर्युं यज्ञ ने होम करवास थकी ?' तुझे कुछ धर्म-बर्म है नहीं। यह तो दूसरी बात है। यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा ने आत्मा देखा, उस आत्मा के अनुभवपूर्वक जैसी दशा है, उसका वर्णन चलता है। आ...हा...हा... ! समझ में आया ?

अरे... ! देह चला जा रहा है, देहस्थिति पूरी हो जायेगी। एक के बाद एक, एक के बाद एक चला जा रहा है। देखो न ! कल गये थे, (उनके) तीन तो पुत्र हैं। बड़े अफसर हैं। मरते समय (कोई नहीं था)। यहाँ हो तो भी क्या ? साथ में स्त्री खड़ी हो (तो भी) करे क्या ? जड़ स्वतन्त्र पदार्थ है, उसका ऐसा हो जाना, हो जायेगा। समझ में आया ?

हम स्वाध्याय—सज्झाय करते थे न ! दुकान पर (सज्झाय करते थे)। सज्झाय प्रमाणा में लिखा था, 'एक रे दिवस ऐवो आवशे के मनुष्य चाल्यो जी...' एक दिन ऐसा आयेगा कि देह ऐसे हो जायेगा, क्योंकि जड़ है। 'एक रे दिवस ऐवो आवशे के मनुष्य... चाल्यो जी, ऊभी रे नारी ते तारी कामनी' वह खड़ी है, ये बीस साल का जवान ! 'टग टग ऊभी रे जोवे जी... एक रे दिवस ऐवो आवशे... आ रे कायामां हवे कांई नथी, ऊभी टग टग जुवे जी... आ रे कायमां हवे कांई नथी, घ्रुसके घ्रुसके रोवे जी, एक रे दिवस ऐवो आवशे...' भाई ! हमारी दुकान पर तो ये सब सज्झाय करते थे न ! बहुत बोलते थे। संवत् १९६४-९५-६६ की बात है। चार सज्झायमाला हैं। एक दिन ऐसा आयेगा कि देह ऐसे हो जायेगा। तेरे आधार से नहीं। तेरे माँ-बाप, स्त्री वहाँ खड़ी-खड़ी (देखती रहेगी)। क्या

हुआ ? 'खड़ी टग टग जोशे, आ रे काया में हवे कांई नथी' हाय... हाय... ! पूछा उसका जवाब नहीं। मेरी किसी को संभाल नहीं। किसी का हाथ पकड़ा था, दिया नहीं कि जेठ या देवर को (बोला नहीं कि) इसको संभालना, अर...र... ! हाय... हाय... ! ये तो चला। 'फफक-फफककर रोवे' वहाँ पर में तेरा कुछ चलनेवाला है, सुन न !

यहाँ कहते हैं, आहा...हा... ! आत्मा में आत्मज्ञान और दर्शन हुआ और जहाँ चारित्रदशा हुई, ऐसी चारित्रदशा में चलते-चलते, थोड़ा भी राग है न; है प्रयत्नपूर्वक राग, सावधानी है; सावधान होने पर भी काया में नीम का फूल का स्पर्श हो जाये तो आलोचना करना। आहा...हा... ! मार्ग तो देखो ! तुम चले क्यों ? राग आया क्यों ? ऐसा कहते हैं। ऐ...ई... ! अन्दर वीतराग स्वभाव में स्थिर क्यों नहीं हो गये ? आहा...हा... !

प्रयत्नकृत बाह्यचेष्टा का कथंचित् छेद होता है,... कथंचित् है। **तो वह सर्वथा अन्तरंग छेद से रहित है...** अन्दर में दोष बिल्कुल नहीं है। **वह सर्वथा अन्तरंग छेद से रहित है, इसलिए आलोचनापूर्वक क्रिया से ही उसका प्रतीकार (इलाज) होता है।** बस ! देख ले। इतना बस। **किन्तु यदि वही श्रमण उपयोगसम्बन्धी छेद होने से....** परन्तु उपयोग में प्रमाद आ गया, परजीव पर चलने में, बोलने में, खाने में, अट्ठाईस मूलगुण का जो भाव है, उसमें आगे बढ़ गया। **साक्षात् छेद में ही उपयुक्त होता है....** तो अन्तर चारित्र का छेद हो जाता है।

प्रश्न - शुद्ध उपयोग है ?

समाधान - हाँ, शुद्ध उपयोग का अर्थ यहाँ रागसहित जो शुद्ध परिणति है, वह शुद्ध उपयोग (है)। उसमें से विशेष बाहर गये तो भूमिका के योग्य नहीं रहा। ऐसा परिणाम आया (तो) छेद हो जाता है। समझ में आया ?

साक्षात् छेद में ही उपयुक्त होता है तो जिनोक्त व्यवहारविधि में कुशल.... भगवान वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर के मार्ग में जो कुशल मुनि आदि आचार्य हैं, उनके पास जाना। **कुशल श्रमण के आश्रय से, आलोचनापूर्वक,....** देखो ! यह दूसरी आलोचना (है), हाँ ! मुनि के पास जाकर कहना (कि) ऐसा दोष लगा है, ऐसा दोष लगा है। समझ में आया ? **उनके द्वारा उपदिष्ट अनुष्ठान द्वारा (संयम का) प्रतिसंधान होता है।** लो !

मुनि कहे कि इतना एक उपवास करना, दो उपवास करना, रस छोड़ना इत्यादि। इतना व्यवहार करे। प्रायश्चित्त लेकर अपनी शुद्धि करे - ऐसा वीतराग का मार्ग है।

(विशेष कहेंगे)....   (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. २१२   **आषाढ़ शुक्ल १०, बुधवार, २५ जून १९६९**

'प्रवचनसार' 'चरणानुयोगसूचक चूलिका', २११-२१२ गाथा का भावार्थ चलता है। क्या कहते हैं ? देखो! जिसको आत्मा में दु:ख से मुक्ति लेनी हो, अनन्त आनन्दरूप मुक्ति चाहता हो तो उसको चारित्र बिना मुक्ति होगी नहीं। समझ में आया ? और वह चारित्र, सम्यग्दर्शन-ज्ञान बिना होता नहीं; और सम्यग्दर्शन-ज्ञान, आत्मा के आश्रय बिना होता नहीं। समझ में आया ? स्वद्रव्य ज्ञायकमात्र प्रभु के आश्रय के बिना सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता नहीं। ऐसा सम्यग्दर्शन-ज्ञान होने पर भी, जब तक चारित्र वीतरागदशा, अन्दर चारित्र न प्रगटे, तब तक उसको केवलज्ञान अथवा मुक्ति नहीं होगी। समझ में आया ? उस चारित्र की दशा में व्यवहार का विकल्प कितने प्रकार का है, उसकी बात चलती है। समझ में आया ? अपना स्वरूप शुद्ध चिदानन्द आनन्द (है), उसका अनुभव हो और स्वरूप की रमणता हो, वहाँ ऐसा अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प उठता है। कहते हैं, देखो भावार्थ।

यदि मुनि के.... मुनि नग्न होते हैं, दिगम्बर होते हैं, वनवासी होते हैं, आत्मध्यानी होते हैं और अट्ठाईस मूलगुणवाले हैं - ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया ? इस **मुनि के स्वस्थभावलक्षण प्रयत्नसहित....** देखो! यह 'जयसेनाचार्यदेव' (की टीका में से) निकाला है, भाई! 'जयसेनाचार्यदेव'! मुझे लगा कहाँ से निकाला ? अभी देखा, अभी देखा। 'जयसेनाचार्यदेव' (में से निकाला है)।

स्वस्थभावलक्षण प्रयत्न.... क्या कहते हैं ? भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का पिण्ड, पुंज प्रभु आत्मा है। ऐसा जो स्व-स्थ (अर्थात्) उसमें रहना। समझ में आया ? २११-२१२ गाथा का भावार्थ (चल रहा है)। शास्त्र है, परमागम है। उसमें थूक लगाकर पन्ने फेरना, वह अशातना है। थोड़े सुधरते जाओ। नहीं तो (लोग) आक्षेप करते हैं। (एक

भाई का) पत्र आया है। यह तो शास्त्र है, परमागम पुस्तक है। समझ में आया? यहाँ तो वांचन में दूसरा कोई उपयोग नहीं। नहीं तो नीचे पुस्तक (हो) और ऊपर बैठना, वह (ठीक नहीं) परन्तु यह तो पद्धति अलग है न! उसको समझने में भी थोड़ी सरलता रहे, उस कारण से है। समझ में आया? समझने में लोगों को ख्याल आवे इसलिए। इस शब्द का यह अर्थ है, न्याय है। वह भी एक विशिष्ट शास्त्र के विनय के लिये एक बात है। समझ में आया?

यदि मुनि के स्वस्थभावलक्षण प्रयत्न.... भाषा देखो! भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप है, अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप है। शरीर, वाणी, मन तो नहीं परन्तु अन्दर दया, दान, व्रत, भक्ति का परिणाम उठते हैं, वह राग है; आत्मा नहीं। स्व-स्थ—अपना निर्मल आनन्द स्वभाव, उसमें स्थ – ऐसा भावलक्षण प्रयत्न। देखो! यह पुरुषार्थ। अपना आत्मा शुद्ध आनन्द और ज्ञान की मूर्ति, ऐसा स्व। (उसमें) स्थ – उसमें रहकर, आनन्द में रहकर, ऐसे आनन्द में रहना – ऐसा भावलक्षण प्रयत्न, ऐसा पुरुषार्थ। पुरुषार्थ (अर्थात्) विकल्प का पुरुषार्थ नहीं, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया? है न भावार्थ?

'**यदि...**' आ...हा...हा...! मुनि अर्थात् धर्मात्मा किसको कहें? जिसकी नग्नदशा, अट्ठाईस मूलगुण, अन्तर में आनन्दस्वरूप भगवान, उसमें उग्र प्रयत्न—स्वस्थभावलक्षण प्रयत्न। अन्दर स्वरूप में लीनता की प्रयत्नदशा है। ऐसे **प्रयत्नसहित की जानेवाली अशन-शयन....** आहार लेने का विकल्प। आहार आता है न आहार? मुनि भिक्षा के लिये जाते हैं। आहार हस्त में लेना। मुनि को पात्र-बात्र होता नहीं। **अशन-शयन....** नीचे भूमि में शयन। **गमनादिक....** चलना आदि। **शारीरिक चेष्टासम्बन्धी छेद होता है....** देखो! ऐसी शारीरिक (चेष्टासम्बन्धी)।

स्वस्थभावलक्षण प्रयत्नसहित की जानेवाली.... अन्दर प्रमाद नहीं है। समझ में आया? परन्तु ऐसा विकल्प, शुभराग है। आत्मा में स्वस्थभावलक्षण प्रयत्नसहित (राग है)। तो कहते हैं कि **शारीरिक चेष्टासम्बन्धी छेद होता है....** शरीर किसी को— एकेन्द्रिय प्राणी आदि को छू ले। प्रयत्न प्रमादरहित है। समझ में आया? अपने स्वरूप में उपयोग है और पर को भी देखकर, दु:ख न हो, ऐसा भाव है, फिर भी शरीर छू जाये, कोई

एकेन्द्रिय जीव, फूल, लील-फूल—काय, नीम का पत्ता, पीपल का पत्ता, (उसमें) असंख्य जीव हैं, उसको मुनि का शरीर छू जाये (तो वह) **शारीरिक चेष्टासम्बन्धी छेद....** ऐसे कहा। ऐसे थोड़ा छू जाये।

तो उस तपोधन के स्वस्थभाव की बहिरंग सहकारीकारणभूत प्रतिक्रमण-स्वरूप आलोचनापूर्वक क्रिया से ही उसका प्रतीकार-प्रायश्चित्त हो जाता है,.... बस। थोड़ा ख्याल कर लेते हैं। समझ में आया? **तपोधन के स्वस्थभाव की....** (अर्थात्) अन्तर आनन्द भगवान आत्मा में आनन्द में तल्लीन है, फिर भी विकल्प आया है। शयन, खाना आदि सोना आदि (का) विकल्प (आया है)। तो उसमें शरीर की क्रिया किसी को छू जाये तो **सहकारीकारणभूत प्रतिक्रमणस्वरूप....** लो ठीक! थोड़ा देख ले कि, इतना हुआ। बस, इतना, दूसरा कोई छेद है नहीं। **आलोचनापूर्वक क्रिया से ही उसका प्रतीकार-प्रायश्चित्त हो जाता है, क्योंकि वह स्वस्थभाव से चलित नहीं हुआ है।** आनन्दस्वरूप (है) और उस भूमिका के योग्य जो विकल्प है, उससे च्युत नहीं हुआ है। क्या कहते हैं, समझ में आया?

आत्मा अपने शुद्ध सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में लीन है और उस भूमिका के योग्य अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प से च्युत नहीं हुआ है। अट्ठाईस मूलगुण विकल्प भी है, स्वस्थ भाव से च्युत नहीं हुआ है। समझ में आया? देखो, यह विधि! मोक्षमार्ग की विधि। समझ में आया?

मुमुक्षु -....राग आया।

पूज्य गुरुदेवश्री - दोनों बराबर है। ईर्यासमिति बराबर है। फिर भी शरीर ऐसे छू जाये तो ऐसे देख लेना, बस इतनी बात है। यह क्रिया हुई, इतना राग आया और चला, खाने-पीने का राग आया न, है तो भूमिका के योग्य राग; और भूमिका के योग्य स्वस्थभाव में लीन हैं। यह तो ऐसी बात है। ऐसा होने पर भी, थोड़ा राग आया न कि, मैं चलूँ, खाऊँ, सोऊँ। है तो वह भूमिका के योग्य राग। फिर भी शरीर दूसरे एकेन्द्रिय जीव को थोड़ा छू जाये, पवन, अग्नि, पानी—जल (को) स्पर्श हो जाये, पानी का बिन्दु आ जाये, वर्षा का बिन्दु (आ जाये), लो! वर्षा की बूँद आती है। वर्षा के एक-एक बूँद में असंख्य जीव हैं।

थोरी होती है न? थोरी। क्या कहते हैं? एक-एक थोरी में असंख्य जीव हैं। असंख्य शरीर (है) और एक-एक शरीर में जीव हैं। बहुत सूक्ष्म (होती है)। वर्षाऋतु में बहुत सूक्ष्म (होती है)।

मुनि को भलीभाँति अपने स्वरूप का (भान है)। तीन कषाय के अभाव (स्वरूप) ऐसे आनन्द में हैं और उस भूमिका के योग्य ईर्यासमिति का विकल्प भी है। समझे? बोलने का विकल्प भी बराबर है। फिर भी ऐसी चीज कोई पानी का बिन्दु आदि छू जाये तो प्रतिक्रमण (करते हैं)। बस। दूसरा कुछ नहीं। इतनी सूक्ष्मता ली है, देखो! समझ में आया? आ...हा...! ऐसा मार्ग। इतना राग क्यों आया? चलने का, खाने का, पीने का; है तो भूमिका के योग्य राग।

क्योंकि वह स्वस्थभाव से चलित नहीं हुआ है। किन्तु.... एक भाव हो गया, अब दूसरा (कहते हैं)। **यदि उसके निर्विकार स्वसंवेदनभावना से च्युतिस्वरूप छेद होता है,...** देखो, अब। यह भी 'जयसेनाचार्यदेव' (की टीका का) है। **निर्विकार स्वसंवेदनभावना....** क्या कहते हैं? भगवान आत्मा निर्विकार-वीतराग आनन्दस्वरूप ऐसा स्वसंवेदन, अपना आनन्द का वेदन, उसकी भावना अर्थात् एकाग्रता... एकाग्रता, उससे **च्युतिस्वरूप छेद होता है,...** (अर्थात्) उससे यदि च्युत हो जाये तो छेद होता है। उसको गुरु के पास जाकर प्रायश्चित्त लेना पड़ता है। यह तो (शारीरिक चेष्टा में तो) स्वयं अपने आप, कि शरीर ऐसा छू गया-ऐसा ख्याल में, बस! विचार करके... (आलोचना से प्रतीकार हो जाता है)। समझ में आया? ओ...हो...हो...! 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव', 'अमृतचन्द्राचार्यदेव' कितनी बात (करते हैं)! ओ...हो...हो...!

निश्चयदृष्टिपूर्वक निश्चयचारित्र है और उस भूमिका के योग्य विकल्प भी है तो भी शरीर से कोई पानी का बिन्दु छू लिया तो आलोचना कर लेना। विचार करना। और यदि स्व आनन्दस्वरूप से च्युत हुआ, अस्थिरता हो गई, अन्दर स्वरूप में से अस्थिरता हो गयी। समझ में आया? **निर्विकार स्वसंवेदनभावना....** (एक पण्डित) भावना का अर्थ करते हैं कि भावना अर्थात् सम्यग्दृष्टि सामायिक में भावना करते हैं। 'प्रवचनसार' में आता है कि सम्यग्दृष्टि को भी सामायिक में शुद्ध उपयोग आ जाता है। शुद्ध उपयोग! समझ में

आया ? सम्यग्दृष्टि हैं, अनुभव हैं, आनन्द का वेदन आ गया है, वे जब सामायिक में बैठते हैं तो उनको शुद्ध उपयोगरूपी भावना आ जाती है। भावना शब्द (का अर्थ) शुद्ध उपयोग आ जाता है – ऐसा कहा है, 'प्रवचनसार' में कहा है। उसका अर्थ (दूसरे विद्वान ने) ऐसा किया कि देखो! सामायिक में समकिती श्रावक को भी वहाँ शुद्ध उपयोग कहा है। 'प्रवचनसार' 'जयसेनाचार्यदेव' की टीका में (कहा है)। समझ में आया ? 'जयसेनाचार्यदेव' की टीका में, (कहा है)। समझ में आया ? 'जयसेनाचार्यदेव' की टीका में, इसमें नहीं। 'जयसेनाचार्यदेव' की टीका में है। गाथा की खबर (है), कहेगा आयेगा तो ये... देवानुप्रिया! कौन-सी गाथा है ? हमें इतना याद रहता नहीं। है इतना ख्याल है। उसमें आता है। 'श्रीमद्' के पुस्तक में इस ओर है। और आठवें से (होता है) वह सब झूठ बात है। यहाँ तो पाँचवें गुणस्थान में... है। देखो! 'श्रीमद् राजचन्द्र' का है। कौन-सी गाथा है, वह एक बार कहा था, हाँ!

'शुभोपयोगिनामपि क्वापि काले शुद्धोपयोगभावना दृश्यते,...' शुद्ध भावना का अर्थ शुद्ध उपयोग है। भावना का अर्थ (लोग) ऐसा करते हैं कि, ऐसा शुद्ध उपयोग हो – ऐसी भावना करते हैं। ऐसा नहीं, भाई! अरे...रे! यह तो यहाँ कहते हैं, देखो न! **'शुद्धोपयोगभावना दृश्यते,... श्रावकाणामपि सामायिकादिकाले शुद्धभावना दृश्यते, तेषां कथं विशेषो भेदो ज्ञायत इति। ... प्रचुरेण शुभोपयोगेन वर्तन्ते ते यद्यपि क्वापि काले शुद्धोपयोगभावनां कुर्वन्ति तथापि शुभोपयोगिन एवं भण्यन्ते।'** श्रावक को शुभयोग मुख्यरूप से कहने में आता है। क्योंकि कभी शुद्ध उपयोग होता है। देखो! **'शुद्धोपयोगभावना कुर्वन्ति तथापि शुभोपयोगिन एवं भण्यन्ते।'** दो जगह है। २४८ गाथा है।

यहाँ तो **स्वसंवेदनभावना से....** शब्द पड़ा है न! मुनि अपने आनन्द का वेदन करते हैं, उसका नाम स्वसंवेदनभावना कहते हैं। भावना का अर्थ ऐसा नहीं, मैं ऐसा आनन्द भविष्य में प्रगट करूँ – ऐसा नहीं। ऐसे श्रावक को भी, सम्यग्दृष्टि को भी... समझ में आया ? **'क्वापि'** कदाचित् शुद्ध उपयोग ध्यान होता है, तब होता है; और पंचम गुणस्थान में सच्चा श्रावक है, उसको सामायिक काल में भी अन्दर शुद्ध उपयोग हो जाता

है। शुद्ध उपयोग होता है, तब सामायिक का यथार्थपना उसे है। समझ में आया? चरणानुयोग की २४८ गाथा है। आहा...हा...! उसमें है। आहा...हा...! भावना आयी थी। 'द्रव्यसंग्रह' में आया था। भावना अर्थात् एकाग्रता। भावना शब्द से (अर्थ) एकाग्रता। भावना बहुत जगह आती है।

भाई! आत्मदर्शन हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ और शुद्ध उपयोग न आवे तो सम्यग्दर्शन रहे नहीं। समझ में आया? अमुक समय के बाद शुद्ध उपयोग की रमणता न आवे तो सम्यग्दर्शन रह नहीं सकता। ऐसे श्रावक-सच्चा श्रावक है, भावलिंगी (श्रावक) पंचम गुणस्थानवाला (है) उसको सामायिक में कभी शुद्ध उपयोग की दशा हो जाती है। आहा...हा...! समझ में आया? उस भावना का अर्थ एकाग्रता है। शुभभाव छोड़कर शुद्ध में एकाग्रता होती है तो शुद्ध उपयोग की भावना कहने में आती है। समझ में आया?

अपने स्वार्थ का पोषण करने को नीचे की भूमिका में सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान मानने को ऐसा अर्थ कर देते हैं। शुभयोग में सम्यग्दर्शन है, सम्यग्ज्ञान है — ऐसा मानने को शुद्ध उपयोग को उड़ा देते हैं। समझ में आया? ऐसा नहीं, भाई! अन्तर आत्मा अपने आनन्द में ध्येय करके एकाकार हो जाये तो शुद्ध उपयोग ही है। समझ में आया? चौथे गुणस्थान में भी शुद्ध उपयोग है। जब सम्यग्दर्शन प्रगट होता है, तब शुभ उपयोग नहीं होता है। आहा...हा...! क्या शुभ उपयोग में सम्यग्दर्शन हुआ? समझ में आया? अरे...! क्या करे? अपनी दया करते नहीं, अपनी दया! अरे! यह तो अपनी—स्व की दया की बात है। शुभभाव तो अपराध है - ऐसा नहीं कहा? 'पुरुषार्थसिद्धि उपाय'! समकिती को तीर्थंकरगोत्र बँधता है, आहारक शरीर बँधता है तो क्यों बँधता है? क्या मोक्षमार्ग से बँधता है? नहीं। शुभ उपयोग का अपराध है। शुभ उपयोग के अपराध से तीर्थंकर गोत्र बँध जाता है और सर्वार्थसिद्धि का आयुष्य, आहारक शरीर उससे बँध जाता है। अपराध है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों अबन्ध परिणाम (हैं), वह तो मोक्ष का मार्ग (है), मोक्षमार्ग कहो या अबन्ध परिणाम कहो। समझ में आया? वस्तु तो ऐसी है। आहा...हा...! तकरार, वाद-विवाद करते हैं। नहीं, जो कोई चौथे गुणस्थान में स्वरूपाचरण माने, वे आचार्य को मानते नहीं, ग्रन्थ को मानते नहीं, मिथ्यादृष्टि है। अरे...! भगवान! क्या करता है तू? भाई! आहा...हा...! अरे...!

यहाँ तो कहते हैं **निर्विकार स्वसंवेदनभावना से....** उसको मुनि कहते हैं। आ...हा...हा...! विकल्प-फिकल्प दया, दान का विकल्प बन्ध का कारण विकार है, दु:ख है। उसको छोड़कर भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द का धाम आत्मा है। उसमें अपनी निर्विकार स्वसंवेदनभावना (होती है)। ऐसे क्यों कहा ? कि विकार की भावना तो है, संसार में एकाग्र नहीं है ? विकार का वेदन, वह वेदन तो है न, स्वसंवेदन (है)। पर का, राग का वेदन, विकल्प पुण्य-पाप का वेदन - ऐसा अज्ञान का स्वसंवेदन तो है। यह निर्विकार स्वसंवेदन एकाग्रता (है) - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ?

निर्विकार स्वसंवेदन एकाग्रता से **च्युतिस्वरूप छेद होता है, तो उसे जिनमत में व्यवहारज्ञ....** (अर्थात्) व्यवहार का जाननेवाला। देखो! जाननेवाला (कहा है), हाँ! करनेवाला ऐसा नहीं। निमित्त। **प्रायश्चित्तकुशल-आचार्य के निकट....** ऐसे व्यवहार के जाननेवाला प्रायश्चित्त में कुशल हैं, ऐसे **आचार्य के निकट जाकर, निष्प्रपंचभाव से....** प्रपंच बिना कहे, मेरे को ऐसा भाव हो गया। मैं अपने आनन्द से च्युत हो गया। समझ में आया ? मेरी शान्ति... शान्ति... शान्ति... इस शान्ति के मेरे आनन्द भाव से मैं च्युत हो गया। जैसे बालक निष्कपटपने उसके माता-पिता के पास कहे, ऐसे आचार्य संयम ज्ञानी हैं, व्यवहार को जाननेवाले हैं, उनके पास आलोचन करते हैं।

दोष का निवेदन करके, वे आचार्य निर्विकार स्वसंवेदनभावना के अनुकूल.... देखो! **जो कुछ भी प्रायश्चित्त उपदेशें वह करना चाहिए।** ऐसा कहे कि तुमको दो उपवास करना या रसत्याग करना। ऐसा उस प्रकार का व्यवहार है न! निश्चय प्रायश्चित्त तो अपने स्वरूप में एकाग्र होना, वह प्रायश्चित्त है। समझ में आया ? अतीन्द्रिय आनन्द में से हट गया, ऐसा अतीन्द्रिय आनन्द में लीन होना, वह उसका प्रायश्चित्त है। यह तो व्यवहार प्रायश्चित्त की बात चलती है। समझ में आया ? ऐसा मार्ग है, भाई! दुनिया में तो अभी सब दूसरा चलता है। मार्ग कुछ है और (दिखाते) हैं कुछ। क्या करें ?

मुमुक्षु - निर्विकार स्वसंवेदन भावना के अनुकूल प्रायश्चित्त देते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री - अनुकूल प्रायश्चित्त दे। लो, वह दो गाथा (पूरी) हुई।

गाथा - २१३

अथ श्रामण्यस्य छेदायतनत्वात् परद्रव्यप्रतिबन्धाः प्रतिषेध्या इत्युपदिशति-

अधिवासे व विवासे छेदविहूणो भवीय सामण्णे।
समणो विहरदु णिच्चं परिहरमाणो णिबंधाणि।।२१३।।

अधिवासे वा विवासे छेदविहीनो भूत्वा श्रामण्ये।
श्रमणो विहरतु नित्यं परिहरमाणो निबन्धान्।।२१३।।

सर्व एव हि परद्रव्यप्रतिबन्धा उपयोगोपरञ्जकत्वेन निरुपरागोपयोगरूपस्य श्रामण्यस्य छेदायतनानि; तदभावदेवाछिन्नश्रामण्यम्। अत आत्मन्येवात्मनो नित्याधिकृत्य वासे वा, गुरुत्वेन गुरुनधिकृत्य वासे वा गुरुभ्यो विशिष्टे वासे वा, नित्यमेव प्रतिषेधयन् परद्रव्यप्रतिबन्धान् श्रामण्ये छेदविहीनो भूत्वा श्रमणो वर्तताम्।।२१३।।

एवं गुरुव्यवस्थाकथनरूपेण प्रथमगाथा, तथैव प्रायश्चित्तकथनार्थं गाथाद्वयमिति समुदायेन तृतीयस्थले गाथात्रयं गतम्। अथ निर्विकारश्रामण्यच्छेदजनकान्परद्रव्यानुबन्धान्निषेधयति-**विहरदु** विहरतु विहारं करोतु। स कः। **समणो** शत्रुमित्रादिसमचित्तश्रमणः। **णिच्चं** नित्यं सर्वकालम्। किं कुर्वन्सन्। **परिहरमाणो** परिहरन्सन्। कान्। **णिबंधाणि** चेतनाचेतनमिश्रपरद्रव्येष्वनुबन्धान्। क्व विहरतु। **अधिवासे** अधिकृतगुरुकुलवासे निश्चयेन स्वकीयशुद्धात्मवासे वा, **विवासे** गुरुविरहितवासे वा। किं कृत्वा। **सामण्णे** निजशुद्धात्मानुभूतिलक्षणनिश्चयचारित्रे **छेदविहूणो भवीय** छेदविहीनो भूत्वा, रागादिरहितनिज-शुद्धात्मानुभूतिलक्षणनिश्चयचारित्रच्युतिरूपच्छेदरहितो भूत्वा। तथाहि-गुरुपार्श्वे यावन्ति शास्त्राणि तावन्ति पठित्वा तदनन्तरं गुरुं पृष्ट्वा च समशीलतपोधनैः सह, भेदाभेदरत्नत्रयभावनया भव्यानामानन्दं जनयन्, पतःश्रुतसत्त्वैकत्वसन्तोषभावनापञ्चकं भावयन्, तीर्थंकरपरमदेवगणधरदेवादिमहापुरुषाणां चरितानि स्वयं भावयन्, परेषां प्रकाशयंश्च, विहरतीति भावः।।२१३।।

अब, श्रामण्य के छेद के आयतन होने से परद्रव्य-प्रतिबन्ध[1] निषेध करने योग्य हैं, ऐसा उपदेश करते हैं—

प्रतिबन्ध पर का त्यागकर, गुरु-संग में या असंग में।
मुनिराज विचरो सर्वदा, निर्दोष हो श्रामण्य में॥२१३॥

अन्वयार्थ - [**अधिवासे**] अधिवास में (आत्मवास में अथवा गुरुओं के सहवास में) वसते हुए [**वा**] या [**विवासे**] विवास में (गुरुओं से भिन्न वास में) वसते हुए, [**नित्यं**] सदा [**निबंधान्**] (परद्रव्यसम्बन्धी) प्रतिबन्धों को [**परिहरमाणः**] परिहरण करता हुआ [**श्रामण्ये**] श्रामण्य में [**छेदविहीनः भूत्वा**] छेदविहीन होकर [**श्रमणः विहरतु**] श्रमण विहरो।

टीका - वास्तव में सभी परद्रव्य-प्रतिबन्ध उपयोग के उपरंजक[२] होने से निरुपराग[३] उपयोगरूप श्रामण्य के छेद के आयतन हैं; उनके अभाव से ही अछिन्न श्रामण्य होता है। इसलिए आत्मा में ही आत्मा के सदा अधिकृत करके[४] (आत्मा के भीतर) बसते हुए अथवा गुरुरूप से गुरुओं को अधिकृत करके[५] (गुरुओं के सहवास में) निवास करते हुए या गुरुओं से विशिष्ट - भिन्न वास में बसते हुए, सदा ही परद्रव्यप्रतिबन्धों को निषेधता (परिहरता) हुआ श्रामण्य में छेदविहीन होकर श्रमण वर्तो॥२१३॥

प्रवचन नं. २१२ का शेष **आषाढ़ शुक्ल १०, बुधवार, २५ जून १९६९**

२१३ (गाथा)। **अब, श्रामण्य के छेद के आयतन होने से परद्रव्य-प्रतिबन्ध निषेध करने योग्य हैं, ऐसा उपदेश करते हैं—** देखो!

अधिवासे व विवासे छेदविहूणो भवीय सामण्णे।
समणो विहरदु णिच्चं परिहरमाणो णिबंधाणि।।२१३।।

प्रतिबन्ध पर का त्यागकर, गुरु-संग में या असंग में।
मुनिराज विचरो सर्वदा, निर्दोष हो श्रामण्य में॥२१३॥

१. परद्रव्यप्रतिबन्ध=परद्रव्यों में रागादिपूर्वक सम्बन्ध करना; परद्रव्यों में बँधना - रुकना; लीन होना; परद्रव्यों में रुकावट।
२. उपरंजक = उपराग करनेवाले, मलिनता-विकार करनेवाले।
३. निरुपराग = उपरागरहित; विकाररहित।
४. अधिकृत करके = स्थापित करके; रखकर।
५. अधिकृत करके = अधिकार देकर; स्थापित करके; अंगीकृत करके।)

टीका - **वास्तव में सभी परद्रव्य-प्रतिबन्ध उपयोग के उपरंजक होने से निरुपराग उपयोगरूप श्रामण्य के छेद के आयतन हैं;....** देखो! आहा...हा...! वास्तव में यह आत्मा भगवान, ज्ञायक और आनन्दस्वरूप, उसके अतिरिक्त सभी परद्रव्य, शरीर, वाणी, मन, देव, गुरु-शास्त्र, ये यात्रा के धाम सम्मेदशिखर, शत्रुंजय सब परद्रव्य हैं। आहा...हा...! भगवान आत्मा अपने निज स्वरूप दरबार में आनन्दकन्द में विराजमान आत्मा है। यह निजद्रव्य है, निजवस्तु है। निजवस्तु में **सभी परद्रव्य....** उसमें कोई बाकी रहा? तीन लोक के नाथ सर्वज्ञ परमेश्वर वीतरागदेव, समवसरण में विराजमान हो, वे भी इस आत्मा के लिये प्रतिबद्ध, उसमें राग होता है तो लक्ष्य जाता है। समझ में आया? (परद्रव्य प्रतिबन्ध का अर्थ मूल ग्रन्थ में फुटनोट में दिया है) 'परद्रव्यों में रागादिपूर्वक सम्बन्ध करना; परद्रव्यों में बँधना—रुकना; लीन होना; परद्रव्यों में रुकावट।' आहा...हा...! समझ में आया? अपना निजस्वरूप ज्ञान और आनन्द, यह स्वद्रव्य—स्ववस्तु (है), उसको छोड़कर जितने परद्रव्य का राग सम्बन्ध करना, परद्रव्य का सम्बन्ध करने का अर्थ राग के साथ सम्बन्ध करना वह **उपयोग के उपरंजक होने से....** अपने आनन्द के व्यापार में राग करनेवाले परद्रव्य, परद्रव्य का सम्बन्ध हैं। समझ में आया?

निरुपराग उपयोगरूप श्रामण्य.... देखो, भाषा! कैसे मुनि हैं? कि निरुपराग (अर्थात्) विकल्प, राग रहित-निरुपराग, उपरागरहित, विकाररहित (हैं)। उपयोग-अन्तर आनन्द और ज्ञान का शुद्ध उपयोग, ऐसे श्रामण्य। उनका नाम साधु है। समझ में आया? अपना शुद्ध आनन्दस्वरूप साधे, सो साधु। आ...हा...! खबर नहीं होती क्या चीज है और क्या मार्ग है। 'अंधेअंध पलाय' आहा...हा...! यह तो छठे-सातवें की बात चलती है। आहा...हा...!

अपना आत्मा, अपनी शुद्ध वस्तु परमानन्द की मूर्ति, उसका आश्रय छोड़कर जितना परद्रव्य में राग से सम्बन्ध करते हैं, (उतना) मलिन उपयोग होता है। आहा...हा...! देखो! शुभराग को भी उपराग—मलिन करनेवाला कहा। कठिन बात, भाई! परद्रव्य सर्वज्ञ परमेश्वर हो, गुरु हो, शास्त्र हो, कोई भी बाह्य पदार्थ से, अपने अतिरिक्त सभी परद्रव्य प्रतिबद्ध—परद्रव्य प्रतिबद्ध (अर्थात्) उसमें रूकावट, परद्रव्य में रूकावट, लीन, समझे?

पर की ओर का झुकाव, वह **उपयोग के उपरंजक होने से....** अपना आनन्द उपयोग, ज्ञान उपयोग में मैल उत्पन्न करनेवाला होने से, भगवान **निरुपराग उपयोगरूप श्रामण्य के छेद के आयतन हैं;....** अपना निरुपराग आनन्द, उसका छेद होता है। ओ...हो...हो... !

मन, वाणी, भगवान, परमेश्वर, प्रतिमा, यात्रा सब परद्रव्य हैं। आहा...हा... ! परद्रव्य प्रतिबद्ध — ऐसा कहा न ? परद्रव्यसम्बन्धी रागादिपूर्वक सम्बन्ध करना, वह प्रतिबद्ध (है)। अथवा उसमें बँधना, रुकना, लीन होना, यह उपयोग में मैल उत्पन्न करनेवाला है। आहा...हा... ! कठिन बात, भाई ! चरणानुयोग में ऐसा अधिकार है, देखो ! देखो !

मुमुक्षु – मुनियों के लिये तो ऐसा लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री – हाँ, ठीक है। सब के लिये यह है। सबके लिये ये सिद्धान्त हैं, सिद्धान्त कोई दूसरा हो जाता है ? 'एक होय तीनकाल में परमार्थ का पन्थ' मुनि को या श्रावक को। श्रावक को स्थिरता कम है, मुनि को स्थिरता विशेष है, इतना फर्क है; दूसरा कोई मार्ग में फर्क नहीं। आहा...हा... ! सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तो जैसा मुनि को है, ऐसा समकित को, ऐसा पशु को (है)। आहा...हा... ! समझ में आया ?

यहाँ तो कहते हैं, वह तो बताया न ! २४८ गाथा। शुद्ध उपयोग सम्यग्दर्शन-अनुभव होता है, वह शुद्ध उपयोग में ही होता है। वह आया न ? 'द्रव्यसंग्रह में ४७ गाथा। क्या नाम ? भूल गये। '**दुविहं पि**' '**दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा ॥**' ध्यान में प्राप्त होता है, देखो ! '**दुविहं पि मोक्खहेउं**' दो प्रकार का मोक्ष का मार्ग, सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र निश्चय और व्यवहार, अन्दर ध्यान में प्राप्त होता है। देखो ! ध्यान का अर्थ अन्दर निश्चय होता है, फिर विकल्प बाकी रहा, उसे व्यवहार कहते हैं। समझ में आया ? '**दुविहं पि मोक्खहेउं**' आता है, ४७ गाथा है, चार और सात। '**झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा ॥**' निश्चय से मुनि, ध्यान में सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्राप्त करते हैं अथवा आत्मा उसमें ही प्राप्त करते हैं। आ...हा... ! ऐसा आत्मा अन्तर में, स्वज्ञेय को पकड़कर उपयोग शुद्ध हो, तब निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञान होता है। बाकी राग रहता है, उसको व्यवहार कहते हैं – ऐसे स्थापित कर दिया। निश्चय और व्यवहार साथ में लेना है न, सहकारी लेना है न। देखो ! उसमें भी साथ में लिया; पहले व्यवहार होता है, बाद में

निश्चय होता है – ऐसा लिया ही नहीं। यहाँ तो साथ में है ही। समझ में आया? आ...हा...! व्यवहार से कहने में आये। समझ में आया?

ओ...हो...! भगवान आत्मा अपना निज निर्विकारी स्वभाव का पिण्ड प्रभु, उसको छोड़कर आत्मद्रव्य को सभी परद्रव्य राग का सम्बन्ध होने से, प्रतिबद्ध राग का कारण है और मैल का कारण है। यह शुभभाव भी मैल है – ऐसा सिद्ध करते हैं। भगवान की भक्ति और भगवान की यात्रा का भाव, वह भी शुभभाव पुण्य मैल है – ऐसा कहते हैं। ऐ...ई...! भाई! ऐसा मार्ग। अरे...! बेचारे साधारण प्राणी को तो मालूम भी नहीं पड़े। जिन्दगी ऐसे ही चली जाती है। (फिर) जाये कोई ऐसे पशु या निर्धन मनुष्य में चले जाये। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, भगवान आत्मा अपनी निज पूँजी अन्दर पड़ी है — ज्ञान, शान्ति, वीतराग आदि। ऐसा अपना स्वद्रव्य, उसको छोड़कर, जितनी अपने से परवस्तु भिन्न है, वह सब प्रतिबद्ध (है)। उस ओर राग का सम्बन्ध करते हैं तो आत्मा, उपयोग वहाँ रुक जाता है, उपयोग मैला होता है। आहा...हा...! है या नहीं?

प्रश्न – इसमें क्या करना चाहिये?

समाधान – क्या करना? पर का लक्ष्य छोड़कर अपने द्रव्य की ओर ध्यान करना चाहिए – ऐसा कहते हैं। यह कहते हैं। आ...हा...! समझ में आया? यह तो पहले ज्ञान कराते हैं। मुनि की दशा में ऐसा होता है तो मैल है – ऐसा कहते हैं। समझ में आया? लो, अट्ठाईस मूलगुण भी पहले लिया परन्तु अट्ठाईस मूलगुण परलक्ष्य से है तो वह भी मैल है – ऐसा कहते हैं। परजीव की दया पालना, परजीव को दुःख न हो, यह सब मैल है। परद्रव्य-अनुसारी भाव हैं।

मुमुक्षु – प्रतिबन्ध है।

पूज्य गुरुदेवश्री – प्रतिबद्ध शब्द का अर्थ राग। परद्रव्य-प्रतिबद्ध उसका अर्थ लिया न! परद्रव्यों में रागादिपूर्वक सम्बन्ध (करना)। ऐसे। परद्रव्य में बँधना। उसका अर्थ क्या है? रुकना, लीन होना, परद्रव्य में रुकावट करना। वह **छेद के आयतन...** (अर्थात्) घर है। छेद का घर, पाप का स्थान है, कहते हैं। उसमें आत्मा की शान्ति घात

होती है। आहा...हा...! कठिन बात, भाई! वीतराग की शान्ति, वीतरागी शान्ति (है), राग उत्पन्न होता है तो शान्ति का घात होता है। चरणानुयोग की शैली में देखो, कैसी शैली है! ओ...हो...हो...! वस्तु तो है सो है, चारों अनुयोग में वीतरागता बतानी है। चारों अनुयोग में शास्त्र का तात्पर्य तो वीतराग-अकषाय भाव है।

मुमुक्षु - पूर्ण स्थान प्राप्त करने को बाधक है।

पूज्य गुरुदेवश्री - बाधक है। परद्रव्य की ओर जितना लक्ष्य जाता है, इतना मुनि को भी राग, मैल उत्पन्न होता है।

मुमुक्षु - साधक है।

पूज्य गुरुदेवश्री - साधक-फादक कुछ है नहीं। निमित्त-फिमित्त शुभराग साधक नहीं, मैल है, ऐसा कहते हैं। वर्तमान बाधक है न, मैल है न। परद्रव्य पर झुकाव हो जाता है न; अतः उसको छोड़कर स्वद्रव्य का झुकाव करे, तब निर्मलता होती है।

मुमुक्षु - पूर्ण स्वभाव के लिये बाधक है।

पूज्य गुरुदेवश्री - वह भी वर्तमान बाधक है। वह कहा। पूर्ण स्वभाव में बाधक है, ऐसा कहते हैं परन्तु वर्तमान बाधक है या नहीं? वर्तमान बाधक है। वर्तमान दोष है, शुभभाव वर्तमान वास्तव में निश्चय से पाप है।'पुण्य पुण्य को सब कहे परन्तु अनुभवीजन पुण्य को पाप कहे' 'योगीन्द्रदेव' में आता है। वह तो 'समयसार' में भी 'पुण्य-पाप अधिकार' में आता है।'जयसेनाचार्यदेव' की (टीका में) अन्तिम की गाथा है न (उसमें आता है) कि व्यवहार रत्नत्रय पाप है, ऐसा लिया है। पतित होता है, व्यवहार रत्नत्रय में स्वरूप में से पतित होता है। व्यवहार रत्नत्रय, हाँ! समझ में आया? है या नहीं? सच्चे मुनि की बात है न!'योगसार' में पुण्य को पाप कहा परन्तु यह तो 'जयसेनाचार्यदेव' की टीका में लिया है।'पुण्य-पाप अधिकार' की अन्तिम गाथा है न, (उसमें लिया है)। कौन-सी गाथा है?

प्रश्न - पाप क्यों कहा?

समाधान - पाप क्यों कहा, यह सब है। देखो! वहाँ भी वह लिया है। (१६१-

१६३ गाथा)। '**अत्राह शिष्यः। .... व्यवहाररत्नत्रयव्याख्यानं कृतं तिष्ठति कथं पापाधिकार**' आप तो व्यवहार मोक्षमार्ग की व्याख्या करते हो और पाप अधिकार में उसे क्यों लिखा? शिष्य प्रश्न करता है। समझ में आया? यह तो पाप अधिकार चलता है और आपने व्यवहार मोक्षमार्ग उसमें लिया। सुन... सुन!

'**परिहार :- यद्यपि व्यवहारमोक्षमार्गो निश्चयरत्नस्योपादेयभूतस्य कारणभूतत्वादुपादेयः व्यवहार परंपरया जीवस्य पवित्रताकारणम् पवित्र...**' व्यवहार हाँ! '**तथापि बहिर्द्रव्यालंबनत्वेन**' बहिरद्रव्य का अवलम्बन है। व्यवहार समकित, व्यवहार ज्ञान, व्यवहार पंच महाव्रत का परिणाम, वह '**बहिर्द्रव्यालंबनत्वेन पराधीनत्वात्**' पराधीन है। '**पतति नश्यतीत्येकं कारणं।** एक कारण। **निर्विकल्पसमाधारतानां व्यवहारविकल्पालंबेन स्वरूपात्पतितं भवतीति**' भगवान आनन्दस्वरूप निर्विकल्प शुद्ध उपयोग, उसमें (से) व्यवहार में आते हैं तो पतित हो जाता है। आ...हा...! वर्तमान। समझ में आया? ('समयसार' की) १६३ गाथा के भावार्थ में है। समझ में आया? '**पतितं भवतीति द्वितीयं कारणं। इति निश्चनयापेक्षया पापं।**' आचार्य, 'जयसेनाचार्यदेव' कहते हैं। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा का विकल्प, पंच महाव्रत का राग, शास्त्र पढ़ने का राग, निश्चय से पाप है। ऐ...ई...! समझ में आया? वस्तु तो यह है। आचार्य क्या कहते हैं? देखो! निश्चय की अपेक्षा से पापं।

मुमुक्षु - पुण्य-पाप में अन्तर में माने वह घोर संसारी है।

पूज्य गुरुदेवश्री - घोर संसारी। वह 'प्रवचनसार' में (आता है)। मिथ्यादृष्टि अन्तर मानता है, वह घोर संसार में रुलता है। अरे...! जगत को राग की मिठास है। वीतरागभाव भगवान आत्मा स्वरूप है, (उसका) प्रेम नहीं। आ...हा...! निजघर में जाना है या तुझे परघर में जाना है? भाई! आहा...हा...! 'अब हम निजघर कबहू न पाये' आता है कि नहीं? 'हम कबहू न निजघर आये, अब हम कबहू निजघर आये, परघर भ्रमत बहुत दिन बीते और अनेक नाम धराये' अनेक नाम धराये — मैं व्यवहार करनेवाला, मैं राग करनेवाला, मैं दया करनेवाला, मैं पुण्य करनेवाला। आ...हा...! 'अब हम कबहू न निजघर आये' आहा...हा...! निजघर की बात लोगों को रुचती नहीं। कौन आत्मा? अन्दर

आनन्दकन्द भगवान आत्मा है। निजघर की सुनी नहीं। परघर की सब बात, व्यभिचार की बात (है)। परघर का विकल्प है, वह सब व्यभिचार है। आया है, 'समयसार' 'निर्जरा अधिकार'। समझ में आया? आहा...हा...! कितना लिखा है, देखो!

वास्तव में निश्चय से यथार्थ में सभी परद्रव्य प्रतिबद्ध। परद्रव्य-प्रतिबद्ध, बस इतना। **उपयोग के उपरंजक...** (अर्थात्) मैला **होने से निरुपराग....** भगवान आत्मा का उपयोग, उसमें छेद होता है। छेद के स्थान है, छेद के आयतन है। आहा...हा..! काँप उठे, अज्ञानी को तो ऐसा लगे, हाय... हाय...! अब हमें क्या करना? परन्तु अन्दर द्रव्य है या नहीं? पूर्णानन्द स्वरूप आत्मा है या नहीं? जिसमें अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द पड़ा है या नहीं? आत्मा किसको कहे? जिसमें अन्दर अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति, अनन्त वीतरागता, अनन्त स्वच्छता, प्रभुता – ऐसी शक्ति का पिण्ड, उसको आत्मा कहते हैं। ऐसे स्वस्थ आत्मा को छोड़कर पर के प्रति लक्ष्य जाता है तो छेद होता है, कहते हैं। समझ में आया?

पहले तो मात्र आलोचनापूर्वक कहा। यह तो मूल में छेद होता है – ऐसा कहते हैं। अपने आत्मा की जो वीतराग मुनिदशा है और उसकी दशा के योग्य अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प है, उसमें थोड़ी शरीर की चेष्टा हो तो आलोचना (करते हैं), इतनी बात कही। परन्तु अपने आनन्द के उपयोग से च्युत हो जाये, शुभराग में आ जाये... समझ में आया? (तो) छेद होता है – ऐसा कहते हैं। आ...हा...! लो, पंच महाव्रत के परिणाम से आत्मा की लूट होती है – ऐसा कहते हैं। छेद होता है, घात होता है। दूसरे प्रकार का छेद, पहले प्रकार के छेद में आलोचना कहा।

उनके अभाव से ही अछिन्न श्रामण्य होता है। देखो! **उनके अभाव से....** परद्रव्य-अनुसारी राग को छोड़कर, स्वद्रव्य-अनुसारी में एकाकार होता है तो **अछिन्न श्रामण्य होता है।** छेदरहित, चारित्रदशा, मुनिपना रहता है। समझ में आया? **उनके अभाव से....** उनके अर्थात् परद्रव्य-प्रतिबद्ध का अभाव से। समझ में आया? **अछिन्न....** उसमें छिन्न कहा था न? छेद के आयतन है। अछिन्न आयतन होता है। आत्मा अपना निज स्वरूप, ज्ञान और आनन्द में लीन होते हैं, परद्रव्य-प्रतिबद्ध राग का सम्बन्ध छोड़ देते हैं

तो साधुपना अछिन्न-अखण्ड होता है। यहाँ तो अभी छठ्ठे गुणस्थान की बात करते हैं। समझ में आया? 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' अपनी (बात) स्वयं करते हैं। समझ में आया? आहा...हा...!

इसलिए आत्मा में ही आत्मा को.... लो, इस कारण से आत्मा में ही आत्मा को। आत्मा जानना, आनन्द आदि, जानन और आनन्द, ऐसे स्वभावस्वरूप भगवान आत्मा, उसमें **आत्मा में ही आत्मा को सदा अधिकृत करके....** लो। स्थापित करके, रख करके। अपने स्वरूप में अपने को रख करके। समझ में आया? ज्ञानानन्द स्वभाव भगवान, उसमें अपने को रखकर, ऐसे स्वभाव में स्थापित कर। समझ में आया? **सदा अधिकृत करके (आत्मा के भीतर) बसते हुए....** आत्मा के भीतर बसते हुए। देखो! ज्ञायक चिदानन्दस्वरूप में अन्तर प्रवेश करके रहते हुए, वह निश्चय।

अथवा गुरुरूप से गुरुओं को अधिकृत करके,.... व्यवहार आया। समझ में आया? अपने से मुनि, वीतरागी मुनि बड़े हों तो गुरुरूप से। गुरुरूप से, लो। उन **गुरुओं को अधिकृत करके,....** व्यवहार स्थापित करते हैं। समझ में आया? **(गुरुओं के सहवास में) निवास करते हुए....** अपना आनन्दस्वरूप में निवास करते हुए, यह निश्चय; और गुरु के पास निवास करते हुए, यह व्यवहार। निश्चय-व्यवहार दोनों लिये। समझ में आया? चारित्र, यह चारित्र! मुनिपना! लोगों ने तो मुनिपना की दशा साधारण बना दी। आहा...हा...! चलते-फिरते परमेश्वर हैं! परमेश्वर! जिनको गणधर नमस्कार करे।

गुरुरूप से गुरुओं को अधिकृत करके (गुरुओं के सहवास में) निवास करते हुए या गुरुओं से विशिष्ट - भिन्न वास में बसते हुए,.... अपनी शक्ति हो तो उनको छोड़कर, **भिन्न वास में बसते हुए,....** दूर रहे। **सदा ही....** देखो! **सदा ही परद्रव्यप्रतिबन्धों को निषेधता (परिहरता) हुआ....** आ...हा...हा...! परद्रव्य सम्बन्धी प्रतिबद्ध नाम रागसम्बन्ध, राग से सम्बन्ध करना, वह छोड़ता हुआ। गुरुओं से विशिष्ट खास भिन्न वास। एकान्त में जाते हैं। समझ में आया?

सदा ही परद्रव्यप्रतिबन्धों को.... छोड़ता हुआ **श्रामण्य में छेदविहीन होकर....** अपनी चारित्रदशा में भंग हुए बिना **श्रमण वर्तो।** आ...हा...हा...! मुनि अपने स्वरूप में

वर्तो। देखो, यह मुनि! ऐसे मुनिपना बिना कभी मोक्ष होता नहीं। समझ में आया? चारित्र इसे कहते हैं। लोग तो चारित्र (उसे कहे कि) ये नहीं खाना, माँस नहीं खाना, दारू नहीं पीना, ये चारित्र। वहाँ कहाँ चारित्र था? देखो, चारित्र की बात आयी, ऐसा लिखे। ठीक! अरे... भगवान क्या करता है? इतना छोड़ने का अन्दर शुभ विकल्प आया न, (उसे चारित्र कहते हैं)। साधारण आर्य मनुष्य को माँस, दारू, मछली, मद्य होता ही नहीं। उसमें क्या है? वह तो साधारण प्राणी को नहीं होता। आर्य मनुष्य को तो होता ही नहीं। **श्रामण्य में छेदविहीन होकर श्रमण वर्तो।** २१३ गाथा बड़ी आयी। अन्दर द्रव्यानुयोग आया, देखो! आहा...हा...! यहाँ तो परद्रव्य का निषेध किया। अब स्वद्रव्य (का कहते हैं)।

गाथा - २१४

अथ श्रामण्यस्य परिपूर्णतायतनत्वात् स्वद्रव्य एव प्रतिबन्धो विधेय इत्युपदिशति -

चरदि णिबद्धो णिच्चं समणो णाणम्हि दंसणमुहम्हि।
पयदो मूलगुणेसु य जो सो पडिपुण्णसामण्णो।।२१४।।

चरति निबद्धो नित्यं श्रमणो ज्ञाने दर्शनमुखे।
प्रयतो मूलगुणेषु च यः स परिपूर्णश्रामण्यः।।२१४।।

एक एव हि स्वद्रव्यप्रतिबन्ध उपयोगमार्जकत्वेन मार्जितोपयोगरूपस्य श्रामण्यस्य परिपूर्णतायतनं; तत्सद्भावादेव परिपूर्णं श्रामण्यम्। अतो नित्यमेव ज्ञाने दर्शनादौ च प्रतिबद्धेन मूलगुणप्रयततया चरितव्यं; ज्ञानदर्शनस्वभावशुद्धात्मद्रव्यप्रतिबद्धशुद्धास्तित्वमात्रेण वर्तितव्यमिति तात्पर्यम्।२१४।

अथ श्रामण्यपरिपूर्णकारणत्वात्स्वशुद्धात्मद्रव्ये निरन्तरमवस्थानं कर्तव्यमित्याख्याति-**चरदि** चरति वर्तते। कथंभूतः। **णिबद्धो** आधीनः, **णिच्चं** नित्यं सर्वकालम्। सः कः कर्ता। **समणो** लाभालाभादि-समचित्तश्रमणः। क्व निबद्धः। **णाणम्हि** वीतरागसर्वज्ञप्रणीतपरमागमज्ञाने तत्फल-भूतस्वसंवेदनज्ञाने वा, **दंसणमुहम्मि** दर्शनं तत्त्वार्थश्रद्धानं तत्फलभूतनिजशुद्धात्मोपादेयरुचिरूप-निश्चयसम्यक्त्वं वा तत्प्रमुखेष्वनन्तसुखादिगुणेषु। **पयदो मूलगुणेसु च** प्रयतः प्रयत्नपरश्च। केषु। मूलगुणेषु निश्चयमूलगुणाधार-परमात्मद्रव्ये वा। **जो सो पडिपुण्णसामण्णो** य एवंगुणविशिष्टश्रमणः स परिपूर्णश्रामण्यो भवतीति। अयमत्रार्थः-निजशुद्धात्मभावनारतानामेव परिपूर्णश्रामण्यं भवतीति।।२१४।।

अब, श्रामण्य की परिपूर्णता का आयतन होने से स्वद्रव्य में ही प्रतिबन्ध (सम्बन्ध लीनता) करने योग्य है, ऐसा उपदेश करते हैं—

ज्ञान-दर्शन आदि में जो, श्रमण नित्य प्रतिबद्ध हैं।
जो प्रयत मूलगुणों विषैं, परिपूर्ण वे श्रामण्य हैं॥२१४॥

अन्वयार्थ - **[यः श्रमणः]** जो श्रमण **[नित्यं]** सदा **[ज्ञाने दर्शनमुखे]** ज्ञान में और दर्शनादि में **[निबद्धः]** प्रतिबद्ध **[च]** तथा **[मूलगुणेषु प्रयतः]** मूलगुणों में प्रयत (प्रयत्नशील) **[चरति]** विचरण करता है, **[सः]** वह **[परिपूर्णश्रामण्यः]** परिपूर्ण श्रामण्यवान् है।

टीका - एक स्वद्रव्य-प्रतिबन्ध ही, उपयोग का मार्जन (शुद्धत्व) करनेवाला होने से, मार्जित (शुद्ध) उपयोगरूप श्रामण्य की परिपूर्णता का आयतन है; उसके सद्भाव से ही परिपूर्ण श्रामण्य होता है। इसलिए सदा ज्ञान में और दर्शनादिक में प्रतिबद्ध[१] रहकर मूलगुणों में प्रयत्नशीलता से विचरना — ज्ञानदर्शनस्वभाव शुद्धात्मद्रव्य में प्रतिबद्ध ऐसा शुद्ध अस्तित्वमात्ररूप से वर्तना, यह तात्पर्य है॥२१४॥

प्रवचन नं. २१२ का शेष **आषाढ़ शुक्ल १०, बुधवार, २५ जून १९६९**

अब, श्रामण्य की परिपूर्णता का आयतन.... देखो! साधुपने की परिपूर्णता, हाँ! मोक्ष दशा की यहाँ बात नहीं। यहाँ तो साधुपने की परिपूर्णता का स्थान होने से। **स्वद्रव्य में ही प्रतिबन्ध (सम्बन्ध लीनता) करने योग्य है,...** स्वआत्मा में सम्बन्ध करने, लीनता करने योग्य है **ऐसा उपदेश करते हैं —** लो। आहा...हा...! पहले तो पर की व्याख्या बता दी। अब अपना भगवान आत्मा ज्ञान और आनन्द का धाम, उसका सम्बन्ध करके लीन होना, वह स्वद्रव्य प्रतिबद्ध है, यह मोक्ष का मार्ग है। आहा...हा...!

चरदि णिबद्धो णिच्चं समणो णाणम्हि दंसणमुहम्हि।
पयदो मूलगुणेसु य जो सो पडिपुण्णसामण्णो।।२१४।।

ज्ञान-दर्शन आदि में जो, श्रमण नित्य प्रतिबद्ध हैं।
जो प्रयत मूलगुणों विषैं, परिपूर्ण वे श्रामण्य हैं॥२१४॥

वहाँ सच्चा साधुपना है, सच्चा परिपूर्ण है। अभी साधुपने की बात करते हैं। आहा...हा...! समझ में आया? **एक स्वद्रव्य-प्रतिबन्ध ही, उपयोग का मार्जन**

---

१. प्रतिबद्ध = संबद्ध; रुका हुआ; बँधा हुआ; स्थित; स्थिर; लीन।

(शुद्धत्व) करनेवाला.... है। देखो! भगवान आत्मा स्वज्ञान और आनन्द का पिण्ड आत्मा, वही स्वद्रव्य प्रतिबद्ध, उसका सम्बन्ध ही। उसका सम्बन्ध ही उपयोग का शुद्धत्व करनेवाला है। देखो! अनेकान्त ऐसा नहीं लिया कि शुभभाव से भी शुद्धत्व होता है और अपने स्वद्रव्य के सम्बन्ध से भी शुद्धत्व होता है। ऐसा अनेकान्त है नहीं।

अपना स्वद्रव्य ज्ञानानन्द भगवान आत्मा, उसके सम्बन्ध से ही शुद्धत्व उपयोग मार्जन, निर्मल होता है। एक ही उपाय (है), दूसरे (प्रकार से) शुद्ध उपयोग होता नहीं। **स्वद्रव्य-प्रतिबन्ध ही....** यह तो निश्चय है न। **उपयोग का मार्जन (शुद्धत्व) करनेवाला होने से, मार्जित (शुद्ध) उपयोगरूप श्रामण्य की....** देखो, यहाँ भाषा! लो, यहाँ तो साधु को शुद्ध उपयोग कह दिया। छठ्ठे गुणस्थान में शुद्ध कहते हैं, यहाँ तो यह लेते हैं। छठ्ठे गुणस्थान में शुद्ध परिणति है न! और उसमें शुभ विकल्प है तो भूमिका के प्रमाण में उसको शुद्ध उपयोग कहते हैं। आहा...हा...! राग है, फिर भी शुद्ध उपयोग कहते हैं। आगे कहेंगे। छठ्ठे गुणस्थान की दशा को, विकल्प होने पर भी, शुद्ध उपयोगी कहने में आया है क्योंकि प्रधानता शुद्ध उपयोग की परिणति की है। राग है परन्तु वहाँ गौण है उस अपेक्षा से (कहा है)। शुद्ध उपयोग में है नहीं, फिर भी उसमें शुद्ध उपयोग की प्रधानता गिनने में आयी है। समझ में आया? लोगों को मेहनत पड़ती है। समझने में मेहनत पड़ती है। लोग कहते हैं, समझन करो, समझन करो, समझन करो, समझन करो। तुम तो ज्ञान हो, दूसरी कोई चीज है नहीं। ज्ञान भगवान समझन का पिण्ड है, उसमें प्रतिबद्ध करना तो उपयोग की शुद्धता, मार्जन। मार्जन अर्थात् निर्मलता। समझ में आया?

एक स्वद्रव्य-प्रतिबन्ध.... नाम स्वआत्मा भगवान निर्मलानन्द, उसके सम्बन्ध से ही उपयोग निर्मल करनेवाला होने से निर्मल **उपयोगरूप श्रामण्य की परिपूर्णता का आयतन है;....** अपना स्वज्ञायक भगवान का सम्बन्ध करने से शुद्ध उपयोगरूपी श्रामण्य। शुद्ध उपयोग, आत्मा का निर्मल व्यापाररूप साधुपद की परिपूर्णता का स्वद्रव्य का सम्बन्ध स्थान है। स्वद्रव्य का स्थान-आयतन है। आहा...हा...! गजब व्याख्या भाई! गाथा कठिन है, भाई! चरणानुयोग (है)। ऐ...ई...!

एक ओर कहे, शुद्ध परिणति है। चलने में भी उपयोग बराबर है, परन्तु काय की

चेष्टा हो जाये तो आलोचना करना। वह तो उस भूमिका में राग आया, इतना। एक ओर कहे, आ...हा...हा... ! समझ में आया ? अपना परिपूर्ण भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु आत्मा, सच्चिदानन्द आत्मा है। अपना सत् सत् सत् शाश्वत ज्ञानान्द का सम्बन्ध करना, वही श्रामण्यपना की परिपूर्णता का घर है। उसमें साधुपद प्रगट होता है; बाह्य की क्रियाकाण्ड से कोई प्रगट होता नहीं। आ...हा...हा... ! पूरे दिन बाहर में ये करना। नाटक किया, ये किया। क्या कहते हैं ? शान्तिस्तोत्र ! फलाना स्तोत्र, भगवान के नाम पर ये किया, वह किया। वब सब शुभराग है, मलिन (भाव) है। आहा...हा... ! तो आपने इतना क्यों किया ? ऐसा कहते हैं। भाई !

मुमुक्षु – अभी मन्दिर बनाया।

पूज्य गुरुदेवश्री – अभी मन्दिर बनाया। आपका 'मलाड' है न ? 'मलाड' स्थान। 'मलाड' में उसका भाग है। तीन लाख का मन्दिर ! वह तो होता है, हो, करे कौन ? उस समय कोई निमित्त साथ में हो, उसको शुभभाव है परन्तु शुभभाव पुण्यबन्ध का कारण है, धर्म नहीं। आहा...हा... ! समझ में आया ? ऐसा व्यवहार, निश्चय के भानसहित आये बिना रहते नहीं, परन्तु है मलिन। आहा...हा... ! 'ऐसा मार्ग वीतराग का, कहा श्री भगवान' ऐसा मार्ग है, भाई ! दुनिया को रुचे, न रुचे, उसके साथ सम्बन्ध नहीं है।

उसके सद्भाव से ही परिपूर्ण श्रामण्य होता है। देखो ! उपयोग श्रामण्य की परिपूर्णता का घर है, भगवान आत्मा। **उसके सद्भाव से...** अर्थात् आत्मा के आश्रय की अस्ति से **ही परिपूर्ण श्रामण्य होता है।** देखो ! उसके कारण साधुपद होता है। बाहर की क्रियाकाण्ड, देह, वाणी, मन, विकल्प से कोई साधुपद होता नहीं। विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

प्रवचन नं. २१३ — आषाढ़ शुक्ल ११, गुरुवार, २६ जून १९६९

('प्रवचनसार') चूलिका (अधिकार)। क्या कहते हैं ? टीका फिर से लेते हैं, देखो २१४ गाथा। साधु की व्याख्या चलती है। साधु किसे कहते हैं ? कि यह आत्मा

चिदानन्द आनन्दस्वरूप, उसकी जिसको ज्ञानज्योति प्रगट हुई है। आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध निर्विकारी चैतन्यब्रह्म, ऐसा अपना अन्दर में भान हुआ है कि मैं तो आनन्द और शुद्ध हूँ। पुण्य-पाप का राग, शरीर की क्रिया से रहित हूँ — ऐसा सम्यक् अनुभव होने (के बाद) साधु होता है। बाद में साधु होता है, सम्यक् बिना साधु होता नहीं। उस साधु के आचरण में कैसी क्रिया है, उसकी बात चलती है।

टीका - **एक स्वद्रव्य-प्रतिबन्ध ही,....** क्या कहते हैं? देखो! यह आत्मा आनन्दस्वरूप ज्ञानमूर्ति, ऐसा एक द्रव्य स्वद्रव्य-प्रतिबद्ध, उसमें एकाग्रता होना, अन्तर सम्बन्ध करना। **उपयोग का मार्जन (शुद्धत्व) करनेवाला होने से,....** आत्मा में पवित्रता का परिणाम, शुद्धता का—पवित्रता का करनेवाला, स्वद्रव्य का सम्बन्ध है। समझ में आता है? अपना भगवान देह, वाणी, मन से भिन्न और अन्दर शुभ-अशुभ राग / विकल्प हो, वह तो मैल (है), उससे भी भिन्न (है), ऐसी चीज का, ऐसी अपनी स्व-वस्तु, उसमें सम्बन्ध करनेवाले धर्मात्मा को, उससे ही उपयोग अर्थात् अपना वर्तमान निर्मल परिणाम, शुद्ध वीतरागी भाव करनेवाला होने से। स्वद्रव्य के सम्बन्ध से वीतरागता, निर्मल परिणाम उत्पन्न होता है। समझ में आया?

करनेवाला होने से, मार्जित (शुद्ध) उपयोगरूप श्रामण्य की परिपूर्णता का आयतन है;.... शुद्ध भगवान आत्मा, उसकी उग्रता, पवित्रता, वीतरागता, निर्दोषता - ऐसा जो अपना अन्तर व्यापार, ऐसा श्रामण्य की परिपूर्णता का स्थान स्वद्रव्य है। समझ में आया? उसके सद्भाव से ही परिपूर्ण श्रामण्य होता है। बहुत सूक्ष्म। बाह्य वेश—वेष या अन्दर शुभाशुभ राग, उससे कोई मुनिपना होता नहीं। समझ में आया? अपनी स्व-वस्तु शुद्ध ज्ञानानन्दस्वभाव, उसका प्रतिबद्ध अर्थात् सम्बन्ध, उससे ही साधुपद की परिपूर्णता होती है; इसलिए परिपूर्णता का, पवित्रता का आयतन स्वद्रव्य का सम्बन्ध है। भाषा कुछ समझ में नहीं आये। नये आदमी ने तो सुना भी नहीं होगा कि स्वद्रव्य प्रतिबद्ध क्या होगा?

मुमुक्षु - स्वद्रव्य अर्थात् अपने पैसे में प्रतिबद्ध।

पूज्य गुरुदेवश्री - धूल में भी पैसा नहीं है।

मुमुक्षु - उपयोग का मार्जन।

पूज्य गुरुदेवश्री - हाँ, मार्जन-शुद्धता।

अपना परिणाम जो शुद्ध है, उसका शुद्धत्व का होना—पवित्रता का होना, पुण्य-पाप के परिणाम रहित का होना, वह अपना ज्ञायक ध्रुव चैतन्यस्वभाव (है), उसके सम्बन्ध से होता है। समझ में आया ? आहा...हा... ! यहाँ साधुपद की (व्याख्या चलती है)। सम्यग्दर्शन उपरान्त साधुपद किसको कहे ? साधन, स्वरूप का पूर्ण परमात्मा, अपना स्वरूप का साधन करनेवाला, वह साधु। समझ में आया ?

कहते हैं कि मार्जित—शुद्ध हुआ। शुद्ध उपयोगरूप श्रामण्य। भगवान आत्मा में पुण्य-पाप का भाव (होना), वह तो अशुद्ध व्यापार, अशुद्ध परिणाम है। उससे रहित शुद्ध—पवित्र आनन्द स्वरूप का भाव, ऐसी शुद्धता का उपयोगरूप आयतन, उसका स्थान तो स्वद्रव्य का सम्बन्ध है। समझ में आता है या नहीं ? ऐसा मुनिपना कठिन बहुत। कपड़े बदल दे, साधु हो जाये, स्त्री-पुत्र छोड़ तो हो गया साधु।

मुमुक्षु - ....

पूज्य गुरुदेवश्री - धूल भी नहीं है। उसमें बदला क्या है ? वह तो बाहर की चीज बदली है, अन्तर में कहाँ बदला है ? कुछ नहीं बदला, धूल भी बदला नहीं, अभिमान किया है।

ऐसा यहाँ भगवान परमेश्वर त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव (कहते हैं कि) साधुपद की परिपूर्णता का भाव, अपना स्वद्रव्य के सम्बन्ध से होता है। आहा...हा... ! समझ में आया ? भाई ! इतने वर्षों में कभी ऐसा सुना नहीं होगा। स्वद्रव्य के सम्बन्ध (होना), वह श्रामण्य की परिपूर्णता का वह स्थान है। पंच महाव्रत पाले, अहिंसा, सत्य, दत्त, ब्रह्मचर्य पाले तो हो गया साधु। जिसको भव का अन्त लाना हो, मुक्ति अर्थात् आत्मा के आनन्द की पूर्ण दशा प्रगट करनी हो, उसके लिये यह बात है, बाकी भटकने की बात तो अनन्त काल से चलती है। पुण्य करना, दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा करता है, पुण्यबन्ध होता है। मिथ्यात्व, अज्ञान सहित चार गति में रुले-भटके।

मुमुक्षु - अच्छी गति तो मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री - गति कब अच्छी थी ? चारों गति दुःखरूप हैं। मनुष्यगति

हो, स्वर्गगति हो, नरकगति हो या तिर्यंच—पशु हो, चारों गति दुःखरूप हैं। समझ में आता है?

उसके सद्भाव से ही परिपूर्ण श्रामण्य होता है। देखो! कितना स्पष्ट है! भगवान आत्मा चैतन्यज्योत चैतन्यप्रकाश, आनन्द की मूर्ति प्रभु आत्मा (है)। आनन्द से भरा पड़ा—अपरिमित आनन्द, ऐसा जो अपना स्वद्रव्य स्वभाव, उसके सम्बन्ध से ही श्रमण की परिपूर्णता (होती है)। उसकी अस्ति में श्रामण्यपना होता है। अट्ठाईस मूलगुण जो विकल्प है, वह बात यहाँ नहीं की है। ए...ई...! समझ में आया? बाद में लेंगे। यहाँ तक तो कल चला था। यहाँ तक कल चला था। आहा...हा...! ऐसा करना, दया पालनी, व्रत पालना, ये सब विकल्प, राग है, वृत्ति है। वृत्ति उत्थान है, विकार है, दुःख है। अकेला भगवान प्रज्ञाब्रह्म आनन्दस्वरूप, ऐसे स्वभाव का सम्बन्ध करने से, शुद्ध उपयोग की निर्मलता होती है और वही उपयोग श्रामण्य की परिपूर्णता का स्थान है। समझ में आया? आ...हा...!

उसके सद्भाव से ही परिपूर्ण श्रामण्य होता है। भगवान आत्मा! ...अभी साधुपद किसको कहना, वह समझे नहीं। (माने कि) नग्न हो जाये तो साधु हो गया। वह साधु नहीं। अट्ठाईस मूलगुण, महाव्रतादि कदाचित् पाले, लो न, वह भी साधु नहीं। अपना आत्मा अखण्डानन्द प्रभु, अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त शान्ति के स्वभाव से भरा पड़ा सागर आत्मा है। उसमें अन्तर्मुख होकर सम्बन्ध करने से शुद्ध उपयोग होता है। वह शुद्ध उपयोग ही श्रमण का स्थान है, और यहाँ से साधुपद की परिपूर्णता (होती है)। समझ में आता है?

इसलिए.... इस कारण से **सदा ज्ञान में और दर्शनादिक में प्रतिबद्ध रहकर....** देखो! इस कारण से सदा भगवान आत्मा ज्ञान – जाननस्वभाव, दर्शनस्वभाव, आनन्दस्वभाव आदि, ऐसे में प्रतिबद्ध—सम्बन्ध, उसमें रुका हुआ, बँधा हुआ, स्थित, स्थिर, लीन। **मूलगुणों में प्रयत्नशीलता से विचरना....** आहा...हा...! भाषा भी समझ में नहीं आये। क्या कहते हैं? मूलगुण की व्याख्या क्या?

ज्ञान में, दर्शनादिक में प्रतिबद्ध रहकर (अर्थात्) अपना ज्ञातस्वभाव, दर्शनस्वभाव,

आनन्दस्वभाव, शान्त-वीतरागस्वभाव, ऐसे स्वभाव में सम्बन्ध करके, **मूलगुणों में प्रयत्नशील.....** मूलगुण दो प्रकार के (हैं)। एक—अनन्त ज्ञानादि स्वभाव अन्तर में त्रिकाली है, (वह) एक मूलगुण और दूसरा—अट्ठाईस मूलगुण (का) विकल्प उठता है, वह मूलगुण। (यह) व्यवहार (है)। समझ में आया?

फिर से, भगवान आत्मा देह के रजकण, मिट्टी से भिन्न है। यह तो मिट्टी है, भिन्न है। ये कहाँ आत्मा है? समझ में आया? शुभ-अशुभभाव जो होता है, वह कहाँ आत्मा है, वह तो विकार है। शास्त्रभाषा से आस्रवतत्त्व है। उससे तो मुझे आवरण होता है। उससे रहित अनन्त जिसका स्वभाव (है), ज्ञान—जानना, अनन्त-अनन्त स्वभाव (है)। दर्शन—दृष्टा अनन्त स्वभाव, आनन्द अनन्त स्वभाव, वीर्य अनन्त स्वभाव आदि वीतरागता, निर्दोषता अनन्त स्वभाव, ऐसे स्वभाव में सम्बन्ध रखकर, उसमें रुका हुआ, बँधा हुआ, लीन होकर **मूलगुणों में प्रयत्नशीलता से विचरना....** अपना शुद्ध पूर्ण स्वभाव, उसमें विचरना और निश्चय से परमात्मद्रव्य में विचरना। अपना परम स्वरूप ऐसे द्रव्य में विचरना। व्यवहार से एकबार आहार, पंच महाव्रत का राग / विकल्प, छह आवश्यक, समिति, गुप्ति आदि जो अट्ठाईस विकल्प अर्थात् राग है, व्यवहार से जिसको मूलगुण कहने में आया है, उसमें विचरना।

(अज्ञानी तो मानता है कि) स्त्री-पुत्र छोड़े, व्यापार छोड़ा तो हो गया साधु, लो। ऐसा नहीं है? लोग तो ऐसा मानते हैं। छोड़ दो। क्यों छोड़ दिया? हो गया साधु। स्त्री छोड़ दी तो हो गया साधु। उसमें क्या छोड़ दिया? वह तो परचीज है, तेरे में कहाँ घुस गयी थी? तेरे में जो विकार है, शुभ-अशुभ राग है, उसको छोड़कर अन्दर स्वरूप की दृष्टि में, स्वरूप की लीनता में वीतरागता हो, उसका नाम भगवान, साधुपना कहते हैं। समझ में आया? नहीं आत्मा की श्रद्धा की खबर, नहीं साधुपद की खबर, नहीं देव / परमात्मा कैसे होते हैं, उसकी खबर। कहो, भाई! बहुत सूक्ष्म।

इसे परमेश्वर सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव, जिसको एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में त्रिकाल ज्ञान हुआ है, होता है, ऐसी आत्मा की शक्ति है। यह है और जिसको हुआ है, वे परमात्मा, साधुपद की स्थिति का इस प्रकार से वर्णन करते हैं। कहो, समझ में आता है?

मूलगुणों में प्रयत्नशीलता से विचरना.... अपना निज स्वभाव, आनन्द जो हमेशा का आनन्द असली स्वभाव... आत्मा शाश्वत है न, नित्य है न? तो उसका ज्ञान, आनन्द आदि भी शाश्वत् नित्य स्वभाव है, उसमें विचरना वह पर्याय है। पर्याय अर्थात् अवस्था, दशा। ऐसी दशा को साधुपद कहने में आता है। (बाहर में) साधुपद ले लो, नग्न हो जाओ (ऐसा नहीं है)। अन्तर में नग्न होना। भगवान आत्मा परिपूर्ण निर्दोष स्वभाव से वस्तु अन्दर पड़ी है। स्वयं निज स्वरूप निज परमात्मा (है)। अप्पा सो परम आत्मा। आत्मा ही परम स्वभाव से भरा हुआ परमात्मा ही अन्दर है। उसका सम्बन्ध करके मूलगुणों में विचरना। **प्रयत्नशीलता....** (कहा है), देखो! **प्रयत्नशीलता...** (अर्थात्) पुरुषार्थ स्वभाव से, ऐसा स्वभाव - ऐसा कहते हैं। प्रयत्नशीलता से स्वभाव में रहना और अट्ठाईस मूलगुण (के) विकल्प में भी रहना। व्यवहार लेना है न!

ज्ञानदर्शनस्वभाव शुद्धात्मद्रव्य में प्रतिबद्ध, ऐसा शुद्ध अस्तित्वमात्ररूप से वर्तना, यह तात्पर्य है। लो! तात्पर्य कहा। आहा! भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप—ज्ञानस्वभाव, दर्शनस्वभाव, बस दो। मुख्य सामान्य-विशेष, ऐसा शुद्धात्मद्रव्य, ऐसा ज्ञान-दर्शन स्वभाव शुद्धात्म पदार्थ, शुद्ध पवित्र भगवान आत्मा, उसमें प्रतिबद्ध (अर्थात्) सम्बन्ध कर, **शुद्ध अस्तित्वमात्ररूप से वर्तना,....** ऐसे शुद्ध होनेरूप (अस्तित्व) में वर्तना, **यह तात्पर्य है।** कहो, ऐसा मुनिपना सुना भी नहीं हो। सुना भी न हो, मुनिपना कैसा होता है?

मुमुक्षु - गुरु देते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री - गुरु के पास कहाँ इसका मुनिपना है? उनका मुनिपना उनके पास है।

मुमुक्षु - दिया इसका अर्थ 'ऐसा तुझे करना'।

पूज्य गुरुदेवश्री - उसका कहा करे, उसे दिया - ऐसा कहने में आता है। देते तो हैं न! दे क्या, समझाये कि ऐसा मुनिपना होता है, भाई! भावलिंग अन्तर में यह दशा प्रगट होती है, तब अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प है, उसको निश्चय-व्यवहार कहने में आता है। ऐसा कहते हैं तो वह अन्दर से प्रगट करता है। प्रगट करता है तो दूसरे ने / गुरु ने दिया, - ऐसा कहने में आया। आहा...हा...! कठिन बात, भाई! यह तो संसार की दुकान उठाने की बात है।

मुमुक्षु – संसार की दुकान दु:ख की दुकान है।

पूज्य गुरुदेवश्री – दु:ख ही है। राग–द्वेष, अज्ञान, पुण्य–पाप, विकल्प की जाल (सब दु:खरूप है)। (आप के पास) पुस्तक नहीं है? ए...ई...! पुस्तक दो। समझ में आया? देखो, साधुपद ऐसा है। (ये भाई) हरिजन के गुरु हैं। यहाँ का अभ्यास है। हमारा जन्मधाम है न, (उमराला), वहाँ के हैं। आत्मा भगवान हरि है। अज्ञान को हरे वह हरि। विकार और अज्ञान का नाश करके आत्मा अन्दर में शुद्ध आनन्द प्रगट करे, उसका नाम हरि कहने में आता है। उसकी बात चलती है। आहा...हा...! आ...हा...!

'यह तात्पर्य है।' शुद्ध अस्तित्वमात्ररूप से.... देखो, अस्ति किया। देखो! ज्ञानदर्शनस्वभाव शुद्धात्मद्रव्य में सम्बन्ध। जो शुद्ध अस्तित्व, मात्र शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... सत्ता। पवित्र सत्ता होनेरूप में वर्तना। भाषा देखो! नास्ति से बात नहीं की। अकेला भगवान शुद्ध ज्ञायक आनन्द परिपूर्ण, कृतकृत्य, आनन्दकन्द में वर्तना, यह तात्पर्य है। इस श्लोक का यह तात्पर्य है। २१४ गाथा पूरी हुई। अब २१५ (गाथा)।

गाथा - २१५

अथ श्रामण्यस्य छेदायतनत्वात् यतिजनासन्नः सूक्ष्मपरद्रव्यप्रतिबन्धोऽपि प्रतिषेध्य इत्युपदिशति -

भत्ते वा खमणे वा आवसधे वा पुणो विहारे वा।
उवधिम्हि वा णिबद्धं णेच्छदि समणम्हि विकधम्हि।।२१५।।

भक्ते वा क्षपणे वा आवसथे वा पुनर्विहारे वा।
उपधौ वा निबद्धं नेच्छति श्रमणे विकथायाम्।।२१५।।

श्रामण्यपर्यायसहकारिकारणशरीरवृत्तिहेतुमात्रत्वेनादीयमाने भक्ते, तथाविधशरीरवृत्त्यविरोधेन शुद्धात्मद्रव्यनीरङ्गनिस्तरङ्गविश्रान्तिसूत्रणानुसारेण प्रवर्तमाने क्षपणे, नीरङ्गनिस्तरङ्गान्त-रङ्गद्रव्यप्रसिद्धयर्थमध्यास्यमाने गिरीन्द्रकन्दरप्रभृतावावसथे, यथोक्तशरीरवृत्तिहेतुमार्गणार्थमारभ्यमाणे विहारकर्मणि, श्रामण्यपर्यायसहकारिकारणत्वेनाप्रतिषिध्यमाने केवलदेहमात्र उपधौ, अन्योन्यबोध्य-बोधकभावमात्रेण कथञ्चित्परिचिते श्रमणे, शब्दपुद्गलोल्लाससंवलनकश्मलितचि-द्भित्तिभागायां शुद्धात्मद्रव्यविरुद्धायां कथायां चैतेष्वपि तद्विकल्पाचित्रितचित्तभित्तितया प्रतिषेध्यः प्रतिबन्धः।।२१५।।

अथ श्रामण्यछेदकारणत्वात्प्रासुकागारादिष्वपि ममत्वं निषेधयति-**णेच्छदि** नेच्छति। कम् **णिबद्धं** निबद्धमाबद्धम्। क्व। **भत्ते वा** शुद्धात्मभावनासहकारिभूतदेहस्थितिहेतुत्वेन गृह्यमाणे भक्ते वा प्रासुकाहारे, **खमणे वा** इन्द्रियदर्पविनाशकारणभूतत्वेन निर्विकल्पसमाधिहेतुभूते क्षपणे वानशने, **आवसधे वा** परमात्मातत्त्वोपलब्धिसहकारिभूते गिरिगुहाद्यावसथे वा, **पुणो विहारे वा** शुद्धात्मभावनासहकारिभूताहार-नीहारार्थव्यवहारार्थव्यवहारे वा पुनर्देशान्तरविहारे वा, **उवधिम्हि** शुद्धोपयोगभावनासहकारिभूतशरीरपरिग्रहे ज्ञानोपकरणादौ वा, **समणम्हि** परमात्म-पदार्थविचारसहकारिकारणभूते श्रमणे समशीलसंघातकतपोधने वा, **विकधम्हि** परमसमाधिविघातकश्रृंङ्गारवीररागादिकथायां चेति। अयमत्रार्थः-आगमविरुद्धाहार-विहारादिषु तावत्पूर्वमेव निषिद्धः, योग्याहारविहारादिष्वपि ममत्वं न कर्तव्यमिति।।२१५।।

अब, मुनिजन को निकट का[१] सूक्ष्मपरद्रव्यप्रतिबन्ध[२] भी, श्रामण्य के छेद का आयतन होने से निषेध्य है, ऐसा उपदेश करते हैं—

आहार में उपवास में, आवास, विकथा विहार में।
परिग्रह में या श्रमण में, प्रतिबन्ध मुनि नहीं चाहते॥२१५॥

अन्वयार्थ - [**भक्ते वा**] मुनि, आहार में, [**क्षपणे वा**] क्षपण में (उपवास में), [**आवसथे वा**] आवास में (निवासस्थान में), [**पुनः विहारे वा**] और विहार में [**उपधौ**] उपधि में (परिग्रह में), [**श्रमणे**] श्रमण में (अन्य मुनि में) [**वा**] अथवा [**विकथायाम्**] विकथा[३] में [**निबद्धं**] प्रतिबन्ध [**न इच्छति**] नहीं चाहता।

टीका - (१) श्रामण्यपर्याय के सहकारी कारणभूत शरीर की वृत्ति[४] के हेतुमात्ररूप से ग्रहण किया जानेवाला जो आहार, (२) तथाविध[५] शरीर की वृत्ति के साथ विरोध बिना, शुद्धात्मद्रव्य में नीरंग[६] और निस्तरंग विश्रान्ति की रचनानुसार प्रवर्तमान जो क्षपण (अर्थात् शरीर के टिकने के साथ विरोध न आये इस प्रकार, शुद्धात्मद्रव्य में विकाररहित और तरंगरहित स्थिरता होती जाये, तदनुसार प्रवर्तमान अनशन में), (३) नीरंग और निस्तरंग-अन्तरंग द्रव्य की प्रसिद्धि (प्रकृष्ट सिद्धि) के लिये सेवन किया जानेवाला जो गिरीन्द्रकन्दरादिक आवसथ में (उच्च पर्वत की गुफा इत्यादि निवासस्थान में), (४) यथोक्त शरीर की वृत्ति की कारणभूत भिक्षा के लिये किये जानेवाले विहारकार्य में, (५) श्रामण्यपर्याय का सहकारी कारण होने से जिसका निषेध नहीं है ऐसे केवल देहमात्र परिग्रह में, (६) मात्र अन्योन्य बोध्यबोधकरूप[७] से जिनका कथंचित् परिचय वर्तता है ऐसे श्रमण

---

१. आगम विरुद्ध आहारविहारादि तो मुनि के छूटा हुआ ही होने से उसमें प्रतिबन्ध होना तो मुनि के लिए दूर है; किन्तु आगमकथित आहार विहारादि में मुनि प्रवर्तमान है, इसलिए उसमें प्रतिबन्ध हो जाना सम्भवित होने से वह प्रतिबन्ध निकट का है।

२. सूक्ष्मपरद्रव्यप्रतिबन्ध = परद्रव्य में सूक्ष्म प्रतिबन्ध।

३. छद्मस्थ मुनि के धार्मिक कथा-वार्ता करते हुए भी निर्मल चैतन्य विकल्पमुक्त होता है इसलिए अंशतः मलिन होता है, अतः उस धार्मिक कथा को भी विकथा अर्थात् शुद्धात्मद्रव्य से विरुद्ध कथा कहा है।

४. वृत्ति = निर्वाह; टिकना।

५. तथाविध = वैसा (श्रामण्यपर्याय का सहकारी कारणभूत।)

६. नीरंग = नीराग; निर्विकार।

७. बोध्य वह है जिसे समझाया है अथवा जिसे उपदेश दिया जाता है और बोधक वह है जो समझाता है, अर्थात् जो उपदेश देता है। मात्र अन्य श्रमणों से स्वयं बोध ग्रहण करने के लिये अथवा अन्य श्रमणों को बोध देने के लिये मुनि का अन्य श्रमण के साथ परिचय होता है।

(अन्य मुनि) में, और (७) शब्दरूप पुद्‌गलोल्लास (पुद्‌गलपर्याय) के साथ सम्बन्ध से जिसमें चैतन्यरूपी भित्ति का भाग मलिन होता है, ऐसी शुद्धात्मद्रव्य से विरुद्ध कथा में भी प्रतिबन्ध निषेध्य-त्यागने योग्य है अर्थात् उनके विकल्पों से भी चित्तभूमि को चित्रित होने देना योग्य नहीं है।

भावार्थ - आगमविरुद्ध आहारविहारादि तो मुनि ने पहले ही छोड़ दिये हैं। अब संयम के निमित्तपने की बुद्धि से मुनि के जो आगमोक्त आहार, अनशन, गुफादि में निवास, विहार, देहमात्र परिग्रह, अन्य मुनियों का परिचय और धार्मिक चर्चा-वार्ता पाये जाते हैं, उनके प्रति भी रागादि करना योग्य नहीं है — उनके विकल्पों से भी मन को रँगने देना योग्य नहीं है; इस प्रकार आगमोक्त आहार-विहारादि में भी प्रतिबंध प्राप्त करना योग्य नहीं है, क्योंकि उससे संयम में छेद होता है ॥२१५॥

प्रवचन नं. २१३ का शेष **आषाढ़ शुक्ल ११, गुरुवार, २६ जून १९६९**

अब, मुनिजन को निकट का सूक्ष्मपरद्रव्यप्रतिबन्ध भी, श्रामण्य के छेद का आयतन होने से निषेध्य है,.... क्या कहते हैं? मुनि को निकट का सूक्ष्म परद्रव्य प्रतिबन्ध (अर्थात्) आत्मा के अलावा रागादि परद्रव्य का सम्बन्ध (होना), वह श्रामण्य के छेद का कारण (अर्थात्) साधुपद के नाश का कारण है; इसलिए निषेध्य है। परद्रव्य प्रतिबन्ध निषेध्य है। स्वद्रव्य सम्बन्ध आदरणीय है, परद्रव्य सम्बन्ध निषेध्य है। यह कहते हैं।

('निकट' का अर्थ मूल ग्रन्थ में फुटनोट में दिया है।) *'आगम विरुद्ध आहारविहारादि तो मुनि के छूटा हुआ ही होने से... '*साधु है, उसको शास्त्र से विरुद्ध आहार (अर्थात्) उसके लिये बनाया हो (- ऐसा) आहार, वह तो उनको होता नहीं। नीचे लिखा है। *'आहारविहारादि... '*यत्न से चलना, ऐसा जो आगम की आज्ञा है, वैसे तो बराबर करते हैं। *'उसमें प्रतिबन्ध होना तो मुनि के लिए दूर है;.... '*अर्थात् उसमें तो पर का सम्बन्ध रखना नहीं।

'किन्तु आगमकथित आहार विहारादि में मुनि प्रवर्तमान है, इसलिए उसमें प्रतिबन्ध

हो जाना....' हलन-चलन, खाने-पीने का विकल्प है न, *'उसमें प्रतिबन्ध हो जाना सम्भवित होने से वह प्रतिबन्ध निकट का है।'* वह निकट है। समझ में आया? आगम विरुद्ध जो है उसमें प्रतिबन्ध (उसमें है)? आगम विरुद्ध का तो दूर ही हो गया। आगम विरुद्ध जो सदोष (आहार) लेना, वह तो उसको दूर ही हुआ है। समझ में आया? मुनि के लिये बनाया आहार, मुनि के लिये बनाया मकान, मुनि के लिये बनायाी पाट आदि, उसका तो मुनि को पहले से ही निषेध है। *'छूटा हुआ ही होने से उसमें प्रतिबन्ध होना तो मुनि के लिए दूर है;....'* उसमें तो प्रतिबन्ध है नहीं।

'किन्तु आगमकथित आहार विहारादि में मुनि प्रवर्तमान है....' शुभ विकल्प में (है) *'इसलिए उसमें प्रतिबन्ध हो जाना...'* परद्रव्य का लक्ष्य है तो *'उसमें प्रतिबन्ध हो जाना सम्भवित होने से वह प्रतिबन्ध निकट का है।'* समीप का प्रतिबन्ध (है)। वह यहाँ कहेंगे।

सूक्ष्मपरद्रव्यप्रतिबन्ध (का अर्थ फुटनोट में है)। *'सूक्ष्मपरद्रव्यप्रतिबन्ध = परद्रव्य में सूक्ष्म प्रतिबन्ध।'* कुछ भी धर्मकथा करना, उसमें भी राग आता है, वह भी बन्ध का कारण है। समझ में आया? उससे विशेष दूसरा करना, वह तो छोड़ने योग्य है ही। आहा...हा...! गाथा।

भत्ते वा खमणे वा आवसधे वा पुणो विहारे वा।
उवधिम्हि वा णिबद्धं णेच्छदि समणम्हि विकधम्हि।।२१५।।

आहार में उपवास में, आवास, विकथा विहार में।
परिग्रह में या श्रमण में, प्रतिबन्ध मुनि नहीं चाहते॥२१५॥

उसकी टीका। **(१) श्रामण्यपर्याय के सहकारी....** अपने स्वरूप में शुद्ध वीतरागदशा प्रगट हुई है, पवित्रता प्रगट हुई है—ऐसी साधु की पर्याय के निमित्त। सहकारी (अर्थात्) साथ में होनेवाला। **शरीर की वृत्ति के...** शरीर की वृत्ति (अर्थात्) निर्वाह, शरीर को टिकाना। (उसके) **हेतुमात्ररूप से ग्रहण किया जानेवाला जो आहार,....** शरीर को निभाने में आहार लेने की जो वृत्ति है। उसके लिये बनाया हो, वह तो लेते नहीं। समझ में आया? आहा...हा...! परन्तु निभाने की जो वृत्ति है (उस वृत्ति के) **हेतुमात्ररूप**

से ग्रहण किया जानेवाला जो आहार,.... (उसमें) प्रतिबन्ध न करना। उसमें दोष लगाना नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? ... चैतन्यज्योति का भाव मलिन होता है। ऐसा शुद्धात्म ... विरुद्ध कथा में भी प्रतिबद्ध त्यागनेयोग्य है। क्या कहते हैं? सूक्ष्म बात है भाई! कहते हैं कि साधुपद का निमित्तरूप शरीर, उसको निभाने में आहारादि ग्रहण करने में प्रतिबद्ध न होना। विकल्प आते हैं, वे भी दोषरूप तो हैं ही, परन्तु विशेष सम्बन्ध करना नहीं।

तथाविध शरीर की वृत्ति के साथ विरोध बिना,.... (तथाविध का अर्थ मूल अंश में फुटनोट में दिया है)। *'तथाविध = वैसा (श्रामण्यपर्याय का सहकारी कारणभूत।)'* तथाविध शरीर को टिकाने के साथ विरोध रहित, **शुद्धात्मद्रव्य में नीरंग....** नीरंग (अर्थात्) नीराग; निर्विकारी **और निस्तरंग....** (अर्थात्) तरंग नहीं। **निस्तरंग विश्रान्ति की रचनानुसार प्रवर्तमान जो क्षपण....** उपवासादि करनेवाला। उपवास हो, एक-दो-चार-पाँच उपवास मुनि को (हो) तो उसमें कहीं ग्लानि न होनी चाहिए। वह करने का भाव है, वह भी बन्ध है, मैल तो है ही। आहा...हा...! विकल्प है न! उससे विशेष प्रतिबद्ध नहीं होना चाहिए। समझ में आया? उपवास किया है, थकान लगी है, चलो, भई थोड़ा सो जायें (ऐसा नहीं होता)। मुनि को तो पिछली रात्रि में थोड़ा सोना है, एकासन (शयन) होता है। ऐसी बात है, भाई! मुनिपना / साधुपना अलौकिक चीज है। समझ में आया? अकेला नग्न हो जाये, इसलिए साधु (हो गया), ऐसा है नहीं। पिछली रयन में एकासन (सोते हैं)। करवट लेते नहीं। उसमें भी विरोध नहीं होना चाहिए। थोड़ा विशेष लेना। मुनि को प्रमाद होता नहीं।

निस्तरंग विश्रान्ति की रचनानुसार.... कषायरहित विश्रान्ति—शान्ति। उसकी रचनानुसार **प्रवर्तमान....** साधु को **(अर्थात् शरीर के टिकने के साथ विरोध न आये इस प्रकार, शुद्धात्मद्रव्य में विकाररहित और तरंगरहित स्थिरता....)** की रचना की जाये। अन्दर में शान्ति... शान्ति... शान्ति, शुद्ध उपयोग। **(तदनुसार प्रवर्तमान अनशन में),....** देखो! अनशन। अनशन अर्थात् उपवास। एक उपवास, दो उपवास। अनशन तो उसका स्वभाव ही है। परन्तु विकल्प हुआ, उसमें भी प्रतिबद्ध न करना। उससे ग्लानि हो जाये... (ऐसा नहीं)। समझ में आया? जो उसकी आवश्यक क्रिया है, उसे छोड़ देना,

– ऐसा होता नहीं। ऐसा हो तो साधुपना में छेद आता है। आ...हा...!

(३) नीरंग और निस्तरंग-अन्तरंग द्रव्य की प्रसिद्धि (प्रकृष्ट सिद्धि) के लिये सेवन किया जानेवाला जो गिरीन्द्रकन्दरादिक आवसथ में (उच्च पर्वत की गुफा इत्यादि निवासस्थान में),.... लो। निर्विकार पवित्र अन्तरंग द्रव्य आत्मा भगवान की प्रसिद्धि, आत्मप्रसिद्धि। एकान्त में गिरि गुफा में जाना। अर्थात् प्रतिबद्ध न होना चाहिए कि यह गिरि अच्छा है कि ऐसा है। समझ में आया? **गिरीन्द्रकन्दरादिक आवसथ में....** देखो भाषा! मुनि तो वहाँ रहते हैं।

मुमुक्षु – आदि लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री – आदि लिखा है तो क्या (हुआ) ? वह तो गुफा है, कोई पर्वत की टोच है, उसमें रहते हैं। निर्जन—निर्जन अर्थात् जहाँ जन नहीं। आनन्द आनन्द आनन्द साधन है न! कि जहाँ मनुष्य का पगरव (अर्थात् पैर की आवाज) है, उसे छोड़कर एकान्त में रहते हैं। उसको मुनि कहते हैं, भाई! समझ में आया?

आवसथ में (उच्च पर्वत की गुफा इत्यादि निवासस्थान में),.... निवासस्थान। **(४) यथोक्त शरीर की वृत्ति की कारणभूत भिक्षा के लिये किये जानेवाले विहारकार्य में,....** शरीर के लिये आहार लेने जाना हो, (तब) विहार कार्य में परद्रव्य के साथ विशेष प्रतिबन्ध करना नहीं। भिक्षा के लिये (जाये), आहार आया, विकल्प है, बस! कोई सम्बन्ध करते नहीं। ऐसा मुनिपना है, भाई! साधुपद उसको कहते हैं और वे साधु मुक्ति के मार्ग में चलते हैं। उनको मुक्ति समीप में है। भिक्षा के लिये (किये जानेवाले) विहारकार्य।

(५) श्रामण्यपर्याय का सहकारी कारण होने से जिसका निषेध नहीं है ऐसे केवल देहमात्र परिग्रह में,.... देह में प्रतिबद्ध नहीं, 'श्रीमद्' ने कहा न? केवल देह के मात्र। आता है न? 'मात्र देह वह संयम हेतु होय जो' 'श्रीमद्' में आता है न! 'सर्व सम्बन्ध से बन्धन तीक्ष्ण छेदकर, विचरूँगा कब महत्पुरुष ने पन्थ जो' बाद में आता है न, 'मात्र देह वह संयम हेतु होय जो' देखो, उसमें भी वह लिया है। वस्त्र और पात्र (सहित) मुनि तीन काल में होते ही नहीं। 'मात्र देह वह संयम हेतु' ओ...हो...! देह छूट

तो जाता नहीं। संयम में निमित्त है, ऐसी श्रामण्यपर्याय वीतरागदशा अपने में उत्पन्न हुई है- पवित्रता आनन्द आदि; उसका सहकारी अर्थात् निमित्तकारण होने से, जिसका निषेध नहीं है। उसका निषेध क्यों करे? आयुष्य है तब तक शरीर रहेगा। **ऐसे केवल देहमात्र परिग्रह में,....** भी प्रतिबद्ध होना नहीं।

मात्र अन्योन्य बोध्यबोधकरूप से जिनका कथंचित् परिचय वर्तता है, ऐसे श्रमण (अन्य मुनि) में,.... देखो! 'बोध्य वह है, जिसे समझाया है अथवा जिसे उपदेश दिया जाता है और बोधक वह है, जो समझाता है, अर्थात् जो उपदेश देता है। मात्र अन्य श्रमणों से स्वयं बोध ग्रहण करने के लिये अथवा अन्य श्रमणों को बोध देने के लिये मुनि का अन्य श्रमण के साथ परिचय होता है।' दूसरा परिचय होता नहीं। आहा...हा...! दूसरे को समझाना अथवा दूसरे से समझना, उतना साधु-साधु के साथ परिचय, सम्बन्ध होता है। उसका नाम भगवान परमात्मा, मुनि कहते हैं। लो। आहा...हा...!

(७) शब्दरूप पुद्गलोल्लास (पुद्गलपर्याय) के साथ सम्बन्ध से जिसमें चैतन्यरूपी भित्ति का भाग मलिन होता है,.... ओ...हो...हो...! कथा करने में— धर्मकथा करने में, कथा सुनने में। आहा...हा...! चैतन्यभित्त मलिन होती है। राग है न, विकल्प है न? शब्द पुद्गल, यह भाषा परद्रव्य है। (उसके) **साथ सम्बन्ध से चैतन्यरूपी भित्ति का भाग....** चैतन्य निर्मलानन्द प्रभु, धर्मकथा के विकल्प में, सुनने में और सुनाने में मलिन होता है। समझ में आया? क्योंकि वह विकल्प, राग है। भले शुभ हो। आत्मा चैतन्य आनन्द की भींत, ध्रुव भींत मलिन होती है। पर्याय है, हाँ! ध्रुव तो ध्रुव है। समझ में आया? देखो! दिगम्बर सन्तों की कथनी! ऐसा मुनिपना, सर्वज्ञ परमेश्वर तीर्थंकरदेव त्रिलोकनाथ भगवान ने कहा, ऐसा वे कहते हैं।

ऐसी शुद्धात्मद्रव्य से विरुद्ध कथा में भी प्रतिबन्ध निषेध्य-त्यागने योग्य है.... प्रतिबन्ध त्यागने योग्य है। शुद्धात्मद्रव्य भगवान आत्मा वीतरागस्वरूप निर्दोष, उससे विरुद्ध। उससे वह विरुद्ध है। धर्मकथा राग भी स्वभाव से तो विरुद्ध है। आहा...हा..! देखो! 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' सर्वज्ञ परमेश्वर के पास गये थे। परमात्मा महाविदेहक्षेत्र में विराजमान हैं। वहाँ आठ दिन रहे थे। (वहाँ से) आकर यह बनाया है। देखो! भगवान ऐसा

कहते हैं, भाई! धर्मकथा करने और सुनने में भी रागभाव आता है। अन्दर दोनों आये न? नीचे लिखा है न! बोध्य जिसे समझाया जाता है अथवा जिसे उपदेश दिया जाता है। बोधक वह है जो समझाता है, जो उपदेश देता है। मात्र अन्य श्रमणों से स्वयं बोध ग्रहण करने के लिये अथवा अन्य श्रमणों को बोध देने के लिये मुनि का अन्य श्रमण के साथ परिचय है। परन्तु दोनों को राग का सम्बन्ध है न। ... देनेवाले का। आहा...हा...! भगवान आत्मा निर्विकल्प आनन्दस्वरूप है, उसको छोड़कर कथा के प्रतिबद्ध में रहना नहीं। समझ में आया? ऐसा मुनिपद है। आहा...हा...!

उनके विकल्पों से भी चित्तभूमि को चित्रित होने देना योग्य नहीं है। चैतन्यभूमि मैली होती है। मार्ग तो ऐसा है, भाई! अपना शुद्ध वीतरागस्वरूप आत्मा, उससे दूसरी स्त्री कथा, भट (भोज) कथा, देश कथा, राज कथा, वह तो पापबन्ध की कारण हैं। परन्तु यह धर्मकथा भी पुण्यबन्ध की कारण (है, उससे) चित्तभूमि मलिन होती है – ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कोई कहते हैं कि उपदेश देना, वह मुनि का मार्ग है, निर्जरा का कारण है, ऐसा कहते हैं। तेरापंथी है न भाई! तेरापंथी ऐसा मानते हैं। तुलसी तेरापंथी है न। निर्दोष आहार लेना, खाना, वह शुद्धता का कारण है।

मुमुक्षु – निर्जरा का।

पूज्य गुरुदेवश्री – निर्जरा की भाषा नहीं प्रयोग की। समझ में आया? ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु – उपदेश देने से निर्जरा?

पूज्य गुरुदेवश्री – उपदेश से। दूसरे को ऐसा नहीं करना चाहिये। न मारो या ऐसा करो, उपदेश देना। मुनि उपदेश देते हैं, उसमें धर्म का लाभ होता है। निर्जरा अर्थात् धर्मलाभ। यहाँ तो कहते हैं, झूठ है। आहा...हा...! कठिन बात, भाई!

मुमुक्षु – बन्ध होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री – बन्ध होता है। शुभराग है तो बन्ध होता है। वाणी तो जड़ है, यह तो मिट्टी है। वह तो कहा न (कि) ऐसा प्रतिबन्ध नहीं करना। वाणी जड़ है, भाई! भगवान आत्मा चैतन्यमूर्ति तो प्रभु भिन्न है। आहा...हा...! ऐसा विकल्प से चैतन्यभूमि को (मलिन) नहीं होने देना। आहा...हा...!

मुमुक्षु – २५ विकथायें हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री – पचीस प्रकार की विकथा हैं। 'टेकचन्दजी' की 'सुदृष्टितरंगिणी' है न, उसमें है। पुण्य से धर्म होता है, आदि बात करते हैं, वह दर्शनभेद की कथा है। व्यवहार करते-करते शुद्ध होगा, ऐसी कथा को समकित के नाश की कथा कहने में आता है। ऐसी वह विकथा है। 'टेकचन्दजी' है न! 'सुदृष्टितरंगिणी' बनानेवाले। जैसे 'टोडरमलजी' हैं। 'टोडरमलजी' की बात दूसरी है। 'टेकचन्दजी' में तो थोड़ी गड़बड़ी है। उसकी लिखावट में गड़बड़ी है। सारा देखा है न, सब देखा है। उसमें पचीस कथा में ऐसी एक बात ली है, दर्शनभेदणी। जो कथा में राग से, विकल्प से, पुण्य से, पर से सम्बन्ध करने से धर्म होता है — ऐसी कथा को समकित / धर्म का नाश करने की कथा (कहने में आता) है। आहा...हा...!

भगवान आत्मा निर्लेप आनन्दकन्द प्रभु आत्मा है न! शुद्ध आनन्द की खान आत्मा है। आत्मा! ऐसे आनन्द में धर्मकथा-आनन्द प्रगट करो, ऐसी धर्मकथा का विकल्प भी चैतन्यभूमि को मलिन करता है। आहा...हा...! देखो! वीतराग धर्म! समझ में आया? 'सोगानी' में बहुत आता है तो लोग भड़कते हैं। वाँचन करना, सुनना, सुनाना, ये सब बन्ध के कारण हैं। ऐ...ई...! देवानुप्रिया! कौन-से 'सोगानी'? 'निहालचन्दजी'! वे तो जानते हैं न। उसने लिखा है। 'सोगानी'! वाँचन करना, वाँचन सुनना, श्रवण करना... समझे? ये सब तत्त्वचर्चा में रहना – राग बन्ध का कारण है। आहा...हा...! लोगों को कठिन पड़े। सुना नहीं।

राग विकल्प है। निर्विकल्प चैतन्यवस्तु (है)। भगवान आत्मा निर्विकल्प रागरहित वस्तु है। ऐसी चीज की दृष्टि अनुभव में जो राग आया, वह प्रतिबद्ध है, भूमि मैली होती है। समझ में आया? तो इस दुनिया की विकथा करने बैठे और साधु होकर दुनिया को कहे, ऐसे पैसे खर्च करो, ऐसा-ऐसा करो, ऐसा-ऐसा करो, वह तो महापाप के बन्ध का कारण है। समझ में आया? यात्रा निकालो, दस लाख खर्च करके। जाओ! धर्म का अंग है, धर्म होगा। मूढ़ है। शुभभाव है, यात्रा का भाव शुभभाव है, पुण्यबन्ध का कारण है; उसमें धर्म मानना, मनवाना, सब भ्रमणा मिथ्यात्व का कारण है। ऐसी बात है। समझ में आया?

शुद्धात्मद्रव्य से विरुद्ध कथा में.... ऐसे लिया है। भगवान आत्मा निर्मलानन्द प्रभु! वह तो वीतरागमूर्ति, चैतन्य निर्विकल्प शान्त समाधि आनन्दकन्द आत्मा है। उससे, जो विकल्प राग उठते हैं, वे तो आत्मद्रव्य से विरुद्ध हैं। कहो! **प्रतिबन्ध निषेध्य-त्यागने योग्य है....** साधु होकर पाठशाला बनाना, पाठशाला की संभाल रखना, उसके लिये पैसे इकट्ठे करना, दूसरे को उपदेश देना (कि) पैसा दो, वह मार्ग साुध का नहीं, भाई! समझ में आया? भाई! ऐसा 'नैरोबी' में सुना भी नहीं होगा। आहा...हा...! वस्तु का स्वभाव ऐसा (है), भगवान परमेश्वर केवलज्ञानी त्रिलोकनाथ, जिनको एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक जानने में आया है — ऐसी शक्ति का विकास सर्वज्ञपद में हुआ है। वे भगवान साधुपद का इस प्रकार से वर्णन करते हैं। आहा...हा...! समझ में आया?

उनके विकल्पों से भी.... देखो! **चित्तभूमि....** (अर्थात्) ज्ञानभूमि **चित्रित होने देना योग्य नहीं है।** आ...हा...हा...!

भावार्थ - **आगमविरुद्ध....** शास्त्र की आज्ञा विरुद्ध **आहारविहारादि तो मुनि ने पहले ही छोड़ दिये हैं।** उसकी बात तो दूर रहो। पहले आया था न? दूर रहो, अर्थात्? उसकी तो बात ही क्या? मुनि होकर उसके लिये बना आहार लेना या बिना देखे विहार करना, वह तो पहले से छोड़ दिया है। वह तो उसको होता नहीं। कोई कहे कि, ऐसी चीज का हमें क्या काम है? अरे...! परन्तु तुझे सम्यग्दर्शन करना है या नहीं? तो साधुपद कैसा है, उसकी प्रतीति बिना तुझे सम्यग्दर्शन होगा नहीं। देव-गुरु और शास्त्र क्या है, उसकी सच्ची श्रद्धा बिना सम्यग्दर्शन कभी होगा नहीं।

'मोक्षमार्गप्रकाशक' में तो आया न कि, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा बिना तो होगा नहीं। ऐसा लिखा है। समझ में आया? तत्त्वविचार में तत्त्वविचार से होगा परन्तु उसमें पहले देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा बिना तो होगा ही नहीं। 'मोक्षमार्गप्रकाशक' में है। सच्चे सर्वज्ञ परमात्मा कौन हैं? सच्चे सन्त की दशा कैसी है? और शास्त्र का अनेकान्त स्वरूप कैसा धर्म कहना है? उसकी यथार्थ प्रतीति बिना सम्यग्दर्शन, अनुभव होता नहीं। वह है तो विकल्प परन्तु वह आये बिना रहते नहीं। समझ में आया? भाई! मार्ग (ऐसा है)।

ऐसी फुरसत किसे है? कौन सुने? और कौन ले? हो...हा... हो...हा... भाई!

कितने तो सुनने के लिये भी कहाँ फुरसत लेते हैं। सुनने के लिये फुरसत नहीं है, लो! मैंने कहा, सुनो तो सही। पैसा... पैसा... पैसा... सारा दिन। ऐसे हुए तुम? ऐसा मैंने कहा था। सुनने की भी फुरसत नहीं मिले? धर्म तो दूर रहा। गाँव में आये हो तो भी सुनने की फुरसत नहीं मिलती, 'सोनगढ़' तो कहाँ आये? धूल... धूल... और धूल सारा दिन। राजा हो सकते हैं, बातें बड़ी-बड़ी करते हैं। अभी तो राजा बनना है! मरकर नरक में जाना है। अरे...रे...! जगत के प्याले-पावर है न! प्याला फट जाये अन्दर से। आहा...हा...!

यहाँ तो कहते हैं कि उसे भगवान आत्मा परमेश्वर जो आत्मा कहते हैं, उसका अन्तर अनुभव का भान हुआ, उसके उपरान्त स्वरूप की दशा में रमणता-वीतरागता हो, उसमें भी ऐसी विकथा से वीतरागता को मैल लगाना नहीं। आहा...हा...! जिसको मुक्ति चाहिए, शान्ति लेनी हो, उसकी बात है। (बाकी तो) चार गति में भटकते हैं।

हाय... हाय... करके मर जाये। धूल—पैसे हो (तो क्या हुआ?) कोई कहता था कि यहाँ गले में कैंसर हुआ था। कोई कहता था कि यहाँ हुआ था। जाओ, चौरासी के अवतार में भटकने। डॉक्टर भी क्या करे? यह दवाई लिये बिना तेरे जन्म-मरण मिटे ऐसा है नहीं। समझ में आता है? पहले समझ तो करे, सच्ची समझ तो करे। पीछे उसकी दृष्टि हो और पीछे स्वरूप में रमणता करे तब चारित्र हो और तब मुक्ति होगी। (उसके) बिना मुक्ति अर्थात् मोक्ष होगा नहीं। समझ में आया?

अब संयम के निमित्तपने की बुद्धि से.... संयम का निमित्त / सहकारी कहा था न, इसलिए निमित्त शब्द प्रयोग किया। **मुनि के जो आगमोक्त आहार, अनशन,....** आहार है, उपवास है, **गुफादि में निवास,....** आहार के लिये हिलना-चलना है, **देहमात्र परिग्रह, अन्य मुनियों का परिचय....** है **और धार्मिक चर्चा-वार्ता पाये जाते हैं,....** लो। धार्मिक हाँ! **उनके प्रति भी रागादि करना योग्य नहीं है,....** आहा...हा...! तीव्र राग नहीं करना। अमुक राग तो है नहीं। अमुक राग तो... उस दशा में तीव्र नहीं करना। **उनके विकल्पों से भी मन को रँगने देना योग्य नहीं है;....** आहा..हा...! ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा प्रज्ञाब्रह्म प्रभु में ऐसे विकल्प से मलिन होने देता नहीं।

इस प्रकार आगमोक्त आहार-विहारादि में भी.... आज्ञा-अनुसार आहार-

विहार हो तो भी **प्रतिबन्ध प्राप्त करना योग्य नहीं है,....** ओ...हो...हो... ! समझ में आया ? निश्चयसहित, स्थिरतासहित किस प्रकार का विकल्प है, ऐसी बात अलौकिक सन्धि करके बताते हैं। अरे... ! ऐसा मनुष्यपना हार जायेगा, चला जायेगा। कितने ही चले गये, मर गये। आहा...हा... ! देखो न, रोज सुनते हैं, अमुक मर गया, वह मर गया, वह मर गया। मरे कौन ? देह पलटकर दूसरी जगह जाये।

प्रश्न – .....

समाधान – आपको कैसा लगता है ? मरना माने तो हो चुका न ! कहा था न, एक व्यक्ति को कहा था। अपने भी अभी आया था। 'जोरावर' गाँव (में कोई कहता था कि) महाराज ! ये मृत्यु तो है। देह छूटेगी तो हर्ष क्यों करते हैं ? आदमी हँसते क्यों हैं ? मुख पर हर्ष क्यों आता है ? ऐसा कहता था, भाई ! अपने अभी आया था न, अखबार में आया था। 'पालीताना' में आया था। वैराग्य की बात उसमें बहुत थी। अरे... ! छोटे-छोटे बालक, दस-दस, पन्द्रह, बीस-बीस साल के मूर्छित हो जाते हैं, देह छोड़ते हैं। अरे... ! वृद्धावस्था आये और क्यों उल्लास आता है ? उमंग क्यों आती है ? उसमें आया था। समझे ? साठ-साठ, पचास, पचपन, सत्तर साल हुए उसको उत्साह क्यों आता है ? हर्ष क्यों आता है ? नजर के सामने दिखता है। चालीस-चालीस साल के, तीस-तीस साल, बीस-बीस साल के आदमी मूर्छित हो जाते हैं। मूर्छित हो जाते हैं अर्थात् मर जाते हैं। जिसकी उम्र वृद्धावस्था हुई, उसको हर्ष क्यों होता है ? हर्ष क्यों आता है ? आ...हा... ! देह छोड़ने का काल तो सबको आयेगा। समझ में आया ? हाय...हाय... ! पुत्र, पुत्री और उसके पैसे, मकान पड़े रहेंगे। तीन-तीन, चार-चार दिन तो... उसे क्या कहते हैं ? ऑक्सीजन (लगाते हैं)। अरे... ! यह दशा। भाई ! पैसे-बैसे पड़े रहते हैं। असाध्य (हो जाता है)। भगवान ! यह दशा ! आहा...हा... !

धर्मात्मा को तो आनन्द की दशा में झुलते-झुलते देह छूट जायेगा। जिसने पहले आत्मा पर से भिन्न अनुभव किया है और जिसने चारित्र / वीतरागभाव अंगीकार किया है। ओ...हो...हो... ! उसकी बात तो क्या ? देह छूटने के काल में आनन्द... आनन्द... आनन्द। समझ में आया ? 'दुनिया को मरण का भय है धर्मी को आनन्द की लहर है' भगवान

आत्मा पर से भिन्न करके देखा है, जाना है, अनुभव किया है। जाओ! (अब) भव कैसा? समझ में आया? 'दौलतराम' ने कहा है, 'आनन्दघनजी' ने वह शब्द प्रयोग किया है। 'अब हम अमर भये न मरेंगे, अब हम अमर भये न मरेंगे, या कारण मिथ्यात्व दियो तज, क्यों कर देह धरेंगे' रागादि, पुण्यादि परवस्तु मेरी — ऐसा मिथ्यात्वभाव जिसने छोड़ दिया है और चिदानन्दस्वरूप का आश्रय करके सम्यक् प्रगट किया है। 'अब हम अमर भये न मरेंगे, या कारण मिथ्यात्व दियो तज, क्यों कर देह धरेंगे, अब हम अमर भये न मरेंगे' आ...हा...हा...! ऑक्सीजन रखे, ये करे। कब मरेगा? उसकी राह देखते हैं। रात को जागना पड़े, घर के आदमी इकट्ठे हुए हो, दो आदमी खड़े रहना, हाँ! कब मरेंगे (क्या पता)? बाहर क्या करेंगे? (कोई पूछे) कब मरे? (तो कहे), कब मरे पता नहीं। बारह, सवा बारह बजे झपकी आ गयी थी। (दूसरा कहे) ध्यान भी नहीं रखा।

इस गाँव में ऐसा हुआ था। मरते समय ख्याल नहीं रहा। बाद में ऐसा लगा कि, अरे...! कब मर गया? मालूम नहीं। रात को एक बार पेशाब करने उठे थे। बुलाया था। बाद का पता नहीं। ए...ई...! मरते-मरते देर लगे, तब बहुत ध्यान रखे। दो आदमी बैठे हो और झपकी आ जाये तो कब देह छूट गयी (पता नहीं चलता)। ऐसे देखे तो कुछ नहीं होता। आहा...हा...! गलुडिया (पिल्ला) और लट जैसे मृत्यु है। गलुडिया समझते हैं? कुत्ती का बच्चा। क्या कहते हैं? पिल्ला! ऐसे पामर प्राणी बेचारे मरते हैं। आहा...हा...! बाहर दस करोड़ पैसे पड़े हो, शरीर सुन्दर हो... जाओ! आ...हा...हा...! भाई! तेरी चीज पर से भिन्न है, उसका भान किये बिना तेरा मरण बिगड़े बिना रहेगा नहीं। आहा...हा...! देखो तो सही। ऐसी चीज और उसमें जहाँ संयम / चारित्र अन्तर में आया, कहते हैं कि आ...हा...हा...! धन्य मरण! धन्य जीवन! जीवन भी धन्य और मृत्यु भी धन्य!! आ...हा...हा...!

कहते हैं कि **उससे संयम में छेद होता है।** समझ में आया? ऐसा होने नहीं देना। **विकल्पों से भी मन को रँगने देना योग्य नहीं है; इस प्रकार आगमोक्त आहार-विहारादि में भी प्रतिबन्ध प्राप्त करना योग्य नहीं है, क्योंकि उससे संयम में छेद होता है।** लो, उससे चारित्र में भंग होता है। अच्छी दीवार हो और उसमें से टुकड़ा निकल जाये। उसी प्रकार परद्रव्य में प्रतिबद्ध होने से चारित्र में खण्ड होता है। ऐसा होने देना नहीं - ऐसा (समझना)। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - २१६

अथ को नाम छेद इत्युपदिशति-

अपयत्ता वा चरिया सयणासणठाणचंकमादीसु।
समणस्स सव्वकाले हिंसा सा संतय त्ति मदा।।२१६।।

अप्रयता व चर्या शयनासनस्थानचङ्क्रमणादिषु।
श्रमणस्य सर्वकाले हिंसा सा सन्ततेति मता।।२१६।।

अशुद्धोपयोगो हि छेदः, शुद्धोपयोगरूपस्य श्रामण्यस्य छेदनात्, तस्य हिंसनात् स एव च हिंसा। अतः श्रमणस्याशुद्धोपयोगाविनाभाविनी शयनासनस्थानचङ्क्रमणादिष्वप्रयता या चर्या सा खलु तस्य सर्वकालमेव सन्तानवाहिनी छेदानर्थान्तरभूता हिंसैव।।२१६।।

एवं संक्षेपेणाचाराराधनादिकथिततपोधनाविहारव्याख्यानमुख्यत्वेन चतुर्थस्थले गाथात्रयं गतम्। अथ शुद्धोपयोगभावनाप्रतिबन्धकच्छेदं कथयति-**मदा** मता सम्मता। का। **हिंसा** शुद्धोपयोग-लक्षणश्रामण्यछेदकारणभूता हिंसा। कथंभूता। **संतय त्ति** संतता निरन्तरेति। का हिंसा मता। **चरिया** चर्या चेष्टा। यदि चेत् कथंभूता। **अपयत्ता वा** अप्रयत्ना वा, निःकषायस्वसंवित्तिरूपप्रयत्नरहिता संक्लेशसहितेत्यर्थः। केषु विषयेषु। **सयणासणठाणचंकमादीसु** शयनासनस्थानचङ्क्रमणस्वाध्याय-तपश्चरणादिषु। कस्य। **समणस्स** श्रमणस्य तपोधनस्य। क्व। **सव्वकाले** सर्वकाले। अयमत्रार्थः-बाह्यव्यापाररूपाः शत्रवस्तावत्पूर्वमेव त्यक्तास्तपोधनैः, अशनशयनादिव्यापारैः पुनस्त्यक्तुं नायाति। ततः कारणादन्तरङ्गक्रोधादिशत्रुनिग्रहार्थं तत्रापि संक्लेशो न कर्तव्य इति।।२१६।।

अब छेद क्या है, (अर्थात् छेद किसे कहते हैं), उसका उपदेश करते हैं—

जो अप्रयत चर्या श्रमण की, शयन आसन गमन में।
रु स्थान में, वो सतत हिंसा, जानना सब काल में॥२१६॥

अन्वयार्थ - [**श्रमणस्य**] श्रमण के [**शयनासनस्थानचंक्रमणादिषु**] शयन, आसन (बैठना), स्थान (खड़े रहना), गमन इत्यादि में [**अप्रयता वा चर्या**] जो अप्रयत चर्या है, [**सा**] वह [**सर्वकाले**] सदा [**संतता हिंसा इति मता**] सतत हिंसा मानी गई है।

टीका - अशुद्धोपयोग वास्तव में छेद है, क्योंकि (उससे) शुद्धोपयोगरूप श्रामण्य का छेदन होता है और वही (अशुद्धोपयोग ही) हिंसा है, क्योंकि (उससे) शुद्धोपयोगरूप श्रामण्य का हिंसन (हनन) होता है। इसलिए श्रमण के, जो अशुद्धोपयोग के बिना नहीं होती, ऐसी शयन-आसन-स्थान-गमन-इत्यादि में अप्रयत[१] चर्या (आचरण), वह वास्तव में उसके लिये सर्व काल में (सदा) ही सन्तानवाहिनी[२] हिंसा ही है - जो कि छेद से अनन्यभूत है (अर्थात् छेद से कोई भिन्न वस्तु नहीं है।)

भावार्थ - अशुद्धोपयोग से शुद्धोपयोगरूप मुनित्व (१) छिदता है (२) हनन होता है, इसलिए अशुद्धोपयोग (१) छेद ही है, (२) हिंसा ही है। और जहाँ सोने, बैठने, खड़े होने, चलने इत्यादि में अप्रयत आचरण होता है, वहाँ नियम से अशुद्धोपयोग तो होता ही है, इसलिए अप्रयत आचरण छेद ही है, हिंसा ही है ॥२१६॥

प्रवचन नं. २१४ **आषाढ़ शुक्ल १२, शुक्रवार, २७ जून १९६९**

'प्रवचनसार', 'चरणानुयोगसूचक चूलिका' २१६ गाथा है। छेद, मुनि को दोष लगता है, उसे यहाँ छेद कहते हैं। सबेरे तो सम्यग्दर्शन की गाथा, अधिकार (था)। अपना स्वरूप आनन्द और ज्ञानस्वरूप आत्मा है, उसका अन्तर में आनन्द का अनुभव होकर अन्तर स्वभाव में प्रतीति—श्रद्धा करना, उसका नाम सम्यग्दर्शन—धर्म की पहली सीढ़ी (कहने में आता है)। समझ में आया? जिसे आत्मा का हित करना है, (उसे) तो आत्मा

१. अप्रयत = प्रयत्न रहित, असावधान, असंयमी, निरंकुश, स्वच्छन्दी। [अप्रयत चर्या, अशुद्धोपयोग के बिना कभी नहीं होती।]

२. सन्तानवाहिनी = संतत, सतत, निरन्तर, धारावाही, अटूट; [जब तक अप्रयत चर्या है, तब तक सदा ही हिंसा सततरूप से चालू रहती है।]

अन्दर राग, पुण्य-पाप का विकल्प से भिन्न चिदानन्द सहजानन्दमूर्ति आत्मा है, (उसका अनुभव करना)। आत्मा का अनुभव सम्यग्दर्शन हुआ, बाद में चारित्र होता है। स्वरूप में आनन्द की उग्रता, वीतराग अकषायभाव इतना उग्र होता है कि जिसकी दशा में पूर्ण आनन्द की प्राप्ति की उग्र दशा का प्रयत्न चलता है। समझ में आया? और उसे शास्त्रविहित अट्ठाईस मूलगुण का जो विकल्प है, वह उसे होता है। मुनि को बाह्य में नग्नदशा हो जाती है। समझ में आया?

कोई कहे कि (इसका) हमें क्या काम है? तुझे हित करना है या नहीं? हित करना है (तो) आत्मा का हित कैसे होता है, वह समझना पड़ेगा या नहीं? समझ में आया? चार गति में दुःखी है। चीटी, मकड़ी, पशु, पक्षी—ऐसे अवतार करके दुःखी प्राणी है। ऐसे अनन्त अवतार किये, अपने स्वरूप के भान बिना, भ्रमणा मिथ्यात्व के कारण। समझ में आया? तो कहते हैं कि जिसे जन्म-मरण चौरासी के अवतार टालने हो, (उसके लिये बात है)। वह भी अपने में है नहीं, परन्तु टालना हो (-ऐसा) व्यवहार (से) कहने में आता है।

भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दमूर्ति अतीन्द्रिय आनन्द रसकन्द आत्मा है, ऐसा अन्तर अनुभव करके, आनन्द का वेदन अन्तर में आना, वह धर्म की पहली सीढ़ी और पहला मार्ग है। समझ में आया? पशु को भी आत्मदर्शन होता है, परन्तु इस प्रकार हो तो। समझ में आया? आत्मज्ञान कहो, आत्मदर्शन कहो, स्वरूप का अनुभव कहो, स्वरूप के अनुभव में प्रतीति कहो, ऐसा भगवान आत्मा। ऐसा अन्तर विश्वास उत्पन्न हो कि मैं तो पूर्ण आनन्द और ज्ञानपुंज हूँ। शरीर मेरा नहीं, वाणी मेरी नहीं, पुण्य-पाप का राग भी मेरा नहीं, एक समय की अवस्था जितना मैं नहीं। आ...हा...! वर्तमान प्रगट एक समय की अवस्था चलती है, इतना ही मैं नहीं। मैं तो परिपूर्ण कृतकृत्य आनन्दघन हूँ। आ...हा...! ऐसी अन्तर में स्वभाव की एकता होकर और राग, दया, दान के विकल्प से पृथक् होकर अपना अनुभव करना, उसका नाम धर्म की पहली सीढ़ी है। पश्चात् यहाँ चारित्र की बात चलती है।

चारित्र की व्याख्या—आत्मा जो आनन्दस्वरूप है, ऐसा जो अनुभव था, उस आनन्द में बहुत लीन रहना, चरना, रमना, जमना, अतीन्द्रिय आनन्द का अनुभव विशेष

करना, उसका नाम चारित्र है। समझ में आया? और उस चारित्र की भूमिका में मुनि को बाह्य नग्नदशा होती है। बाह्य में एकबार आहार लेना, सामायिक, चौबीस तीर्थंकर की स्तुति, प्रतिक्रमण इत्यादि अट्ठाईस मूलगुण, भूमिशयन, एकबार आहार—ऐसे अट्ठाईस प्रकार के विकल्प अर्थात् शुभराग होता है। समझ में आया? उसका नाम मुनिपने की सम्पूर्णता कहने में आती है। वह यहाँ कहते हैं। २१६ (गाथा)।

अपयत्ता वा चरिया सयणासणठाणचंकमादीसु।
समणस्स सव्वकाले हिंसा सा संतय त्ति मदा।।२१६।।

जो अप्रयत चर्या श्रमण की, शयन आसन गमन में।
रु स्थान में, वो सतत हिंसा, जानना सब काल में॥२१६॥

धीरे से समझने जैसी बात है। एकदम समझ में मुश्किल पड़े ऐसी (बातें हैं)। देखो! **टीका - अशुद्धोपयोग वास्तव में छेद है,....** अशुद्ध उपयोग की व्याख्या क्या? अपना स्वरूप आनन्द और शुद्ध है, ऐसे अनुभव उपरान्त, स्वरूप की शुद्ध परिणति चारित्र की है और उसमें अट्ठाईस मूलगुण का भाव है, इस स्थिति को शुद्ध उपयोग कहने में आता है। समझ में आया? यहाँ चरणानुयोग की अपेक्षा से बात है, हाँ! उसमें जो अशुद्ध उपयोग हो, अट्ठाईस मूलगुण में कुछ भी छेद-खण्ड हो तो यह अशुद्ध उपयोग हिंसा है। मुनिपने में छेद-खण्ड आता है, मुनिपना खण्डित होता है। आहा...हा...! यह दशा प्रगट करनी पड़ेगी। समझ में आया? पहले सम्यग्दर्शन (होने के बाद) यह चारित्र की दशा बिना कभी आत्मा की जन्म-मरण से मुक्ति होगी नहीं।

कहते हैं कि **अशुद्धोपयोग वास्तव में छेद है,....** अशुद्ध उपयोग की व्याख्या नीचे आयेगी। **क्योंकि (उससे) शुद्धोपयोगरूप श्रामण्य का छेदन होता है....** शुद्ध उपयोग का अर्थ, शुद्ध उपयोग की व्याख्या क्या की?

मुमुक्षु - श्रामण्य।

पूज्य गुरुदेवश्री - श्रामण्य अर्थात् क्या? ऐसा नहीं चलता।

शुद्ध उपयोग की ऐसी व्याख्या की कि आत्मा आनन्दस्वरूप अतीन्द्रिय आनन्दकन्द, उसके भानपूर्वक स्वरूप में आनन्द में रमना, इसकी छठ्ठे गुणस्थान मुनि के योग्य आनन्द

में रमणता है, वह चारित्र (है) और उस भूमिका में एक बार आहार, खड़े-खड़े आहार, उसके लिये बना आहार (ले) नहीं, देखकर चलना, विचारकर बोलना—ऐसा जो अट्ठाईस प्रकार का शुभ विकल्प है, शुभयोग (है), यह शुभयोग और चारित्रसहित सामान्य, उसको शुद्ध उपयोग कहने में आता है। निश्चयसहित व्यवहार, इस भूमिका को शुद्ध उपयोग कहते हैं। यहाँ, हाँ! चरणानुयोग की कथनी है न! कठिन, भाई! समझ में आया?

अशुद्धोपयोग वास्तव में छेद है,.... अर्थात् **शुद्धोपयोगरूप श्रामण्य का छेदन होता है और वही (अशुद्धोपयोग ही) हिंसा है,....** वह कहते हैं, देखो! **क्योंकि (उससे) शुद्धोपयोगरूप श्रामण्य का हिंसन (हनन) होता है।** शुद्धोपयोगरूप साधुपद है, चारित्रपद है, अट्ठाईस मूलगुण का शुभयोग है, उससे विपरीत भाव तीव्र प्रमाद आदि आया तो श्रामण्यपना का छेद होता है, साधुपद रहता नहीं। आ...हा...! देखो, यह दशा! समझ में आया?

क्योंकि ऐसी **शयन,....** रात्रि को सोना, उसमें असावधानी हो जाये। अट्ठाईस मूलगुण उपरान्त असावधानी हो जाये। समझ में आया? शयन में एकासन छोड़कर विशेष आसन फिर जाये। आ...हा...हा...! देखो तो सही मुनि की दशा! लोगों को पता नहीं मुनिपना क्या है। मुक्ति, शान्ति, आनन्द का कारण, पूर्ण आनन्द की प्राप्ति-ऐसी जो मुक्ति; आत्मा (के) पूर्णानन्द की प्राप्ति-ऐसी जो मुक्ति; उसका कारण यह चारित्र-ऐसी चीज है। समझ में आया? शयन में, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान है, चारित्र भी वीतरागपर्याय है और अट्ठाईस मूलगुण का राग भी है, इसके उपरान्त आगे बढ़कर शयन में राग की उत्पत्ति यदि विशेष हो जाये तो उसको अशुद्ध उपयोग कहते हैं। उसमें उसको चारित्र का छेद होता है और हिंसा होती है।

प्रश्न – व्यवहार चारित्र....

समाधान – दोनों में छेद होता है। समझ में आया? शयन में तीव्र राग आया, शयन है, आसन और बैठने में और **स्थान,....** अर्थात् खड़े रहने में, **गमन....** चलने में **इत्यादि में अप्रयतचर्या....** देखो! (मूलग्रन्थ में फुटनोट में अर्थ दिया है)। अप्रयत='प्रयत्न रहित, असावधान, असंयमी, निरंकुश, स्वच्छन्दी। [अप्रयतचर्या अशुद्धोपयोग के बिना

कभी नहीं होती।] ' खाने-पीने में विशेष राग हो जाये, अट्ठाईस मूलगुण उपरान्त; कषाय की मन्दता का शुभयोग और यहाँ आत्मा की वीतरागता की शुद्ध परिणति से विशेष राग हो जाये, उसकी बात है। थोड़ी सूक्ष्म बात है, भाई! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा ने कहा मुनिपना ऐसा है। समझ में आया?

मुमुक्षु - ....उदय आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री - उदय आ गया तो राग का विकार तीव्र आ गया। उदय, उदय के पास (रहा)। इधर से लेना। अपने में प्रयत्न में राग की तीव्रता हो जाये, (उसकी बात है)। जो शुभयोग (का) प्रयत्न है और शुद्ध उपयोग का प्रयत्न है, शुद्ध परिणति का प्रयत्न है, उसके उपरान्त राग की तीव्रता हो जाये, उसकी मर्यादा उपरान्त राग आ जाये (उसकी बात है)। कहते हैं, देखो! क्या कहते हैं?

श्रामण्य का छेदन होता है;.... साधुपना का छेद होता है। आ...हा...हा...! दशा तो देखो! लोग साधारण जहाँ-तहाँ मुनिपना मानते हैं। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ वीतराग परमात्मा, जिन्होंने एक समय में तीन काल-तीन लोक प्रत्यक्ष देखे—ऐसे भगवान को इच्छा बिना वाणी निकली, उस वाणी में ऐसा आया है। समझ में आया? कल्पना से ऐसा है, वैसा है - ऐसा नहीं। ऐसा ही है। कठिन बातें, भाई! समझ में आया? क्या कहते हैं? यह शान्ति से समझने की चीज है।

अशुद्धोपयोग ही हिंसा है और वही छेद है। **।इसलिए श्रमण के, जो अशुद्धोपयोग के बिना नहीं होती ऐसी शयन-आसन-स्थान-गमन-इत्यादि में अप्रयत चर्या (आचरण) वह वास्तव में उसके लिये सर्व काल में (सदा) ही संतानवाहिनी हिंसा ही है....** निरन्तर राग की तीव्रता उस भूमिका से विरुद्ध आ गयी तो निरन्तर हिंसा उसे है। आत्मा की शान्ति और राग की मन्दता है, उसमें तीव्रता आ गयी (तो वह) आत्मा में हिंसा है। पर की हिंसा करो, न करो उसके साथ सम्बन्ध नहीं। आहा...हा...!

मुमुक्षु - छठ्ठे गुणस्थान में आया, वही हिंसा कहलायेगी।

पूज्य गुरुदेवश्री - छठ्ठे गुणस्थान में आया वह नहीं।

मुमुक्षु - अशुद्ध उपयोग हुआ न।

पूज्य गुरुदेवश्री – नहीं, नहीं। सुनी नहीं ? दूसरी रीत है। छट्ठे गुणस्थान में है, वह तो मुनिपना यथार्थ है। उसका वीतरागचारित्र है और अट्ठाईस मूलगुण है, उसमें तो शुद्ध उपयोग गिनने में आया है।

मुमुक्षु – शुद्ध उपयोग तो अपने स्वभाव की एकाग्रता....

पूज्य गुरुदेवश्री – यहाँ वह बात नहीं। वह तो द्रव्यदृष्टि की अपेक्षा से वहाँ शुद्ध उपयोग में ज्ञेय-ज्ञाता-ज्ञान एकाकार हो जाये। इस समय वह बात नहीं। अभी चरणानुयोग की अपेक्षा से शुद्ध उपयोग उसे कहने में आया है कि अपना आत्म-आनन्द है, उसका अनुभव है, उसके उपरान्त वीतरागचारित्र है, उसके उपरान्त छट्ठे गुणस्थान के योग्य अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प, राग है – इस सबको शुद्ध उपयोग कहने में आया है। यहाँ (स्वभाव की एकाग्रतारूप शुद्धोपयोग की) बात नहीं ली।

मुमुक्षु – .....ग्रहण की तीव्रता है।

पूज्य गुरुदेवश्री – अपने में राग की तीव्रता। शयन, आसन, खाने-पीने में विशेष राग हो जाये (तो) साधुपना का छेद होता है।

मुमुक्षु – शुभभाव की सावधानी में....

पूज्य गुरुदेवश्री – शुभ तो ठीक, शुद्ध में ठीक। उसके उपरान्त राग तीव्र आ जाये। खाने-पीने में थोड़ी गृद्धि आ गई, बोलने में, चलने में, सोने में... समझे ?

मुमुक्षु – ईर्यासमिति आदि।

पूज्य गुरुदेवश्री – ईर्यासमिति तो बराबर है। शुभराग की ईर्यासमिति बराबर है। इसके उपरान्त राग तीव्र आया, उसकी बात चलती है। ईर्यासमिति बराबर है। इसके उपरान्त रागादि तीव्र आ जाये, ईर्यासमिति का भान रहे नहीं, शुद्ध का भान रहे नहीं तो छेद हो जाता है। समझ में आया ? इसका अर्थ किया है न, २११ गाथा। वह अर्थ पढ़ने में आया नहीं। २११-२१२ गाथा की (फुटनोट) है। देखो।

'मुनि के (मुनित्वोचित) शुद्धोपयोग, वह अन्तरंग अथवा निश्चय प्रयत्न है,...' अपना शुद्ध चारित्र वीतरागपने में भी निश्चय प्रयत्न है और शुभयोग में भी प्रयत्न है। 'और

उस शुद्धोपयोगदशा में प्रवर्तमान (हठरहित) देहचेष्टादि सम्बन्धी शुभोपयोग, वह बहिरंग अथवा व्यवहारप्रयत्न है।' शुभराग है न, हठ बिना, हाँ! सहज शुभराग आता है, हठ बिना। 'जहाँ शुद्धोपयोगदशा नहीं होती, वहाँ शुभोपयोग हठसहित होता है;...' जहाँ अपना शुद्ध स्वभाव का भान नहीं और जहाँ अपना अनुभव नहीं, वहाँ जो शुभराग आता है, वह हठसहित होता है। 'वह शुभोपयोग व्यवहार-प्रयत्न को भी प्राप्त नहीं होता।' उसको तो व्यवहार प्रयत्न भी कहने में आता नहीं। सूक्ष्म बात है। यह चरणानुयोग की विधि, सर्वज्ञ परमेश्वर ने कही ऐसी 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' सन्धि मिलाते हैं। ऐसी बात वीतराग सर्वज्ञ के अलावा कहीं हो सकती नहीं। समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, अपना शुद्ध भगवान आत्मा, चैतन्य का निश्चय प्रयत्नपूर्वक शुभभाव हो तो तो बराबर यथार्थ है परन्तु अपने शुद्ध चैतन्य का आनन्द का अनुभव नहीं और अकेला शुभ है, वह हठसहित शुभ है। उसको तो व्यवहार प्रयत्न भी कहने में आता नहीं। यह सूक्ष्म बात है, भाई! बहुत सूक्ष्म बात, भाई! यह तो मार्ग ऐसा है।

मुमुक्षु - दोष नहीं लगता, छेद होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री - नहीं, नहीं; छेद होता है, छेद ही होता है। उससे विरुद्ध जो राग आ जाये तब तो समाप्त हो जाये। शान्ति का छेद हो और शुभराग का भी छेद होता है। सूक्ष्म बात, भाई! आहा...हा...!

आनन्दस्वरूप भगवान आत्मा, अन्तर में अतीन्द्रिय आनन्द की धारा में आत्मा चलता है और उसमें वीतरागता, चारित्रदशा — तीन कषाय का अभावरूप चारित्र है और उसमें शुभयोग भी व्यवहार प्रयत्न है, इसके उपरान्त राग तीव्र आ जाये तो छेद होता है और निरन्तर हिंसा होती है—अपने आत्मा की हिंसा होती है। सन्तान अर्थात् निरन्तर। आहा...हा...! समझ में आया? सन्तानवाहिनी (का अर्थ नीचे लिखा है)। सतत, सतत, निरन्तर, धारावाही, अटूट। (जब तक अप्रयत्तचर्या है तब तक सदा ही हिंसा सततरूप से चालू रहती है)। अपनी भूमिका के प्रमाण में वीतराग चारित्र है और शुभयोग है। उससे आगे बढ़कर राग तीव्र आया तो आत्मा में निरन्तर हिंसा चालू है। आहा...हा...! समझ में आया? कठिन मार्ग। मूल में सुना ही नहीं हो। पहले साधारण सुनी हो, उसे ऐसा लगे कि, यह क्या कहते हैं? अरे... भगवान! बापू! मार्ग ऐसी चीज है।

यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर से सिद्ध हुई है। समझ में आया ? परमात्मा एक समय में तीन काल-तीन लोक जाननेवाली आत्मा की शक्ति थी, वह जिन्होंने प्रगट की, तीन काल-तीन लोक प्रत्यक्ष जानने में आये, उनकी वाणी इच्छा बिना निकली, उस वाणी में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की क्या दशा है—उसका वर्णन आया, वह इस प्रकार से है। आहा...हा... ! समझ में आता है ?

कहते हैं, **सर्वकाल में (सदा) ही सन्तानवाहिनी हिंसा ही है-जो कि छेद से अनन्यभूत हैं....** अनन्य अर्थात् छेद ही है, ऐसे। **छेद से अनन्यभूत है (अर्थात् छेद से कोई भिन्न वस्तु नहीं है)।** आहा...हा... ! कठिन, भाई ! दोष, छेद किसे कहना, मुनिपना किसे कहना, इसकी खबर नहीं। यहाँ तो भगवान 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' साक्षात् भगवान के पास गये थे। परमात्मा महाविदेह में विराजते हैं। तीर्थंकर सर्वज्ञ परमेश्वर केवलज्ञानी त्रिलोकनाथ वर्तमान में महाविदेह में विराजते हैं। पाँच सौ धनुष की देह है, करोड़ पूर्व का आयुष्य है। उनके पास संवत ४९ में आठ दिन गये थे और वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाया है। ऐसा कहते हैं कि भगवान, मुनिपना की स्थिति ऐसी कहते थे, वर्णन करते थे, यह हम कहते हैं। यह तो यथानुभूत कहते हैं, ऐसा पहले कहा न ? साधुपद की कैसी दशा होती है, वह दशा यथानुभूत हमारे अनुभव में है—ऐसा साधुपद दुनिया को बताते हैं।

मुमुक्षु - मोक्षाधिकारी हम खड़े हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री - खड़े हैं। आ...हा...हा... !

आत्मा आनन्दप्रभु ! नित्यानन्द स्वरूप (है), उसमें हमारी रमणता चारित्र के योग्य, मुनि के योग्य है और उसमें अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प ऐसा आता है। समझ में आया ? अदन्तधोवन, अस्नान, एकबार खड़े-खड़े आहार, सामायिक, चौबीस (तीर्थंकर को वन्दन), गुरु को वन्दन, देववन्दन इत्यादि अट्ठाईस प्रकार के शुभराग और अन्दर अरागी वीतरागी चारित्र और सम्यग्दर्शन-ज्ञान, इस दशा को मुनिपना कहने में आता है। यह मुनिपना मुक्ति का कारण है। समझ में आया ? इसमें यदि कुछ भी, अपने वीतरागचारित्र से आगे बढ़कर राग विशेष हो जाये तो चारित्र का छेद है। शुभयोग से भी आगे (बढ़कर) अशुभ हो तो वह भी व्यवहार चारित्र का भी छेद होता है, हिंसा है। आहा...हा... ! समझ

में आया ? इस मुनिपने की दशा में शरीर साफ करने को कोई वस्त्र का टुकड़ा लेने का विकल्प हुआ,... समझ में आया ? तो कहते हैं कि मुनिपना का छेद होता है। समझ में आया ? और शरीर बिगड़ गया हो तो... (लोग) पानी से स्नान करते हैं न ? ऐसा भाव आ गया कि ठीक शीतल है, ठीक स्नान हुआ। ऐसा भाव — राग आया तो मुनिपना का छेद हो जाता है – ऐसा कहते हैं। आहा...हा... !

परमानन्द प्रभु मुक्ति, उसका उपाय... आ...हा...हा... ! ऐसा होता है, भाई ! उसे मालूम नहीं। समझ में आता है ? कुगुरु, कुधर्म, कुशास्त्र में ऐसी बात होती नहीं। क्या करे ? सर्वज्ञ परमेश्वर का मार्ग जो सन्त का मार्ग, मुनि का मार्ग, ऐसा होता है। उसमें थोड़ा भी.... समझ में आया ? राग आया (तो) सर्व काल हिंसा है। आहा...हा... !

भावार्थ – अशुद्धोपयोग से शुद्धोपयोगरूप मुनित्व.... अशुद्ध उपयोग की व्याख्या–गमनादि में शुभयोग की दशा से आगे बढ़कर राग तीव्र हो जाये तो उसे अशुद्ध उपयोग कहते हैं। समझ में आया ? कठिन बात, भाई ! अन्तर वस्तु... आ...हा...हा... ! आनन्द कन्द प्रभु पूर्णानन्द का नाथ, सच्चिदानन्द प्रभु का अनुभव हुआ और उसमें लीनता हुई, चारित्र / वीतरागता हुई, वहाँ राग की–शुभयोग की मन्दता का योग है, इतना है, बस। इसके अतिरिक्त कुछ तीव्र राग आ गया तो हिंसा है, चारित्र में छेद है, चारित्र का खण्ड हो गया। दीवार जैसे अखण्ड है (उसमें) खड्डा निकलते हैं, खड्डा क्या कहते हैं ? खड्डा निकलता हैं न ? क्या कहते हैं ? एक–दो पत्थर निकलते हैं न ? तो दीवार एक–सी नहीं रहती। ऐसे चारित्र में खड्डा–छेद पड़ा। काठियावाड़ी भाषा आती हे। खड्डा ! दीवार होती है न दीवार ? उसमें से पत्थर निकले न ? पत्थर ! तो खड्डा होता है। ऐसे तेरे चारित्र में खड्डा हो गया। आहा...हा... ! उसके लिये भोजन बनाया, उसमें कुछ भी वृत्ति आयी कि यह ठीक है, ले लो। ऐसा भाव आया (तो) मुनिपना रहता नहीं। आहा...हा... !

मुमुक्षु – हीरे की तोल है।

पूज्य गुरुदेवश्री – हीरे की तोल है। उसमें थोड़ा भी आगे–पीछे (चलता नहीं)। वस्तु ऐसी है। आ...हा... ! जहाँ–तहाँ मुनिपना—साधुपना मानते हैं न, उसे कहते हैं, छोड़ दे तेरी मान्यता, सब झूठी है। सम्यग्दर्शनपूर्वक जहाँ चारित्र की दशा हो, वहाँ तो उसकी

नग्नदशा हो जाती है और नग्नदशा में अन्दर अट्ठाईस मूलगुण होता है, उसके उपरान्त राग तीव्र आ जाये तो चारित्र रहता नहीं। आहा...हा... ! समझ में आया ?

श्वेताम्बर में कहते हैं कि द्रव्यानुयोग का ज्ञान हो तो उसके लिये बनाया भोजन ले तो उसमें कोई बाधा नहीं। ऐसा मार्ग नहीं है, भाई ! समझ में आया ? श्वेताम्बर में (एक साधु हुए हैं), उसने ऐसा कहा है और उनके ग्रन्थ में भी ऐसा अर्थ है। परन्तु साधु तो आत्मा का ज्ञानी होता है। आत्मा के ज्ञान बिना साधु कैसा ? द्रव्यानुयोग का ज्ञान हो (और) उसके लिये भोजन बनाये। सबेरे चाय-पानी, दूध ले आये (और ले तो) साधु है नहीं। साधु कैसा ? उसे साधु कौन कहे ? समझ में आया ? वस्त्र का धागा रखे और मुनि है - ऐसा माने (तो) निगोद में जायेगा, कहते हैं। मरकर एकेन्द्रिय, आलू, शक्करकन्द में जायेगा। क्योंकि नव तत्त्व से विरुद्ध उसकी श्रद्धा है। समझ में आया ?

वह प्रश्न हमारे हुआ था। संवत् १९६९। संवत् १९७० में दीक्षा हुई न ? संवत् १९६९। हम दीक्षित हुए उसके पहले हमने प्रश्न किया था। हमारे गुरु को प्रश्न किया था। ऐ...ई... ! पूछा कि, महाराज ! साधु के लिये मकान बनाये, पाट बनाये, कमरा बनाकर साधु उपयोग में ले तो उसकी नव कोटि में कौन-सी कोटि टूटती है ? ऐसा प्रश्न किया था। संवत् १९६९ का वैशाख मास (था)। समझ में आया ? करना-कराना-अनुमोदना, मन से, वचन से, काया से। (इस प्रकार) नौ भंग हुए न ? ऐसा प्रश्न किया था। मुनि को तो नौ भंग का त्याग है। मुनि के लिये बनाया कमरा। कमरा बनाते हैं न ? कमरे में खाते हैं न, अलग कमरा बनाते हैं। एकान्त में खाते हैं। आहा...हा... ! वह तो संवत् १९६९ में प्रश्न किया था। नौ कोटि में कौन-सी कोटि टूटती है ? कोटि समझते हैं ? नौ प्रकार। तो साधु को नौ में से कौन-सा प्रकार टूटता है ? वे तो बेचारे भोले थे। उनको ऐसा था कि, ये दीक्षा लेने से रुक जायेगा। साधु के लिये बनाया हो, उसका उपयोग करे तो उसकी अनुमोदना कोटि टूटती है। अनुमोदन हुआ। 'वहंते श्रमणं जाणंति' वह वध को अनुमोदता है। उसके लिये बना आहार, पानी, मकान का उपयोग करे तो छह काय की हिंसा को अनुमोदता है, वध को (अनुमोदता है)। ऐसा है। उनको बात नहीं की थी। उस दिन तो 'दस वैकालिक' में था न। श्वेताम्बर में 'दस वैकालिक' है, उसमें वह गाथा आयी थी। हमने तो उस समय कण्ठस्थ किया था, सारा कण्ठस्थ किया था। उसमें यह था। 'वहंते श्रमणं जाणंति' साधु

के लिये बनाया शयन, आसन, बैठक, पाटला... पाटला कहते हैं न? पाटला, खड़े रहने के लिये (कोई चीज), सहारा लेने के लिये लकड़े का कुछ बनाये, उसका उपयोग करे तो साधुपना रहता नहीं। कठिन काम, भाई! ऐसा काम है। समझ में आया? ऐसी स्थिति सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतराग वर्णन करते हैं। उससे विरुद्ध श्रद्धा करे तो ऐसी दृष्टि मिथ्या भ्रम और अज्ञान है। समझ में आया? आहा...हा...!

भावार्थ – **अशुद्धोपयोग से शुद्धोपयोगरूप मुनित्व (१) छिदता है....** भावार्थ में है न? अशुद्धोपयोग से अर्थात् उसके लिये बनाया शयन, आसनादि किसी चीज का उपयोग करने का भाव हो तो अशुद्ध उपयोग से। वह अशुद्ध उपयोग (है)। (उससे) **शुद्धोपयोगरूप मुनित्व....** का छेद होता है। मुनिपना रहता नहीं। **मुनित्व (१) छिदता है (२) हनन होता है,....** दो लिये। हिंसा होती है। आ...हा...हा...! कठिन, भाई ऐसा! कोई कहता था कि ऐसा धागा खींचा, बापू! तुझे मालूम नहीं। भगवान का मार्ग तो (ऐसा है)। बहुत सूक्ष्म खींचा, बहुत सूक्ष्म खींचा। भाई! सूक्ष्म नहीं, वस्तु का स्वरूप ऐसा है। उसने कभी सुना नहीं हो, मूढ़पने ऐसे ही जीवन व्यतीत किया हो। उसे ऐसा लगता है कि कुछ धर्म करते हैं। भान भी नहीं है, धर्म किसे कहते हैं।

यहाँ तो परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा तीर्थंकरदेव केवलज्ञानी की वाणी में इच्छा बिना ऐसा आया कि, भाई! अशुद्धोपयोग से शुद्धोपयोगरूप मुनित्व छिदता है और हनन होता है। **(१) छेद ही है, (२) हिंसा ही है।** स्पष्टीकरण किया। दोनों हिंसा है। छेद ही हिंसा है। आहा...हा...! परप्राणी मरो, न मरो, वह बाद में आयेगा। समझ में आया? वह बाद में आयेगा। २१७ में तुरन्त आयेगा। अपने स्वरूप में पर पदार्थ की ओर की असावधानी विशेष हो गई (तो वह) हिंसा (हुई)। मुनिपना का छेद (हुआ)। आहा...हा...! आगम अनुसार ऐसी चीज न हो और उसको मुनिपना मानना... समझ में आया? मनाना, मानते हो, (उसे अनुमोदना) तीनों को निगोद की दशा का मिथ्यात्व है। आहा...हा...! ऐसा वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। समझ में आया?

और जहाँ सोने, बैठने, खड़े होने, चलने इत्यादि में अप्रयत आचरण होता है,... प्रयत्नपना, सावधानपना रहता नहीं, **वहाँ नियम से अशुद्धोपयोग तो होता ही है,...** समझे? **इसलिए अप्रयत आचरण छेद ही है, हिंसा ही है।** लो। ऐसी बात! २१७ गाथा।

गाथा - २१७

अथान्तरङ्गबहिरङ्गत्वेन छेदस्य द्वैविध्यमुपदिशति-

मरदु व जियदु व जीवो अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा।
पयदस्स णत्थि बंधो हिंसामेत्तेण समिदस्स।।२१७।।

म्रियतां वा जीवतु वा जीवोऽयताचारस्य निश्चिता हिंसा।
प्रयतस्य नास्ति बन्धो हिंसामात्रेण समितस्य।।२१७।।

अशुद्धोपयोगोऽन्तरङ्गच्छेदः, परप्राणव्यपरोपो बहिरङ्गः। तत्र परप्राणव्यपरोपसद्भावे तदसद्भावे वा तदविनाभाविनाप्रयताचारेण प्रसिद्ध्यदशुद्धोपयोगसद्भावस्य सुनिश्चितहिंसाभावप्रसिद्धेः, तथा तद्विनाभाविना प्रयताचारेण प्रसिद्ध्यदशुद्धोपयोगासद्भावपरस्य परप्राणव्यपरोपसद्भावेऽपि बन्धाप्रसिद्ध्या सुनिश्चितहिंसाऽभावप्रसिद्धेश्चान्तरङ्ग एव छेदो बलीयान्, न पुनर्बहिरङ्गः। एवमप्यन्तरङ्गच्छेदायतनमात्रत्वाद्बहिरङ्गच्छेदोऽभ्युपगम्येतैव।।२१७।।

अथान्तरङ्गबहिरङ्गहिंसारूपेण द्विविधच्छेदमाख्याति-**मरदु व जियदु व जीवो, अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा** म्रियतां वा जीवतु वा जीवः, प्रयत्नरहितस्य निश्चिता हिंसा भवति; बहिरङ्गान्यजीवस्य मरणेऽमरणे वा, निर्विकारस्वसंवित्तिलक्षणप्रयत्नरहितस्य निश्चयशुद्धचैतन्यप्राणव्यपरोपणरूपा निश्चयहिंसा भवति। **पयदस्स णत्थि बंधो** बाह्याभ्यन्तरप्रयत्नपरस्य नास्ति बन्धः। केन। **हिंसामेत्तेण** द्रव्यहिंसामात्रेण। कथंभूतस्य पुरुषस्य। **समदस्स** समितस्य शुद्धात्मस्वरूपे सम्यगितो गतः परिणतः समितस्तस्य समितस्य, व्यवहारेणेर्यादिपञ्चसमितियुक्तस्य च। अयमत्रार्थः-स्वस्थभावनारूपनिश्चियप्राणस्य विनाशकारणभूता रागदिपरिणतिर्निश्चयहिंसा भण्यते, रागाद्युत्पत्तेर्बहिरङ्गनिमित्तभूतः परजीवघातो व्यवहारहिंसेति द्विधा हिंसा ज्ञातव्या। किंतु विशेषः-बहिरङ्गहिंसा भवतु वा मा भवतु, स्वस्थभावनारूपनिश्चयप्राणघाते सति निश्चयहिंसा नियमेन भवतीति। ततः कारणात्सैव मुख्येति।।२१७।।

अब, छेद के अन्तरंग और बहिरंग ऐसे दो प्रकार बतलाते हैं—

जीव जीवे या मरे, हिंसा अयत्नाचार के।
समिति अरु प्रयतसहित के, ना बन्ध हिंसामात्र से॥२१७॥

अन्वयार्थ - **[जीवः]** जीव **[म्रियतां या जीवतु वा]** मरे या जिये, **[अयताचारस्य]** अप्रयत आचारवाले के **[हिंसा]** (अन्तरंग) हिंसा **[निश्चिता]** निश्चित है; **[प्रयतस्य समितस्य]** प्रयत[१] के, समितिवान् के[२] **[हिंसामात्रेण]** (बहिरंग) हिंसामात्र से **[बन्धः]** बन्ध **[नास्ति]** नहीं है।

टीका - अशुद्धोपयोग अन्तरंग छेद है; परप्राणों का व्यपरोप (विच्छेद) वह बहिरंग छेद है। इनमें से अन्तरंग छेद ही विशेष बलवान है, बहिरंग छेद नहीं; क्योंकि परप्राणों के व्यपरोप का सद्भाव हो या असद्भाव, जो अशुद्धोपयोग के बिना नहीं होता ऐसे अप्रयत आचार[३] से प्रसिद्ध होनेवाला (जानने में आनेवाला) अशुद्धोपयोग का सद्भाव जिसके पाया जाता है, उसके हिंसा के सद्भाव की प्रसिद्धि सुनिश्चित है और इस प्रकार जो अशुद्धोपयोग के बिना होता है, ऐसे प्रयत आचार[४] से प्रसिद्ध होनेवाला अशुद्धोपयोग का असद्भाव जिसके पाया जाता है उसके, परप्राणों के व्यपरोप के सद्भाव में भी बन्ध की अप्रसिद्धि होने से, हिंसा के अभाव की प्रसिद्धि सुनिश्चित है। ऐसा होने पर भी (अर्थात् अन्तरंग छेद ही विशेष बलवान है, बहिरंग का छेद नहीं, ऐसा होने पर भी) बहिरंग छेद, अन्तरंग छेद का आयतनमात्र है, इसलिए उसे (बहिरंग छेद को) स्वीकार तो करना ही चाहिए अर्थात् उसे मानना ही चाहिए।

भावार्थ - शुद्धोपयोग का हनन होना वह अन्तरंग हिंसा - अन्तरंग छेद है, और दूसरे के प्राणों का विच्छेद होना बहिरंग हिंसा - बहिरंग छेद है।

---

१. प्रयत = प्रयत्नशील, सावधान, संयमी [प्रयत्न के अर्थ के लिये देखो गाथा २११ का फुटनोट।]

२. शुद्धात्मस्वरूप में (मुनित्वोचित) सम्यक् 'इति' अर्थात् परिणति, वह निश्चय समिति है। और उस दशा में होनेवाली (हठ रहित) ईर्या-भाषादि सम्बन्धी शुभ परिणति, वह व्यवहारसमिति है। [जहाँ शुद्धात्मस्वरूप में सम्यक्-परिणतिरूप दशा नहीं होती, वहाँ शुभ परिणति हठ सहित होती है; वह शुभपरिणति व्यवहारसमिति भी नहीं है।]

३. अशुद्धोपयोग के बिना अप्रयत आचार कभी नहीं होता, इसलिए जिसके अप्रयत आचार वर्तता है, उसके अशुद्ध उपयोग अवश्यमेव होता है। इस प्रकार अप्रयत आचार के द्वारा अशुद्ध उपयोग प्रसिद्ध होता है-जाना जाता है।

४. जहाँ अशुद्ध उपयोग नहीं होता, वहीं प्रयत आचार पाया जाता है, इसलिए प्रयत आचार के द्वारा अशुद्ध उपयोग का असद्भाव सिद्ध होता है - जाना जाता है।

जीव मरे या न मरे, जिसके अप्रयत आचरण है, उसके शुद्धोपयोग का हनन होने से अन्तरंग हिंसा होती ही है और इसलिए अन्तरंग छेद होता ही है। जिसके प्रयत आचरण है उसके, परप्राणों के व्यपरोपरूप बहिरंग हिंसा के – बहिरंग छेद के – सद्भाव में भी, शुद्धोपयोग का हनन नहीं होने से अन्तरंग हिंसा नहीं होती और इसलिए अन्तरंग छेद नहीं होता ॥२१७॥

प्रवचन नं. २१४ का शेष — **आषाढ़ शुक्ल १२, शुक्रवार, २७ जून १९६९**

अब, छेद के अन्तरंग और बहिरंग ऐसे दो प्रकार बतलाते हैं— लो।

मरदु व जियदु व जीवो अयदाचारस्स णिच्छिदा हिंसा।
पयदस्स णत्थि बंधो हिंसामेत्तेण समिदस्स।।२१७।।

जीव जीवे या मरे, हिंसा अयत्नाचार के।
समिति अरु प्रयतसहित के, ना बन्ध हिंसामात्र से॥२१७॥

टीका – **अशुद्धोपयोग अन्तरंग छेद है;....** लो। मुनिपने की चारित्रदशा और शुभयोग उपरान्त तीव्र राग आवे तो अन्तरंग छेद—अन्तरंग का छेद है। शान्ति का छेद होता है, शुभराग का भी छेद होता है। **परप्राणों का व्यपरोप (विच्छेद) वह बहिरंग छेद है।** एकेन्द्रिय जीव, पृथ्वी, अग्नि, वायु, वनस्पति जीव है। आहा...हा...! वह जीव मरे, न मरे, उसके साथ सम्बन्ध नहीं। वह मरे, वह बहिरंग छेद है। देखो!

इनमें से अन्तरंग छेद ही विशेष बलवान है,.... मुख्य तो यह है। समझ में आया? कठिन भाई, ऐसा क्या? कहीं सुना नहीं हो न, ऊपर-ऊपर से स्थूल बुद्धि से सुना हो कि यह धर्म है, यह साधुपना है, ये है। आहा...हा...! **परप्राणों का व्यपरोप (विच्छेद) वह बहिरंग छेद है। इनमें से अन्तरंग छेद ही विशेष बलवान है, बहिरंग छेद नहीं;....** देखो! एकेन्द्रिय जीव है, पृथ्वी का, अग्नि का, वायु, वनस्पति जीव है, हाँ! मुनि चलते हैं, उसमें अप्रयत्न आचार हो तो हिंसा है; और वह मरे तो हिंसा है – ऐसा है नहीं। आ...हा...! समझ में आया?

एक ओर कहे कि देव-गुरु-शास्त्र की, देव-गुरु-धर्म की श्रद्धा करनी वह

व्यवहार समकित है। परन्तु व्यवहार का भी ठिकाना नहीं है। देव, गुरु और धर्म उसकी श्रद्धा। देव अरिहन्त परमात्मा, गुरु जैसे चारित्रवन्त हो वे गुरु। चारित्रवन्त—ऐसी क्रिया और ऐसा ज्ञान, आनन्द सहित की रमणता और शुभराग; और अहिंसा—राग की उत्पत्ति न होना, उसका नाम अहिंसाधर्म। जिसमें पर प्राणी को बचाने का, नहीं मारने का विकल्प उठता है, वह भी आत्मा की हिंसा है। समझ में आया? आहा...हा...! कठिन बात, बापू! राग हिंसा है। राग उत्पन्न हुआ (कि) पर को दु:ख न हो, पर की दया हो, पर बचे — ऐसा विकल्प आया, शुभराग, शुभ हाँ! उसे भी भगवान हिंसा कहते हैं। आत्मा वीतरागस्वरूप है और राग आया तो हिंसा हुई। रागरहित अपनी दशा आनन्दस्वरूप की उत्पत्ति (हो), उसका नाम अहिंसा परमो धर्म है। आहा...हा...! दुनिया की व्याख्या अलग और यह व्याख्या अलग। समझ में आया? परप्राणी को नहीं मारना, यह अहिंसा है और यह अहिंसा परमोधर्म है, ऐसा है नहीं। अहिंसा, समझे?

'.....' 'हीराजी महाराज' कहते थे। '....' कोई प्राणी को, पर को नहीं मारना। '...' यह अहिंसा सिद्धान्त का सार है। '...' इसे जाना उसने सब जाना। सब झूठ है। समझ में आया? भाई! 'हीराजी महाराज' कहते थे। बहुत कषाय मन्द, ब्रह्मचारी। आ...हा...! कषाय मन्द बहुत। परन्तु तत्त्व की कुछ खबर नहीं। दूसरे साधु से उनकी क्रिया, कषाय मन्द, ब्रह्मचर्य बहुत। लेकिन दृष्टि की कोई चीज उन्होंने सुनी नहीं, सुनी नहीं। 'सूयगडां' में ऐसी गाथा आती है। '...' ज्ञानी के ज्ञान का सार यह है कि '...' कोई पर प्राणी को नहीं मारना, वह ज्ञानी के ज्ञान का सार है। अहिंसा—परप्राणी नहीं मारना वह अहिंसा। 'समयंयेव' सारे सिद्धान्त का सार (है)। भाई! आपने देखे थे? देखे थे? (संवत) १९७४ में गुजर गये। १९७४, चैत्र कृष्ण ८। संवत १९७४, चैत्र कृष्ण ८। चलते-चलते रास्ते में देह छूट गया। 'बेराणी' (गाँव)। प्रतिष्ठा बड़ी थी। लाखोंपति, दस-दस लाख के आसामी, बीस साल का पुत्र मरे, ऐसे लोग रोते थे। ऐसी प्रतिष्ठा थी। बहुत प्रतिष्ठा, बहुत प्रतिष्ठा। बड़ी पालकी थी। बड़े-बड़े पाँच-पाँच लाख के आसामी, पचास-पचास हजार की कमाई। पालकी उठाई तो रोने (लगे)। हमारे साधु चले गये, ऐसे रोते थे। लोगों को ऐसा प्रेम था। तत्त्व की कुछ खबर नहीं। वे यह कहते थे कि परप्राणी को नहीं मारना, वह अहिंसा और सिद्धान्त का सार है।

यहाँ कहते हैं कि परप्राणी (को) आत्मा मार सकता नहीं। बचाने का भाव है, वह राग है और राग है, वह हिंसा है। आहा...हा...! यह अहिंसा 'समयंयेव' भाई! आ...हा...! समझ में आया? 'पुरुषार्थसिद्धि उपाय' में है। ओ...हो...! शुभयोग अपराध है। जिसमें तीर्थंकर गोत्र बँधे। शुभयोग दया, दान, व्रतादि का भाव अपराध है। अपराध से बन्धन होता है। धर्म से बन्ध होता है?

यहाँ वह कहते हैं, देखो! परप्राणी का विच्छेद बहिरंग छेद है। वह बहिरंग छेद नहीं, अन्तरंग छेद ही विशेष बलवान है। **क्योंकि परप्राणों के व्यपरोप का सद्भाव हो या असद्भाव,....** परप्राणी मरे या न मरे। एकेन्द्रियादि जीव मरे या न मरे। सद्भाव अर्थात् हिंसा हो और न हो। **जो अशुद्धोपयोग के बिना नहीं होता ऐसे अप्रयत आचार....** लो! है न? कहाँ गया? समिति का आया न? प्रयत्न के समितिवान। उसमें— अन्वयार्थ में है। (मूलग्रन्थ में फुटनोट दी है)। *'प्रयत = प्रयत्नशील, सावधान, संयमी [प्रयत्न के अर्थ के लिये देखो गाथा २११ का फुटनोट।]'* अपने पढ़ा वह। और समिति का अर्थ है। 'शुद्धात्मस्वरूप में (मुनित्वोचित) सम्यक् 'इति' अर्थात् परिणति, वह निश्चय समिति है।' भगवान आत्मा अपना वीतराग निर्दोष आनन्द में परिणमे / होना, उसका नाम निश्चय समिति कहने में आता है। बाते-बाते फेर। है न?

'शुद्धात्मद्रव्य में (मुनित्वोचित) सम्यक् 'इति' अर्थात् परिणति, वह निश्चय समिति है। और उस दशा में होनेवाली (हठरहित) ईर्या-भाषादि सम्बन्धी शुभपरिणति वह व्यवहारसमिति है। (जहाँ शुद्धात्मस्वरूप में सम्यक् परिणतिरूप दशा नहीं होती, वहाँ शुभपरिणति हठसहित होती है; वह शुभपरिणति व्यवहारसमिति भी नहीं है)।' आहा...हा...! क्या कहा समझ में आया? भगवान आत्मा अपने शुद्ध आनन्द की समिति-परिणति, उग्र परिणति, वीतराग दशा हो तो ईर्या, भाषा समिति के शुभराग को व्यवहार समिति कहने में आती है परन्तु ऐसी दशा अन्तर में न हो और अकेली व्यवहारसमिति हो — देखना, चलना, लेना वह व्यवहार है, उसे व्यवहारसमिति कहने में नहीं आती।

प्रश्न – उसमें हठ कैसी?

समाधान – वह हठ है, वह तो हठ से आया है। व्यवहारसमिति नहीं। व्यवहारसमिति तो, निश्चय आत्मा के आनन्द की परिणति सहित शुभ विकल्प सहज हठ बिना आता है,

उसको व्यवहारसमिति कहते हैं। निश्चय में वीतराग परिणति को निश्चय समिति कहते हैं; और वीतराग दशा अन्दर में अनुभव में नहीं और अकेली ईर्या भाषा, देखकर चलना, उसके लिये बनाया आहार न लेना, भले न लो, परन्तु वह सब विकल्प हठसहित है तो उसको व्यवहारसमिति भी कहने में आती नहीं। आहा...हा...! मार्ग तो ऐसा है। उसको स्वीकार तो करना पड़े। आहा...हा...!

भगवान! तेरा मार्ग भी ऐसा है न, नाथ! किसी के लिये कहा है? स्वरूप की स्थिति ही ऐसी है। ऐसी पहले श्रद्धा तो करे। समझ में आया? श्रद्धा के परिणमन में भी बिल्कुल दोष आना नहीं चाहिए। पश्चात् मुनिपना की दशा आती है। ओ...हो...! वह तो अलौकिक दशा है। धन्य अवतार, धन्य काल, धन्य समय!! मुनिपना की दशा तो धन्य काल है। जिसका अवतार सफल हुआ। उसके बिना कभी मुक्ति होगी नहीं।

कहते हैं, **क्योंकि परप्राणों के व्यपरोप का सद्भाव हो....** व्यपरोप अर्थात् हिंसा। वह **हो या असद्भाव, जो अशुद्धोपयोग के बिना नहीं होता ऐसे अप्रयत आचार से प्रसिद्ध होनेवाला....** लो। अप्रयत्न अर्थात् प्रमाद तीव्र होकर, हिलना-चलना होता है, खाते-पीते हैं तो **(जानने में आनेवाला) अशुद्धोपयोग का सद्भाव जिसके पाया जाता है....** उसके पास अशुद्धोपयोग है। अशुद्धोपयोग का अर्थ? - तीव्र राग है। तीव्र राग है तो मुनिपना है नहीं। **उसके हिंसा के सद्भाव की प्रसिद्धि सुनिश्चित है....** ऐसे मुनि को अपने आत्मा की हिंसा होती है, यह सुनिश्चित है।

और इस प्रकार जो अशुद्धोपयोग के बिना होता है ऐसे प्रयत आचार से.... देखो! अब सुलटी (बात करते हैं)। **इस प्रकार जो अशुद्धोपयोग के बिना होता है....** अपना वीतराग चारित्र और मुनि के योग्य हठरहित शुभराग। ऐसी दशा बिना, **जो अशुद्धोपयोग के बिना होता है ऐसे प्रयत आचार....** प्रयत्नपूर्वक, (मूलग्रन्थ में फुटनोट दी है)। *प्रयत = 'जहाँ अशुद्ध उपयोग नहीं होता वहीं प्रयत आचार पाया जाता है, इसलिए प्रयत आचार के द्वारा अशुद्ध उपयोग का असद्भाव सिद्ध होता है....'* कि उसके पास अशुद्धोपयोग है नहीं। सम्यग्दर्शनपूर्वक चारित्र की वीतरागता है और वहाँ शुभ उपयोग अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प है। (ऐसे) **प्रयत आचार से प्रसिद्ध होनेवाला....** अप्रयत नहीं किन्तु प्रयत है।

ऐसे **अशुद्धोपयोग का असद्भाव जिसके पाया जाता है....** अशुद्धोपयोग उसके पास है नहीं। कठिन बात, भाई! चरणानुयोग की टीका (अलौकिक है)। **उसके, परप्राणों के व्यपरोप के सद्भाव में भी....** देखो! जहाँ अप्रयत्न नहीं परन्तु प्रयत्न यथार्थ है। निश्चय प्रयत्न शुद्धोपयोग—शुद्ध परिणति और व्यवहार शुभ विकल्प – ऐसा प्रयत्न बराबर है वहाँ **परप्राणों के व्यपरोप के सद्भाव में भी बन्ध की अप्रसिद्धि होने से,....** उस समय में कोई एकेन्द्रियादि परप्राणी मरे तो भी उसको बन्ध होता नहीं। समझ में आया कि नहीं? कठिन, भाई! देखो! यह मुनिपना की दशा! चारित्रवन्त सन्त ऐसे होते हैं – ऐसा कहते हैं। आ...हा...हा...! समझ में आया?

बन्ध की अप्रसिद्धि होने से, हिंसा के अभाव की प्रसिद्धि सुनिश्चित है। वहाँ हिंसा है नहीं। बराबर प्रयत्न स्वरूप का निश्चय का है और शुभयोग का जैसा अट्ठाईस मूलगुण (का होना चाहिए), वैसा ही प्रयत्न बराबर है। वहाँ अशुद्धोपयोग की नास्ति है और वहाँ हिंसा की नास्ति है। बराबर है? **ऐसा होने पर भी (अर्थात् अन्तरंग छेद ही विशेष बलवान है बहिरंग का छेद नहीं, ऐसा होने पर भी)....** अब कहते हैं। **बहिरंग छेद अन्तरंग छेद का आयतनमात्र है,....** निमित्त है। आयतन—स्थान है न। समझ में आया? उसके शरीर द्वारा कोई जीव मरे तो निमित्तपना—आयतन है। **इसलिए उसे (बहिरंग छेद को) स्वीकार तो करना ही चाहिए....** आहा...हा...! समझ में आया? ऐसा ख्याल रखना। ख्याल अर्थात् यह हुआ, ऐसा ख्याल। प्रयत्न आचार है, प्रमाद नहीं, शुभ उपयोग बराबर है, शुद्ध परिणति वीतराग दशा है, उसमें भी काया से कोई जीव मर जाये तो बन्ध है नहीं, परन्तु उसको स्वीकार तो करना पड़ेगा। चरणानुयोग है न, तो निमित्त का ज्ञान करना। समझ में आया?

प्रश्न – प्रायश्चित्त.... ?

समाधान : नहीं, प्रायश्चित्त नहीं। ये है, इतना जानना। आलोचना पहले आ गया है। अन्तरंग निश्चय सहित बहिरंग आलोचना। बस, इतना। पहले आ गया है। आलोचना के दो प्रकार में (आ गया है)। यह तो अलौकिक मार्ग है, भाई! उसमें कुछ भी गड़बड़ी न्यून-अधिक, विपरीत हो जाये तो वस्तु का स्वरूप नहीं रहेगा। समझ में आया? हीन, अधिक और विपरीत। यह स्थिति जो कहने में आती है, उसमें कुछ भी फेरफार हो तो उसे तत्त्व

की खबर नहीं, मुनिपना की खबर नहीं – ऐसी बात है, भाई! 'नाग्नेश' में कभी सुना था?

मुमुक्षु – प्रयत्न में है।

पूज्य गुरुदेवश्री – अपने प्रयत्न में है। निश्चय में और व्यवहार में दोनों में अपने प्रयत्न में है (उसमें) काय से ऐसा हो जाये तो जानना। बस, इतना। निमित्त ऐसा है – ऐसा जान लेना। आहा...हा...!

मुमुक्षु – सावधानपना।

पूज्य गुरुदेवश्री – कहा न कि, सावधानपने तो है ही। असावधान है, ऐसा नहीं। सावधानी से च्युत हुआ तो समाप्त हो गया, वह तो अप्रयत्न आचार हुआ। प्रयत्न आचार तो है। निश्चय और व्यवहार दोनों का प्रयत्न यथार्थ है। फिर भी शरीर से ऐसा हो जाये तो बन्ध होता नहीं। आलोचना करनी पड़े। ख्याल करना पड़े, इतना बस। आ...हा...! चलते-चलते छोटा पक्षी आ जाये, टिड्डी... टिड्डी... आदि पैर के नीचे आ गयी। प्रयत्न तो है, ख्याल है। शुद्ध आनन्द का भान है, परिणति है और भूमिका के योग्य यथार्थ शुभराग है तो भी आ गया ऐसा ख्याल करना, बस। उसको बन्ध नहीं। आहा...हा..! कैसा वीतराग का स्वरूप! दूसरी चीज में ऐसा हुआ, ऐसा ख्याल करना, बस। आहा...हा...! यह तो समय-समय का विवेक (है)। समझ में आया? मार्ग थोड़ा सूक्ष्म लगे किन्तु मार्ग तो यह है। समझ में आया? 'एक होय तीनकाल में परमार्थ का पंथ' मार्ग तो मुनिपना की ऐसी दशा है, भाई! इससे आगे-पीछे, कम-अधिक माने (तो) मिथ्यादृष्टि हो जाये, विपरीत श्रद्धा हो जाये। समझ में आया?

मुमुक्षु – वीतराग का मार्ग तो वीतरागता है।

पूज्य गुरुदेवश्री – वही है। भले यहाँ चरणानुयोग है।

भावार्थ – **शुद्धोपयोग का हनन होना वह अन्तरंग हिंसा – अन्तरंग छेद है, और दूसरे के प्राणों का विच्छेद होना बहिरंग हिंसा – बहिरंग छेद है।** अपनी दशा-शुद्ध चारित्र की वीतराग दशा और अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प तो शुद्धोपयोग है। उसका हनन, उसका हनन, हनना, उससे आगे जाकर राग करना, वह अन्तरंग हिंसा—अन्तरंग छेद है। **और दूसरे के प्राणों का विच्छेद होना बहिरंग हिंसा – बहिरंग छेद है।**

जीव मरे या न मरे, जिसके अप्रयत आचरण है, उसके शुद्धोपयोग का हनन होने से अन्तरंग हिंसा होती ही है.... लो। जीव मरे या न मरे, उसके साथ सम्बन्ध नहीं। अपने में अप्रयत्न / असावधानी का भाव है, वही हिंसा है। आहा...हा...! ऐसा मुनिपना तो कभी सुना नहीं होगा। कितने ही लोग नया सुनते होंगे। (आपके) 'सादड़ी' में नहीं (सुना) ? 'सादड़ी' कहते हैं, क्या कहते हैं ? मर जाने के बाद (बैठक) रखे उसे 'मुम्बई' में सादड़ी कहते हैं। लोग उसे सादड़ी कहते हैं न ? ऐ...ई...! मर जाने के बाद लोग इकट्ठे होते हैं (तो कहते हैं कि), आजे अमुक की सादडी हती। आहा...हा...! 'मुम्बई' में होता है। कोई मर जाये तो उसके लिये पीछे से बैठक करते हैं, उसको सादड़ी कहते हैं। (श्रोता: उठमणुं)। उठमणुं तो हमारे काठियावाड़ में कहते हैं। वहाँ सादडी कहते हैं। सादडी न ? हमारी भाषा तो हमें मालूम हो न। यह तो 'मुम्बई' की (भाषा है)। समझ में आया ?

जीव मरे न मरे उसका सम्बन्ध नहीं। **शुद्धोपयोग का हनन होने से अन्तरंग हिंसा होती ही है और इसलिए अन्तरंग छेद होता ही है। जिसके प्रयत आचरण है उसके, परप्राणों के व्यपरोपरूप....** अर्थात् मरण। **बहिरंग हिंसा के – बहिरंग छेद के – सद्भाव में भी, शुद्धोपयोग का हनन नहीं होने से अन्तरंग हिंसा नहीं होती और इसलिए अन्तरंग छेद नहीं होता।** अन्तरंग में उसको दोष लगता नहीं। आ...हा...हा...! देखो तो सही! सम्यग्दर्शन / आत्मा का भान (है), उसके अलावा चारित्र, उपरान्त अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प, बस इतनी मर्यादा है तो उसमें हिंसा है नहीं। उससे आगे जाकर विशेष राग हो जाये (तो हिंसा है)। (अज्ञानी तो कहे) वस्त्र रखना, इतने पात्र रखना, उसके लिये बनाया आहार लेना। अरे... भगवान! क्या करता है तू ? भाई! मार्ग तो जो होगा वही होगा। तेरे से कोई दूसरा नहीं होगा। आ...हा...! ऐसा लगे कि अरे...! यह तो दिगम्बर के पक्ष बात है। पक्ष की बात नहीं, भगवान! यह तो वस्तु का स्वरूप है। समझ में आया ? ऐसे मुनि को मुनिपना हिंसा बिना रहता है। यथार्थ स्वरूप की दृष्टि, चरण और शुभ उपयोग हो तो। उससे आगे बढ़ जाये तो मुनिपना रहता नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - २१८

अथ सर्वथान्तरङ्गच्छेदः प्रतिषेध्य इत्युपदिशति-

अयदाचारो समणो छस्सु वि कायेसु वधकरो त्ति मदो।
चरदि जदं जदि णिच्चं कमलं व जले णिरुवलेवो।।२१८।।

अयताचारः श्रमणः षट्स्वपि कायेषु वधकर इति मतः।
चरति यतं यदि नित्यं कमलमिव जले निरुपलेपः।।२१८।।

यतस्तदविनाभाविना अप्रयताचारत्वेन प्रसिद्ध्यदशुद्धोपयोगसद्भावः षट्कायप्राणव्यपरोप-प्रत्ययबन्धप्रसिद्ध्या हिंसक एव स्यात्। यतश्च तद्विनाभाविना प्रयताचारत्वेन प्रसिद्ध्यदशुद्धोपयोगासद्भावः परप्रत्ययबन्धलेशस्याप्यभावाज्जलदुर्ललितं कमलमिव निरुपलेपत्व-प्रसिद्धेरहिंसक एव स्यात्। ततस्तैस्तैः सर्वैः प्रकारैरशुद्धोपयोगरूपोऽन्तरङ्गच्छेदः प्रतिषेध्यो यैर्यैस्तदायतनमात्रभूतः परप्राणव्यपरोपरूपो बहिरङ्गच्छेदो दूरादेव प्रतिषिद्धः स्यात्।।२१८।

अथ निश्चयहिंसारूपोऽन्तङ्गच्छेदः सर्वथा प्रतिषेध्य इत्युपदिशति-**अयदाचारो** निर्मलात्मानुभूति-भावनालक्षणप्रयत्नरहितत्वेन अयताचारः प्रयत्नरहितः। स कः। **समणो** श्रमणस्तपोधनः। **छस्सु वि कायेसु वधकरो त्ति मदो** षट्स्वपि कायेषु वधकरो हिंसाकर इति मतः सम्मतः कथितः। **चरिद** आचरति वर्तते। कथं। यथा भवति **जदं** यतं यत्नपरं, **जदि** यदि चेत, **णिच्चं** नित्यं सर्वकालं तदा **कमलं व जले णिरुवलेवो** कमलमिव जले निरुपलेप इति। एतावता किमुक्तं भवति-शुद्धात्मसंवित्तिलक्षणशुद्धोपयोग-परिणतपुरुषः षड्जीवकुले लोके विचरन्नपि यद्यपि बहिरङ्गद्रव्य-हिंसामात्रमस्ति, तथापि निश्चयहिंसा नास्ति। ततः कारणाच्छुद्धपरमात्मभावनाबलेन निश्चयहिंसैव सर्वतात्पर्येण परिहर्तव्येति।।२१८।।

अब, सर्वथा अन्तरंग छेद निषेध्य-त्याज्य है — ऐसा उपदेश करते हैं—

मुनि यत्नहीन आचार में, छह काय का हिंसक कह्यो।
जल कमलवत् निर्लेप यदि, तो नित्य यत्नाचारी वो॥२१८॥

अन्वयार्थ - [**अयताचारः श्रमणः**] अप्रयत आचारवाला श्रमण [**षट्सु अपि कायेषु**] छहों काय सम्बन्धी [**वधकरः**] वध का करनेवाला [**इति मतः**] मानने में-कहने में आया है; [**यदि**] यदि [**नित्यं**] सदा [**यतं चरति**] प्रयतरूप से आचरण करे तो [**जले कमलम् इव**] जल में कमल की भाँति [**निरुपलेपः**] निर्लेप कहा गया है।

टीका - जो अशुद्धोपयोग के बिना नहीं होता, ऐसे अप्रयत आचार के द्वारा प्रसिद्ध (ज्ञात) होनेवाला अशुद्धोपयोग का सद्भाव हिंसक ही है, क्योंकि छह काय के प्राणों के व्यपरोप के आश्रय से होनेवाले बन्ध की प्रसिद्धि है; और जो अशुद्धोपयोग के बिना होता है, ऐसे प्रयत आचार से प्रसिद्ध होनेवाला अशुद्धोपयोग का असद्भाव अहिंसक ही है, क्योंकि पर के आश्रय से होनेवाले लेशमात्र भी बन्ध का अभाव होने से जल में झूलते हुए कमल की भाँति निर्लेपता की प्रसिद्धि है। इसलिए उन-उन सर्व प्रकार से अशुद्धोपयोगरूप अन्तरंग छेद निषेध्य - त्यागने योग्य है, जिन-जिन प्रकारों से उसका आयतनमात्रभूत परप्राणव्यपरोपरूप बहिरंग छेद अत्यन्त निषिद्ध हो।

भावार्थ - शास्त्रों में अप्रयत-आचारवान् अशुद्धोपयोगी को छह काय का हिंसक कहा है और प्रयत-आचारवान् शुद्धोपयोगी को अहिंसक कहा है, इसलिए शास्त्रों में जिस-जिस प्रकार से छह काय की हिंसा का निषेध किया गया हो, उस-उस समस्त प्रकार से अशुद्धोपयोग का निषेध समझना चाहिए॥२१८॥

प्रवचन नं. २१५ **आषाढ़ शुक्ल १५, रविवार, २९ जून १९६९**

'प्रवचनसार' चरणानुयोगसूचक चूलिका, २१८ गाथा। सबेरे के अधिकार से (यह अधिकार) सूक्ष्म भी है और स्थूल भी है। दोनों बात है। अलग प्रकार का है, इसलिए थोड़ा सूक्ष्म है। क्या कहते हैं ? देखो ! **अब, सर्वथा अन्तरंग छेद निषेध्य-त्याज्य है....** शीर्षक है, शीर्षक है न ? **अब, सर्वथा अन्तरंग छेद निषेध्य-त्याज्य है — ऐसा उपदेश करते हैं—** उसका स्पष्टीकरण नीचे आयेगा।

अयदाचारो समणो छस्सु वि कायेसु वधकरो त्ति मदो।
चरदि जदं जदि णिच्चं कमलं व जले णिरुवलेवो।।२१८।।

मुनि यत्नहीन आचार में, छह काय का हिंसक कह्यो।
जल कमलवत् निर्लेप यदि, तो नित्य यत्नाचारी वो ॥२१८॥

इसका हरिगीत है। अब, उसकी टीका, टीका है न? **जो अशुद्धोपयोग के बिना नहीं होता ऐसे अप्रयत आचार के द्वारा प्रसिद्ध (ज्ञात) होनेवाला अशुद्धोपयोग का सद्भाव हिंसक ही है,....** अब उसका अर्थ। वह तो शब्द हुए। क्या कहते हैं? देखो! भगवान आत्मा आनन्दस्वरूप आत्मा है। इस आनन्दस्वरूप का शुभ-अशुभ विकल्प अर्थात् राग से भिन्न होकर, अपना आनन्द का अनुभव करना, शक्तिरूप जो आनन्द है, उसको व्यक्त अर्थात् प्रगट कर, आनन्द का अनुभव होना, उसका नाम आत्मज्ञान, आत्मदर्शन, समकित और धर्म की पहली शुरुआत कहा जाता है। कहो, समझ में आया?

चने का दृष्टान्त हमेशा देते हैं न! चना होता है न, चना? चना कहते हैं न? चना। चना जब सेकते हैं तो अन्दर में जो मिठास है, वह बाहर आती है। सेके बिना कच्चा है और स्वाद फीका है और बोने से उगता है परन्तु उसे यदि सेका जाये... सेकना कहते हैं न? भुँजने में आवे तो उस कच्चेपन का नाश होता है, फीकेपन का नाश होता है, बोने में आये उगता नहीं। समझ में आया? और स्वाद जो अन्दर था वह बाहर आया, प्रगट (हुआ)। भूँगड़ा जिसको कहते हैं, भूँगड़ा। फोलवा (भूँगड़ा) कहते हैं क्या कहते हैं? मिठास आती है। वह मिठास आयी कहाँ से? अग्नि से आयी है? अग्नि से आवे तो कोयला, कंकर सेकने से आनी चाहिए। प्राप्ति की प्राप्ति है। है उसमें से प्राप्ति होती है। तो जो मिठास अन्दर पड़ी है, वह बाहर आती है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा अतीन्द्रिय सच्चिदानन्द स्वरूप है। सत् शाश्वत्, देहादि जड़ से भिन्न और पुण्य-पाप के राग के विकल्प से भिन्न (है)। आज भाई ने याद किया था। नारियल का नहीं (याद किया था)? भाई वहाँ दिया था न! अभी बैठे थे, तब नारियल का दृष्टान्त दिया था न? नारियल समझते हैं? श्रीफल होता है, न तो श्रीफल में चार भाग होते हैं। श्रीफल में चार भाग—एक छाला, एक छिलके, एक काचली और एक काचली कोर की सूक्ष्म लाल छिलका और सफेद गोला। चार बात होती है। भाई! आज कहा था न? दोपहर को आये थे, तब याद किया था कि आपने यह दृष्टान्त दिया था।

ऐसे यह शरीर है, वह ऊपर का छिलका है और आत्मा में पुण्य और पाप, शुभ-अशुभ, दया, दान, व्रत, भक्ति का जो विकल्प उठता है और छिलके बिना की अन्दर आत्मा चीज है, वह अतीन्द्रिय आनन्द का शुद्ध गोला है। दृष्टान्त समझते हैं? समझ में आया? भगवान आत्मा! वस्तु की खबर नहीं कि आत्मा क्या चीज है? आत्मा, उसमें अतीन्द्रिय आनन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द, अतीन्द्रिय आनन्द का स्वभावरूप वस्तु; उसके अलावा जितना पुण्य-पाप का शुभ-अशुभ राग उत्पन्न होता है, वह तो सूक्ष्म लाल छिलका (है)। खोपरापाक करते हैं तो उसको घिसकर निकाल देते हैं। समझ में आया? भाई! आपकी वकालत में ऐसा नहीं आता होगा, क्यों?

इसी प्रकार यहाँ ऐसा कहने में आता है, भगवान आत्मा अन्दर में आनन्द स्वभाव है परन्तु अज्ञान के कारण पुण्य और पाप के राग के वेदन के कारण, उसको आत्मा का आनन्द नहीं आता है परन्तु दुःखरूप वेदन, जैसे कच्चे चने में फीका वेदन आता है, वैसे राग-द्वेष का वेदन, कलुषित वेदन (आता है)। वह अपने सबेरे आ गया है। समझ में आया? परन्तु उसको ख्याल नहीं। जितना हिंसा, झूठ, चोरी, विषयभोग वासना, काम, क्रोध, मान, माया, लोभ (का) विकल्प-राग उठते हैं और दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा का विकल्प उठते हैं, वह पुण्य (है)। ये पुण्य और पाप दोनों भाव, आत्मा के आनन्दस्वरूप से उल्टे भाव हैं। यह कचाश है। जैसे छिलके में अन्दर सूक्ष्म लाल छिलका है, वैसे भगवान आत्मा आनन्दकन्द पर पुण्य-पाप के राग की जो वृत्तियाँ हैं, वे सूक्ष्म लाल छिलके जैसा दुःखरूप भाव है। समझ में आया? उससे दुःखरूप-छिलके से हटकर, काचली — कर्म से हटकर, पुण्य-पाप के राग से हटकर, अन्दर आनन्दगोला सच्चिदानन्द स्वरूप, सत् अर्थात् शाश्वत्, चिद् अर्थात् ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द, उस ओर की अन्तर दृष्टि करके, अनुभव अर्थात् स्वभाव है ऐसा अनुसरण करके होना, उसका नाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान और धर्म कहने में आता है। यह समझ में आता है या नहीं? यह दृष्टान्त तो समझ में आये ऐसा है। दृष्टान्त पर से सीधा (समझ में आये)। समझ में आया?

ऐसा प्रथम भान होता है। धर्म करनेवाले को, धर्मी को ज्ञानज्योति (प्रगट होती है)। इसमें पहले आ गया है। ज्ञानज्योति—मैं तो चिदानन्दस्वरूप, चिदानन्द, चिदानन्द, ज्ञानानन्द

(स्वरूप हूँ)। चिदानन्द (अर्थात्) चिद् ज्ञान और आनन्द—ऐसी वस्तु हूँ। विकार, पुण्य-पाप, शरीर, वाणी का लक्ष्य / आश्रय, उसका आश्रय छोड़कर, उसकी उपेक्षा कर, वस्तु का स्वरूप अतीन्द्रिय ध्रुव चैतन्य आनन्द है, उसकी अपेक्षा कर, जो अन्तर में से आनन्द का वेदन हो, उसका नाम धर्म की पहली सीढ़ी और शुरुआत कहने में आता है। इस धर्म से जन्म-मरण मिटते हैं। समझ में आया? और जब राग-द्वेष का, अज्ञान का नाश हुआ, ज्ञान में पूर्ण वीतरागभाव प्रगट हुआ तो उसको फिर जन्म-मरण रहते नहीं। जैसे पक्का चना ऊगता नहीं, बोने से ऊगता नहीं, मिठास देता है। वैसे भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द का स्वाद-अनुभव देता है। राग-द्वेष का, अज्ञान का नाश किया तो कच्चापन था और फीकापन था, वह चला गया। समझ में आया? धर्म करनेवाले को पहले ऐसी चीज दृष्टि में आनी चाहिए। आहा...हा...!

यहाँ तो बाद की बात चलती है। बाद में जब वह साधु होता है, ऐसे आत्मभान सहित। राग-द्वेष मेरा नहीं, अज्ञान का नाश किया। राग-द्वेष, विकल्प उठते हैं वे मेरे नहीं, उससे पृथक् अपना भान है परन्तु अभी राग-द्वेष का अभाव नहीं हो गया। राग-द्वेष का बिल्कुल अभाव हो जाये तो सर्वज्ञ वीतराग आत्मा की दशा पूर्ण हो जाये। ऐसी पूर्ण दशा जब तक नहीं होती, तब तक ज्ञानी को भी राग से भिन्न अपने आत्मा का अनुभव होने पर भी राग, दया, दान, व्रतादि का भाव उनको आता है। हिंसा, झूठ, भोग की वासना आदि का भाव भी ज्ञानी को भी आता है। समझ में आया? उसको नाश करने में जब साधुपद आता है, (उसकी बात चलती है)।

मैं तो शुद्ध आनन्द में लीन होता हूँ, पहले भान तो हुआ, तत्पश्चात् अतीन्द्रिय आनन्द में बहुत जम जाना, अन्दर में जम जाना, गुम हो जाना, इतना वीतराग—रागरहित भाव में (लीन होना) कि जिसको चारित्र—स्वरूप में चरना, रमना, जमना उसका नाम चारित्र कहने में आता है। भाई! कहो, समझ में आता है? ऐसी चारित्रदशा जब होती है तो उसकी भूमिका में परजीव को नहीं मारना—ऐसा एक विकल्प अट्ठाईस प्रकार के हैं, ऐसा शुभराग का भाव आता है, होता है। इतनी साधुपद की भूमिका की समाप्ति, सामग्री की पूर्णता कहने में आता है। क्या कहा?

एक तो सम्यग्दर्शन का भान (है), उसके उपरान्त सम्यक् वेदन, इसके उपरान्त स्वरूप में लीनता, वीतरागता / चारित्र आनन्द की उग्रता (है), उसे साधुपद की स्वभाव की सामग्री कहने में आता है। ऐसी सामग्री में जब तक वे पूर्ण वीतराग और सर्वज्ञ परमेश्वर न हो, तब उन्हें अट्ठाईस मूलगुण अथवा रागादि भाव अहिंसा, सत्य, दत्त, ब्रह्मचर्य (का भाव आता है)। ऐसी दशा में पुरुषार्थ की कमजोरी से ऐसा राग आता है। इस प्रकार का राग हो और आत्मा के दर्शनपूर्वक स्वरूप की रमणता हो तो उसकी दशा को अहिंसक दशा कहने में आती है।

मुमुक्षु – अपने स्वरूप से च्युत हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री – अभी वह बात नहीं की। अभी इतनी दशा हो तो उसको अहिंसक कहने में आता है। हिंसक (बात) अभी आती है। यह हिंसक की बात है। समझ में आया? देखो!

अशुद्धोपयोग के बिना नहीं होता ऐसे अप्रयत आचार.... क्या कहते हैं? यहाँ से स्पष्टीकरण है। देखो! कहते हैं कि खाने-पीने, चलने में जो प्रमाद भाव आ जाये... समझ में आया? अपना स्वरूप का अनुभवपूर्वक चारित्रदशा है, उसमें अट्ठाईस मूलगुण पंच महाव्रत का राग भी है, उससे आगे बढ़कर अप्रयत आचार हो जाये, प्रमाद और राग की तीव्रता आ जाये तो उसको अशुद्धोपयोग कहते हैं। अशुद्ध उपयोग अर्थात् उसकी शुद्ध भूमिका की जो परिणति है, उससे आगे बढ़ा तो अशुद्ध व्यापार कहने में आता है। समझ में आया?

अशुद्धोपयोग के बिना नहीं होता ऐसे अप्रयत आचार.... सोने में, खाने में, पीने में प्रमाद तीव्र हो जाये, तीव्र राग आ जाये, पर में और स्व में यथार्थ जैसी सावधानी हो, ऐसी न रहे तो इस **अप्रयत आचार के द्वारा प्रसिद्ध (ज्ञात) होनेवाला अशुद्धोपयोग का सद्भाव....** वहाँ अशुद्ध व्यापार है। शुद्ध भूमिका की योग्यता का जो व्यापार है, उससे हटकर अशुद्ध व्यापार हो गया तो वह **हिंसक ही है,....** यह अशुद्ध व्यापार हिंसा है। कठिन बात, भाई!

प्रश्न – कौन-सा जीव मरा?

समाधान – अपने आत्मा की शान्ति का खून हुआ, वह हिंसक (है)। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है, भाई!

यहाँ तो कहते हैं कि, यहाँ अशुद्ध उपयोग किसको कहते हैं ? कि अपने आत्मा का सम्यक् भान है, सम्यग्दर्शनपूर्वक सम्यक् स्वरूप में रमणता की चारित्र की दशापूर्वक, वीतरागभावपूर्वक पंच महाव्रत का अहिंसा, सत्य, दत्त का विकल्प है, इतनी भूमिका तो शुद्धपरिणतिरूप अथवा शुद्धभावरूप (कहने में आता है)। है तो शुभराग, शुद्धचारित्र सहित का शुभराग (है) किन्तु उस भूमिका के योग्य है, उसे शुद्ध व्यापार कहने में आया है। अरे... अरे...! उस दशा को तो अहिंसक कहने में आता है। इससे आगे बढ़कर राग आ गया, आसक्ति (हो गई), ऐसा करूँ, यह लूँ। भूमिका की योग्यता से आगे बढ़कर विकल्प राग की तीव्रता आ गई तो कहते हैं कि हिंसक है। अपना चैतन्य आनन्द भावप्राण की हिंसा होती है। अपना चैतन्य आनन्दप्राण शुद्ध ज्ञायकमूर्ति का भावप्राण अन्दर शुद्ध जीवन है, उसमें राग की तीव्रता आने से, यह चैतन्य भावप्राण का हनन होता है।

(संवत) १९८६ (की बात है)। ३९ वर्ष हुए। 'भावनगर' में स्थानकवासी का मूल उपाश्रय है न। गाँव में है। स्थानकवासी का उपाश्रय (है)। उपवास तो हमेशा करते थे, एक महीने के चार उपवास तो हमेशा करते थे, उस समय तो हमेशा करते थे। हमको तो (कुछ नहीं होता)। किन्तु दूसरे एक भाई थे। नवदीक्षित थे। पोस्टमास्टर थे बाद में दीक्षित हुए थे। उनको ऐसी गर्मी लग गयी, ऐसी गर्मी लग गयी तो (वे ऐसा बोले) 'अरे...! निगोद के जीव का क्या होगा ?' ऐसा हो गया। एक निगोद का जीव है। आलू, है, उसमें एक शरीर में अनन्त जीव हैं। ऐसा एक शब्द बोल गये। १९८६ की साल (की बात) है। अरे...! निगोद के जीव का संसार में क्या होगा ? मैंने पूछा, 'क्या हुआ ?' अन्दर से सहन नहीं हुआ, सहन नहीं हुआ। ११८ डिग्री धूप थी। चैतन महीना (था) और १९८६ की साल। संवत् १९८६। ऐसी गर्मी लगी। वैसे तो पोस्टमास्टर थे, एक ही पुत्र था, वह गुजर गया, एकदम मोतीझरा (बुखार आया)। मोतीझरा बुखार कहते हैं। उस समय १९८५ की साल में १२५ रुपये का वेतन था। अभी तो १२५ की कोई गिनती नहीं है। अभी १००० का वेतन हो तो १२५ का वेतन गिना जाये। भाई! वास्तव में तो सोलह

गुना हुआ, सोलह गुना बढ़ गया। उस समय के १०० (रुपये) और अभी के १६०० (रुपये)। उस समय वैराग्य हो गया तो (नौकरी) छोड़ दी। दीक्षित हो गये। उसमें गर्मी लग गयी (और बोले) 'अरे... ! एकेन्द्रिय जीव का यह संसार कब छूटे ?' आ...हा... ! मैंने पूछा 'क्या हुआ ?' दुःख का ख्याल आ गया, बहुत दुःख हो गया। सहन नहीं हुआ। यह तो साधारण गृहीतमिथ्यादृष्टि की दशा थी।

यह तो मुनि की दशा, सम्यग्दर्शनपूर्वक अन्तर में चारित्र की रमणता हो, बाह्य में नग्नदशा होती है। उनको ऐसा प्रसंग बन जाये और पानी लेने का भाव आ जाये, इसके लिये बनाया (आहार ले) अथवा ऐसी कल्पना आ जाये कि अरे... ! ऐसा हो तो ठीक, ऐसा हो तो ठीक, (ऐसा भाव होने से) छेद होता है। राग आया तो उसकी हिंसा होती है। आत्मा के चैतन्यप्राण की हिंसा होती है।

प्रश्न – गुणस्थान पतित हो जाये न ?

समाधान – गुणस्थान बदल जाये। समझ में आया ?

यहाँ तो भगवान समय-समय का विवेक बताते हैं। परमेश्वर के ज्ञान में, सर्वज्ञ परमेश्वर, जिन्हें एक समय में तीन काल-तीन लोक जानने में आया। कैसे ? क्योंकि आत्मा में ज्ञान कहा न ? आनन्द कहा न ? चने में मिठास कही, वैसे आत्मा में आनन्द और ज्ञान परिपूर्ण भरा है। वस्तु शक्तिरूप, सत्त्वरूप, स्वभावरूप, भावरूप (है), ऐसा सर्वज्ञस्वभाव आत्मा का मूल है। यह सर्वज्ञस्वभाव में एकाग्र होकर, अनुभव होकर लीन होकर, जब सर्वज्ञ शक्ति है, वह व्यक्त प्रगट होती है, तब उसे तीन काल-तीन लोक जानने में आता है। ऐसी पूर्ण दशा को परमात्मा कहते हैं। ऐसे परमात्मा को तीन काल-तीन लोक जानने में आया, उसकी साधुपद की मर्यादा क्या है—वह बात करते हैं। ऐसे लोग साधारणरूप से साधुपना मान ले, बाह्य से त्याग है, साधु हो, जोगी हो और जंगल में रहे, नग्न हो, ये साधु है। यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि वह साधु है ही नहीं। समझ में आया ? कितने जो जैन के साधु 'सन्त' ऐसा (शब्द) लगाते हैं न ? अध्यात्मिक सन्त ! सन्त कोई है ही नहीं।

सर्वज्ञ वीतरागदेव के अतिरिक्त, उसकी दृष्टि, उसके अनुभव अतिरिक्त कोई सन्त

तीन काल में दूसरे स्थान में होता नहीं। समझ में आया ? जिसकी दृष्टि में विपरीतता है, वह पर को सन्त मानते हैं। 'भोपाल' में बड़े अधिकारी-मिनिस्टर हैं। उनके बंगले में ही ठहरते थे। गाना गाने का बहुत शौक था। पाँच-पाँच हजार, दस-दस हजार आदमी (इकट्ठे हो)। वह करते-करते अन्दर में 'सन्त' (शब्द) डाले। उसे क्या कहा था। 'उज्जैन' में एक सेठ था। (उसने कहा था)। 'आप कहते हो ऐसा नहीं है। आप वीतरागमार्ग की बात करते-करते यहाँ के सन्त बतलाते हो, वह वस्तु का स्वरूप नहीं है।' समझ में आया ? बाहर में ऐसा भजन गाये कि, लोगों को समन्वय लगे। समन्वय, समझ में आया ? अपने में है, (वैसा) पर में है... परन्तु ऐसा समन्वय होता नहीं।

यहाँ यह कहते हैं कि मुनिपना की दशा ऐसी होती है। इसके अलावा वस्त्र का धागा हो और मुनिपना माने तो मुनिपना की दृष्टि की खबर नहीं। सन्त कहाँ से आया ? यहाँ तो कहते हैं कि अपने स्वरूप की दृष्टि हुई, चारित्र / रमणता हुई और अट्ठाईस मूलगुण का, पंच महाव्रत का विकल्प बराबर है। उससे आगे बढ़कर यदि थोड़ा भी अशुद्ध उपयोग हो जाये, उसके प्रयत्न आचार की विधि से थोड़ा राग में आगे बढ़ जाये तो (वह) हिंसक है। अपना चैतन्यप्राण भाव की हिंसा करता है। पर जीव मरो, न मरो, उसके सम्बन्ध है नहीं। आहा...हा...! समझ में आया ? ऐसा चारित्र लिये बिना कभी मुक्ति (होती) नहीं, हाँ! बाहर में बात करने (से कुछ होता नहीं)। लड्डू खाना और मोक्ष जाना, ऐसी दोनों (बात) नहीं बनेगी। भाई! जिसे दर्शन की खबर नहीं है, सम्यग्दर्शन क्या चीज है, उसकी खबर नहीं। समझ में आया ? उसे तो (ऐसा लगता है कि) बाहर के व्रत लो, हम लेते हैं ऐसे लो तो उसका नाम तप, उसका नाम चारित्र; इसलिए वह बोलता है। उसकी मान्यता बुलाती है। उससे विरुद्ध नहीं बोलते—उसकी मान्यता से विरुद्ध नहीं बोलता। वस्तु (स्वरूप) से विरुद्ध है। गलत भाव है, किन्तु गलत की अपेक्षा से तो गलत (भाव) सच्चा है न ? है या नहीं ? या नहीं है ? गलतरूप से प्रसिद्धि करता है कि इस प्रकार से गलत है, वह हमारा सच है। भाई! मार्ग तो ऐसा है, भाई! क्या करे ? ऐसा सूक्ष्म मार्ग है।

कहते हैं कि बापू! तुझे यदि मुक्ति चाहिए, आनन्द चाहिए, जन्म-मरण का नाश होना चाहिए तो तुझे आत्मा का पहले सम्यग्दर्शन-अनुभव करना पड़ेगा, ज्ञान-ज्योति

प्रगट करनी होगी। तत्पश्चात् स्वरूप में रमणता प्रगट करनी चाहिए। स्वरूप में जब तक पूर्ण रमणता न हो, तब तक उसे अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रतादि का शुभराग होता है तो उस भूमिका के योग्य गिनकर उसे शुद्ध व्यापार में गिनने में आया है। शुद्ध अर्थात् उस भूमिका के योग्य। परन्तु उससे आगे बढ़कर उसके लिये बनाया हुआ आहार, कोई पाट, कोई मकान, कोई कमरा... समझ में आया? चाहे बहुत ठण्ड हो, उसका सहारा ले तो कहते हैं कि वह अप्रयत्न आचार हुआ। आहा...हा...! समझ में आया? हिंसक हो गया। अन्तर छेद हुआ। आत्मा का आनन्द का भंग हो गया, ऐसा कहते हैं, भाई! रुपये में कितना सुख होगा?

'पूज्यपादस्वामी' ने इसमें कहा है, क्या कहते हैं? 'इष्टोपदेश' में कहा है कि धन में भी कुछ सुख दिखता है। लक्ष्मी हो तो निरोगता (के लिये) डॉक्टर को बुला सकते हैं, पैसा आये। भाई! 'इष्टोपदेश' है न, उसमें ऐसा है। यदि पैसा हो तो अनाज अच्छा मिले, मकान अच्छा मिले, रहने का अच्छा मिले इतनी तो साता मिले न? इतना सुख मिले या नहीं? धूल भी नहीं है, सुन न! तेरी धूल में (सुख) कहाँ था? उसमें सुख था कब? मूढ़! सुख तो भगवान आत्मा में है और पर में सुख मानना, वह तो महा भ्रमणा पापी अज्ञान है। अपना स्वरूप में आनन्द है—ऐसा न मानकर पर से मुझे आनन्द है (–ऐसा माननेवाला) महा झूठा, असत्य सेवन करनेवाला है। आहा...हा...! असत्य सेवन करनेवाले की श्रद्धा कैसी होती है? भाई!

एक विचार आया था। इस भाई के घर का (गृह प्रवेश) है न? मागशीर्ष दौज। उसके पिता माने नहीं तो पुत्र तो कहाँ से माने?

श्रोता – पुत्र भी स्वतन्त्र है न!

पूज्य गुरुदेवश्री – पुत्र भी स्वतन्त्र ही होते हैं न! लो, आप का भी स्वतन्त्र होगा?

श्रोता – पूरी दुनिया स्वतन्त्र है।

पूज्य गुरुदेवश्री – उनके पुत्र को एक महीने का आठ हजार का पगार है। साथ में हो तो पैर दबाये, हाँ! आहा...हा...! पैर तो जड़ है। उसका बाप है? और आत्मा उसका बाप है? बाप कहाँ और पुत्र किसका? आहा...हा...! भगवान आत्मा आनन्दकन्द स्वरूपी,

राग का नहीं तो पुत्र और बाप का कहाँ से आया ? समझ में आया ? आ...हा... ! वह तो शाश्वत् वस्तु है। परिणाम बदलते-बदलते, मिथ्या भ्रान्ति करते-करते चार गति में भटकता है। समझ में आया ?

भगवान शाश्वत् वस्तु है। सच्चिदानन्द प्रभु नित्यानन्द है। अक्रत (किसी ने नहीं बनाया ऐसा), अविनाशी स्वभाव से सम्पूर्ण भरा हुआ। अक्रत अर्थात् गतकाल में नहीं किया हुआ, भविष्य में नाश न हो, वर्तमान में परिपूर्ण आनन्द स्वभाव से भरपूर भरा है। ऐसे आत्मा का अन्तर में अनुभवदृष्टि करना और वेदन करना, उसका नाम प्रथम सम्यग्दर्शन का धर्म कहने में आता है। आहा...हा... !

पैसे में, धूल में यह शरीर मिट्टी धूल है, लो ! उसमें सुख है ? 'पहेलं सुख ते जाते नर्यां' लो, ये मूढ़ लोग कहते हैं न ! 'पहेलूं सुख ते जाते नर्यां' (अर्थात्) शरीर निरोगी हो वह सुख। 'दूसरा सुख घर में चार पुत्र हो'। आप को चार (पुत्र) हैं ? 'तीसरा सुख अच्छे कुल की नारी' और 'चौथा सुख कोठी में ज्वार।' धूल भी नहीं है। आहा...हा... ! यह अज्ञानी के सुख !

भगवान आत्मा में सुख (है)। ज्ञान का सुख, आनन्द का सुख। आनन्द का आनन्द ! श्रद्धा का आनन्द, ज्ञान का आनन्द, शान्ति का आनन्द, चारित्र का आनन्द, अस्तित्व का आनन्द, अनन्त गुण का आनन्द—ऐसा भगवान आत्मा अन्दर विराजमान है। ऐसी अन्तर में दृष्टि, अनुभव करके, तत्पश्चात् स्वरूप की रमणता करने को जब चारित्र अंगीकार करते हैं (तो) बाहर में नग्नदशा हो जाती है, वन में चले जाते हैं और उनके पंच महाव्रत का शुभराग भूमिका के योग्य आता है। तो कहते हैं कि इतनी मर्यादा में रहे तब तक तो पूर्ण मुक्ति के साधक में बाधक है नहीं। समझ में आया ? परन्तु इतनी मर्यादा को छोड़कर उस भूमिका के योग्य नहीं ऐसा आहार, पानी (ले), कोई सोने का पाट, पाटला, मकान कोई चीज उसके लिये बनायी हो, उसे प्रयोग करने का भाव आया... समझ में आया ? (तो वह) अप्रयत्न आचार है। वह हिंसा का आचार है। आहा...हा... ! देखो !

क्योंकि छह काय के प्राणों के व्यपरोप के आश्रय से होनेवाले बन्ध की प्रसिद्धि है;.... आहा...हा... ! जहाँ उस भूमिका के योग्य न हो, ऐसा अनुचित राग आया

तो कहते हैं कि छह काय की हिंसा करनेवाला है - ऐसा कहते हैं, भाई! आहा...हा...! **छह काय के प्राणों के व्यपरोप के आश्रय से होनेवाले बन्ध की प्रसिद्धि है;....** उसको तो बन्ध ही होगा, आवरण होगा, बन्धन होगा। उस भूमिका की योग्यता से च्युत हो गये तो छह काय की हिंसा (है)।

छह काय अर्थात्? छह प्रकार के जीव हैं। एक पृथ्वी है। यह मिट्टी है न, मिट्टी, उसका एक कण हो तो (बाहर में) दिखता है शरीर। जैसे यह शरीर दिखता है परन्तु अन्दर आत्मा भिन्न है। वैसे मिट्टी का कण लो तो उसमें दिखता है शरीर, असंख्य औदारिक (शरीर है)। एक-एक औदारिक शरीर में एक-एक जीव है। समझ में आया? अपना स्वरूप हारकर पृथ्वी में चले गये हैं। आ...हा...! लोगों को कहाँ खबर है। आ...हा...! पत्थर खोदते हैं न? अन्दर से निकालते हैं न? उसका एक कण इतना राई जितना हो; अन्दर से निकली हो (उस पर) पैर आ जाये, ध्यान न रहे और प्रमाद आ जाये तो उसका हिंसक होता है। उसकी हिंसा होती है तो छहकाय की हिंसा करनेवाला है, ऐसा यहाँ कहते हैं। आहा...हा...!

पृथ्वी जीव है और जल जीव है। समुद्र का, कुएँ का पानी है न, ऊपर से बरसता है (उसके) एक कण में असंख्य जीव है। असंख्य शरीर है और एक-एक शरीर में एक-एक जीव है। उसकी प्रसिद्धि अभी लोजिक से-युक्ति से नहीं कह सकते। यहाँ तो है इतनी बात करते हैं। युक्ति से सब बातें सिद्ध होती हैं। समझ में आया? और अग्नि। दियासलाई है न? इतनी अग्नि होती है, उसमें असंख्य जीव हैं। एक शरीर में एक जीव ऐसे असंख्य शरीर हैं। एक इतना कण। बीड़ी पीते हैं न, फिर फेंक देते हैं। उसकी सूक्ष्म चिनगारी गिरती है, उसमें असंख्य तो औदारिक शरीर हैं। एक-एक शरीर में एक-एक जीव है।

वायु—ये वायु—पवन है न, उसमें भी अन्दर जीव है। ठण्डा-गरम लगता है, वह उसका शरीर है, अन्दर असंख्य जीव हैं। वनस्पति—ये नीम, पीपल का पेड़, करेला, घिसोडा, हरी घास, उसके एक कण में असंख्य जीव हैं। कौन माने? 'छहढाला' में आता है। समझ में आया? और उसको जो फूल है, हरी काई है, लील-काई है। पानी के ऊपर

होती है। काई... काई! उसका एक इतना कण लो तो उसमें असंख्य औदारिक शरीर हैं और एक शरीर में अभी तक सिद्ध हुए उससे अनन्तगुने जीव हैं। आहा...हा...! पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस।

त्रस अर्थात् दो इन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। उसको (स्थावर को) एक ही इन्द्रिय होती है। उससे आगे बढ़कर एक जीह्वा होती है। लट इत्यादि। लट होती है न? दो (इन्द्रियाँ) होती हैं। एक शरीर और मुँह होते हैं। उसको नाक, आँख, कान तीन नहीं होते। उससे आगे बढ़कर तीन इन्द्रियाँ होती हैं। ये चींटी, मकड़ी। उसको शरीर, मुँह, नाक (तीन होते हैं) आँख, कान नहीं (होते)। उससे आगे बढ़कर चार इन्द्रिय होती है। ये मक्खी, पतंगा। उसको चार (इन्द्रियाँ) हैं, कान नहीं (है)। (उससे) आगे बढ़कर ये मनुष्य, पशु, नेवला, नारकी, देव उनको पाँच इन्द्रियाँ होती हैं। ऐसी जीव की जाति है। उसमें से एक भी कहते हैं कि अपनी योग्यता से आगे बढ़कर, एक जीव का भी मरण हुआ... समझ में आया? तो उसको छह काय की हिंसा करनेवाला कहने में आता है। आहा...हा...! बात ऐसी है, भाई! सूक्ष्म बात है। समझ में आया? अभी का अधिकार थोड़ा सूक्ष्म है, थोड़ा अभ्यास हो (तो समझ में आये ऐसा है)। समझ में आया?

छह काय है, उसमें अपना आत्मा आया या नहीं? त्रस। वह भी अपने आत्मा की भूमिका के योग्य नहीं रहा तो अपने आत्मा की हिंसा हुई। अपनी हुई तो छह काय की हिंसा करनेवाला हुआ—ऐसा भगवान फरमाते हैं। आहा...हा...! कठिन बात, भाई! समझ में आया? थोड़ी सी अनुकूलता में सुखबुद्धि की झलक आ जाये, ऐसा कहते हैं। आ...हा...! तृषा (लगी और) पानी आया, क्षुधा में अन्न आया, समझ में आया? बहुत ठण्ड (हो उसमें) धूप आयी, बहुत गर्मी हो (उसमें) ठण्डी हवा आयी (तो) अन्दर में उस ओर का आसक्ति का तीव्र राग आया तो कहते हैं कि हिंसा हुई, आत्मा की हिंसा हुई—ऐसा कहते हैं। कठिन बात, भाई! आत्मा की हिंसा का अर्थ?—उसके द्रव्य, गुण की हिंसा नहीं होती (परन्तु) उसकी अवस्था में हीन दशा हो, उसका नाम हिंसा कहने में आता है। आहा...हा...! समझ में आया? ऐसा अलौकिक वर्णन सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त कहीं होता है? कहीं होता नहीं। किसी के साथ मिलान करे (तो मालूम पड़े)।

अरे... ! किसको छह काय जीव कहे, यह जीव है। एक आत्मा की एक समय की पर्याय में छह काय जानने की ताकत है, छह द्रव्य अनन्त हैं, तीन काल-तीन लोक में पर्याय सहित द्रव्य-वस्तु है, उसे जानने की शक्ति है, तो एक पर्याय में इतना भी माने नहीं, उसको सम्यग्दर्शन होता नहीं और सम्यग्दर्शन बिना साधुपना होता नहीं और साधुपना बिना उसकी अट्ठाईस मूलगुण की दशा भी होती नहीं और अट्ठाईस मूलगुण की दशा बिना आगे बढ़कर दूसरी दशा मानते हैं (तो) मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा... ! कठिन काम, भाई ! जंगल के साधु, जोगी हो, वह ऐसे लगे, नग्न हो। हमने तो बहुत देखा है न !

मुमुक्षु - साधु नहीं हो परन्तु प्रतिमाधारी तो होता होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री - प्रतिमा-व्रतिमाधारी कैसा हो ? धूलधारी मिथ्यादृष्टि होता है, हमारे 'बोटाद' में आया था। बहुत साल पहले की बात है। नग्न साधु की टोली (आयी थी)। साधु आते हैं न, साधु। नग्न साधु। हम जंगल जाते थे तो लगा कि, देखते हैं क्या है ? तो वे बेचारे बोले, पधारो... पधारो... पधारो। नग्न कुछ भान नहीं। राख लगाई थी, नग्न साधु, अक्ल कुछ नहीं। राग क्या, शरीर क्या, आत्मा क्या ? कुछ नहीं। लोगों को ओ...हो...हो... ! करते थे। दूसरे साधु हमारे साथ थे। हमने कहा, चलो, देखते हैं। बेचारे आदर करते थे। ये जैन के साधु हैं। पधारो... पधारो (कहने लगे)। गये थे, कुछ खबर नहीं। अरे.. ! वैराग्य की बातें ऐसी करे कि, ... शरीर का हो तो क्या है ? टुकड़ा हो जाये तो क्या है ? अरे... ! लेकिन शरीर के टुकड़े (की बात करता है) परन्तु तू कौन है ? कितनी शक्तिवाला, कितनी अवस्था तेरे में है, कितनी शुद्धता है, अशुद्धता कितनी बाकी है, उसकी तो कुछ खबर नहीं। समझ में आया ?

यहाँ तो परमेश्वर वीतराग सर्वज्ञदेव के पंथ में... उनका पंथ कोई नया नहीं है, यह तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आहा...हा... ! भगवान आत्मा ! कहते हैं कि जो मुक्ति का साधन करने को चले... मुक्ति का अर्थ, अपनी दशा में विकार का सर्वथा नाश होना और अपनी शक्ति में से पूर्ण आनन्द की, पूर्ण ज्ञान की व्यक्तता प्रगट होना, उसका नाम मुक्ति। समझ में आया ? ऐसी मुक्ति के साधन में साधुपद साधन होता है। इस साधु की दशा सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रपूर्वक अट्ठाईस मूलगुण होती है। इससे आगे बढ़कर

कुछ भी अयत्नाचार हो गया, अशुद्ध उपयोग हुआ (तो वह हिंसक है)। आहा...हा...! समझ में आया? कोई ठण्डा जल-पानी लिया। गर्मी बहुत हो, उसमें राग तीव्र आ गया तो अपने स्वरूप की हिंसा हुई—ऐसा कहते हैं। समझ में आया? और ऐसी हिंसा करनेवाला छह काय की हिंसा करनेवाला है—ऐसा कहते हैं। भाई! इन्होंने तो बहुत पढ़ा है। राम किसे कहना और आत्मा किसे कहना, उसकी खबर (नहीं)।

यहाँ तो कहते हैं कि **छहकाय के प्राणों के व्यपरोप...** व्यवरोप अर्थात् हिंसा, नाश। उसके **आश्रय से होनेवाले बन्ध की प्रसिद्ध है;....** वहाँ तो बन्धन होता है। मुनि की दशा के योग्य न रहकर, कुछ भी साताशिलीया... साताशिलीया समझते हैं? हमारी काठियावाड़ी भाषा है। साता अर्थात् अनुकूलता में थोड़ा भी अन्दर ठीक (है), ऐसा आ गया, हमारी काठियावाड़ी भाषा है—साताशिलीया। साता में ठीक है, ऐसा स्वभाव। आहा...हा...! ऐ...ई...! देखो मुनिपना!

मुमुक्षु - .....

पूज्य गुरुदेवश्री - धूल में भी भान नहीं था। क्या भाव होगा? भान कब था? (इनको) साधुपना होना था। नग्न होकर साधु होना था। भान कहाँ है? नग्नदशा किसे कहनी? आत्मदशा किसे कहनी?

सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा ने कहा हुआ आत्मा और कहे हुए अनन्त गुण और उन्होंने कहे हुए एक-एक गुण की एक समय में अनन्त पर्याय। आहा...हा...! समझ में आया? ये सब अन्य किसी स्थान में हो सकता ही नहीं। समन्वय किसके साथ करना? ऐ...ई...! दुनिया को अच्छा बहुत लगे, हाँ! लोग इकट्ठे बहुत हो। आ...हा...हा...! महाराज तो सभी का समन्वय करते हैं। हमारे में भी है, आप में भी है। ऐ...ई...! सबेरे तुम कहते थे न? किसी ने पूछा, मोक्ष में तो अन्य में भी होता है न? हाँ, अन्य में भी मोक्ष तो होता है। कोई श्वेताम्बर कहता था। ऐसे जैन में रहे हुए को भान नहीं। (उसे ऐसा लगे कि) अपने ये करते हैं, तपस्या, ज्ञान (करते हैं)। वे लोग भले (नहीं करते), मोक्ष तो (होता है)। धूल में भी नहीं होगा, सुन न! शरीर छूट जायेगा, उसका नाम मोक्ष (कहते हैं)। भटकेगा। आहा...हा...!

भाई ! चीज की स्थिति क्या है, वस्तु की मर्यादा (क्या है) ? द्रव्य-वस्तु द्रव्य। द्रव्य अर्थात् वस्तु। उसकी शक्ति अर्थात् गुण की संख्या अनन्त और उसकी वर्तमान दशा का पर्यायरूपी कार्य और वह भूमिका—मुनि के योग्य भूमिका कैसी है, धर्म की पर्याय (कैसी है) और उसमें विकल्प की मर्यादा कितनी है, कुछ खबर नहीं और साधुपना आ जाये (—ऐसा नहीं बन सकता)। समझ में आया ? यहाँ तो आचार्य महाराज बहुत स्पष्ट करते हैं, दुनिया को प्रसिद्धि करते हैं। आहा...हा... ! कहते हैं, हमारा मार्ग, यथानुभूत हम साधुपद की व्याख्या करते हैं। हमारे अनुभव में ऐसा ही है—ऐसा कहते हैं। देखो ! चारित्रवन्त सन्त हैं। 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव', 'अमृतचन्द्राचार्यदेव' (कहते हैं), हमारी रमणतासहित जितना विकल्प उठता है, उसकी दशा में हम हैं तो यह हमारा यथानुभूत मुनिपना है। भगवान कहते हैं तो है, ऐसा नहीं। हमारी अनुभूति में है। उससे आगे बढ़कर थोड़ा भी (राग हो जाये तो हिंसक है)। समझ में आया ? सब्जी में थोड़ा नमक हो, लवण... लवण, सब्जी में आ जाये (और) ऐसा विकल्प आ जाये। इसमें क्या है ? ... सब्जी, सब्जी आयी न ? उसमें थोड़ा नमक हो। लवण... लवण... थोड़ा ऐसा आ गया (और लगे कि) खारापन नहीं है, थोड़ा लवण विशेष डाले तो (अच्छा है)। वह राग की तीव्रता है। समझ में आया ? उस भूमिका का वह अप्रयत्न आचार है। आहा...हा... ! कठिन काम, भाई ! समझ में आया ?

वैसे जल, वैसे अग्नि, वैसे वनस्पति प्रत्येक और साधारण, वैसे सूक्ष्म त्रस। सूक्ष्म त्रस इतने हैं। जल में... गरना... गरना कहते हैं ? गरना क्या कहते हैं ? छनना। छानने का कपड़ा, उसमें पानी डालो तो भी उसमें से अंगुल के असंख्य भाग में इतने मच्छ है कि अन्दर में से निकल जाये। ऐसी चीज है। लेकिन वह ... परिहार है। समझे ? आहा...हा... ! क्योंकि मच्छ की स्थिति भगवान ने अंगुल के असंख्यातवें भाग में छोटी अवगाहना बतायी है। असंख्य मच्छ हो तब तो एक चावल का संख्यातवाँ भाग का टुकड़ा होता है। इतनी अवगाह शक्ति है। आहा...हा... ! असंख्य मच्छ इकट्ठे हो, तब... चावल होता है न ? चावल, चावल के संख्यातवें भाग का इतना टुकड़ा होता है। उसमें अवगाहना होती है। आहा...हा... ! देखो, यह भगवान का मार्ग ! आत्मा का मार्ग, हाँ !

समझ में आया? (लोगों को) तो खबर भी नहीं कि क्या है और कितने जीव हैं? इसकी खबर बिना ऐसे ही चले।

जंगल में जाये, वहाँ नीचे वनस्पति हो, हरे टुकड़े असंख्य हैं। उसमें जंगल (मल विसर्जन) जाये तो अप्रयत्न आचार है। जंगल में वनस्पति होती है न? हरे रंग की। हरा-हरा (दिखे)। एक कण में असंख्य (जीव हैं) और नयी उत्पन्न होती है, उसमें तो अनन्त (जीव होते हैं)। 'उगमाणि अनंता' आहा...हा...!

वह कहते हैं कि अपनी ईर्यासमिति आदि का विकल्प है, वह तो बराबर है, उससे आगे बढ़कर थोड़ा भी दूसरा ... हो गया (तो) अशुद्ध उपयोग हो गया, हिंसा हुई, उसको बन्धन हुआ, कर्म का बन्धन होता है, मुनिपना रहता नहीं। आहा...हा...! कठिन बात, भाई! समझ में आया? आगे कहेंगे, मुनि को, धर्मात्मा तो ऊनोदरी रखते हैं। पूरा पेट नहीं भरते। पूरा पेट भरे तो तो प्रमाद और हिंसा हो जाये। आहा...हा...! एक बार लेना, दूसरी बार नहीं, पानी भी नहीं, ऐसा करके विशेष पानी ले ले, ऊनोदरी न करके विशेष ले तो मुनि की योग्यता नहीं रहती। आगे कहेंगे, वह अशुद्धोपयोग है। आहा...हा...! समझ में आया? भाई! जब बात आये (तब आये)। ऐसा विकल्प आ जाये कि अभी गर्मी बहुत है (तो) रात्रि को तृषा लगेगी तो थोड़ा विशेष पानी पी लूँ। होता है निर्दोष पानी, उनके लिये बनाया तो हो नहीं, बनाया हुआ ले तो साधु है नहीं, यहाँ तो निर्दोष है परन्तु ऐसा आ गया कि थोड़ा विशेष पानी अन्दर डाल दो तो रात्रि को गर्मी न लगे। ऐसा अपनी भूमिका में न चाहिए, ऐसा राग आया, (वह) अप्रयत्न आचार है, हिंसा है, छह काय की हिंसा करनेवाला (है) और बन्धन है—ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! मार्ग तो मार्ग (है)। समझ में आया? अप्रयत्न आचार में यह कहते हैं।

और जो अशुद्धोपयोग के बिना होता है—ऐसे प्रयत आचार से प्रसिद्ध होनेवाला अशुद्धोपयोग का असद्भाव अहिंसक ही है,.... देखो! आ...हा...! सामने लिया। अपना स्वरूप सम्यग्दर्शन, ज्ञान सहित स्वरूप की रमणता और अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प, वह तो प्रयत्न आचार है, उस भूमिका के योग्य आचार है। ऐसी स्थिति में अशुद्ध उपयोग का असद्भाव है, उसको अहिंसक कहते हैं। देखो! शुभराग है, विकल्प

की भूमिका (है) । अट्ठाईस विकल्प ऐसे होने चाहिए, इतना। और धर्म की शुद्ध परिणति है तो उनको अहिंसक कहते हैं। हिंसा और अहिंसा की व्याख्या। (अज्ञानी तो माने कि) पर जीव मरे तो हिंसा और न मारे तो अहिंसा। पर के साथ क्या (लेना-देना) ? (पर को) कौन मार सकता है ? तेरे भाव में (हिंसा-अहिंसा है) । ये सब न्यायाधीश से अलग बात है, सूक्ष्म बात है। आप के न्याय की बातें तो समझने जैसी होती हैं। आहा...हा... !

कहते हैं कि जहाँ उस भूमिका के आगे बढ़कर जो भाव नहीं होता, ऐसे आचार से प्रसिद्ध होनेवाला अशुद्धोपयोग का असद्भाव अहिंसक है। यह अहिंसक है, उसको अहिंसा कहने में आता है। आ...हा... ! देखो, दशा तो देखो ! (अज्ञानी तो कहे), पर को न मारे, ऐसा है, वैसा है तो अहिंसा है। वह अहिंसा की व्याख्या ही नहीं है। अपना आनन्द और चैतन्यप्राण ध्रुव अखण्डानन्द भगवान की यत्न नहीं करके राग की और पर की यत्न करने जाये तो हिंसा होती है। दुनिया से अहिंसा की व्याख्या ही दूसरी है। आहा...हा... !

मुमुक्षु - किसी को ख्याल न आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री - मार्ग तो ऐसा है, भाई ! यह तो थोड़ी-थोड़ी व्याख्या करते हैं। उसमें वह कहते हैं। समझ में आया ?

भूमिका—जहाँ निर्मल परिणति पंचम गुणस्थान के योग्य और छठ्ठे गुणस्थान के योग्य हुई तो उसके प्रमाण में उसके विकल्प की मर्यादा होती है, उससे आगे जाये तो भूमिका में हिंसा होती है। हिंसा से बन्धन होता है। आहा...हा... ! **क्योंकि पर के आश्रय से होनेवाले लेशमात्र भी बन्ध का अभाव होने से....** वास्तविक भगवान आत्मा का आनन्द और स्वरूप की रमणता की शान्ति, आनन्द और उस भूमिका के योग्य अट्ठाईस मूलगुण (का) विकल्प (होता है), उस जीव को **पर के आश्रय से होनेवाले लेशमात्र भी बन्ध का अभाव....** है। लो !

जल में झूलते हुए कमल की भाँति.... आहा...हा... ! जल में होने पर भी कमल निर्लेप है। जल में; उसका पत्ता ऐसा कोरी कोरी है, पत्ते की रुवांटी शुष्क होती है तो (उसे) जल छुये नहीं। रुवांटी समझते हैं ? सूक्ष्म होती है। कमल में सूक्ष्म रुवांटी (होती है), उस कारण से उसको जल का लेप लगे नहीं, ऐसा कहते हैं। देखो ! मूल पाठ में है,

हाँ! मूल पाठ में है। 'कमलं व जले णिरुवलेवो' अट्ठाईस मूलगुण होने पर भी निर्लेप कहने में आता है।

अपने आनन्द स्वरूप की रमणता, आनन्द की चारित्र दशा, तीन कषाय का अभाव है और अट्ठाईस मूलगुण है तो भी उसको निर्लेप कहने में आया है। उस भूमिका के योग्य है, उस अपेक्षा से (बात है)। अभी वह (अपेक्षा) चलती है। 'समयसार' का अधिकार दर्शनपूर्वक चलता है, 'मोक्ष अधिकार' (में) ऐसा कहे कि पर की अहिंसा, पंच महाव्रत का परिणाम जहर है।

मुमुक्षु – प्रतिक्रमण को जहर कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री – प्रतिक्रमण जहर है। पाप लगे (तो) प्रायश्चित्त लेना, वह जहर है। शुभराग है न, विकल्प है न! विकल्प की वृत्ति का उत्थान होता है। स्वरूप में वह चीज कहाँ है? यहाँ कहते हैं कि उसकी मर्यादा में वह शुद्ध है, अहिंसक है, बन्ध नहीं, निर्लेप है। कौन-सी अपेक्षा से (बात) चलती है, समझना चाहिए न। 'जहाँ-जहाँ जो जो योग्य है, वहाँ समझना वही' एक ही तरह बात करते रहे तो नहीं चलता। यह तो वीतरागमार्ग है। आहा...हा...! साधु नाम धारण करनेवाले ने ऐसा कभी सुना नहीं। वस्त्र-पात्र रखे और (माने कि) साधु है। आहा...हा...! ऐ...ई...! यहाँ तो कहते हैं कि वस्त्र-पात्र छोड़कर नग्न रहे और उसकी चारित्रदशा हो, अट्ठाईस मूलगुण हो और उससे आगे बढ़ जाये तो हिंसा होती है। आहा...हा...! समझ में आया? (उससे) बन्ध होता है।

झूलते हुए कमल की.... भाषा देखो! जल में झूलते हुए। मुनि तो जड़ की क्रिया से चलते हैं न? (वह तो) जड़ की क्रिया है, अपनी क्रिया (नहीं)। मैं तो ज्ञानानन्द स्वभाव हूँ—ऐसे अपने ज्ञाता-दृष्टा का भान रखकर अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प हुआ तो कहते हैं कि जल में झुलते हुए कमल की भाँति। आहा...हा...! (ऐसे कमल की) **भाँति निर्लेपता की प्रसिद्धि है।** मुनि को लेप नहीं लगता—ऐसी प्रसिद्धि होती है।

इसलिए उन-उन सर्व प्रकार से अशुद्धोपयोगरूप अन्तरंग छेद निषेध्य - त्यागने योग्य है,.... उस कारण से अन्तरंग (में) राग की तीव्रता आ जाना। अग्नि, वायु, वनस्पति, साता की सुखबुद्धि की थोड़ा आसक्ति का भाव (आ जाये) तो कहते हैं कि

अन्तरंग छेद है। वह निषेध्य है। **जिन-जिन प्रकारों से उसका आयतनमात्रभूत परप्राणव्यपरोपरूप बहिरंग छेद अत्यन्त निषिद्ध हो।** उस कारण से कहते हैं। अन्तरंग छेद हुआ न! उसमें जो बाह्य में छह काय की हिंसादि निमित्त है, उसका आयतनमात्र, निमित्तमात्र, स्थानमात्र उपचारमात्र पर है। उसका बहिरंग छेद भी निषेध्य है। यहाँ अन्तरंग निषेध हुआ तो उसका भी निषेध समझ लेना। बहुत सूक्ष्म बात, भाई! ऐसा कभी सुना भी नहीं हो, लो! उसका भावार्थ (विशेष लेंगे)।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. २१६ **आषाढ़ कृष्ण १, सोमवार, ३० जून १९६९**

'प्रवचनसार', २१८ गाथा का भावार्थ है, भावार्थ। अभी का अधिकार सबेरे की अपेक्षा जरा अलग प्रकार है। सबेरे तो सम्यग्दर्शन की प्रधानता (की) कथनी (चलती) है और अभी साधुपना-मोक्ष का कारण चारित्रदशा, इसके बिना मुक्ति नहीं होती, उस चारित्र का आचरण, निश्चय कैसा होता है और उसमें व्यवहार कैसा होता है? इसकी बात चलती है। भावार्थ में है देखो। **शास्त्रों में अप्रयत-आचारवान् अशुद्धोपयोगी को छह काय का हिंसक कहा है....** क्या कहा? साधु होकर उसके योग्य आचरण न करके अप्रयत्न आचार अर्थात् प्रमाद आदि का आचरण करे तो उसे अशुद्ध उपयोगी कहा है। इसलिए उसे छह काय का हिंसक कहा है।

प्रश्न - मुनि होकर छह काय का हिंसक?

समाधान - हाँ, मुनि नाम धरावे, उसे छह काय की हिंसा है। राग के परिणाम, उसके योग्य से अधिक करे, भूमिका में जिस प्रमाण चाहिए, वैसा न हो और अधिक तीव्र राग करे तो अशुद्धोपयोगी-मलिन परिणामवाला है तो वह हिंसा ही करता है, छह काय की हिंसा ही करनेवाला है।

और प्रयत-आचारवान्.... आत्मा का सम्यग्दर्शन और चारित्र की वीतरागदशा और उस पूर्वक उसे अट्ठाईस मूलगुण का, पंच महाव्रत का विकल्प आदि हो—ऐसे को

शुद्ध उपयोगी कहा है, उसे अहिंसक कहा है। **इसलिए शास्त्रों में जिस-जिस प्रकार से छह काय की हिंसा का निषेध किया गया हो,....** शास्त्र में छह काय की हिंसा का निषेध किया गया हो, वहाँ **सर्व प्रकार से अशुद्धोपयोग का निषेध समझना।** थोड़ी सूक्ष्म बात है। वास्तव में तो अन्दर आत्मा में तो वीतराग परिणाम और शुभ विकल्प जो उसकी मर्यादा के हैं, उससे आगे जाये तो वह अशुद्ध उपयोग है, हिंसक है, चारित्र का छेद करनेवाला है। पूरी सूक्ष्म बात है। **उस-उस समस्त प्रकार से अशुद्धोपयोग का निषेध समझना चाहिए।** यह २१८ गाथा की टीका थी (उसका भावार्थ पूरा हुआ)।

गाथा - २१९

अथैकान्तिकान्तरङ्गच्छेदत्वादुपधिस्तद्वत्प्रतिषेध्य इत्युपदिशति-

हवदि व ण हवदि बंधो मदम्हि जीवेऽध कायचेट्ठम्हि।
बंधो धुवमुवधीदो इदि समणा छड्डिया सव्वं।।२१९।।

भवति वा न भवति बन्धो मृते जीवेऽथ कायचेष्टायाम्।
बन्धो ध्रुवमुपधेरिति श्रमणास्त्यक्तबन्तः सर्वम्।।२१९।।

यथा हि कायव्यापारपूर्वकस्य परप्राणव्यपरोपस्याशुद्धोपयोगसद्भावासद्भावाभ्यामनैकान्तिकबन्धत्वेन छेदत्वमनैकान्तिकमिष्टं, न खलु तथोपधेः, तस्य सर्वथा तदविनाभावित्वप्रसिद्ध्यदैकान्तिकाशुद्धोपयोगसद्भावस्यैकान्तिकबन्धत्वेन छेदत्वमैकान्तिकमेव। अत एव भगवन्तोऽर्हन्तः परमाः श्रमणाः स्वयमेव प्रागेव सर्वमेवोपधिं प्रतिषिद्धवन्तः। अत एव चापरैरप्यन्तरङ्गच्छेदवत्तदनान्तरीयकत्वात्प्रागेव सर्व एवोपधिः प्रतिषेध्यः।।२१९।।

अथ बहिरङ्गजीवघाते बन्धो भवति, न भवति वा, परिग्रहे सति नियमेन भवतीति प्रतिपादयति- **हवदि व ण हवदि बंधो** भवति वा न भवति बन्धः। कस्मिन्सति। **मदम्हि जीवे** मृते सत्यन्यजीवे। **अध** अहो। कस्यां सत्याम्। **कायचेट्ठम्हि** कायचेष्टायाम्। तर्हि कथं बन्धो भवति। **बंधो धुवमुवधीदो** बन्धो भवति ध्रुवं निश्चितम्। कस्मात्। उपधेः परिग्रहात्सकाशात्। **इदि** इति हेतोः **समणा छड्डिया सव्वं** श्रमणा महाश्रमणाः सर्वज्ञाः पूर्वं दीक्षाकाले शुद्धबुद्धैकस्वभावं निजात्मानमेव परिग्रहं कृत्वा, शेषं समस्तं बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहं छर्दितवन्तस्त्यक्तवन्तः। एवं ज्ञात्वा शेषतपोधनैरपि निजपरमात्मपरिग्रहं स्वीकारं कृत्वा, शेषः सर्वोऽपि परिग्रहो मनोवचनकायैः कृतकारितानुमतैश्च त्यजनीय इति। अत्रेदमुक्तं भवति-शुद्धचैतन्यरूपनिश्चयप्राणे रागादिपरिणामरूपनिश्चयहिंसया पातिते सति नियमेन बन्धो भवति। परजीवघाते पुनर्भवति वा न भवतीति नियमो नास्ति, परद्रव्ये ममत्वरूपमूर्च्छापरिग्रहेण तु नियमेन भवत्येवेति।।२१९।।

अब, उपधि (परिग्रह) को ऐकान्तिक अन्तरंग-छेदत्व होने से उपधि अन्तरंग छेद की भाँति त्याज्य है—ऐसा उपदेश करते हैः—

काय-चेष्टा से मरें जीव, बन्ध हो या ना भी हो।
पर बन्ध निश्चित परिग्रह से, तजें श्रमण यों सर्व को ॥२१९॥

अन्वयार्थ - [**अथ**] अब (उपधि के सम्बन्ध में ऐसा है कि), [**कायचेष्टायाम्**] कायचेष्टापूर्वक [**जीवे मृते**] जीव के मरने पर [**बन्धः**] बन्ध [**भवति**] होता है [**वा**] अथवा [**न भवति**] नहीं होता; [**उपधेः**] (किन्तु) उपधि से-परिग्रह से [**ध्रुवम् बंधः**] निश्चय ही बन्ध होता है; [**इति**] इसलिए [**श्रमणाः**] श्रमणों (अरहन्तदेवों) ने [**सर्वं**] सर्व परिग्रह को [**त्यक्तवन्तः**] छोड़ा है।

टीका - जैसे कायव्यापारपूर्वक परप्राणव्यपरोप को अशुद्धोपयोग के सद्भाव और असद्भाव के द्वारा अनैकान्तिक बन्धरूप होने से उसे (कायव्यापारपूर्वक परप्राणव्यपरोप को) छेदपना अनैकान्तिक[1] माना गया है, वैसा उपधि-परिग्रह का नहीं है। परिग्रह सर्वथा अशुद्धोपयोग के बिना नहीं होता, ऐसा जो परिग्रह का सर्वथा अशुद्धोपयोग के साथ अविनाभावित्व है उससे प्रसिद्ध होनेवाले ऐकान्तिक[2] अशुद्धोपयोग के सद्भाव के कारण परिग्रह तो ऐकान्तिक बन्धरूप है, इसलिए उसे (परिग्रह को) छेदपना ऐकान्तिक ही है। इसीलिए भगवन्त अरहन्तों ने—परम श्रमणों ने—स्वयं ही पहले ही सर्व परिग्रह को छोड़ा है और इसीलिए दूसरों को भी, अन्तरंग छेद की भाँति प्रथम ही सर्व परिग्रह छोड़ने योग्य हैं, क्योंकि वह (परिग्रह) अन्तरंग छेद के बिना नहीं होता।

भावार्थ : अशुद्धोपयोग का असद्भाव हो, तथापि काय की हलन-चलनादि क्रिया होने से परजीवों के प्राणों का घात हो जाता है। इसलिए कायचेष्टापूर्वक परप्राणों के घात से बन्ध होने का नियम नहीं है—अशुद्धोपयोग के सद्भाव में होनेवाले कायचेष्टापूर्वक परप्राणों के घात से तो बन्ध होता है, और अशुद्धोपयोग के असद्भाव में होनेवाले कायचेष्टापूर्वक परप्राणों के घात से बन्ध नहीं होता; इस प्रकार कायचेष्टापूर्वक होनेवाले परप्राणों के घात से बन्ध का होना अनैकान्तिक होने से उसके छेदपना अनैकान्तिक है—नियमरूप नहीं है।

---

१. **अनैकान्तिक = अनिश्चित; नियमरूप न हो; ऐकान्तिक न हो।**
२. **ऐकान्तिक = निश्चित; अवश्यम्भावी; नियमरूप।**

जैसे भाव के बिना भी परप्राणों का घात हो जाता है, उसी प्रकार भाव न हो तथापि परिग्रह का ग्रहण हो जाय, ऐसा कभी नहीं हो सकता। जहाँ परिग्रह का ग्रहण होता है वहाँ अशुद्धोपयोग का सद्भाव अवश्य होता ही है। इसलिए परिग्रह से बन्ध का होना ऐकान्तिक-निश्चित-नियमरूप है। इसलिए परिग्रह के छेपना ऐकान्तिक है। ऐसा होने से ही परम श्रमण ऐसे अरहन्त भगवन्तों ने पहले से ही सर्व परिग्रह का त्याग किया है और अन्य श्रमणों को भी पहले से ही सर्व परिग्रह का त्याग करना चाहिए॥२१९॥

प्रवचन नं. २१६ का शेष **आषाढ़ कृष्ण १, सोमवार, ३० जून १९६९**

अब, उपधि (परिग्रह) को ऐकान्तिक अन्तरंग-छेदत्व होने से उपधि अन्तरंग छेद की भाँति त्याज्य है, ऐसा उपदेश करते है: — यह क्या कहते हैं ? कि वस्त्र-पात्र रखना, इसकी मर्यादा जो मुनि को वस्त्र-पात्र नहीं होते और उसके बदले वस्त्र का टुकड़ा या पात्र आदि की मर्यादा से कुछ विशेष रखे उसे एकान्त बन्धन है, उसे बन्धन ही है, उसे साधुपना नहीं रहता। यह सूक्ष्म बात है। यह कहेंगे, देखो! **(परिग्रह) को ऐकान्तिक अन्तरंग-छेदत्व होने से....** उसकी मर्यादा से जरा वस्त्र का टुकड़ा, तिलतुषमात्र इतना भी यदि वस्त्र का रखे तो उसकी मर्यादा में वस्त्र का टुकड़ा भी मुनि को नहीं होता। मुनि को ऐसी दशा होती है। समझ में आया ?

उसकी मर्यादा के अतिरिक्त परिग्रह रखे। परिग्रह के बहुत प्रकार होते हैं। शीशपेन हो, चश्मा हो... समझ में आया ? वे लालटेन रखते होंगे ? लालटेन! लालटेन रखें ? जरा उजाला (पड़े), पढ़ने के लिए, घड़ी रखें, बैटरी रखें, यह सब परिग्रह, एकान्त बन्ध का कारण है—ऐसा सिद्ध करते हैं। अन्तरंग छेद होने से **उपधि अन्तरंग छेद की भाँति त्याज्य है,....** यह कहते हैं देखो! २१९ (गाथा)

हवदि व ण हवदि बंधो मदम्हि जीवेऽध कायचेट्ठम्हि।
बंधो धुवमुवधीदो इदि समणा छड्डिया सव्वं।।२१९।।

काय-चेष्टा से मरें जीव, बन्ध हो या ना भी हो।
पर बन्ध निश्चित परिग्रह से, तजें श्रमण यों सर्व को॥२१९॥

इसकी टीका। जरा यह वास्तविक तत्त्व / चारित्र क्या है और साधुपद कैसा है ?— सर्वज्ञ परमेश्वर वीतराग केवलज्ञानी ने देखा, उससे कम-ज्यादा, अधिक और विपरीत भाव होवे तो वह साधु नहीं हो सकता। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है भाई ! सम्यग्दर्शन की बात तो लोगों को जरा बहुत समय से चलती है, इसलिए (समझ में आती है)। अखण्ड आनन्द का अनुभव, शुद्ध चैतन्य का अनुभव, आनन्द का (अनुभव होवे) उसका नाम सम्यग्दर्शन है। इसके बिना कहीं भी दया, दान, व्रत के विकल्प, राग में धर्म मानना, वह मिथ्यात्वभाव और अधर्मभाव है। समझ में आया ?

यहाँ तो साधुपद जो चारित्रपद है। सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा ने देखा और मुनि स्वयं अनुभव करके कहते हैं कि हमारा चारित्रपद और चरणानुयोग की दशा ऐसी होती है। इस प्रकार उसे जानना और भलीभाँति श्रद्धान करना चाहिए।

कहते हैं कि **जैसे कायव्यापारपूर्वक परप्राणव्यपरोप को अशुद्धोपयोग के सद्भाव और असद्भाव के द्वारा अनैकान्तिक बन्धरूप होने से उसे (काय-व्यापारपूर्वक परप्राणव्यपरोप को) छेदपना अनैकान्तिक माना गया है,....** भाषा इतनी अधिक (कठिन है)। कहते हैं कि यह शरीर है न, चले उसमें कोई जीव मर जाये— एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, हरितकाय (आ जाये) तो काय के व्यापार में पर प्राण-एकेन्द्रिय आदि जीव का नाश हो। वनस्पति का, पानी का, अग्नि का, वायु का इन आदि (का नाश हो) तो अशुद्ध उपयोग का सद्भाव है। यदि उसमें अशुद्धभाव होवे तो उसे पाप होता है। प्राणी मरा, इसलिए पाप होता है-ऐसा नहीं है।

प्रश्न - किसी जीव को ऐसा होगा या सबको ऐसा होगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री - अर्थात् ?

प्रश्न - सबको जीव मर जाये फिर पाप लगे या ?

समाधान - यही कहते हैं। यदि अशुद्ध उपयोग हो तो बन्ध होता है और अशुद्ध (उपयोग के) **असद्भाव के द्वारा....** वह अशुद्ध उपयोग न हो और जीव मर जाये तो बन्ध नहीं होता। यहाँ अब बात को उपधि में ले जाना है। सूक्ष्म बात है। तत्त्व का स्वरूप,

सर्वज्ञ कथित चारित्र का-सन्त का स्वरूप कैसा हो, ऐसा उसका वास्तविक (स्वरूप) अनन्त काल से प्रतीति-श्रद्धा में लिया नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि यदि पर प्राणी एकेन्द्रिय आदि मरे, तो यहाँ अशुद्ध उपयोग हो तो बन्ध होता है और अशुद्ध उपयोग न हो तो पर प्राणी से इसे हिंसा का बन्धन नहीं होता, यह अनेकान्तिक है अर्थात् इसमें नियम नहीं कि बन्ध होगा ही—ऐसा इसमें नियम नहीं है। पर प्राणी मरते हुए बन्ध हो ही—ऐसा नियम नहीं है। समझ में आया?

वैसा उपधि का.... नहीं है। ऐसा परिग्रह का नहीं है। कोई कहे कि हम चश्मा रखते हैं, घड़ी रखते हैं, थोड़ा हमारे कारणवश यह पत्र लिखते हैं, शीशपैन रखते हैं, तो यह सब हमारे परिग्रह कहलायेगा या नहीं? इससे हमारा भाव मूर्च्छा न हो तो बन्ध नहीं होगा और मूर्च्छा हो तो बन्ध होगा। ऐसा नहीं है, वह रखता है उसे मूर्च्छा है ही; उसे छेद है ही, उसे संयम का छेद ही है, भाई!

प्रश्न - उदासीन भाव से रखे तो?

समाधान - यही यहाँ कहते हैं। यही कहते हैं कि भाई! आत्मा की दशा जहाँ चारित्र की हो, उसके बदले उसमें इसकी योग्यता बिना कोई भी परिग्रह — एक टुकड़ा रखे, एक तिलतुषमात्र (रखे तो वहाँ छेद होता है)। समझ में आया? लोहे का या वस्त्र का एक टुकड़ा (रखे), लोहे का आता है न? क्या कहलाता है यह दबाने का? टाँकणी, टाँकणी, ऐसे दबाने के लिए रखे, अमुक रखे, इतना भी यदि परिग्रह हो तो उसे मुनिपना नहीं रहता - ऐसा कहते हैं। ऐसी बात है बापू! आ...हा...! लोगों ने तत्त्व की बात सुनी नहीं। उसमें ऐसा कहते हैं कि यह भाई कहते हैं ऐसा कि उसमें हमें मूर्च्छा नहीं है, उदासीन भाव से रखें तो? भाई! भगवान ने इसके लिये तो यह गाथा ली है। बापू! मार्ग कोई अलग है भाई! अनन्त काल का तिरने का उपाय, मोक्ष का उपाय, तिरने का उपाय, बापू! अलौकिक है। समझ में आया?

कहते हैं कि हिलते-चलते कोई जीव मर जाये, तथापि वहाँ उपयोग में फेरफार हो तो जीव बन्धन होता है। उपयोग में फेर न हो तो उसे बन्धन नहीं होता। वहाँ उदासीनता हो तो बन्धन नहीं होता, वहाँ लागू पड़ता है परन्तु कोई कहे कि हम विशेष बहुत ठण्ड

लगती है, इसकी अपेक्षा चारित्र निभाने के लिये हम एक टुकड़ा, छोटा टुकड़ा रखते हैं... इतना भी परिग्रह का टुकड़ा हो (तो) निश्चय से उसे अन्तरछेद है, एकान्त बन्धन है, एकान्त हिंसक प्राणी है – ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? देखो!

परिग्रह सर्वथा अशुद्धोपयोग के बिना नहीं होता,.... आहा...हा...! एक टाँचणी, एक वस्त्र का टुकड़ा, एक कागज का टुकड़ा, एक शीशपैन का टुकड़ा.... समझ में आया? रखने की बुद्धि, यहाँ रखने की (बुद्धि) है, उसे कहते हैं कि उसे उसका अशुद्ध व्यापार ही है, उसके परिणाम मलिन ही हैं। कोई ऐसा कहे कि हमारे प्रयोजन के लिए रखा है और उसमें यह है तो कहते हैं, मूढ़ मिथ्यादृष्टि है, तेरी दृष्टि में सत्य के स्वरूप का बोध नहीं है। भाई! ऐसा है। काम बहुत कठिन है। बहुत सिर दुखे तो जरा एक पतली डोरी चाहिए, बाँधकर रखे... तो कहते हैं उसका संयम नहीं रहता, संयम का छेद है, अन्तरंग छेद है—ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? अंगुली में इतना घाव पड़ गया, कट गयी (और) जरा एक पाँदडे का टुकड़ा लेकर बाँधे। पाँदड़ा समझते हैं? पत्ता... पत्ता (वह) परिग्रह है।

मुमुक्षु – कागज बाँधे तो?

समाधान – कागज कपड़े में से ही बनता है न? कपड़े में से बनता है, उसमें से बनता है। आहा...हा...! मार्ग तो ऐसा है भाई! समझ में आया? भाई! वहाँ उदासीन काम न आवे। उदासीन होवे तो रखने का विकल्प आया क्यों?

मुमुक्षु – प्लास्टिक का होवे तो दिक्कत नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री – उस समय प्लास्टिक नहीं था। यह तुलसी में है न, तेरापंथी में वस्त्र तो रखे, वह तो गृहीतपना है, तथापि उसकी माँ है। तुलसी, अभी गुजर गये, आचार्य की माँ थी, बहुत वृद्ध थीं। फिर प्लास्टिक के जोड़े की छूट दी। जोड़ा समझे? जूता... जूता। प्लास्टिक का जूता। वृद्ध है न (इसलिए)। एक वस्त्र रखते हैं और मुनिपना मानते है, वही महा जैनदर्शन से, भगवान महावीर से विपरीत मान्यता है, मिथ्यादृष्टि है—ऐसा कहते हैं। उसमें प्लास्टिक के जूते (प्रयोग करे) यह प्लास्टिक होता है न? हमारे

यह भाई बहुत प्लास्टिक बनाते हैं। छोटा-छोटा छापते हैं, पतला बहुत प्रकार का होता है। बहुत साधारण पतला हो तो गर्मी न लगे और चला जा सके।

भगवान परमात्मा त्रिलोकनाथ तीर्थंकर कहते हैं, हमने ऐसा जाना है। इतना टुकड़ा भी यदि रखे तो उसे बन्धन, एकान्त बन्धन है। प्राणी मरे या न मरे, उसके साथ बन्धन है नहीं। समझ में आया? देखो! परमात्मा का मार्ग। आहा...हा...! यह तो साथ में मोटरें, गाड़ियाँ (रखते हैं)। समझ में आया? बापू! मार्ग अलग है, बापू! भाई! यह दुनिया मानेगी। दुनिया तो पागल है, पागल दुनिया है। दुनिया में चलेगा परन्तु मार्ग में नहीं चलेगा। आ...हा...!

देखो, कहते हैं **परिग्रह सर्वथा अशुद्धोपयोग के बिना नहीं होता, ऐसा जो परिग्रह का सर्वथा अशुद्धोपयोग के साथ अविनाभावित्व....** देखो! जीव मरे और अशुद्ध उपयोग न हो, जीव मरे और अशुद्ध उपयोग हो, इसके साथ नियम नहीं है परन्तु परिग्रह रखे और अशुद्ध उपयोग न हो—ऐसा नहीं हो सकता – ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया? भाई! चारित्रमार्ग... इसे नहीं चलता, इसकी दशा से थोड़ा आगे बढ़ गया तो कहते हैं कि उसका व्यापार अशुद्ध ही है। उसे पता हो न पता हो परन्तु वह अशुद्ध व्यापार है और उसमें से यह वस्त्र का, कागज का टुकड़ा भी रखे, लाओ... लाओ, लिख लूँ, एक टुकड़ा रखूँ (ऐसा करे तो वह अशुद्ध उपयोग है) परन्तु जंगल में मुनि रखते हैं न? वह नहीं। वे तो ताड़पत्र होते हैं, पड़े हों उनमें अक्षर लिख लें, उन्हें फिर छोड़कर चले जायें, उन्हें कुछ पड़ी नहीं है। आहा...हा...!

मुमुक्षु – धरसेन मुनि ने पत्र लिखा था।

पूज्य गुरुदेवश्री – वह तो एक साधारण बतलाने का हेतु था परन्तु रखूँ और यह मुझे जरूरत है—ऐसा रखे तो कहते हैं कि उसे एकान्त परिग्रह है और बन्धन का कारण है। है इसमें, परन्तु है या नहीं? यह टीका देखो न, सामने पड़ी है या नहीं?

काय के व्यापार से परप्राणी मरे या न मरे, उसके साथ आत्मा को बन्धन का नियम नहीं परन्तु परिग्रह छोटे से छोटा तिलतुषमात्र भी रखे तो उसे परिग्रह से बन्धन का नियम है। नियम से बन्धन होता है, हिंसा नियम से होती है, वहाँ मुनिपना नहीं रहता। आहा...हा...!

गजब बात! समझ में आया? ऐसी दशा आये बिना चारित्रपना होता नहीं, इसके बिना इसकी मुक्ति होती नहीं। बात ऐसी है भाई! समझ में आया?

सर्वथा अशुद्धोपयोग के साथ अविनाभावित्व.... है। देखो! जहाँ-जहाँ वस्त्रादि का टुकड़ा रखने का भाव हुआ, वहाँ-वहाँ उसका अशुद्ध व्यापार अविनाभावी है अर्थात् अशुद्ध व्यापार होता ही है। समझ में आया? सम्प्रदाय की दृष्टिवालों को ऐसा लगता है यह, ऐसा मार्ग! तुम्हारे दिगम्बर का मार्ग ऐसा होगा, हमारा मार्ग दूसरा है, ऐसा कहते हैं। ऐसा नहीं, भाई! मार्ग ही यह है। अनादि सनातन सर्वज्ञ परमेश्वर केवलज्ञानी परमात्मा से कथित स्वरूप अनादि का ऐसा है। बीच में सब गड़बड़ उठायी, वह जरा भी मार्ग नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु - तिनके ने पर्वत तोड़ा था।

पूज्य गुरुदेवश्री - तिनके ने डूंगर कहाँ तोड़ा था? ऐसा कि थोड़ा टुकड़ा (रखे) और ऐसा हो? ऐसा कहते हैं। महाहिंसक है। कहते हैं कि यह महा पाँच इन्द्रियों का जीतनेवाला, आत्मस्वरूप की रमणता और वीतरागी चारित्र जहाँ हो वहाँ मुनिपना होता है, उसे तो पंच महाव्रतादि के विकल्प की मर्यादा होती है। इससे यह जरा रखने जाता है, वहाँ उसे नहीं जीव की श्रद्धा, नहीं आस्रव की श्रद्धा, नहीं संवर की श्रद्धा, नहीं अजीव की श्रद्धा, नहीं बन्ध की श्रद्धा, नहीं मोक्ष के उपाय की मर्यादा कितनी हो उसकी श्रद्धा। चिमड़ा (ककड़ी) के चोर को फाँसी ऐसा नहीं है। चिमड़ा को तुम्हारे में कहते हैं न? ककड़ी का चोर। ककड़ी के चोर को कटार न मारो। आता है, अपने भक्ति में आता है। आहा...हा...!

निर्ग्रन्थ कहलाये... मुनि तो निर्ग्रन्थ होते हैं, ग्रन्थ अर्थात् मिथ्यात्व की गाँठ तो छूट गयी होती है परन्तु राग के ऐसे भाव से भी छूट गये होते हैं—ऐसी दशा को वीतराग नग्न दशा, अट्ठाईस मूलगुण के विकल्प (होते हैं)। समझ में आया?

कहते हैं **परिग्रह का सर्वथा अशुद्धोपयोग के साथ अविनाभावित्व....** (है) अर्थात् साथ में होता ही है। परिग्रह कुछ भी रखा और अशुद्धोपयोग नहीं, मलिनभाव नहीं—ऐसा नहीं हो सकता। **उससे प्रसिद्ध होनेवाले ऐकान्तिक अशुद्धोपयोग के**

सद्भाव के कारण परिग्रह तो ऐकान्तिक बन्धरूप है,.... ऐकान्तिक बन्धरूप है। यहाँ अनेकान्त नहीं। परिग्रह हो और बन्ध हो, परिग्रह हो और बन्ध न भी हो—ऐसा अनेकान्त यहाँ लागू नहीं पड़ता। गजब काम भाई! मूल सम्यग्दर्शन में ऐसा भान होने पर, उसे ऐसी चारित्र की दशा हो, उसकी उसे प्रतीति साथ में आ जाती है। चारित्र ऐसा होता है, सन्त ऐसे होते हैं, मुनि ऐसे होते हैं—ऐसी श्रद्धा, आत्मा का अन्तर्भान होने पर, उसके साथ देव-गुरु-शास्त्र ऐसे होते हैं—ऐसी श्रद्धा आ जाती है। समझ में आया? आहा...हा...!

इसलिए उसे (परिग्रह को) छेदपना ऐकान्तिक ही है। ऐकान्तिक अर्थात् नियमरूप है, ऐसा। उसे पाप लगता है और साधुपना नहीं रहता, यह एकान्त नियमरूप है। अब ऐसी बातें हमें किसलिए (करते हो)? परन्तु तुझे चारित्र क्या दशा है? तुझे तत्त्व की श्रद्धा करना है या नहीं? समझ में आया? चारित्रवन्त गुरु किस प्रकार के होते हैं?—उसका जिसे पता नहीं, उसे श्रद्धा का ठिकाना नहीं। जिसे-तिसे साधुपना, मुनिपना, सन्तपना मान ले... समझ में आया? वह दृष्टि मिथ्या है। समझ में आया?

इसीलिए भगवन्त अरहन्तों ने.... देखो! परमात्मा अरिहन्त परमेश्वर ने, केवलज्ञानी परमात्मा ने **अन्तरंग छेद की भाँति प्रथम ही सर्व परिग्रह छोड़ने योग्य हैं, क्योंकि वह (परिग्रह) अन्तरंग छेद के बिना नहीं होता।** समझ में आया? अरिहन्त परमात्मा ने केवलज्ञान होने से पहले ऐसी दशा अंगीकार की है। **इसीलिए दूसरों को भी,....** है न? **पहले ही सर्व परिग्रह को छोड़ा है.....** भगवान ने (परिग्रह को छोड़ा है), ऐसा। **इसीलिए दूसरों को भी, अन्तरंग छेद की भाँति प्रथम ही सर्व परिग्रह छोड़ने योग्य हैं, क्योंकि वह (परिग्रह) अन्तरंग छेद के बिना नहीं होता।** आहा...हा...! कहो, वस्त्र रखना, इतने पोटले रखना—ऐसा सुना है? यहाँ तो कहते हैं, एक टुकड़ा-तिलतुषमात्र परिग्रह रखे और नाम धरावे कि हम साधु, मुनि (हैं तो) निगोदं गच्छई — एकेन्द्रिय निगोद जायेगा, अनन्त संसार में परिभ्रमण करेगा, क्योंकि मार्ग से विपरीतपना माना, मनवाया और मान्यता को अनुमोदन दिया। ऐसा सूक्ष्म तत्त्व है भाई! कहो, भाई! यह भाई वहाँ सामने बैठते, जय... जय... करने! आहा...हा...! मार्ग ऐसा है भाई! यह कहीं सर्वज्ञ ने दूसरे प्रकार से कहा है और मार्ग दूसरा है—ऐसा है नहीं। ऐसा ही स्वरूप, सर्वज्ञ

परमेश्वर ने / केवलज्ञानी तीर्थंकर ने देखा है। इससे विरुद्ध माने तो वह भगवान को भी नहीं मानता, गुरु को नहीं मानता, देव को नहीं मानता, शास्त्र ने ऐसा कहा, इससे विरुद्ध माने तो शास्त्र को भी नहीं मानता। कठिन बात है। आहा...हा...! समझ में आया?

भावार्थ : **अशुद्धोपयोग का असद्भाव हो,....** आत्मा के ध्यानसहित, आनन्दसहित उसे शुभ उपयोग की भूमिका जितनी हो तो उसे अशुद्ध उपयोग का असद्भाव है। **तथापि काय की हलन-चलनादि क्रिया होने से परजीवों के प्राणों का घात हो जाता है।** देखकर चले, विचारकर बोले, अन्तर अनुभव चारित्र है—ऐसे जीव को हिलते-चलते किसी जीव का प्राणघात हो जाता है। **इसलिए कायचेष्टापूर्वक परप्राणों के घात से बन्ध होने का नियम नहीं है....** कायचेष्टा द्वारा जीव के प्राण मरे तो उससे बन्ध है—ऐसा कोई नियम नहीं है।

अशुद्धोपयोग के सद्भाव में होनेवाले कायचेष्टापूर्वक परप्राणों के घात से तो बन्ध होता है,.... यह तो परिणाम से हुआ; यह कहीं कायचेष्टा से हुआ नहीं। गजब बातें, भाई! आचार्यों ने, सन्तों ने जंगल में रहकर यह सब टीकाएँ (रची हैं)। जंगल में बनी हैं, जंगल में! आहा...हा...! छठे-सातवें गुणस्थान में झूलते थे, महा सन्त-मुनि, अल्प काल में केवलज्ञान लेनेवाले! अल्प काल में मोक्ष लेनेवाले! उन्होंने ऐसी बात, करुणा करके जगत् को कही। बापू! तुझे बड़ी शल्य रह जायेगी, हाँ! साधुपद की दशा से विरुद्ध भाव को तूने माना होवे तो तुझे बड़ी मिथ्यात्व शल्य रह जायेगी, वह मिथ्यात्व शल्य चौरासी के अवतार का कारण है। आहा...हा...! समझ में आया?

पाँचवें श्रमणसूत्र में आता है या नहीं? शाम-सबेरे बोलते हैं न? '.....' श्वेताम्बर साधु में आता है। '......' ऐसा आता है, भाई! कण्ठस्थ किया था? तुम्हारे पिता ने किया होगा। पाँच श्रमणसूत्र आते हैं। तुम सब तो नये हुए न, परन्तु यह तुम्हारे पिता ने भी पहले खोटा सीखा था। समझ में आया? '....' तुम्हारा एक काका था न, वह तो फिर ऐसा था, वह वकील था। ऐसा हो जाये तो हवा का हनन हो जाये, वहाँ तक चले गये थे, पता है। यह हाथ ऐसा चले न, (तो कहे) हवा का घात होता है, पैर लगने में (ऐसा होता है) फिर बाद में तो बदल गयी बात, हाँ! फिर तो पूरी लाईन बदल गयी, फिर तो यहाँ से हुआ न।

फिर कहा कि यह क्या करते हो तुम ? जरा हाथ हिले न, (इसलिए) वायु का घात हो, वायु-पवन। पवन का हनन हो तो वह स्वयं पैर न लगे। ऐसा झुके, वहाँ तक चला गया था। जीव की हिंसा हो जाये, पवन की हिंसा हो जाये, भाई! इतना अधिक नहीं होता। ऐसा करने में कर्ताबुद्धि होती है, उसमें हिंसा है। यह मैं हिलाता हूँ और ऐसा करता हूँ, ऐसा भलीभाँति मैं करता हूँ—ऐसी कर्ताबुद्धि, वही महाहिंसा है। आहा...हा... ! क्या हो ? ऐसा तलवार की धार जैसा मार्ग है। समझ में आया ? तलवार की धार अर्थात् दुःखरूप, ऐसा नहीं। महा सीधा सरल मार्ग। आहा...हा... ! तत्त्व का पता नहीं होता—देव किसे कहना, चारित्रवन्त किसे कहना, गुरु-शास्त्र किसे कहना, शास्त्र की आज्ञा क्या है ?—कुछ भी पता नहीं पड़ता। सामायिक की, प्रौषध किये, प्रतिक्रमण किया, एक अपवास, दो-पाँच-दस अपवास किये हो गया धर्म! धूल में भी धर्म नहीं। सुन न! वहाँ तो अज्ञान का पोषण है। आहा...हा... ! ऐसा मार्ग, भाई! जन्म-मरण का चक्र जिसे मिटाना हो, उसे तो सम्यग्दर्शनपूर्वक ऐसा चारित्र होता है—ऐसी उसे श्रद्धा करनी चाहिए; फिर आचरण करके मुक्ति होगी। ऐसा अन्तर आचरण आये बिना इसकी मुक्ति होगी नहीं। चौरासी के -निगोद के अवतार (खड़े रहेंगे)। आहा...हा... !

एक-एक शरीर में अनन्त जीव मानना लोगों को कठिन पड़ता है। नीम के फूल में एक इतनी कली, एक इतना फूल, उसके एक राई जितने टुकड़े में तो असंख्य तो औदारिकशरीर हैं; एक शरीर में, अभी तक में सिद्ध हुए, छह महीने आठ समय में ६०८ (जीव सिद्ध होते हैं ऐसे) अभी तक के हुए उससे अनन्तगुने जीव। आहा...हा... ! बापू! वे तेरे जैसे जीव हैं, हाँ! भले शरीर छोटा हो।

ऐसे आत्मा में कहते हैं, कुछ भी उसमें पर प्राणी की हिंसा हो जाये और अशुद्ध उपयोग हो तो बन्ध होता है परन्तु परिग्रह रखे और बन्ध न हो तथा मूर्च्छा न हो—ऐसा नहीं हो सकता। आहा...हा... ! ऐसा कहते हैं कि देखो! शरीर से प्राणी मरे परन्तु भगवान को तो उपयोग मारने का नहीं, पाप लगता नहीं, तो हमारे भी थोड़ा परिग्रह होवे तो हमें मूर्च्छा नहीं। भाई! पहले ऐसा सब माना था न! पहले ऐसा सब माना था, ये पुराने लोग हैं न! यह परिग्रह किसलिए ? कि हमें शीतवायु है, उसके निवारण के लिये वस्त्र रखते हैं और सर्दी

में दुःख न हो, इसलिए निवारण के लिए रखते हैं; इसलिए परिग्रह नहीं है। चारित्र नहीं, चारित्र है ही नहीं। वस्त्र रखना, सर्दी उड़ाने के लिये रखने का, वस्त्र को ओढ़ने का भाव हुआ, वह चारित्र ही नहीं है। आहा...हा...! ऐसा मार्ग है भाई! समझ में आया? श्रावक को भी उसकी मर्यादा है, तद्नुसार उसकी दशा प्रमाण... उससे आगे रखे तो उसकी दशा नहीं रहती। समझ में आया? क्षुल्लक, ऐलक आदि आते हैं न! उसमें आता है, प्रवचनसार में पीछे आयेगा। अन्तिम गाथा में आयेगा, साधु और श्रावक दोनों (आयेगा)। कोपिन रखनेवाला श्रावक... मूल पाठ में गृहस्थ और साधु दोनों है। 'पाषंडी' पाषंडी अर्थात् साधु और जिवेषु अर्थात् गृहस्थाश्रम में भले एक हो या क्षुल्लक हो परन्तु है गृहस्थाश्रम, साधुपद नहीं। वह भी उसकी मर्यादा से कुछ भी अधिक रखे, कोपिन के सिवाय, टुकड़े के सिवाय तो वह भी निश्चय परिग्रह और बन्ध का ही कारण उसको है। यह कहे कि मुझे पंचम काल है और निभाव नहीं है, इसलिए थोड़ा अधिक रखते हैं, यह नहीं चलता, वीतरागमार्ग में यह नहीं चलता। समझ में आया? ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु - पुराना बदलना पड़े न, सुधार तो होता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री - सुधार किसका होता है? यह लिखा है। काल ऐसा बदले तो धर्म में भी कुछ सुधार करना पड़े—ऐसा कहते हैं। जब पन्थ निकला न, दिगम्बर में से श्वेताम्बर जब निकले, दो हजार वर्ष पहले (जब निकले, तब) ऐसा जवाब दिया था। साधु जब दक्षिण में से आये... यहाँ तो वस्त्र का टुकड़ा रखने लगे थे, (तब कहा कि) यह मार्ग नहीं; (इसलिए उन्होंने कहा) काल ऐसा है तो उसमें सुधार करना पड़ेगा। अब वस्त्र के बिना नहीं निभेगा। यहाँ कहते हैं कि वस्त्र को रखने का भाव हुआ, वह साधुपना नहीं, वही मिथ्यात्व है। कठिन बातें भाई। आहा...हा...!

सर्वज्ञ परमेश्वर केवलज्ञानी परमात्मा, जिन्हें एक सैकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक का ज्ञान था, उन्होंने यह दशा और स्थिति देखी है; इसके अतिरिक्त कम-अधिक और विपरीत माने (तो) मिथ्यात्व शल्य में जाकर क्रम-क्रम से निगोद में जायेगा। आहा...हा...! कठिन काम, भाई! समझ में आया?

(यहाँ कहते हैं) पर प्राणी के घात होने का नियम नहीं है। **अशुद्धोपयोग के**

सद्भाव में होनेवाले कायचेष्टापूर्वक परप्राणों के घात से तो बन्ध होता है, और अशुद्धोपयोग के असद्भाव में होनेवाले कायचेष्टापूर्वक परप्राणों के घात से बन्ध नहीं होता; इस प्रकार कायचेष्टापूर्वक होनेवाले परप्राणों के घात से बन्ध का होना अनैकान्तिक.... देखो! अनैकान्तिक अर्थात् नियम नहीं। अनेकान्त और अनैकान्तिक दोनों में अन्तर है। यह अनैकान्तिक अर्थात् नियम नहीं; वह अनेकान्त अर्थात् वस्तु का स्वरूप, वह अलग चीज है। मात्रा में अन्तर है। लिखा है इसमें, देखो! इस ओर लिखा है। देखो! अनेकान्त इस ओर है। अनैकान्तिक अर्थात् अनिश्चित; नियमरूप न हो ऐसा; ऐकान्तिक न हो ऐसा। ऐकान्तिक अर्थात् निश्चित; नियमरूप; अवश्य होनेवाला। यह दूसरी व्याख्या है। अनैकान्तिक अलग और अनेकान्त अलग।

अनेकान्त तो वस्तु, वस्तु के स्वरूप में है और पररूप नहीं है। गुण, गुणरूप है और दूसरे गुणरूप नहीं है; पर्याय, पर्यायरूप है और दूसरी पर्यायरूप नहीं है। इसका नाम अनेकान्त-अनन्त-अनन्त धर्म। स्वयं अस्ति है और पर से नास्ति है, यह अनेकान्त कहलाता है और यह अनैकान्तिक दोष कहलाता है अर्थात् परप्राणी मरे और दोष लगे या न लगे, वह परिणाम पर आधारित है। इसलिए एकान्त परप्राणी मरे तो बन्धन ही होता है—ऐसा इसमें एकान्त है नहीं, अनेकान्त सिद्ध हुआ। भाव खोटे हों तो पाप लगे, भाव खोटे न हों और परप्राणी मरे, तथापि पाप नहीं लगता परन्तु परिग्रह के लिए ऐसा नहीं है। आहा...हा...! परिग्रह थोड़ा भी रखे तो, हमारे मूर्च्छा नहीं है, इसलिए रखा है—यह बात अत्यन्त झूठ है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? है या नहीं इसमें? भाई! पुस्तक रखी है?

मुमुक्षु - परम सत्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री - परम सत्य है। आहा...हा...!

अपने से पालन न किया जा सके, इसलिए मार्ग को बदल डालना, यह मार्ग नहीं है। समझ में आया? मार्ग तो बापू! यह है; इसके अतिरिक्त कुछ भी टुकड़ा, परिग्रह रखे तो अन्तर छेद, छेद और छेद है—ऐसा भगवान फरमाते हैं। समझ में आया? है न?

इस प्रकार कायचेष्टापूर्वक होनेवाले परप्राणों के घात से बन्ध का होना

अनैकान्तिक होने से.... नियम नहीं ऐसा। **उसके छेदपना अनैकान्तिक है....** नियम नहीं। **जैसे भाव के बिना भी परप्राणों का घात हो जाता है, उसी प्रकार भाव न हो, तथापि परिग्रह का ग्रहण हो जाय—ऐसा कभी नहीं हो सकता।** आहा...हा...! मार्ग तो ऐसा है भाई! ओहो...हो...! चारित्रदशा, वीतरागदशा, निर्ग्रन्थदशा, जहाँ अमृत की डकार का उफान आता है, उस भूमिका में विकल्प की मर्यादा पंच महाव्रत आदि इतनी होती है, बस! समझ में आया?

हांठयुं... हांठयुं कहते हैं? क्या कहते हैं? ये कपास की हांठयुं होती है न, हांठयुं! सूत होता है और जरा हांठयुं का पर्दा रखे, ठण्डी हवा न आवे (इसलिए रखे)। कोई रखे और इसे ठीक लगे तो हो गया, गिर गया। हाठयुं नहीं समझते? वण... वण... कपास की निकलती है न? क्या कहते हैं हिन्दी में? कपास की हांठयुं उगती है, तुम्हारी भाषा में समझ में नहीं आता, भाषा समझ में नहीं आती। हाठी! होती है न, हाठी, कपास की हाठी (होती है), वह हाठी होती है न? लकड़ी, कपास की लकड़ी! कपास की हाठी, वह सूखी हो और उसका फिर बनाते हैं, क्या कहलाता है वह? पर्दा डालते हैं न? त्रापी बनाते हैं, हाठी की त्रापी बनाते हैं और उसकी ओट में सोने जाते हैं, यह है (तो) ठीक है, कहते हैं कि परिग्रह है। ठण्डी हवा न आवे, यह रोके इसलिए जरा (ठीक रहे), (यह) परिग्रह है। ऐसा कहते हैं। और वह परिग्रह अन्दर उत्पन्न हुआ, वह मूर्च्छा है और वहाँ बन्धन है, है, और है – ऐसा कहते हैं। आहा...हा...!

मुमुक्षु – यह तो चौथे काल की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री – यह पाँचवें काल के, तीन काल के साधु की बात है। उसे कहते हैं कि चौथे काल के साधु के लिये ऐसी बात होगी। यह पंचम काल के साधु तो पंचम काल के साधु के लिये तो बात करते हैं। समझ में आया? यहाँ शास्त्र में कुछ विशेष प्रतिज्ञा लेनी और न ले तो उसे दण्ड है—ऐसा कुछ नहीं है। अत्याग का भाव है इतना दण्ड, पाप लगता है, वह तो ठीक है परन्तु प्रतिज्ञा लेकर तोड़ना, वह तो महा पाप है। समझ में आया? वह यहाँ कहते हैं। इसके लिए तो आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने स्वयं श्लोक में बात ली है, लो! कहो!

जैसे भाव के बिना भी परप्राणों का घात हो जाता है, उसी प्रकार भाव न हो, तथापि परिग्रह का ग्रहण हो जाय—ऐसा कभी नहीं हो सकता। जहाँ परिग्रह का ग्रहण होता है, वहाँ अशुद्धोपयोग का सद्भाव अवश्य होता ही है। उसके परिणाम मलिन ही होते हैं। रागवाले मलिन भाव होते हैं। समझ में आया? **इसलिए परिग्रह से बन्ध का होना ऐकान्तिक-निश्चित-नियमरूप है।** ऐकान्तिक का अर्थ नियम। **इसलिए परिग्रह के छेदपना ऐकान्तिक है। ऐसा होने से ही परम श्रमण ऐसे अरहन्त भगवन्तों ने पहले से ही सर्व परिग्रह का त्याग किया है और अन्य श्रमणों को भी पहले से ही सर्व परिग्रह का त्याग करना चाहिए।** ऐसा भगवान का फरमान है। आहा...हा...!

श्लोक-१४

***वक्तव्यमेव किल यत्तदशेषमुक्त-**
मेतावतैव यदि चेतयतेऽत्र कोऽपि।
व्यामोहजालमतिदुस्तरमेव नूनं
निश्चेतनस्य वचसामतिविस्तरेऽपि।।१४।।

[अब, 'कहने योग्य सब कहा गया है' इत्यादि कथन श्लोक द्वारा किया जाता है।]

[अर्थ]:- जो कहनेयोग्य ही था, वह अशेषरूप से कहा गया है, इतनेमात्र से ही यदि यहाँ कोई चेत जाय-समझ ले तो, (अन्यथा) वाणी का अतिविस्तार किया जाय, तथापि निश्चेतन (जड़वत्, नासमझ) को व्यामोह का जाल वास्तव में अति दुस्तर है।

श्लोक १४ पर प्रवचन

अब आचार्य कहते हैं **'कहने योग्य सब कहा गया है' इत्यादि कथन श्लोक द्वारा किया जाता है।** आहा...हा...! अहो! अमृतचन्द्राचार्यदेव सन्त-मुनि! मुनिपने की

कथनी करते (हुए कहते हैं कि) एक वस्त्र का टुकड़ा भी हो या कोई भी दूसरी चीज का हो तो वह परिग्रह है और बन्ध का ही कारण है, पाप ही है। **जो कहने योग्य ही था, वह अशेषरूप से कहा गया है,...** भाषा देखो! आचार्य महाराज कहते हैं, भाई! जो कहने योग्य था, वह सब / अशेष कहा, दूसरा क्या कहें हम?

इतनेमात्र से ही यदि यहाँ कोई चेत जाय.... इतनेमात्र से कोई समझ जाये कि मार्ग तो यह है, दूसरा मार्ग विपरीत करना, वह सब विपरीत मान्यता है। **(अन्यथा) वाणी का अतिविस्तार किया जाय, तथापि निश्चेतन (जड़वत्, नासमझ) को व्यामोह का जाल वास्तव में अति दुस्तर है।** अज्ञानी को यह बात समझ में नहीं आवे। महामति दुस्तर है, क्या कहें? कहते हैं। हमें जो कहना था, वह कह दिया। समझ में आया?

निर्ग्रन्थ कहना और कुछ भी ग्रन्थ (परिग्रह) का राग तीव्र रहा या वस्त्र का संयोग रहा तो निर्ग्रन्थपना नहीं रहता—ऐसी बात हमें कहनी थी, (वह) तुम्हें कह दी, (ऐसा) आचार्य कहते हैं। अन्यथा तो इतने से समझे तो समझ जाये। वस्तु का स्वरूप है ऐसा (समझ जाये)। वाणी का विस्तार करने में आवे तो भी जड़ जैसों को तो मोह की जाल दुस्तर है। उसे नहीं जँचे। समझ में आया? ना समझ को... भाषा में ऐसा लिया है।

निश्चेतन को.... चेतनरहित प्राणी हैं, भान नहीं होता, कहते हैं। कुछ भी वस्त्र आदि का टुकड़ा अधिक रखकर मानना कि मुनिपना है तो हमने तो कह दिया, बापू! जो कहना था वह; अन्यथा तो चेतनरहित प्राणी को चाहे जितना वाणी का विस्तार करें (तो भी) उसे नहीं समझ में आता, उसका यह मोह का विलास नहीं मिटता। आहा...हा...! कैसी करुणा से कहते हैं, देखो! समझ में आया?

भाषा देखो! ऐसा ही करके अन्दर? **(अन्यथा) वाणी का अतिविस्तार किया जाय, तथापि निश्चेतन (जड़वत्, नासमझ) को व्यामोह का जाल वास्तव में अति दुस्तर है।** चैतन्य की मर्यादा की जागृति का बोध नहीं, उसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र की क्या मर्यादा है, उसका पता नहीं—ऐसे निश्चेतन को चाहे जितना कहोगे तो उसे

समाधान नहीं होगा, उसके मोह की अति जाल, व्यामोह तर्क किया ही करेगी, यह तो ऐसा है, यह तो ऐसा है, इसका कारण यह है, इसका कारण यह है.... देश, काल, शास्त्र में नहीं कहा? देश, काल में भी थोड़ा परिग्रह रखना परन्तु यह थोड़ा कौन-सा? यह चलता है थोड़ा इसलिए दूसरा नहीं, अपवाद है, अपवाद है (ऐसा अज्ञानी कहता है)। परन्तु यह अपवाद यह मोरपिच्छी रखना या वाणी सुनना, यह सब उपकरणों का अपवाद है, यह अपवाद है। समझ में आया? इससे दूसरा रखना, वह अपवाद है। अपवाद अर्थात् पाप-निन्दा है, उस भूमिका के योग्य नहीं है, वह तो निन्द्य है, भाई! ऐसा स्वरूप है। आहा...हा...! समझ में आया? **अति दुस्तर है।** मोह की जाल उतरना महा दुस्तर है।

गाथा - २२०

अथान्तरङ्गच्छेदप्रतिषेध एवायमुपधिप्रतिषेध इत्युपदिशति-

ण हि णिरवेक्खो चागो ण हवदि भिक्खुस्स आसयविसुद्धी।
अविसुद्धस्स य चित्ते कहं णु कम्मक्खओ विहिदो।।२२०।।

न हि निरपेक्षस्त्यागो न भवति भिक्षाराशयविशुद्धिः।
अविशुद्धस्य च चित्ते कथं नु कर्मक्षयो विहितः।।२२०।।

न खलु बहिरङ्गसङ्गसद्भावे तुषसद्भावे तण्डुलगताशुद्धत्वस्येवाशुद्धोपयोगरूपस्यान्तरङ्गच्छेदस्य प्रतिषेधः, तद्भावे च न शुद्धोपयोगमूलस्य कैवल्यस्योपलम्भः। अतोऽशुद्धोपयोगरूपस्यान्तरङ्गच्छेदस्य प्रतिषेधं प्रयोजनमपेक्ष्योपधेर्विधीयमानः प्रतिषेधोऽन्तरङ्गच्छेदप्रतिषेध एव स्यात्।।२२०।।

एवं भावहिंसाव्याख्यानमुख्यत्वेन पञ्चमस्थले गाथाषट्कं गतम्। इति पूर्वोक्तक्रमेण `एवं पणमिय सिद्धे' इत्याद्येकविंशतिगाथाभिः स्थलपञ्चकेनोत्सर्गचारित्रव्याख्याननामा प्रथमोऽन्तराधिकारः समाप्तः। अतः परं चारित्रस्य देशकालापेक्षयापहृतसंयमरूपेणापवादव्याख्यानार्थं पाठक्रमेण त्रिंशद्गाथाभिर्द्वितीयोऽन्तराधिकारः प्रारभ्यते। तत्र चत्वारि स्थलानि भवन्ति। तस्मिन्प्रथमस्थले निर्ग्रन्थमोक्षमार्गस्थापनामुख्यत्वेन `**ण हि णिरवेक्खो चागो**' इत्यादि गाथापञ्चकम्। अत्र टीकायां गाथात्रयं नास्ति। तदनन्तरं सर्वसावद्यप्रत्याख्यानलक्षणसामायिकसंयमासमर्थानां यतीनां संयमशौचज्ञानोपकरणनिमित्तमपवादव्याख्यानमुख्यत्वेन `छेदो जेण ण विज्जदि' इत्यादि सूत्रत्रयम्। तदनन्तरं स्त्रीनिर्वाणनिराकरणप्रधानत्वेन `पेच्छदि ण हि इह लोगं' इत्याद्येकादश गाथा भवन्ति। ताश्चा **अमृतचन्द्रटीकायं** न सन्ति। ततः परं सर्वोपेक्षासंयमासमर्थस्य तपोधनस्य देशकालापेक्षया किंचित्संयमसाधकशरीरस्य निरवद्याहारादिसहकारिकारणं ग्राह्यमिति पुनरप्यपवादविशेष-व्याख्यानमुख्यत्वेन `उवयरणं जिणमग्गे' इत्याद्येकादशगाथा भवन्ति। अत्र टीकायां गाथाचतुष्टयं नास्ति। अवं मूलसूत्राभिप्रायेण त्रिंशद्गाथाभिः, टीकापेक्षया पुनर्द्वादशगाथाभिः द्वितीयान्तराधिकारे समुदायपातनिका। तथाहि-अथ भावशुद्धिपूर्वकबहिरङ्गपरिग्रहपरित्यागे कृते सति अभ्यन्तरपरिग्रहपरित्यागः कृत एव भवतीति निर्दिशति-**ण हि णिरवेक्खो चागो** न हि निरपेक्षस्त्यागः यदि चेत्, परिग्रहत्यागः सर्वथा निरपेक्षो न भवति किंतु किमपि

वस्त्रपात्रादिकं ग्राह्यमिति भवता भण्यते, तर्हि हे शिष्य **ण हवदि भिक्खुस्स आसयविसुद्धी** न भवति भिक्षोराशयविशुद्धिः, तदा सापेक्षपरिणामे सति भिक्षास्तपोधनस्य चित्तशुद्धिर्न भवति। **अविसुद्धस्य हि चित्ते** शुद्धात्मभावनारूपशुद्धिरहितस्य तपोधनस्य चित्ते मनसि हि स्फुटं **कहं तु कम्मक्खओ विहिदो** कथं तु कर्मक्षयो विहितः उचितो, न कथमपि। अनेनैतदुक्तं भवति-यथा बहिरङ्गतुषसद्भावे सति तण्डुलस्याभ्यन्तरशुद्धिं कर्तुं नायाति तथा विद्यमाने वा बहिरङ्गपरिग्रहाभिलाषे सति निर्मलशुद्धात्मानुभूतिरूपां चित्तशुद्धिं कर्तुं नायाति। यदि पुनर्विशिष्टवैराग्यपूर्वकपरिग्रहत्यागो भवति तदा चित्तशुद्धिर्भवत्येव, ख्यातिपूजालाभनिमित्तत्यागे तु न भवति।।२२०।।

अब, इस उपधि (परिग्रह) का निषेध वह अन्तरंग छेद का ही निषेध है, ऐसा उपदेश करते हैं:—

निरपेक्ष त्याग न होय तो, नहिं भाव शुद्धि साधु के।
अरु भाव में अविशुद्ध के, क्षय कर्म का कैसे बने ?॥२२०॥

अन्वयार्थ – **[निरपेक्षः त्यागः न हि]** यदि निरपेक्ष (किसी भी वस्तु की अपेक्षारहित) त्याग न हो तो **[भिक्षोः]** भिक्षु के **[आशयविशुद्धिः]** भाव की विशुद्धि **[न भवति]** नहीं होती; **[च]** और **[चित्ते अविशुद्धस्य]** जो भाव में अविशुद्ध है उसके **[कर्मक्षयः]** कर्मक्षय **[कथं नु]** कैसे **[विहितः]** हो सकता है ?

टीका – जैसे छिलके के सद्‌भाव में चावलों में पाई जानेवाली (रक्ततारूप) अशुद्धता का त्याग (नाश, अभाव) नहीं होता, उसी प्रकार बहिरंग संग के सद्‌भाव में अशुद्धोपयोगरूप अन्तरंग छेद का त्याग नहीं होता और उसके सद्‌भाव में शुद्धोपयोगमूलक कैवल्य (मोक्ष) की उपलब्धि नहीं होती। (इससे ऐसा कहा गया है कि) अशुद्धोपयोगरूप अन्तरंग छेद के निषेधरूप प्रयोजन की अपेक्षा रखकर विहित (आदेश) किया जानेवाला उपधि का निषेध, वह अन्तरंग छेद का ही निशेध है॥२२०॥

प्रवचन नं. २१६ का शेष **आषाढ़ कृष्ण १, सोमवार, ३० जून १९६९**

अब, इस उपधि (परिग्रह) का निषेध, वह अन्तरंग छेद का ही निषेध है,.... लो! जितना वस्त्र-पात्र का एक टुकड़ा, तिलतुषमात्र का निषेध किया, वह अन्तरंग के

पाप का / छेद का निषेध है। वह अन्तर छेद लगता है, उसका निषेध किया है, पाप लगता है, उसका निषेध किया है।

ण हि णिरवेक्खो चागो ण हवदि भिक्खुस्स आसयविसुद्धी।
अविसुद्धस्स य चित्ते कहं णु कम्मक्खओ विहिदो।।२२०।।

निरपेक्ष त्याग न होय तो, नहिं भाव शुद्धि साधु के।
अरु भाव में अविशुद्ध के, क्षय कर्म का कैसे बने ?॥२२०॥

यह गुजराती है न, इसलिए साथ में है। यह गुजराती है। २२० (गाथा) है। है ? भगवान आचार्य दृष्टान्त देते हैं। **जैसे छिलके के सद्भाव में चावलों में पाई जानेवाली (रक्ततारूप) अशुद्धता का त्याग (नाश, अभाव) नहीं होता,....** क्या कहते हैं ? कि चावल है न, यह चावल। चावल उसका छिलका, उसके ऊपर का छिलका होता है न, छिलका ! छिलका होता है और लालिमा जाये ऐसा नहीं होता। चावल है न (गुजराती में) चोखा कहते हैं न ? चावल ! सफेद-सफेद... ऊपर रक्तता होती है न, लाल रंग (होता है) और ऊपर छिलका, छिलके की मौजूदगी हो और लाल रंग जाये ऐसा नहीं होता। दृष्टान्त देखो ! छिलका गया हो और लाल रंग गया हो (ऐसा) होता है। छिलका गया हो और लाल रंग रहा हो। नग्न मुनि होकर आवे, वस्त्र-पात्र न हो ऐसा हो तो वह छिलका नहीं परन्तु अन्दर मिथ्यात्वभाव है, राग का भाव है, वहाँ तो इस राग का रंग हो सकता है। परन्तु जहाँ छिलका है, वहाँ राग का रंग न हो—ऐसा नहीं हो सकता। समझ में आया ? यह बादाम होती है न ? बादाम लो न ! बादाम, सफेद, ऊपर लाल छिलका (होता है) मोटा छिलका हो; कोई कहे कि छिलका मोटा रहे और अन्दर छिलका निकल गया हो, ऐसा नहीं होता। इसी प्रकार हम बाहर वस्त्र रखते हैं, छिलके जैसा, परन्तु हमें उसके प्रति मोह नहीं है—ऐसा नहीं होता, ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! दृष्टान्त कैसा दिया है ? देखो ! यह तो जिसे आत्मा का उद्धार करना हो, उसे ऐसा तत्त्व है—ऐसा समझना पड़ेगा। यह कोई रूखी बात नहीं है। समझ में आया ? भाव के भाव से भरपूर बात है, बापू ! आहा...हा... !

जैसे छिलके के सद्भाव में.... चावलों में पाई जानेवाली (रक्ततारूप) अशुद्धता का त्याग (नाश, अभाव) नहीं होता,.... छिलके का छिलका पड़ा हो और

लाल रंग चला जाये—ऐसा होगा ? क्या कहा यह ? समझ में आया ? इसी प्रकार वस्त्र-पात्र हों और अन्दर मूर्च्छा का भाव न हो—ऐसा कभी नहीं होता। मूर्च्छा का भाव होता ही है—ऐसा कहते हैं। वस्त्र-पात्र छूट गये हों, नग्न अनन्त बार हुआ, दो-दो महीने का संथारा किया। समझ में आया? वृक्ष की डाल की तरह (हुआ) परन्तु अन्दर रागरहित परमानन्दस्वरूप का भान नहीं और साधुपद जो वीतराग चारित्र होता है, वह तो होता नहीं, पंच महाव्रत के परिणाम और देह की क्रिया ऐसी की... ऐसी की। समझ में आया ?

कहते हैं, जैसे छिलके की अस्ति में, सद्भाव अर्थात् अस्ति। हयाति कहते हैं न ? मौजूदगी, छिलके की मौजूदगी, अस्ति। **चावलों में पाई जानेवाली.....** लाल रंग का उसे त्याग नहीं हो सकता। **उसी प्रकार बहिरंग संग के सद्भाव में....** उसी प्रकार बहिरंग वस्त्र-पात्र के संग में **अशुद्धोपयोगरूप अन्तरंग छेद का त्याग नहीं होता....** उसे मलिन परिणाम का अभाव नहीं होता। अरे! कठिन बात, भाई! आहा...हा...! सन्तों ने कितनी स्पष्टता की है! गाथा, टीका... समझ में आया ? ऐसा अनादि का सर्वज्ञ परमेश्वर का मुनिपने का यह मार्ग अनादि का है, नया नहीं। समझ में आया ? वस्त्र-पात्रसहित जहाँ मुनिपना मनवाया है, वह पंथ नया निकला है। वीतरागमार्ग का वह मार्ग नहीं है, मार्ग वीतराग का नहीं है। बहुत कठिन काम! आहा...हा...! पोटले के पोटले सिर पर उठायें... निर्ग्रन्थ, निर्ग्रन्थ साधु और साध्वी कहलाये। भाई! ऐसा नहीं होता। समझ में आया ? बहिरंग संग की अस्ति, बहिरंग संग की मौजूदगी (होवे), वहाँ **अशुद्धोपयोगरूप अन्तरंग छेद का त्याग नहीं होता....** ममता है, है और है। आहा...हा...! ऐसा स्वरूप है भाई! यह तो सर्वज्ञ परमेश्वर ने अनादि से कहा है, देखा है, वैसा सन्तों ने जानकर कहा है, मार्ग यह है, भाई! तू मान, न मान उसके आधार से कहीं वस्तु नहीं है, वस्तु तो यह है। इसे देव-गुरु-शास्त्र की पहचान करनी पड़ेगी या नहीं ? चारित्रवन्त गुरु कैसे होते हैं ? आहा...हा...! ऐसा कहते हैं, उनकी पहचान कर। समझ में आया ?

हमें मूर्च्छा नहीं, हम संग करते हैं। वस्त्र को रखने का, पात्र को रखने का (संग करते हैं) परन्तु हमें रखने के भाव में ममता नहीं है... चारित्र निर्वाह के लिए रखते हैं—ऐसा कहते हैं। मिथ्यात्वभाव है, कहते हैं। आहा...हा...! भाई! ऐसा काम है। समझ में

आया ? ऐसी बात सुनना कठिन ! ऐसी लगती है लोगों को यही मार्ग सच्चा ? अरे ! यह क्या, इसके सिवाय कुछ भी दूसरा फेरफार कोई माने तो वह मार्ग सच्चा है नहीं। जैन में भी गड़बड़ उठी, वहाँ अन्य की तो बातें इसमें कहाँ करना ? आहा...हा... ! वस्त्र रखे, वह रखे (और कहे) हम साधु हैं, हम सन्त हैं, हम मुनि हैं, योगी हैं....

मुमुक्षु – उनके शास्त्र में ऐसा लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री – परन्तु मार्ग में ऐसा स्वरूप है नहीं। वस्तु का स्वरूप ऐसा नहीं है। उनके शास्त्र में लिखा हो तो वह भी सब उल्टा अज्ञान लिखा है। आ...हा... ! ऐसा मार्ग भाई ! यह कहीं किसी के पक्ष का मार्ग नहीं है; यह तो भगवान परमेश्वर केवलज्ञानी ने देखी हुई पद्धति की विधि का मार्ग है।

उसके सद्भाव में.... अशुद्धोपयोग के सद्भाव में। अशुद्ध उपयोग है न ? **अन्तरंग छेद का त्याग नहीं होता और उसके सद्भाव में शुद्धोपयोगमूलक कैवल्य (मोक्ष) की उपलब्धि नहीं होती।** लो, आहा...हा... ! जहाँ अन्दर संग होता है और जहाँ अन्दर परिग्रह बुद्धि है, वहाँ **शुद्धोपयोगमूलक कैवल्य (मोक्ष) की उपलब्धि नहीं होती।** अशुद्ध उपयोग कहा न पहले को ? शुद्ध उपयोग जिसका मूल है—ऐसे केवल्य अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती।

(इससे ऐसा कहा गया है कि) अशुद्धोपयोगरूप अन्तरंग छेद के निषेधरूप प्रयोजन की अपेक्षा रखकर विहित (आदेश) किया जानेवाला.... भगवान से फरमाया गया। **उपधि का निषेध, वह अन्तरंग छेद का ही निषेध है।** यह नहीं रखना, यह नहीं होता, यह नहीं होता—ऐसा जो कहा है, वह अन्तर के पाप का निषेध किया है—ऐसा कहते हैं। गजब बात भाई ! समझ में आया ?

अब, 'उपधि, वह ऐकान्तिक अन्तरंग छेद है' ऐसा विस्तार से.... कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

गाथा - २२१

अथैकान्तिकान्तरङ्गच्छेदत्वमुपधेर्विस्तरेणोपदिशति-

किध तम्हि णत्थि मुच्छा आरंभो वा असंजमो तस्स।
तध परदव्वम्मि रदो कधमप्पाणं पसाधयदि।।२२१।।

कथं तस्मिन्नास्ति मूर्च्छा आरम्भो वा असंयमस्तस्य।
तथा परद्रव्ये रतः कथमात्मानं प्रसाधयति।।२२१।।

उपधिसद्भावे हि ममत्वपरिणामलक्षणाया मूर्च्छायास्तद्विषयकर्मप्रक्रमणपरिणामलक्षणस्यारम्भस्य शुद्धात्मरूपहिंसनपरिणामलक्षणस्यासंयमस्य वावश्यम्भावित्वात्तथोपधिद्वितीयस्य परद्रव्यरतत्वेन शुद्धात्मद्रव्यप्रसाधकत्वाभावाच्च एकान्तिकान्तरङ्गच्छेदत्वमुपधेरवधार्यत एव। इदमत्र तात्पर्यमेवंविधत्वमुपधेरवधार्य स सर्वथा संन्यस्तव्यः।।२२१।।

अथ तमेव परिग्रहत्यागं द्रढयति-

गेण्हदि व चेलखंडं भायणमत्थि त्ति भणिदमिह सुत्ते।
जदि सो चत्तालंबो हवदि कहं वा अणारंभो।।१७।।

वत्थक्खंडं दुद्दियभायणमण्णं च गेण्हदि णियदं।
विज्जदि पाणारंभो विक्खेवो तस्स चित्तम्मि।।१८।।

गेण्हइ विधुणइ धोवइ सोसेइ जदं तु आदवे खित्ता।
पत्तं व चेलखंडं बिभेदि परदो य पालयदि।।१९।।

गेण्हदि व चेलखंडं गृह्णाति वा चेलखण्डं वस्त्रखण्डं, **भायणं** भिक्षाभाजनं वा **अत्थि त्ति भणिदं** अस्तीति भणितमास्ते। क्व। **इह सुत्ते** इह विवक्षितागमसूत्रे **जदि** यदि चेत्। **सो चत्तालंबो हवदि कहं** निरालम्बनपरमात्मतत्त्वभावनाशून्यः सन् स पुरुषो बहिर्द्रव्यालम्बनरहितः कथं भवति, न कथमपि, **वा**

अणारंभो निःक्रियनिरारम्भनिजात्मतत्त्वभावनारहितत्वेन निरारम्भो वा कथं भवति, किंतु सारम्भ एव; इति प्रथमगाथा। **वत्थक्खंडं दुद्दियभायणं** वस्त्रखण्डं दुग्धिकाभाजनं **अण्णं च गेण्हदि** अन्यच्च गृह्णाति कम्बलमृदुशयनादिकं यदि चेत्। तदा किं भवति। **णियदं विज्जदि पापारंभो** निजशुद्धचैतन्यलक्षणप्राण-विनाशरूपो परजीवप्राणविनाशरूपो वा नियतं निश्चितं प्राणारम्भः प्राणवधो विद्यते, न केवलं प्राणारम्भः **विक्खेवो तस्स चित्तम्मि** अवक्षिप्तचित्तपरमयोगरहितस्य सपरिग्रहपुरुषस्य विक्षेपस्तस्य विद्यते चित्ते मनसीति। इति द्वितीयगाथा। **गेण्हइ** स्वशुद्धात्मग्रहणशून्यः सन् गृह्णाति किमपि बहिर्द्रव्यं; **विधुणइ** कर्मधूलिं विहाय बहिरंगधूलिं विधूनोति विनाशयति; **धोवइ** निर्मलपरमात्मतत्त्वमलजनकरागादिमलं विहाय बहिरंगमलं धौति प्रक्षालयति; **सोसेइ जदं तु आदवे खित्ता** निर्विकल्पध्यानातपेन संसारनदी-शोषणमकुर्वन् शोषयति शुष्कं करोति यतं तु यत्नपरं तु यथा भवति। किं कृत्वा। आतपे निक्षिप्य। किं तत्। **पत्तं व चेलखंडं** पात्रं वस्त्रखण्डं वा। **बिभेदि** निर्भयशुद्धात्मतत्त्वभावनाशून्यः सन् बिभेति भयं करोति। कस्मात्सकाशात्। **परदो य** परतश्चौरादेः। **पालयदि** परमात्मभावनां न पालयन्न रक्षन्परद्रव्यं किमपि पालयतीति तृतीयगाथा।।१७-१९।।

अथ सपरिग्रहस्य नियमेन चित्तशुद्धिर्नश्यतीति विस्तरेणाख्याति-**किध तम्हि णत्थि मुच्छा** परद्रव्यममत्वरहितचिच्चमत्कारपरिणतेर्विसदृशा मूर्च्छा कथं नास्ति, अपि त्वस्त्येव। क्व। तस्मिन् परिग्रहाकाङ्क्षितपुरुषे। **आरंभो वा** मनोवचनकायक्रियारहितपरमचैतन्यप्रतिबन्धक आरम्भो वा कथं नास्ति, किन्त्वस्त्येव; **असंजमो तस्स** शुद्धात्मानुभूतिविलक्षणा संयमो वा कथं नास्ति, किन्त्वस्त्येव तस्य सपरिग्रहस्य। **तध परदव्वम्मि रदो** तथैव निजात्मद्रव्यात्परद्रव्ये रतः **कधमप्पाणं पसाधयदि** स तु सपरिग्रहपुरुषः कथमात्मानं प्रसाधयति, न कथमपीति।।२२१।।

अब, 'उपधि वह ऐकान्तिक अन्तरंग छेद है' ऐसा विस्तार से उपदेश करते हैं—

मूर्छा-असंयम-आरम्भ न हो, उपधि रहे-कैसे बने ?
परद्रव्यरत जो होय तो, आत्मा उसे कैसे सधे ?॥२२१॥

अन्वयार्थ - [**तस्मिन्**] उपधि के सद्भाव में [**तस्य**] उस (भिक्षु) के [**मूर्च्छा**] मूर्छा, [**आरम्भः**] आरम्भ [**वा**] या [**असंयमः**] असंयम [**नास्ति**] न हो [**कथं**] यह कैसे हो सकता है ? (कदापि नहीं हो सकता), [**तथा**] तथा [**परद्रव्ये रतः**] जो परद्रव्य में रत हो वह [**आत्मानं**] आत्मा को [**कथं**] कैसे [**प्रसाधयति**] साध सकता है ?

टीका - उपधि के सद्भाव में, (१) ममत्व-परिणाम जिसका लक्षण है, ऐसी

मूर्च्छा, (२) उपधि सम्बन्धी कर्मप्रक्रम[१] के परिणाम जिसका लक्षण है ऐसा आरम्भ, अथवा (३) शुद्धात्मस्वरूप की हिंसारूप परिणाम जिसका लक्षण है, ऐसा असंयम अवश्यमेव होता ही है; तथा उपधि जिसका द्वितीय हो (अर्थात् आत्मा से अन्य ऐसा परिग्रह जिसने ग्रहण किया हो), उसके परद्रव्य में रतनपना (लीनता) होने के कारण शुद्धात्मद्रव्य की साधकता का अभाव होता है; इससे उपधि के ऐकान्तिक अन्तरंग छेदपना निश्चित होता ही है।

यहाँ यह तात्पर्य है कि — **'**उपधि ऐसी है, (परिग्रह वह अन्तरंग छेद ही है)', ऐसा निश्चित करके उसे सर्वथा छोड़ना चाहिए॥२२१॥

इस प्रवचन में अन्तिम पन्द्रह मिनिट आवाज खराब होने से अमुक भाग छोड़ दिया गया है।

प्रवचन नं. २१७ **आषाढ़ कृष्ण २, मंगलवार, १ जुलाई १९६९**

'प्रवचनसार' 'चरणानुयोगसूचक चूलिका' २२१ (गाथा)। **अब, 'उपधि वह ऐकान्तिक अन्तरंग छेद है' ऐसा विस्तार से उपदेश करते हैं—** मुनिपना की दशा की बात है। मुनि, सम्यग्दर्शनपूर्वक, स्वसंवेदनज्ञान सहित तीन कषाय के अभावरूप चारित्र की वीतरागता-परिणति सहित होते हैं। उनको अट्ठाईस मूलगुण (का) शुभराग होता है। इसके अलावा कोई भी परिग्रह, वस्त्र का एक टुकड़ा थोड़ा भी विशेष रखे तो भी तो वह उपधि (है)। उपधि कैसी है, यह बताते हैं।

किध तम्हि णत्थि मुच्छा आरंभो वा असंजमो तस्स।
तध परदव्वम्मि रदो कधमप्पाणं पसाधयदि।।२२१।।
मूर्छा-असंयम-आरम्भ न हो, उपधि रहे-कैसे बने?
परद्रव्यरत जो होय तो, आत्मा उसे कैसे सधे?॥२२१॥

थोड़ी सूक्ष्म बात है। सम्यग्दर्शन की बात तो कुछ उसके ख्याल में (आये ऐसी

१. कर्मप्रक्रम=काम में युक्त होगा; काम की व्यवस्था।

है)। अभेदस्वरूप है और अनुभव — आनन्द की वेदन दशा और स्वरूप का आचरण, इतनी दशा तो सम्यग्दर्शन में होती है। तदुपरान्त यहाँ तो मोक्ष अर्थात् परम आनन्द की प्राप्ति का साक्षात् कारण, ऐसी चारित्र दशा की मर्यादा कितनी होती है, यह समझाते हैं। मर्यादा से विशेष उपधि रखे, कुछ भी तुषमात्र (भी रखे) तो कहते हैं कि **उपधि के सद्भाव में,....** टीका। **उपधि के सद्भाव में, (१) ममत्व-परिणाम जिसका लक्षण है— ऐसी मूर्च्छा,....** होती है। कोई कहे कि हम रखते हैं, लेकिन हमें मूर्च्छा नहीं। समझ में आया? उपधि कुछ भी रखे और ममत्व नहीं है, ऐसा कहे तो भगवान कहते हैं कि वहाँ मूर्च्छा होती ही है। मूर्च्छा बिना चीज रखने की भावना क्यों हुई? मूर्च्छा है तो चीज रखते हैं। वह चीज रखे और मूर्च्छा न हो, ऐसा नहीं है—ऐसा यहाँ कहते हैं।

कुछ लोग कहते हैं न कि हमें मूर्च्छा नहीं है। वस्त्रादि रखते हैं, बाह्य की चीज रखते हैं, घड़ी रखते हैं, लाल पेन रखते हैं। समझे? मूर्च्छा हमें नहीं है, ऐसा कोई कहे तो भगवान कहते हैं कि तेरी वह बात झूठी है। मूर्च्छा बिना परिग्रह रखने का भाव होता नहीं। कठिन काम, भाई! कठिन काम है। कितने तो कहते हैं कि नया पंथ है। ऐसा हम मानते नहीं। अलग प्रकार की बात करते हैं। यहाँ तो भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर अनादि से कहते आये हैं, वह बात है। समझ में आया? सुना नहीं हो, इसलिए नया लगे तो क्या नया हो जाएगा? नया तो है नहीं, अनादि की यही मार्ग है। आ...हा...!

जिस धर्म की, पद की जितनी दशा है, उस दशा में जितना उसको राग है और जितना उसको परिग्रह का निमित्त है, इसके अतिरिक्त विशेष हो जाये तो वह पद रहता नहीं, ऐसा कहते हैं। समझते हैं, समझ में आया? परमेश्वर, मुनि किसको कहते हैं? जिसको आत्मज्ञान उपरान्त चारित्रदशा में अट्ठाईस मूलगुण का विकल्परूप इतना व्यापार तो हो और शरीर मात्र परिग्रह हो। यह आगे कहेंगे। समझ में आया? गुरु की वाणी एक परिग्रह होती है। गुरु की वाणी सुनना, वह भी एक परिग्रह है। निमित्त-उपकरण है। धर्मात्मा ज्ञान-दर्शन-चारित्र आनन्द सम्पन्न हो, उनका विनय करना, वह भी एक मन का उपकरण है। ऐसी सूक्ष्म बात है। समझ में आया? इसके अतिरिक्त सन्त को, मुनि को, वास्तविक मोक्ष के साधक जीव को दूसरा उपकरण होता नहीं। इसका उसे निर्णय करना

चाहिए। ऐसा मुनिपना नहीं माने तो उसे सम्यग्दर्शन भी नहीं होता। समझ में आया? चारित्र की ऐसी दशा है और इसके उपरान्त न्यून, अधिक, विपरीत माने तो सम्यग्दर्शन नहीं होता। गुरु की चारित्रदशा क्या है, उसकी खबर नहीं तो सम्यग्दर्शन कहाँ से होगा? समझ में आया?

ममत्व-परिणाम जिसका लक्षण है ऐसी मूर्च्छा,.... उपधि में मूर्च्छा हुए बिना रहती नहीं। समझ में आया? **(२) उपधि सम्बन्धी कर्मप्रक्रम के परिणाम जिसका लक्षण है, ऐसा आरम्भ,....** देखो! ये रखूँ, ध्यान रखना, यहाँ रखो, यहाँ रखो... ऐसा कर्मप्रक्रम (अर्थात्) काम में युक्त होना, काम की व्यवस्था। ऐसा करो, ऐसा करो, ऐसे रखो... (ऐसा कर्मप्रक्रम)। यहाँ तो वीतराग की बात है, भाई! सूक्ष्म बात है। समझ में आया? यह काम ऐसा करो, ऐसा करो। वस्त्र हो तो साफ करो, ऐसे रखो, मैलवाला हुआ है, उसे सूखने रखो, ये सब आरम्भ है। आहा...हा...!

उपधि सम्बन्धी कर्मप्रक्रम.... अर्थात् काम में युक्त होना, उस सम्बन्धी में जुड़ान होना। **परिणाम जिसका लक्षण है, ऐसा आरम्भ,....** है। उसका नाम भगवान, आरम्भ कहते हैं। आ...हा...! वीतरागमार्ग! समझ में आया? परमेश्वर त्रिलोकनाथ सर्वज्ञदेव सौ इन्द्र से पूजित परमात्मा, उनको त्रिकालज्ञान यह आया, ऐसी वाणी आयी कि, यह मार्ग है, भाई! समझ में आया? लो! कर्मप्रक्रम (अर्थात्) काम में जुड़ना, यहाँ रखना, यहाँ रखूँ, इसे सुखाऊँ, उसे धोऊँ, इसे आरम्भ कहा। अपने स्वभाव में बाहर निकल गये। राग की प्रवृत्ति हुई, यह आरम्भ है। ऐसा चारित्र अंगीकार किये बिना, ऐसी दशा बिना मुक्ति होती नहीं। समझ में आया? मोक्ष की दशा क्या है, उसको समझना तो पड़ेगा।

(३) शुद्धात्मस्वरूप की हिंसारूप परिणाम जिसका लक्षण है, ऐसा असंयम.... देखो! आ...हा...! शुद्धात्मस्वरूप भगवान आत्मा निर्दोष आनन्दस्वरूप, शुद्ध स्वरूप की हिंसारूप परिणाम। पर को रखने का भाव, हिंसारूप परिणाम हुआ। **ऐसा असंयम अवश्यमेव होता ही है;....** लो। उसको असंयम जरूर होता है, संयम रहता नहीं। आहा...हा...! कठिन काम। समझ में आया? यह कभी पढ़ा था? सुना नहीं। आहा...हा...! ऐसी बात है परन्तु बापू! मार्ग जो है, वह मार्ग समझे बिना (कहे कि)

लाओ, व्रत ले लो। क्या है उसमें? भाई! चारित्र की व्याख्या सम्यग्दर्शनसहित कोई अलौकिक है। समझ में आया? अहो... ! सन्त का मार्ग, साधु का मार्ग, परमेश्वर परमात्मा ने कहा ऐसे सन्त का मार्ग कोई अलौकिक है। ऐसी चीज कहीं और जगह होती नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि असंयम जरूर होता ही है। ओ...हो...हो... ! एक वस्त्र का टुकड़ा भी (रखे)... क्या कहते हैं? रुमाल! थोड़ा रुमाल रखे। आँख बहुत दुःखती है तो गरम पानी अचेत हो वह रखो। आँख बहुत लाल हो जाती है न। इतना टुकड़ा (रखे)। ठण्डे पानी में डूबोकर करते हैं न? कहते हैं कि वह उपधि है, असंयम है। इतना लेने का भाव हुआ, वह हिंसा हुई तो वहाँ असंयम है। आ...हा... ! ऐसी बात है, भाई! अरे... ! चारित्रवन्त परमेश्वरपद भाई! णमो लोए सव्व साहूणं! जिन्हें गणधर नमस्कार करे!! गणधर चौदह पूर्व की रचना करे, तब पंच परमेष्ठी को (वन्दन करते हैं)। गणधर का नमस्कार जिनको पहुँचे, वह पद कितना ऊँचा है! समझ में आया? आ...हा... ! चार ज्ञान और बारह अंग की रचना गणधर को एक क्षण में होती है, अन्तर्मुहूर्त में (होती है), ऐसे गणधर भी (बोलते हैं) णमो लोए सव्व साहूणं! शास्त्र रचना होती है तो ऐसा विकल्प आता है। उसमें अढ़ाई द्वीप में विराजमान, ऐसे सन्त की दशावन्त, सन्त की दशावन्त, उनको गणधर भी नमस्कार करते हैं। आहा...हा... ! साधुपद अलौकिक है। समझ में आया? उसे खबर नहीं। श्रद्धा की खबर नहीं, पहिचान नहीं है और (कहता है) ले लो चारित्र।

देखो! यह ग्रन्थ अभी का नहीं है। 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' दो हजार वर्ष पहले हुए। संवत ४९। उन्होंने बनाया है और संस्कृत टीका ९०० वर्ष पहले 'अमृतचन्द्राचार्यदेव' जंगल में रहते थे। महामुनि सन्त दिगम्बर मुनि, उन्होंने टीका बनायी। समझ में आया? यह 'सोनगढ़' की टीका और 'सोनगढ़' की पुस्तक नहीं है।

मुमुक्षु – छपा है 'सोनगढ़' में।

पूज्य गुरुदेवश्री – छपा तो क्या हुआ? कहीं भी छपे (उसमें क्या है?)

कहते हैं कि जरूर उसको असंयम होता है। आ...हा... ! कितना वीतरागमार्ग!

उसकी मर्यादा नग्नपना, अट्ठाईस मूलगुण आदि रहना, इसके अतिरिक्त कुछ भी परिग्रह का भाव हुआ (तो) जरूर हिंसा और असंयम होगा।

तथा उपधि जिसका द्वितीय हो.... चौथा बोल **(अर्थात् आत्मा से अन्य ऐसा परिग्रह जिसने ग्रहण किया हो)** भगवान आत्मा के अतिरिक्त, शरीर आदि परिग्रह है, वह मूर्च्छा नहीं है। किन्तु दूसरी चीज परिग्रह में रखे तो (उपधि है)। अपना भगवान आत्मा... ! यह तो चारित्र की बात है न, मुनिपने की बात है न ! अपना आत्मा छोड़कर कोई भी परद्रव्य का अंश, उसमें लीनता हुई, **(लीनता) होने के कारण शुद्धात्मद्रव्य की साधकता का अभाव होता है;....** आहा...हा... ! समझ में आया ?

भगवान आत्मा ! चारित्र, अपना शुद्धस्वरूप, परमानन्द भगवान आत्मा, उसका अन्तर में साधकपने में विरोध आ जाता है। **साधकता का अभाव होता है;....** शुद्धात्मस्वरूप के अतिरिक्त कोई भी परिग्रह का अंश भी रहे तो शुद्धात्मा के स्वभाव का साधकपने का अभाव हो जाता है और राग का साधकपना हो जाता है। समझ में आया ?

इससे उपधि के ऐकान्तिक अन्तरंग छेदपना निश्चित होता ही है। शरीर से कोई प्राणी मरे, न मरे; उसके साथ बन्ध का सम्बन्ध नहीं परन्तु परिग्रह रखनेवाला थोड़ा भी रखे और मूर्च्छा नहीं है, ऐसा कहे और हिंसा नहीं है, ऐसा कहे तो मिथ्यात्व है। आहा...हा... ! समझ में आया ? 'मूर्च्छा परिग्रहो' आया है, 'दशवैकालिक' में आया है। मूर्च्छा परिग्रहो। वे लोग ऐसा कहते हैं, हमें मूर्च्छा कहाँ है ? हम तो चारित्र निभाने के लिये वस्त्र-पात्र रखते हैं। भगवान कहते हैं, भाई ! चारित्र निभाने की दशा में ऐसा होता ही नहीं है। वह भाव हो तो चारित्रदशा रहती नहीं है, ऐसा कहते हैं। भाई ! वाद-विवाद की चीज नहीं। वस्तु का स्वरूप ही ऐसी चीज है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

मुनिमार्ग—मोक्ष के आनन्द में प्रवेश करने की तैयारी ! आ...हा... ! पूर्ण आनन्द, पूर्ण ज्ञान, पूर्ण शान्ति। अहो... ! आत्मा की पूर्ण पवित्रदशा, उसकी प्राप्ति की इस ओर बड़े हैं। ऐसी चारित्र की दशा को भगवान मुनिपना कहते हैं। इस मुनिपने में शरीर के अतिरिक्त कुछ भी परिग्रह रखने का भाव हुआ तो कहते हैं कि यह मूर्च्छा है, असंयम है, हिंसा है और शुद्धात्मद्रव्य के साधकपने का अभाव है। है या नहीं उसमें ? या यह 'सोनगढ़' का

है ? बहुत लोगों को ऐसा हो जाता है कि सम्यग्दर्शन की व्याख्या अर्थात् 'सोनगढ़' की। इतना महंगा कर दिया, ऐसा कहते हैं। ऐसा महंगा कर दिया। लेकिन किसने किया ? वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। समझ में आया ? टीका में ऐसा है, उसका नीचे अर्थ है। समझ में आया ? यहाँ तो वस्तु का स्वरूप ऐसा है।

इससे उपधि के ऐकान्तिक अन्तरंग छेदपना निश्चित होता ही है। आहा...हा... ! जो सन्त की साधुपने की पदवी (है), उसमें शरीर के अतिरिक्त कुछ भी पर को रखने का विकल्प आया तो मूर्च्छा है, हिंसा है, असंयम है और शुद्धात्मस्वभाव के साधकपने का अभाव है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

मुमुक्षु - .....

पूज्य गुरुदेवश्री - परन्तु मुनिपना होना चाहिए न ! आ...हा... ! धन्य अवतार, बापू ! मुनिपना, उसका दर्शन, उसका समय अलौकिक बात है। मुनि होने चाहिए न ! यहाँ तो आगम अनुसार व्यवहार की श्रद्धा और व्यवहार के आचरण का ठिकाना नहीं। आ...हा... ! उद्दिष्ट आहार तो उसके लिये प्रतिदिन होता है। व्यवहार का ठिकाना नहीं, वहाँ निश्चय तो है ही नहीं। जिसका व्यवहार झूठा है, वहाँ निश्चय तो है नहीं। ऐसी बात है, भाई ! मार्ग में वाद-विवाद नहीं चलता। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। आहा...हा... ! समझ में आया ?

यहाँ यह तात्पर्य है कि — 'उपधि ऐसी है, (परिग्रह वह अन्तरंग छेद ही है)', ऐसा निश्चित करके उसे सर्वथा छोड़ना चाहिए। लो। ऐसा कहते हैं। ओ...हो... ! धन्य अवतार ! जहाँ निर्णय ऐसा करे कि चारित्र तो ऐसा है। जिसमें वस्त्र का तिनका रखने का भाव नहीं, शरीर पर वस्त्र का धागा नहीं, लंगोटी का टुकड़ा नहीं। आ...हा... ! समझ में आया ?

गाथा - २२२

अथ कस्यचित्क्वचित्कदाचित्कथञ्चित्कश्चिदुपधिरप्रतिषिद्धोऽप्यस्तीत्यपवादमुपदिशति-

छेदो जेण ण विज्जदि गहणविसग्गेसु सेवमाणस्स।
समणो तेणिह वट्टदु कालं खेत्तं वियाणित्ता।।२२२।।

छेदो येन न विद्यते ग्रहणविसर्गेषु सेवमानस्य।
श्रमणस्तेनेह वर्ततां कालं क्षेत्रं विज्ञाय।।२२२।।

आत्मद्रव्यस्य द्वितीयपुद्गलद्रव्याभावात्सर्व एवोपधिः प्रतिषिद्ध इत्युत्सर्गः। अयं तु विशिष्टकालक्षेत्रवशात्कश्चिदप्रतिषिद्ध इत्यपवादः। यदा हि श्रमणः सर्वोपधिप्रतिषेधमास्थाय परममुपेक्षासंयमं प्रतिपत्तुकामोऽपि विशिष्टकालक्षेत्रवशावसन्नशक्तिर्न प्रतिपत्तुं क्षमते, तदापकृष्य संयमं प्रतिपद्यमानस्तद्बहिरङ्गसाधनमात्रमुपधिमातिष्ठते। स तु तथास्थीयमानो न खलूपधित्वाच्छेदः, प्रत्युत छेदप्रतिषेध एव। यः किलाशुद्धोपयोगाविनाभावी स छेदः। अयं तु श्रामण्यपर्यायसहकारिकारणशरीरवृत्तिहेतुभूताहारनिर्हारादिग्रहणविसर्जनविषयच्छेदप्रतिषेधार्थमुपादीयमानः सर्वथा शुद्धोपयोगाविनाभूतत्वाच्छेदप्रतिषेध एव स्यात्।।२२२।।

एवं श्वेताम्बरमतानुसारिशिष्यसम्बोधनार्थं निर्ग्रन्थमोक्षमार्गस्थापनमुख्यत्वेन प्रथमस्थले गाथापञ्चकं गतम्। अथ कालापेक्षया परमोपेक्षासंयमशक्त्यभावे सत्याहारसंयमशौचज्ञानोपकरणादिकं किमपि ग्राह्यमित्यपवादमुपदिशति-**छेदो जेण ण विज्जदि** छेदो येन न विद्यते। येनोपकरणेन शुद्धोपयोगलक्षणसंयमस्य छेदो विनाशो न विद्यते। कयोः। **गहणविसग्गेसु** ग्रहणविसर्गयोः। यस्योपकरणस्यान्यवस्तुनो वा ग्रहणे स्वीकारे विसर्जने त्यागे। किं कुर्वतः तपोधनस्य। **सेवमाणस्स** तदुपकरणं सेवमानस्य। **समणो तेणिह वट्टदु कालं खेत्तं वियाणित्ता** श्रमणस्तेनोपकरणेनेह लोके वर्तताम्। किं कृत्वा। कालं क्षेत्रं च विज्ञायेति। अयमत्र भावार्थः-कालं पञ्चमकालं शीतोष्णादिकालं वा, क्षेत्रं भरतक्षेत्रं मानुषजाङ्गलादिक्षेत्रं वा, विज्ञाय येनोपकरणेन स्वसंवित्तिलक्षणभावसंयमस्य बहिरङ्गद्रव्यसंयमस्य वा छेदो न भवति तेन वर्तते इति।।२२२।।

अब, 'किसी के कहीं कभी किसी प्रकार कोई उपधि अनिषिद्ध भी है' ऐसे अपवाद का उपदेश करते हैं:—

जिसके ग्रहण या त्याग में ना, छेद हो मुनिराज के।
उप उपधिसह वर्तो भले, मुनि काल-क्षेत्र को जानके ॥२२२॥

अन्वयार्थ - [**ग्रहणविसर्गेषु**] जिस उपधि के (आहार-नीहारादि के) ग्रहण-विसर्जन में सेवन करने में [**येन**] जिससे [**सेवमानस्य**] सेवन करनेवाले के [**छेदः**] छेद [**न विद्यते**] नहीं होता, [**तेन**] उस उपधियुक्त, [**कालं क्षेत्रं विज्ञाय**] काल क्षेत्र को जानकर, [**इह**] इस लोक में [**श्रमणः**] श्रमण [**वर्तताम्**] भले वर्ते।

टीका - आत्मद्रव्य के द्वितीय पुद्गलद्रव्य का अभाव होने से समस्त ही उपधि निषिद्ध है—ऐसा उत्सर्ग (सामान्य नियम) है; और विशिष्ट कालक्षेत्र के वश कोई उपधि अनिषिद्ध है—ऐसा अपवाद है। जब श्रमण सर्व उपधि के निषेध का आश्रय लेकर परमोपेक्षासंयम[१] को प्राप्त करने का इच्छुक होने पर भी, विशिष्ट कालक्षेत्र के वश हीन शक्तिवाला होने से उसे प्राप्त करने में असमर्थ होता है, तब उसमें अपकर्षण[२] करके (अनुत्कृष्ट) संयम प्राप्त करता हुआ, उसकी बहिरंग साधनमात्र उपधि का आश्रय करता है। इस प्रकार जिसका आश्रय किया जाता है, ऐसी वह उपधि, उपधिपने के कारण वास्तव में छेदरूप नहीं है, प्रत्युत छेद की निषेधरूप (त्यागरूप) ही है। जो उपधि अशुद्धोपयोग के बिना नहीं होती, वह छेद है। किन्तु यह (संयम की बाह्यसाधनमात्रभूत उपधि) तो श्रामण्यपर्याय की सहकारी कारणभूत शरीर की वृत्ति के हेतुभूत आहार-नीहारादि के ग्रहण-विसर्जन (ग्रहण-त्याग) सम्बन्धी छेद के निषेधार्थ ग्रहण की जाने से सर्वथा शुद्धोपयोग सहित है, इसलिए छेद के निषेधरूप ही है ॥२२२॥

---

१. परमोपेक्षासंयम=परम-उपेक्षासंयम [उत्सर्ग, निश्चयनय, सर्वपरित्याग परमोपेक्षासंयम, वीतराग चारित्र, और शुद्धोपयोग; - ये सब एकार्थवाची हैं।]

२. अपकर्षण=हीनता [अपवाद, व्यवहारनय, एकदेशपरित्याग, अपहृतसंयम (अल्पता-हीनतावाला संयम) सरागचारित्र और शुभोपयोग - ये सब एकार्थवाची हैं।]

प्रवचन नं. २१७ का शेष आषाढ़ कृष्ण २, मंगलवार, १ जुलाई १९६९

अब, 'किसी के कहीं कभी किसी प्रकार कोई उपधि अनिषिद्ध भी है' ऐसे अपवाद का उपदेश करते हैं:—

छेदो जेण ण विज्जदि गहणविसग्गेसु सेवमाणस्स।
समणो तेणिह वट्टदु कालं खेत्तं वियाणित्ता।।२२२।।

देखो! '**कालं खेत्तं वियाणित्ता**' इसमें से कुछ लोग बताते हैं। इसका स्पष्टीकरण बाद में आगे करेंगे। २२२ (गाथा)।

जिसके ग्रहण या त्याग में ना, छेद हो मुनिराज के।
उप उपधिसह वर्तो भले, मुनि काल-क्षेत्र को जानके ॥२२२॥

टीका - **आत्मद्रव्य....** भगवान आत्मा! अतीन्द्रिय आनन्द का स्वरूप भगवान आत्मा का है। आत्मा का स्वरूप अतीन्द्रिय आनन्द (है), यह स्वद्रव्य है। जिसमें अनन्त ज्ञान, इस आत्मा में अनन्त अर्थात् स्वभाव की शक्तिरूप अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, अनन्त बल, अनन्त दृष्टापना, ऐसा अनन्त चतुष्टय उसमें पड़ा ही है। इसके अतिरिक्त अनन्त अनन्त गुणों से अविनाभाव पवित्र गुण। 'जहाँ चेतन वहाँ अनन्त गुण, केवली बोले ऐम।' भगवान आत्मा अन्दर विराजमान है परन्तु उसकी खबर भी नहीं। नजर करनी नहीं है, सुनना नहीं है। भगवान आत्मा जो अन्दर विराजमान है, इस आत्मा के अन्तर भाव में बेहद ज्ञान, आनन्द, शान्ति आदि अनन्त अनन्त... शान्ति है, ऐसे अनन्त गुण पड़े हैं। 'ज्यां चेतन त्यां अनन्त गुण, केवली बोले ऐम। प्रगट अनुभव आत्मनो निर्णय करो.... हे चेतन तुं... तारा धाममां' तेरी ऋद्धि भगवान तेरे धाम में (है)। लेकिन कुछ मालूम नहीं, विचार नहीं, मोक्ष क्या चीज है, उसकी खबर नहीं। बाह्य दृष्टि (है), वर्तमान जो प्रगट ज्ञान का थोड़ा क्षयोपशम है और राग, बस! उस पर्याय पर लक्ष्य (है)। एक समय की पर्याय के पीछे परमात्मा सारा चिदानन्द विराजमान है, उसकी तो खबर नहीं। समझ में आया?

कहते हैं कि **आत्मद्रव्य के द्वितीय....** भगवान आत्मा और दूसरा राग, एक दूसरी

पुद्गल चीज। वह दूसरी चीज हो गई। वस्त्र का एक टुकड़ा भी हो तो आत्मद्रव्य एक और दूसरी चीज हो गई। **द्वितीय पुद्गलद्रव्य का अभाव होने से समस्त ही उपधि निषिद्ध है....** भगवान आत्मा! यह तो मोक्ष का मार्ग, चारित्र की बात है न, भगवान! आ...हा...! 'श्रीमद्' ने कहा, 'सर्व भाव से औदासीन्य वृत्ति करी' 'अपूर्व अवसर' में (कहा)। 'सर्व भाव से औदासीन्य वृत्ति' सर्व भाव से उदास। 'देह मात्र संयम हेतु होय' देखो! 'अपूर्व अवसर' में ऐसी बात (कही है)। 'सर्व भाव से औदासीन्य वृत्ति करी, मात्र देह वह संयम हेतु होय जब, अन्य कारणे अन्य कशुं कल्पे नहि, देहे पण किंचित् मूर्छा नव होय जो, अपूर्व अवसर ऐवो क्यारे आवशे? क्यारे थईशुं बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जो, अपूर्व अवसर ऐवो क्यारे आवशे?' देखो! उसमें देहमात्र... संयम हेतु। उसके अर्थ करनेवाले भी विपरीत (अर्थ करते हैं।) लोगों को जैसी दृष्टि हो जाती है, उस दृष्टि अनुसार शास्त्र के अर्थ करते हैं। आ...हा...! ...विपरीत अर्थ करे। 'श्रीमद्' ना कहते हैं। देह वस्तु के अलावा अन्य कोई वस्तु होती नहीं; और वस्त्रसहित हो, उसे साधु मानना, कहाँ मेल है? इसमें क्या आया? भाई! 'श्रीमद्' कहते हैं, कहते हैं। किन्तु सभी को पूजते हैं, आदर करते हैं तो 'श्रीमद्' का जो कहने का आशय है, वह तो रहा नहीं। 'सर्व भावथी औदासीन्य वृत्ति करी, मात्र देह ते संयम हेतु' मात्र देह वह संयम हेतु, वे ऐसा कहते हैं। देह का तो त्याग हो सकता नहीं। इसलिए उसकी मूर्च्छा का त्याग होता है। आ...हा...! वह मिट्टी का, जड़ पिण्ड है। वह तो उसकी आयुष्य की स्थिति (पूरी होने पर) छूटता है।

भगवान तो... चीज है। अन्दर आत्मा आनन्दकन्द अमृत का सागर प्रभु (विराजमान है)। आ...हा...हा...! ऐसा अमृत का सागर भगवान आत्मा एक, दूसरी पुद्गल चीज। उसका तो उसमें अभाव है। (ऐसा होने से) **समस्त ही उपधि निषिद्ध है....** किसी भी उपधि का आदर मुनि को हो सकता नहीं। जैसा माता ने जन्म दिया, वैसी दशा हुई। आहा...हा...! अन्तर भान और अन्तर अनुभवसहित की बात है, हाँ! वैसे तो बहुत लोग बाह्य त्यागी हो जाते हैं, ऐसा द्रव्यलिंग तो अनन्त बार लिया। 'दव्वसवणो' शास्त्र में आता है न? 'अष्टपाहुड़' (भावपाहुड, गाथा-३३) में (आता है)। आत्मा के भान बिना द्रव्यसंयम नहीं धारना।

राग के विकल्प से भी पार प्रभु है—ऐसी दृष्टि और अनुभव नहीं तो स्वरूप की रमणता तो कहाँ से आवे? समझ में आया? इसके बिना अकेला नग्नपना धारण करे। क्योंकि आत्मा पूर्ण स्वरूप है, उसके लक्ष्य बिना राग और पर के अभावरूप उदासीन अवस्था भी उसको होती नहीं। 'निर्जरा (अधिकार)' में कहते हैं न कि ज्ञान और वैराग्य शक्ति। भगवान आत्मा पूर्ण स्वरूप की प्रतीति अनुभव में (हुई), वह ज्ञानशक्ति हुई और रागादि पर से बिल्कुल भिन्न, अभावस्वरूप, पर के अभावस्वरूप, वह वैराग्य हुआ। मुनि को तो अभाव हो गया है। समझ में आया?

कहते हैं कि **आत्मद्रव्य के द्वितीय....** भगवान आत्मा एक चीज और रजकण आदि दूसरी चीज। उस **द्वितीय पुद्गलद्रव्य का अभाव....** है। एक अंगुली में दूसरी अंगुली का अभाव है। इस ऊँगली में इस ऊँगली का अभाव है। इस ऊँगली में इस ऊँगली का अभाव है। वैसे आत्मा में यह जड़द्रव्य है, उसका अभाव है। समझ में आया? **आत्मद्रव्य के द्वितीय पुद्गलद्रव्य का अभाव होने से....** पुद्गलद्रव्य दूसरी चीज हुई, पहली चीज आत्म भगवान। उसमें **अभाव होने से समस्त ही उपधि निषिद्ध है—ऐसा उत्सर्ग (सामान्य नियम) है;....** धोकमार्ग—उत्सर्ग मार्ग है।

और विशिष्ट कालक्षेत्र के वश.... क्या कहते हैं? ऐसे रह सके नहीं और खास ऐसा कोई काल (हो), बहुत ठण्डी (हो), क्षेत्र ऐसा जंगल (हो), इसके **वश कोई उपधि अनिषिद्ध है....** क्या? शरीरादि। शरीर, सन्तों की वाणी सुनना, ये सब अपवादिक उपधि है। अपवादिक उपधि है। समझ में आया? आगे कहेंगे—नित्यबोधक शास्त्र, तत्कालबोधक गुरु की वाणी। गुरु सुनाते हैं, सुनते हैं, वह वाणी भी एक उपकरण है। आहा...हा...! समझ में आया? क्योंकि आत्मा एक और द्वितीय पुद्गल का तो उसमें अभाव है। अनिषिद्ध उपधि में शरीर आता है और गुरु की वाणी आती है और शास्त्र आता है। शास्त्र पढ़ने से... नित्यबोधक-हमेशा का स्वाध्याय में से अपने स्वभाव पर दृष्टि होने से, अन्तर में निर्मलता प्रगट होती है। शास्त्र तो नित्यबोधक है। नित्य का अर्थ – गुरु तो कुछ समय होते हैं और कुछ समय वाणी होती है और शास्त्र तो सदा होता है। उसके वांचन में, विकल्प में भी ऐसा शास्त्र सुना, ऐसा लक्ष्य गया... समझ में आया? तो भी शास्त्र में

अपवादिक उपकरण गिनने में आया है। आहा...हा... ! वस्त्र रखना अपवादिक उपकरण नहीं, वह तो छेद का ही कारण है। आहा...हा... !

जिसे सर्वज्ञ परमेश्वर, (मुनिदशा कहते हैं)। एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में तीन काल-तीन लोक, परमात्मा परमेश्वर ने देखा। ऐसे परमेश्वर के ज्ञान में ऐसी मुनिपने की दशा आयी है। दुनिया को खबर नहीं, इसलिए क्या मार्ग दूसरा हो जायेगा ? आहा...हा... ! कहते हैं कि ऐसे काल (और) क्षेत्र को वश होकर, रखने का तो कुछ होता नहीं—ऐसा कहते हैं। देह भी नहीं, भगवान की वाणी सुनना भी नहीं। आहा...हा... ! शास्त्र पढ़ना भी नहीं। आहा...हा... ! उत्सर्गमार्ग तो यह है। धोकमार्ग वीतराग का तो यह है। अपने स्वद्रव्य में परद्रव्य का अभाव है। अभाव करके स्वरूप में लीन रहना, वह साधुपने की चारित्र की दशा है। किन्तु ऐसी दशा अन्तर में न रह सके; सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र सहित है तो उसको देह-काय पुद्गल है, उसे पुद्गल में गिनने में आता है। समझ में आया ? और वाणी। गुरु की वाणी। नित्य समझने में निमित्त, ऐसा शास्त्र और अपने से धर्मात्मा विशेष गुणवान (हो, उनकी) विनय करना, वह भी मन का उपकरण है। आहा...हा... ! समझ में आया ? अभी क्या कहते हैं वह पकड़ में नहीं आये। मन का उपकरण है। पर है न (इसलिए)। जुड़ान होता है तो विनय करते हैं। वाणी सुनते हैं, वाणी तो परद्रव्य है। शास्त्र भी परद्रव्य है। एक आत्मा में परद्रव्य ऐसा द्वितीय पुद्गल का तो अभाव है। ऐसा ही धोकमार्ग (है)। उत्सर्ग-निश्चय। समझ में आया ? है न ? उत्सर्ग, निश्चयनय, सर्वपरित्याग, परमोपेक्षासंयम, वीतरागचारित्र और शुद्धोपयोग—ये सब एकार्थवाची है। समझ में आया ?

भाई ! मोक्ष आनन्द की प्राप्ति का कारणरूप चारित्र और उसके कारणरूप सम्यग्दर्शन और ज्ञान सहित दशा कैसी है, (इसका) तुझे पहले निर्णय तो करना पड़ेगा। उससे यदि विपरीत दृष्टि हुई तो मिथ्यादृष्टि हो जायेगा। आहा...हा... ! समझ में आया ?

कालक्षेत्र के वश कोई उपधि अनिषिद्ध है—ऐसा अपवाद है। जब श्रमण सर्व उपधि के निषेध का आश्रय लेकर परमोपेक्षासंयम को प्राप्त करने का इच्छुक होने पर.... लो, बिल्कुल वीतरागभाव में रहना और पर की उपेक्षा करके स्व की अपेक्षा में रहना, वही उसका मूल मार्ग है। संयम है न ? (मूल ग्रन्थ में नीचे फुटनोट दी है)।

परमोपेक्षासंयम की व्याख्या—परम-उपेक्षासंयम अर्थात् उत्सर्गमार्ग, मूल धोरी मार्ग, निश्चयनय मार्ग, सर्वपरित्याग मार्ग, परमोपेक्षासंयम मार्ग, वीतराग मार्ग, ये सब एकार्थ है। संसार में राग में एकाकार है, उसे यह क्या कहते हैं, (समझ में नहीं आता)।

अपना भगवान आनन्दसागर सच्चिदानन्द प्रभु, राग और पर को देखकर उसमें लीन हो गया। अपनी चीज तो दूर रह गई। उसको यह सुनने (पर ऐसा लगता है)। समझ में आया? चारित्र... अहो...! वीतरागता का तात्कालिक कारण। सम्यग्दर्शन, ज्ञान तो परम्परा कारण है। चारित्र तो साक्षात् मोक्ष का कारण है। इस चारित्र की दशा में सर्व छोड़ना, वह निश्चय का मार्ग है।

ऐसा उत्सर्ग होने पर भी, **विशिष्ट कालक्षेत्र के वश हीन शक्तिवाला होने से....** संहनन की हीनता, अपने पुरुषार्थ की हीनता। **उसे प्राप्त करने में असमर्थ होता है,....** किसे? निश्चय में शुद्ध उपयोग की रमणता करने में असमर्थ होता है, **तब उसमें अपकर्षण करके....** देखो! अपकर्षण (अर्थात्) हीनता। पहले आया था न — परमोपेक्षासंयम। हीनता। शरीर पर लक्ष्य जाना, वाणी को सुनना, वह हीनता है, कहते हैं। आहा...हा...! अकेला भगवान आत्मा है, (उसमें) परद्रव्य का लक्ष्य आना, मुनिपना की दशा रखकर भी (ऐसा होना) अपवाद है। समझ में आया? शरीर पर लक्ष्य जाना, शरीर के निभाव के लिये निर्दोष आहारादि लेना। निर्दोष, हाँ! वह भी एक हीनता है। समझ में आया? फिर भी उस दशा में मुनिपना चला जाता नहीं।

उसे प्राप्त करने में असमर्थ.... होने से। उसे प्राप्त अर्थात्? शुद्ध उपयोग निश्चय वीतरागता स्थिर होना, ऐसा हो सके नहीं, असमर्थता के कारण, **तब उसमें अपकर्षण करके (अनुत्कृष्ट) संयम प्राप्त करता हुआ....** उस प्रकार का विकल्प शरीर के निभाव के लिये लक्ष्य जाता है, वह अनुत्कृष्ट संयम है। **उसकी बहिरंग साधनमात्र उपधि का आश्रय करता है।** बहिरंग साधनमात्र—आहार, जल ले। वास्तव में काया, मन और वचन तीनों परद्रव्य और उपधि हैं। भगवान आत्मा में काया कहाँ है? काया तो जड़ है। वाणी कहाँ है? और मन कहाँ (है)? मन उसमें तो है नहीं। भगवान पूर्णानन्द प्रभु एक स्वद्रव्य में परद्रव्य का तो अभाव है। ऐसा ही रहना और स्थिर होना, वह तो मूल मार्ग है—

ऐसा कहते हैं, परन्तु ऐसे शुद्धोपयोग में अन्तर में रह सकते नहीं तो शुद्धपरिणतिसहित सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की शुद्धपरिणतिसहित, इस काया के पुद्गल पर लक्ष्य जाता है, (वह) अपवादिक उपधि है।

परमात्मा आनन्द का स्थान, ऐसा प्रभु आत्मा, कहते हैं कि उसमें परद्रव्य का तो अभाव है। द्वितीय — दूसरी चीज का तो अभाव है और ऐसे शुद्धोपयोग में रहना, वही मार्ग है। मूल मार्ग तो यह है। परन्तु उसमें रह सकते नहीं तो हीनता का — शरीर को आहार लेने का विकल्प आता है। निर्दोष (आहार), हाँ! ४६ दोषरहित आहार। (सभी दोष को) टालकर आहार लेना, वह भी एक विकल्प अर्थात् उपधि है। आहा...हा...! रह सकते नहीं (तो) इतना होता है, ऐसा बताते हैं। वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है।

भगवान आत्मा अपने आनन्दस्वरूप में लीन हो सके नहीं, फिर भी शुद्ध सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की वीतराग परिणति तो है ही; उस परिणति में शुद्धोपयोग की ज्ञाता-ज्ञेय और ज्ञान, ऐसा अभेद नहीं हो सकता—ऐसा कहते हैं। तो उस वीतराग शुद्ध परिणति सहित में अपवादिक उपधि कहने में आता है। शरीर है, इतना अपवादिक उपधि कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया? (ऐसा सब जानने का) क्या काम है? हित करना है या नहीं? हित करना है तो जैसा हित का पंथ है—ऐसा जानना पड़ेगा या नहीं? आहा...हा...! समझ में आया? आचार्यों ने जंगल में रहकर, और विकल्प आया, टीका तो टीका के कारण बन गई। आहा...हा...! कैसी विधि की स्थिति और निषेध की कैसी स्थिति!

भगवान आत्मा पूर्ण आनन्द से भरा प्रभु अस्ति है और परद्रव्य की उसमें नास्ति है, वह नास्ति। समझ में आया? विधि-निषेध का विकल्प भी जिसमें नहीं। ऐसा भगवान आत्मा, उसकी अन्तर अनुभवदृष्टि और स्थिरता / चारित्र की वीतराग परिणति होने पर भी, स्वरूप में लीनता / निर्विकल्प हो न जाये तो उसको शरीर को निभाने का राग आता है, सुनने का, देव-गुरु-शास्त्र का विनय करने का (विकल्प आता है) तो अनिषिद्ध उपधि कहने में आता है। समझ में आया? इसमें कुछ समझ में आता है या नहीं?

सम्यग्दृष्टि को भी राग आया परन्तु उस राग का तो स्वरूप में अभाव है। यहाँ तो चारित्रदशा में उस राग का भी अभाव हो गया। राग के अभाव की जो परिणति / निर्मलदशा

हुई, उसमें—शुद्धोपयोग में लीनता न हो... अन्तर में ज्ञाता-ज्ञेय-ज्ञान एकाकार हो तो निश्चयमार्ग है, उत्सर्गमार्ग है, परम उपेक्षासंयम है, वीतराग शुद्ध उपयोग मार्ग वही है। समझ में आया ? ऐसा करना पड़ेगा, हाँ ! इस चीज के बिना मोक्ष होता नहीं। लड्डू खाना, मोक्ष जाना—ऐसा नहीं होगा। आत्मा के कल्याण के लिये करना पड़ेगा। इसलिए यह समझना चाहिए। कोई दूसरा-दूसरा मार्ग कहते हैं न ? भगवान का पंथ कहीं आया है ? (कोई कहे कि) यह भी मार्ग है, नया नहीं, अनादि का यह भी मार्ग है।

भगवान परमेश्वर, अहो... ! सर्वज्ञदेव वीतराग परमात्मा ने जैसा मार्ग देखा, ऐसा परमात्मा की वाणी में आया। सन्तों ने ऐसा अनुभव करके (शास्त्र में लिखा)। यहाँ तो चारित्रवन्त होकर मुनि कहते हैं। (मुनि तो) जंगल में, वन में ही रहते थे।

संवत १९६९ (की बात है)। १९७० में दीक्षा हुई। दीक्षा तो कहाँ थी परन्तु हम तो पहले से प्रश्न करते थे। हमारे गुरु को प्रश्न किया था, महाराज ! साधु के लिये छोटा कमरा बना हो, उसका उपयोग करे तो नव कोटि में कौन-सी कोटि का भंग होता है ? मन, वचन, काया; करना, करवाना और अनुमोदना—नव है न ? वह प्रश्न (संवत) १९६९ की साल में 'राणपर' में किया था। 'राणपर' है न, वहाँ प्रश्न किया था। हमको भी खबर नहीं, उनको भी खबर नहीं। ऐसा प्रश्न किया था। हरी हो, वहाँ नहीं रह सके, वहाँ बिल्कुल नहीं रह सकते। हरी हो, वहाँ पैर रख सके नहीं। हरिकाय में तो पैर नहीं दे। ईर्यासमिति है न, जहाँ हरिकाय का अंकुर फूटा हो तो भी पैर नहीं देते। (पैर रखे तो) ईर्यासमिति में विरोध आता है। जंगल भी जाये तो वहाँ भी नहीं (रखते)। वह पहले कहा था। .....

यहाँ कहते हैं कि ऐसे जीव को बहिरंग साधन जो उपधि शरीरादि है, **जिसका आश्रय किया जाता है, ऐसी वह उपधि उपधिपने के कारण वास्तव में छेदरूप नहीं है,....** देखो, क्या कहते हैं ? कि शरीर पर मुनि का लक्ष्य जाता है तो वह उपधि छेदरूप नहीं हुई—ऐसा कहते हैं। शरीर पर लक्ष्य गया, उस समय ऐसा भाव आया, वह अपवादिक है, परन्तु उनको चारित्र का छेद नहीं। छेद का अभाव करने की चीज है। **उपधि उपधिपने के कारण वास्तव में छेदरूप नहीं है, प्रत्युत छेद की निषेधरूप (त्यागरूप) ही है।** उस समय ऐसा भाव आया। आहार लेने का विकल्प आया तो वह

अपवादिक उपधि है। अपवादिक उपधि से अन्तर में छेद नहीं होता, चारित्र का छेद नहीं होता, परन्तु निभाने में निमित्त हुआ तो उसमें छेद का त्याग हुआ, ऐसा कहते हैं।....

किन्तु यह (संयम की बाह्यसाधनमात्रभूत उपधि).... का आश्रय लेता है। शरीर, वाणी सुनना और विनय करना। **इस प्रकार जिसका आश्रय किया जाता है, ऐसी वह उपधि, उपधिपने के कारण वास्तव में छेदरूप नहीं है,....** उपधि भले निमित्तरूप अपवादिक हुई तो संयम का छेद होता नहीं। लेकिन **छेद की निषेधरूप (त्यागरूप) ही है।** स्थिर रह सके नहीं और शुभभाव आ जाये। शुभ विकल्प है। छेद तो है नहीं, किन्तु छेद का त्याग हो गया। क्योंकि निश्चय संयम में रह सके नहीं, शुद्धोपयोग में रह सके नहीं और उतना विकल्प लेने का न आये तो अस्थिर हो जाता है। समझ में आया? आहा...हा...!

कहते हैं, अपना आनन्द स्वरूप है, वही स्वद्रव्य है। उसके अतिरिक्त कोई भी परद्रव्य है, वह द्वितीय हो गया। द्वितीय हुआ तो अपने में है नहीं। है नहीं, उतना साधन करते हैं तो तो उत्सर्गमार्ग, निश्चयमार्ग हुआ। शुद्धोपयोग में रहते हैं, वह तो मूलमार्ग हुआ। अब उसमें रह सके नहीं तो अपवादिक शरीर पर लक्ष्य जाता है। निर्दोष लेने का विकल्प, हाँ! समझ में आया? पिछली रात्रि में सोने का विकल्प आ गया। आता है न? वह भी अपवादिक है किन्तु वह अपवाद होने में चारित्र में छेद नहीं आता। चारित्र के छेद का अभाव हो गया। क्योंकि उसमें रह सके नहीं, उसमें रहा नहीं और शुद्ध में आये नहीं तो अशुभ हो जायेगा। समझ में आया? ऐसी बात है। दूसरों को नयी लगे किन्तु मार्ग तो यह है, भाई! उसे बराबर समझना पड़ेगा।

कहते हैं, **प्रत्युत....** अर्थात् वह तो निषेधरूप त्याग है। उसकी व्याख्या विशेष आयेगी.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - २२३

अथाप्रतिषिद्धोपधिस्वरूपमुपदिशति-

अप्पडिकुट्ठं उवधिं अपत्थणिज्जं असंजगजणेहिं।
मुच्छादिजणणरहिदं गेण्हदु समणो जदि वि अप्पं।।२२३।।

अप्रतिक्रुष्टमुपधिमप्रार्थनीयमसंयतजनैः।
मूर्च्छादिजननरहितं गृह्णातु श्रमणो यद्यप्यल्पम्।।२२३।।

यः किलोपधिः सर्वथा बन्धासाधकत्वादप्रतिक्रुष्टः, संयमादन्यत्रानुचितत्वादसंयतजनाप्रार्थनीयो, रागादिपरिणाममन्तरेण धार्यमाणत्वान्मूर्च्छादिजननरहितश्च भवति, स खल्वप्रतिषिद्धः। अतो यथोदितस्वरूप एवोपधिरुपादेयो, न पुनरल्पोऽपि यथोदितविपर्यस्तस्वरूपः।।२२३।।

अथ पूर्वसूत्रोदितोपकरणस्वरूपं दर्शयति-**अप्पडिकुट्ठं उवधिं** निश्चयव्यवहारमोक्षमार्ग सहकारिकारणत्वेनाप्रतिषिद्धमुपधिमुपकरणरूपोपधिं, **अपत्थिणिज्जं असंजदजणेहिं** अप्रार्थनीयं निर्विकारात्मोपलब्धिलक्षणभावसंयमरहितस्यासंयतजनस्यानभिलषणीयम्, **मुच्छादिजणणरहिदं** परमात्मद्रव्यविलक्षणबहिर्द्रव्यममत्वरूपमूर्च्छारक्षणार्जन संस्कारादिदोषजननरहितम्, **गेण्हदु समणो जदि वि अप्पं** गृह्णातु श्रमणो यमप्यल्पं पूर्वोक्तमुपकरणोपधिं यद्यप्यल्पं तथापि पूर्वोक्तोचितलक्षणमेव ग्राह्यं, न च तद्विपरीतमधिकं वेत्यभिप्रायः।।२२३।।

अब, अनिषिद्ध उपधि का स्वरूप कहते हैंः—

अनिन्दित हो रु अप्रार्थनीय, असंयतो से उपधि जो।
अरु मूर्छारहित, भले अल्प हो, श्रमण उसको ही ग्रहो॥२२३॥

अन्वयार्थ – **[यद्यपि अल्पम्]** भले ही अल्प हो तथापि, **[अप्रतिक्रुष्टम्]** जो अनिंदित हो, **[असंयतजनैः अप्रार्थनीयं]** असंयतजनों से अप्रार्थनीय हो और

[मूर्च्छादिजननरहितं] जो मूर्च्छादि की जननरहित हो – **[उपधिं]** ऐसी ही उपधि को **[श्रमणः]** श्रमण **[गृह्णातु]** ग्रहण करो।

टीका – जो उपधि सर्वथा बन्ध का असाधक होने से अनिन्दित है, संयत के अतिरिक्त अन्यत्र अनुचित होने से असंयतजनों के द्वारा अप्रार्थनीय (अनिच्छनीय) है और रागादिपरिणाम के बिना धारण की जाने से मूर्च्छादि के उत्पादन से रहित है, वह वास्तव में अनिषिद्ध है। इससे यथोक्त स्वरूपवाली उपधि ही उपादेय है, किन्तु किंचित्मात्र भी यथोक्त स्वरूप से विपरीत स्वरूपवाली उपधि उपादेय नहीं है ॥२२३॥

गाथा २२३ से २२६ के प्रवचन सी.डी. में उपलब्ध नहीं होने से यह प्रवचन १९७५ के वर्ष में हुए प्रवचनों में से लिया गया है।

आषाढ़ कृष्ण १, मंगलवार, २१ अक्टूबर १९७५

(प्रवचनसार) २२३ गाथा। **अब, अनिषिद्ध उपधि का स्वरूप कहते हैं:—** मुनिपने की व्याख्या है। समकिती को भी, मुनिपना कैसा होता है और उससे विरुद्ध कैसा (होता है)?—यह उसे जानना चाहिए न! साधु नहीं और उसे साधु मानना, वह भी एक विपरीत दृष्टि है। इसलिए साधुपना, सम्यग्दर्शनसहित आत्मा आनन्दस्वरूप के अन्तरभान सहित चारित्र की दशा, अन्तर में यथाजात-जैसा इसका आत्मा का स्वरूप है, वैसी उसे वीतरागी पर्याय अन्दर प्रगट हो, उसे बाह्य उपकरण कैसे होते हैं? उसकी व्याख्या है। २२३ (गाथा)

अप्पडिकुट्ठं उवधिं अपत्थणिज्जं असंजगजणेहिं।
मुच्छादिजणणरहिदं गेण्हदु समणो जदि वि अप्पं।।२२३।।

अनिन्दित हो रु अप्रार्थनीय, असंयतो से उपधि जो।
अरु मूर्छारहित, भले अल्प हो, श्रमण उसको ही ग्रहो ॥२२३॥

टीका – जो उपधि.... टीका है न इस ओर? **सर्वथा बन्ध का असाधक होने**

से.... उपधि आगे कहेंगे। सूत्राध्ययन करना, वह भी एक उपकरण है। सूत्र का अध्ययन करना, वह भी एक विकल्प है न! वह भी एक उपकरण है। गुरु का मन से विनय करना, वह भी मन में एक विकल्प है, वह भी एक उपकरण है। आहा...हा...! समझ में आया? देह की यथाजातदशा, नग्नदशा, दिगम्बरदशा भी एक उपकरण है और शास्त्र का बोध तथा गुरु का बोध करना और सुनना, वह भी एक विकल्प है, वह भी एक उपकरण है। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है। समझ में आया?

उत्सर्गमार्ग में तो परद्रव्य का सम्बन्ध ही किंचित् नहीं। चैतन्यस्वरूप भगवान, पर से भिन्न / निर्लेप है—ऐसी जो दृष्टि हुई और उसका जो चारित्र-वीतरागी पर्याय प्रगटी तो उसे स्वद्रव्य के अतिरिक्त किसी परद्रव्य का निमित्तपना भी नहीं होता। उसे उत्सर्ग धोकमार्ग, सत्यमार्ग, पर की अपेक्षा रहित मार्ग कहा जाता है। उसे तो यह विनय का विकल्प भी नहीं होता। आहा...हा...! सूत्राध्ययन भी नहीं होता, गुरु और शास्त्र का बोध, वह भी उसे सुनने का नहीं होता - ऐसी चीज है।

मुमुक्षु - .....होवे तो।

पूज्य गुरुदेवश्री - नहीं, नहीं; अन्दर शुद्धोपयोग में हो इसलिए, अन्दर शुद्धोपयोग ही उत्सर्गमार्ग है। अन्दर में आनन्दस्वरूप में लीन हो जाता है। जब उसे किसी पर की अपेक्षा है ही नहीं। स्व, स्व-स्वरूप द्रव्य-गुण और पर्याय स्व शुद्ध, द्रव्य शुद्ध, गुण शुद्ध, पर्याय शुद्ध, यह उसकी चीज है। इसके अतिरिक्त सूत्राध्ययन करना, सुनना, गुरु का उपदेश सुनना या कहना—ऐसा जो विकल्प है, वह तो बाह्य उपकरण है; वह अन्तर की चीज नहीं है। आहा...हा...! कहो... आहा...हा...!

वीतराग सर्वज्ञ से (कथित) साधुपना किसे कहना? उन्हें वस्त्र-पात्र तो होते ही नहीं। वस्त्र-पात्र रखे, वह तो मुनि ही नहीं। समझ में आया? परन्तु जिन्हें आत्मदर्शन सम्यक् चैतन्यपूर्वक जिन्हें अन्तर की शुद्ध उपयोग की रमणता / उत्सर्गमार्ग आया है, धोख, वीतरागभाव (प्रगट हुआ है)। उसे तो यह विनय करना, सूत्राध्ययन करना, सुनना ऐसा विकल्प, परद्रव्य का सम्बन्ध उसे नहीं होता। आहा...हा...! ऐसा मार्ग है। लोगों ने, साधु क्या कहलाये, चारित्र किसे कहना, नवतत्त्व में उन्हें संवर-निर्जरा की श्रद्धा सच्ची

करना पड़ेगी या नहीं ? तो संवर-निर्जरावन्त साधु कैसे होते हैं—उसकी बात चलती है। आहा...हा...! समझ में आया ?

जो उपधि सर्वथा बन्ध का असाधक होने से अनिन्दित है,.... जितना राग है इस अपेक्षा अलग बात है। समझ में आया ? परन्तु इसके अतिरिक्त विशेष नहीं, इसलिए अनिंदित है। **संयत के अतिरिक्त अन्यत्र अनुचित होने से....** कहते हैं कि ऐसे उपकरण मुनि के पास होते हैं - कमण्डल, मोरपिच्छी ऐसी चीज होती है। **संयत के अतिरिक्त अन्यत्र अनुचित होने से असंयतजनों के द्वारा अप्रार्थनीय....** असयंती उसे ले नहीं सके, ऐसी सादी चीज होती है। समझ में आया ?

यह देखो न! वह यति होते है न, मोरपिच्छी में सोने के वे रखते हैं। मोरपिच्छी में सोने के, चाँदी के.... पिच्छी के ऊपर होते हैं न, जहाँ हत्था (हों), कहते हैं कि मुनि को वह होता नहीं, मुनि को मोरपिच्छी, कमण्डल उपकरण ऐसा सादा होता है कि असंयतीजन जिसे चाहें नहीं, लेने की भावना न हो, ऐसे सादे होते हैं। आहा...हा...! कहो समझ में आया ?

और रागादिपरिणाम के बिना धारण की जाने से.... अर्थात् उसके योग्य जो राग है, वह अलग बात है। उससे अधिक राग जो उपकरण, श्रमण, सूत्राध्ययन, सुनना इतना तो भले राग हो, परन्तु इससे विशेष राग उन्हें होता नहीं है। **रागादिपरिणाम के बिना धारण की जाने से मूर्च्छादि के उत्पादन से रहित है,....** उसमें मूर्च्छा नहीं। आहा...हा...! ये श्वेताम्बर कहते हैं न कि भाई! वस्त्र रखते हैं परन्तु मूर्च्छा नहीं करना। उन लोगों में ऐसा आता है। खोटी बात है। वस्त्र रखे, उसे मूर्च्छा होती ही है। समझ में आया ?

मुमुक्षु - भोजन की मूर्च्छा....

पूज्य गुरुदेवश्री - भोजन की मूर्च्छा अलग वस्तु है, वह मूर्च्छा नहीं है। वह शुभ, प्रशस्त राग है, इतना उनकी भूमिका प्रमाण में (होता है), वह मूर्च्छा नहीं है। है न तर्क खोटा है, उसमें अन्दर भी लिखा है, टीका में भी है, कलश में है। स्त्री को मुक्ति कहते हैं, वह झूठ बात है। साधु को उपकरण वस्त्र-पात्र वह जैनदर्शन की पद्धति ही नहीं है। जैनदर्शन ही अलग प्रकार है। कहो।....

मुमुक्षु – चश्मा....

पूज्य गुरुदेवश्री – चश्मा–बश्मा नहीं। चश्मा नहीं, घड़ी नहीं, रात्रि में सूत्र पढ़ने को बत्ती करे और पढ़े वह नहीं। यह तो ऐसी बात है।

मुमुक्षु – पाट, पाटला....

पूज्य गुरुदेवश्री – पाट, पाटला, कुदरत सहज हो वे हों, यह शास्त्र में आता है। सहज पड़ा हो, कहीं से लावे—ऐसा नहीं, पड़ा हो तो हो, इतना। आहा...हा... ! बहुत सूक्ष्म बात है। मुनिपना ऐसा है। वीतराग से कथित मुनिपना तो बहुत अलौकिक बात है। उसे इसे बराबर समझना चाहिए। समझ में आया ? जो यह वस्त्र और पात्र रखकर मुनि मनाते हैं, वह तो जैनदर्शन ही नहीं है, वह जैनदर्शन से बाहर है – ऐसी बात है, भाई !

यहाँ कहते हैं कि **मूर्च्छादि के उत्पादन से रहित है, वह वास्तव में अनिषिद्ध है। इससे यथोक्त स्वरूपवाली उपधि ही उपादेय है,....** कहेंगे, आगे नाम देंगे। **किन्तु किंचित्मात्र भी यथोक्त स्वरूप से विपरीत स्वरूपवाली उपधि उपादेय नहीं है।**

गाथा - २२४

अथोत्सर्ग एव वस्तुधर्मो, न पुनरपवाद इत्युपदिशति-

किं किंचण त्ति तक्कं अपुणब्भवकामिणोध देहे वि।
संग त्ति जिणवरिंदा अप्पडिकम्मत्तमुद्दिट्ठा।।२२४।।

किं किञ्चनमिति तर्कः अपुनर्भवकामिनोऽथ देहेऽपि।
सङ्ग इति जिनवरेन्द्रा अप्रतिकर्मत्वमुद्दिष्टवन्तः।।२२४।।

अत्र श्रामण्यपर्ययसहकारिकारणत्वेनाप्रतिषिध्यमानेऽत्यन्तमुपात्तदेहेऽपि परद्रव्यत्वात् परिग्रहोऽयं न नामानुग्रहार्हः किन्तूपेक्ष्य एवेत्यप्रतिकर्मत्वमुपदिष्टवन्तो भगवन्तोऽर्हद्देवाः। अथ तत्र शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भसम्भावनरसिकस्य पुंसः शेषोऽन्योऽनुपात्तः परिग्रहो वराकः किं नाम स्यादिति व्यक्त एव हि तेषामाकूतः। अतोऽवधार्यते उत्सर्ग एव वस्तुधर्मो, न पुनपरपवादः। इदमत्र तात्पर्यं, वस्तुधर्मत्वात्परमनैर्ग्रन्थ्यमेवावलम्ब्यम्।।२२४।।

अथ सर्वसङ्गपरित्याग एव श्रेष्ठः, शेषमशक्यानुष्ठानमिति प्ररूपयति-**किं किंचण त्ति तक्कं** किं किंचनमिति तर्कः, किं किंचनं परिग्रह इति तर्को विचारः क्रियते तावत्। कस्य। **अपुणब्भवकामिणो** अपुनर्भवकामिनः अनन्तज्ञानादिचतुष्टयात्मकमोक्षाभिलाषिणः। **अध** अहो, **देहो वि** देहोऽपि **संग त्ति** सङ्गः परिग्रह इति हेतोः **जिणवरिंदा** जिनवरेन्द्राः कर्तारः **णिप्पडिकम्मत्तमुद्दिट्ठा** निःप्रतिकर्मत्वमुपदिष्टवन्तः। शुद्धोपयोगलक्षणपरमोपेक्षासंयमबलेन देहेऽपि निःप्रतिकारित्वं कथितवन्त इति। ततो ज्ञायते मोक्षसुखाभिलाषिणां निश्चयेन देहादिसर्वसङ्गपरित्याग एवोचितोऽन्यस्तूपचार एवेति ।।२२४।।

अब, 'उत्सर्ग ही वस्तुधर्म है, अपवाद नहीं' ऐसा उपदेश करते हैं:—

क्यों अन्य परिग्रह होयगा, जब देह को परिग्रह कहा।
मोक्षार्थी को संस्कार देह का, निषेध जिनवर ने किया॥२२४॥

अन्वयार्थ – **[अथ]** जबकि **[जिनवरेन्द्राः]** जिनवरेन्द्रों ने **[अपुनर्भवकामिनः]**

मोक्षाभिलाषी के, **[संगः इति]** 'देह परिग्रह है' ऐसा कहकर **[देहे अपि]** देह में भी **[अप्रतिकर्मत्वम्]** अप्रतिकर्मपना (संस्काररहितपना) **[उद्दिष्टवन्तः]** कहा (उपदेशा) है, तब **[किं किंचनम् इति तर्कः]** उनका यह (स्पष्ट) आशय है कि उसके अन्य परिग्रह तो कैसे हो सकता है ?

टीका - यहाँ, श्रामण्यपर्याय का सहकारी कारण होने से जिसका निषेध नहीं किया गया है, ऐसे अत्यन्त उपात्त[१] शरीर में भी, 'यह (शरीर) परद्रव्य होने से परिग्रह है, वास्तव में यह अनुग्रहयोग्य नहीं, किन्तु उपेक्षायोग्य ही है'—ऐसा कहकर, भगवन्त अरहन्तदेवों ने अप्रतिकर्मपने का उपदेश दिया है, तब फिर वहाँ शुद्धात्मतत्वोपलब्धि की सम्भावना के रसिक पुरुषों के शेष अन्य अनुपात्त[२] परिग्रह बेचारा कैसे (अनुग्रहयोग्य) हो सकता है ?—ऐसा उनका (अरहन्तदेवों का) आशय व्यक्त ही है। इससे निश्चित होता है कि उत्सर्ग ही वस्तुधर्म है, अपवाद नहीं।

यहाँ ऐसा तात्पर्य है कि वस्तुधर्म होने से परम निर्ग्रन्थपना ही अवलम्बन योग्य है ॥२२४॥

गाथा-२२४ पर प्रवचन

अब, 'उत्सर्ग ही वस्तुधर्म है, अपवाद नहीं' ऐसा उपदेश करते हैंः—

किं किंचण त्ति तक्कं अपुणब्भवकामिणोध देहे वि।
संग त्ति जिणवरिंदा अप्पडिकम्मत्तमुद्दिट्ठा।।२२४।।

क्यों अन्य परिग्रह होयगा, जब देह को परिग्रह कहा।
मोक्षार्थी को संस्कार देह का, निषेध जिनवर ने किया ॥२२४॥

अब तो कहते हैं कि उत्सर्गमार्ग कैसा होता है ? वे उपकरण तो व्यवहार के कहे थे।

टीका - यहाँ, श्रामण्यपर्याय का सहकारी.... चारित्रपर्याय, जो सम्यग्दर्शनसहित

१. उपात्त=प्राप्त, मिला हुआ। २. अनुपात्त=अप्राप्त।

अन्दर वीतरागी पर्याय चारित्र की होती है, उसे **सहकारी कारण होने से....** साथ में निमित्तरूप होने से **जिसका निषेध नहीं किया गया है, ऐसे अत्यन्त उपात्त....** (उपात्त अर्थात् प्राप्त हुई देह)। क्योंकि वह तो (प्राप्त हुई है), नयी मिलायी नहीं है। है? **शरीर में भी, 'यह (शरीर) परद्रव्य होने से परिग्रह है,....** आहा...हा...! भगवान अन्तर आनन्दमूर्ति प्रभु तो भिन्न है, उसे देह तो परचीज है, वह भी एक परिग्रह है। आहा...हा...! उत्सर्गमार्ग में वह भी नहीं होता – ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! वह तो रजकण जड़ है। आत्मा अरूपी चैतन्यघन है। ऐसी दृष्टि और जो उसे चारित्र अन्दर प्रगट हुआ है, उस उत्सर्गमार्ग में तो देह भी उसे परिग्रह है।

मुमुक्षु – ....

पूज्य गुरुदेवश्री – देह होती है। कहते हैं न कि प्राप्त। यह मेरा, उसके संस्कार करना, यह उन्हें नहीं है, यह कहेंगे, देखो! आयेगा।

परद्रव्य होने से परिग्रह है, वास्तव में यह अनुग्रहयोग्य नहीं,.... शरीर पर कृपा करना और शरीर का रक्षण करना योग्य नहीं है। उसकी पर्याय उससे होती है, उसमें उसके संस्कार, शोभा करना, पानी से साफ करना, तेल लगाना—ऐसा प्रतिकर्म-क्रिया हो नहीं सकती। आहा...हा...! कठिन मार्ग, बापू! वीतराग जिनेन्द्रदेव... आहा...हा...! समझ में आया? दिगम्बर जैनदर्शन में ही यह बात है, अन्यत्र कहीं बात है ही नहीं। लोगों को कठिन पड़ता है, क्या हो? दूसरा क्या हो परन्तु? जैसी वस्तु हो वैसी रहे न! अरे रे! आहा...! पंचम काल होवे तो क्या?

ऐसा कहते हैं कि आत्मा वस्तु है, भगवान सच्चिदानन्दस्वरूप (है), उसे देह भी परवस्तु, वह तो परद्रव्य है। वह तो मिट्टी-धूल अजीवतत्त्व पर है। भगवान तो जीवतत्त्व है, स्वयं तो जीवतत्त्व ज्ञायकतत्त्व, आनन्दतत्त्व है। समझ में आया? उसे यह देह तो मिट्टी का पिण्ड है, माँस-हड्डियाँ, चमड़ी अजीवद्रव्य है, यह तो अजीव है। आहा...हा...! उसे भी जब भगवान ने परिग्रह कहा तो वह अनुग्रहयोग्य नहीं, उसे रखना और ऐसा करना और वैसा करना—ऐसा नहीं। आहा...हा....! **किन्तु उपेक्षा योग्य ही है....** शरीर का कुछ भी हो, उसकी धर्मी को उपेक्षा होती है। अपेक्षा नहीं होती, उपेक्षा होती है। आ...हा...! ऐसा

मार्ग! अभी तो सम्यग्दर्शन किसे कहना, पता नहीं पड़ता, उसे चारित्र की बात क्या है (यह कहाँ से पता होगा) ? आहा...हा... !

पूर्णानन्द का नाथ शुद्ध चैतन्यघन सुख का सागर अतीन्द्रिय सुख से भरपूर, उसमें मति को जोड़कर, एकाग्र होकर, जो सम्यग्दर्शन अनुभूति होकर हो, उसे तो अभी सम्यग्दर्शन-धर्म का चौथा गुणस्थान, समकिती का चौथा गुणस्थान (प्रगट होता है)। आहा...हा... ! समझ में आया ? और तदुपरान्त यहाँ तो अब वीतरागचारित्र का शुद्ध उपयोग जहाँ है, वहाँ तो देह भी परद्रव्य है, उसका भी अनुग्रह अर्थात् उसे रखने की वृत्ति, उसे सम्हालने की वृत्ति नहीं होती। आहा...हा... !

मुमुक्षु - .....

पूज्य गुरुदेवश्री - देह है, देह में है, उसके ऊपर ध्यान नहीं। यह बात यहाँ कहाँ है ? वह तो अपवादमार्ग है। यह तो उत्सर्गमार्ग (की बात चलती है)। आहार लेने की वृत्ति आवे, वह तो अपवादमार्ग हो गया। अपवाद अर्थात् अन्दर इतना दोष आया, परन्तु उस भूमिका के योग्य, इसलिए उसे गिना है परन्तु उत्सर्गमार्ग में वह अपवादमार्ग भी नहीं है— ऐसा कहते हैं। आहा...हा... ! विहार, अपवादमार्ग में जाता है। विहार, आहार, विनय करना, सूत्र अध्ययन करना, यह सब अपवादमार्ग में (जाता है)। उत्सर्गमार्ग में यह हो ही नहीं सकता।

यहाँ तो आनन्दस्वरूप में लीन, बस! यही उत्सर्गमार्ग है। उसे हिलने-चलने की क्रिया का विकल्प भी उसमें नहीं है, कहते हैं। आहा...हा... ! यह वीतरागमार्ग, भाई! आ...हा... ! यह तो परमेश्वर पद, पंच परमेष्ठी है न! णमो लोए सव्व अरिहंताणं, णमो लोए सव्व सिद्धाणं.... णमो लोए सव्व साहूणं... पंच परमेष्ठी! यह कहीं साधारण बात है, भाई! आहा...हा... !

ऐसा कहकर, भगवन्त अरहन्तदेवों ने अप्रतिकर्मपने का उपदेश दिया है,.... देह का भी संस्कार करना, साफ करना—ऐसी क्रिया का निषेध किया है। आहा...हा... ! समझ में आया ? आहा...हा... !

मुमुक्षु - उस क्रिया को अपवाद भी नहीं गिना।

पूज्य गुरुदेवश्री - नहीं; अपवाद में भी नहीं... वह तो अपवाद में भी नहीं। अपवाद में तो जो चार कहे वे। यह अभी आयेगा, गाथा में आयेगा। आहा...हा...!

तब फिर वहाँ शुद्धात्मतत्वोपलब्धि की सम्भावना के.... जिसे शुद्ध आनन्द का नाथ प्रगट हुआ है और जिसे वह पूर्णरूप से प्राप्त करना है, ऐसी **सम्भावना के रसिक पुरुषों के शेष अन्य अनुपात्त....** यह तो प्राप्त चीज है, इसका भी परिग्रह नहीं और इसका भी अनुग्रह नहीं। वह तो अनुपात्त-नहीं प्राप्त दूसरी चीजें। **अनुपात्त परिग्रह बेचारा कैसे हो सकता है...** उसे। आहा...हा...! यह उत्सर्गमार्ग की बात है न! जहाँ यह भी-प्राप्त परिग्रह उसे नहीं तो अनुपात्त (तो कहाँ से होगा)? विनय करना, शास्त्र अध्ययन करना, वह सब अनुपात्त है, ऐसा परिग्रह कहाँ से होगा बेचारा? कहते हैं। आहा...हा...! अन्तर आनन्द में जहाँ रमता है, जिसे परद्रव्य सम्बन्धी के विकल्प का जहाँ सम्बन्ध ही नहीं। आहा...हा...! समझ में आया?

ऐसा उनका (अरहन्तदेवों का) आशय व्यक्त ही है। भगवान का यह अभिप्राय है—ऐसा कहते हैं। देह भी जहाँ परद्रव्य है तो दूसरी चीज कहाँ लेना? आहा...हा...! ऐसा जो आत्मा का अन्तर धोक मार्ग, शुद्धोपयोग में रमणता, वह उसका मार्ग, उसे किसी शुभयोग का विकल्प भी नहीं है। आहार लेने का, विनय करे, वह भी नहीं—ऐसा भगवान का अभिप्राय है। आहा...हा...! देखा? **(अरहन्तदेवों का) आशय व्यक्त ही है।** त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव का यह अभिप्राय प्रगट है कि जिसे एक स्वद्रव्य ही अनुभव में है, उसे परद्रव्य का, विकल्प का वहाँ सम्बन्ध है नहीं। आहा...हा...! सूत्राध्ययन आदि के विकल्प, उत्सर्गमार्ग में नहीं—ऐसा कहते हैं। गुरु के पास सुनना, वह विकल्प है, वह भी उसे होता नहीं। आहा...हा...! ए...ई...! ऐसा मार्ग है भाई! स्वद्रव्य, जहाँ देह के रजकणों से अत्यन्त भिन्न और राग के भाव से भी अत्यन्त भिन्न है। राग, आस्रव; शरीर, अजीव इनसे अत्यन्त भिन्न का जहाँ अनुभव में स्थिरता है—ऐसे उत्सर्गमार्ग में तो वह विकल्प है ही नहीं, कहते हैं। शास्त्र पढ़ना या सुनना, विनय (करना)—ऐसा है ही नहीं। ऐसा भगवान का अभिप्राय है। यह तो अभी ऐसी चीज सुनने को मिलना कठिन है।

मुमुक्षु - .....

पूज्य गुरुदेवश्री – परन्तु किसे ? वह तो अन्दर में स्थिर हो गया उसे। जो स्वरूप के अनुभव में स्थिर हो गया है, अन्तर में ध्येय बनाकर एकाकार हो गया है, उसे दूसरा उपकरण नहीं हो सकता। उसे अपवादिक उपकरण भी नहीं हो सकते। आहा...हा... ! ऐसा मार्ग है। आहा...हा... ! इसे जानना तो पड़े न भाई ! पहिचान तो करनी पड़े न !

इससे निश्चित होता है कि उत्सर्ग ही वस्तुधर्म है,.... देखा ? यह सूत्राध्ययन करना, विनय करना और गुरु की वाणी सुनना या शास्त्र सुनना, यह सब विकल्प है; यह तो अपवाद है। आहा...हा... ! अपवाद का अर्थ यह दोष है। परन्तु उस भूमिका के योग्य होवे तो यह अपवादमार्ग कहा जाता है। लो ! कहाँ यह अपवादमार्ग ! वह वस्त्र-पात्र अपवादमार्ग है—ऐसा (कोई) कहता था। यहाँ का पढ़ा हुआ, यहाँ का वाँचन (करके) बातें करे। वहाँ श्वेताम्बर में यह बात थी कब ? फिर यह वस्त्र-पात्र अपवादमार्ग है — (ऐसा कहे) । अरे ! अपवादमार्ग (क्या), वह तो मिथ्यामार्ग है। ऐ...ई.. ! हमारे बहिन को घर में यह सब बैठेगा या नहीं ? यह तो बैठाने जैसी (बात) है न ! यह कहाँ किसी के पक्ष की (बात है) ? आहा...हा... ! ऐसा मार्ग है न बापू ! यह कहाँ किसी पक्ष की बात है ? तुझे सत्य समझना हो तो यह विधि है भाई ! यह कोई पक्ष की बात नहीं है। आहा...हा... ! संसार में पक्ष तो इतने अधिक पड़ गये, श्वेताम्बर स्थानकवासी; उसमें फिर यह तेरापन्थी... आहा... ! 'तुलसी' यह फिर... बड़ा किया। अभी तुझे सम्यग्दर्शन नहीं (वहाँ) दूसरे को कहाँ से अणुव्रत आ गये। आ...हा... !

मुमुक्षु – वह तो आचार्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री – आचार्य है। क्या हो ? वस्तु का स्वरूप ऐसा है। दिगम्बर जैन धर्म की श्रद्धा के अतिरिक्त दूसरी कोई भी श्रद्धा माने, वह मिथ्यादृष्टि है। दिगम्बर धर्म वह पक्ष नहीं, वस्तु का स्वरूप है। जिनस्वरूपी भगवान आत्मा... कल नहीं आया ? कहीं आया था। समयसार नाटक में (आया था) । जिनात्मा, ऐसा कुछ है। जिनेन्द्रस्वरूप ही आत्मा है, वही आत्मा है, दो बोल आये थे। आहा...हा... !

उत्सर्ग ही वस्तुधर्म है, अपवाद नहीं। अकेला आत्मा आनन्दमूर्ति उपयोग में रमें। उसे आहार और विहार का विकल्प भी नहीं, उसे सूत्र अध्ययन और सुनने का

विकल्प नहीं-ऐसा जो मार्ग, उसे उत्सर्गमार्ग कहने में आता है। आहा...हा...! जैनदर्शन का धोक मार्ग! वीतरागभाव, वह धोक मार्ग है। वह उपकरण का तो विकल्प है, वह तो राग है। आहा...हा...! ऐसा मार्ग।

मुमुक्षु - ....

पूज्य गुरुदेवश्री - वह अपवाद कहा न, अपवाद। उत्सर्गमार्ग में नहीं, वह दूर है, वह तो फिर इसमें नहीं लिया, यहाँ तो इतना लिया। नजदीक होवे वह (लिया)। आहा...हा...!

यहाँ ऐसा तात्पर्य है कि वस्तुधर्म होने से परम निर्ग्रन्थपना ही अवलम्बन-योग्य है। आहा...हा...! भगवान निर्ग्रन्थस्वरूप ही है। वीतरागस्वरूप ही आत्मा है। ऐसे वीतरागस्वभाव को ही अवलम्बन करने योग्य है। राग और पर को अवलम्बन करने योग्य नहीं है। आहा...हा...!

मुमुक्षु - अन्तर से बाहर आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री - नहीं, यह मार्ग नहीं है। यह तो अपवादमार्ग है। अपवाद का अर्थ क्या हुआ? दोष। आहा...हा...! यह मेरा अपवाद करता है, नहीं कहते? निन्दा करता है। आहा...हा...!

मुमुक्षु - .....

पूज्य गुरुदेवश्री - यह छठवें में रहा हो तो भी उसे इससे अधिक विकल्प नहीं होता। ऐसी दशावाले को अभी अपवादमार्ग कहा है। विशेष वस्त्र-पात्र नहीं, वह अपवादमार्ग है। जबकि निर्ग्रन्थदशा में ठहरता है, उस सातवें (गुणस्थान में) वहाँ तो अपवादमार्ग भी है नहीं, छठवें में विकल्प आता है, वह अभी अपवादमार्ग है। आहा...हा...! अरे... भाई! यह तो अमृत के सागर से भरपूर भगवान, इसके अमृत की अन्दर चारित्र की लहर जहाँ उठे! उसे कहते हैं कि बाहर का विकल्प कहाँ है उसे? और वह विकल्प उसकी भूमिका प्रमाण होवे तो वह अपवाद अर्थात् विकल्प है। वस्तु के उत्सर्गमार्ग में वह है नहीं। आहा...हा..! २२४ (गाथा) हुई न।

गाथा - २२५

अथ केऽपवादविशेषा इत्युपदिशति-

उवयरणं जिणमग्गे लिंगं जहजागरूपवमिदि भणिदं।
गुरुवयणं पि य विणओ सुत्तज्झयणं च णिद्दिट्टं।।२२५।।

उपकरणं जिनमार्गे लिङ्गं यथाजातरूपमिति भणितम्।
गुरुवचनमपि च विनयः सूत्राध्ययनं च निर्दिष्टम्।।२२५।।

यो हि नानाप्रतिषिद्धोऽस्मिन्नुपधिरपवादः, स खलु निखिलोऽपि श्रामण्यपर्यायसहकारिकारणत्वेनोपकारकारकत्वादुपकरणभूत एव, न पुनरन्यः। तस्य तु विशेषाः सर्वाहार्यवर्जितसहजरूपोपेक्षितयथाजातरूपत्वेन बहिरङ्गलिङ्गभूताः कायपुद्गलाः, श्रूयमाणतत्कालबोधकगुरुगीर्यमाणात्मतत्त्वद्योतकसिद्धोपदेशवचनपुद्गलाः, तथाधीयमाननित्यबोधकानादिनिधनशुद्धात्मतत्त्वद्योतनसमर्थश्रुतज्ञानसाधनीभूतशब्दात्मकसूत्रपुद्गलाश्च, शुद्धात्मतत्त्वव्यञ्जकदर्शनादिपर्यायतत्परिणतपुरुषविनीतताभिप्रायप्रवर्तकचित्तपुद्गलाश्च भवन्ति। इदमत्र तात्पर्यं, कायद्वचनमनसी अपि न वस्तुधर्मः।।२२५।।

एवमपवादव्याख्यानरूपेण द्वितीयस्थले गाथात्रयं गतम्। अथैकादशगाथापर्यन्तं स्त्रीनिर्वाणनिराकरणमुख्यत्वेन व्याख्यानं करोति। तद्यथा-श्वेताम्बरमतानुसारी शिष्यः पूर्वपक्षं करोति-

पेच्छदि ण हि इह लोगं परं च समणिंददेसिदो धम्मो।
धम्मम्हि तम्हि कम्हा वियप्पियं लिंगमित्थीणं।।२०।।

पेच्छदि ण हि इह लोगं निरुपरागनिजचैतन्यनित्योपलब्धिभावनाविनाशकं ख्यातिपूजालाभरूपं प्रेक्षते न च हि स्फुटं इह लोकम्। न च केवलमिह लोकं, **परं च** स्वात्मप्राप्तिरूपं मोक्षं विहाय स्वर्गभोगप्राप्तिरूपं परं च परलोकं च नेच्छति। स कः। **समणिंददेसिदो धम्मो** श्रमणेन्द्रदेशितो धर्मः, जिनेन्द्रोपदिष्ट इत्यर्थः। **धम्मम्हि तम्हि कम्हा** धर्मे तस्मिन् कस्मात् **वियप्पियं** विकल्पितं

निर्ग्रन्थलिङ्गाद्वस्त्रप्रावरणेन पृथक्कृतम्। किम्। **लिंगं** सावरणचिह्नम्। कासां संबन्धि। **इत्थीणं** स्त्रीणआमिति पूर्वपक्षगाथा।।२०।।

अथ परिहारमाह-

णिच्छयदो इत्थीणं सिद्धी ण हि तेण जम्मणा दिट्ठा।
तम्हा तप्पडिरूवं वियप्पियं लिंगमित्थीणं।।२१।।

णिच्छयदो इत्थीणं सिद्धी ण हि तेण जम्मणा दिट्ठा निश्चयतः स्त्रीणां नरकादिगतिविलक्षण-नन्तसुखादिगुणस्वभावा तेनैव जन्मना सिद्धिर्न द्रष्टा, न कथिता। **तम्हा तप्पडिरूवं** तस्मात्कारणा-त्तत्प्रतियोग्यं सावरणरूपं **वियप्पियं लिंगमित्थीणं** निर्ग्रन्थलिङ्गात्पृथक्त्वेन विकल्पितं कथितं लिङ्गं प्रावरणसहितं चिह्नम्। कासाम्। स्त्रीणामिति।।२१।।

अथ स्त्रीणां मोक्षप्रतिबन्धकं प्रमादबाहुल्यं दर्शयति-

पइडीपमादमइया एदासिं वित्ति भासिया पमदा।
तम्हा ताओ पमदा पमादबहुला त्ति णिद्दिट्ठा।।२२।।

पइडीपणादमइया प्रकृत्या स्वभावेन प्रमादेन निर्वृत्ता प्रमादमयी। का कर्त्री भवति। **एदासिं वित्ति।** एतासां स्त्रीणां वृत्तिः परिणतिः। **भासिया पमदा** तत एव नाममालायां प्रमदाः प्रमदासंज्ञा भाषिताः स्त्रियः। **तम्हा ताओ पमदा** यत एव प्रमदासंज्ञास्ताः स्त्रियः, तस्मात्तत एव **पमादबहुला त्ति णिद्दिट्ठा** निःप्रमादपरमात्मतत्त्वभावनाविनाशकप्रमादबहुला इति निर्दिष्टाः।।२२।।

अथ तासां मोहादिबाहुल्यं दर्शयति-

संति धुवं पमदाणं मोहपदोसा भयं दुगुंछा य।
चित्ते चित्ता माया तम्हा तासिं ण णिव्वाणं।।२३।।

संति धुवं पमदाणं सन्ति विद्यन्ते ध्रुवं निश्चितं प्रमदानां स्त्रीणाम्। के ते। **मोहपदोसा भयं दुगुंछा य** मोहादिरहितानन्तसुखादिगुणस्वरूपमोक्षकारणप्रतिबन्धकाः मोहप्रद्वेषभयदुगुंछापरिणामाः, **चित्ते चित्ता माया** कौटिल्यादिरहितपरमबोधादिपरिणतेः प्रतिपक्षभूता चित्ते मनसि चित्रा विचित्रा माया, **तम्हा तांसि ण णिव्वाणं** तत एव तासामव्याबाधसुखाद्यनन्तगुणाधारभूतं निर्वाणं नास्तीत्यभिप्रायः।।२३।।

अथैतदेव द्रढयति-

ण विणा वट्टदि णारी एक्कं वा तेसु जीवलोयम्हि।
ण हि संउडं च गत्तं तम्हा तासिं च संवरणं।।२४।।

ण विणा वट्टदि णारी न विना वर्तते नारी **एक्कं वा तेसु जीवलोयम्हि** तेषु निर्दोषिपरमात्मध्यान-विघातकेषु पूर्वोक्तदोषेषु मध्ये जीवलोके त्वेकमपि दोषं विहाय **ण हि संउडं च गत्तं** न हि स्फुटं संवृत्तं गात्रं च शरीरं, **तम्हा तासिं च संवरणं** तत एव च तासां संवरणं वस्त्रावरणं क्रियत इति ।।२४।।

अथ पुनरपि निर्वाणप्रतिबन्धकदोषान्दर्शयति-

चित्तस्सवो तांसि सित्थिल्लं अत्तवं च पक्खलणं।
विज्जदि सहसा तासु अ उप्पादो सुहममणुआणं।।२५।।

विज्जदि विद्यते **तासु अ** तासु च स्त्रीषु। किम्। **चित्तस्सावो** चित्तस्त्रवः, निःकामात्मतत्त्वसंवित्ति-निवनाशकचित्तस्य कामोद्रेकेण स्त्रवो रागसार्द्रभावः, **तासिं** तासां स्त्रीणां, **सित्थिल्लं** शिथिलस्य भावः शैथिल्यं, तद्भवमुक्तियोग्यपरिणामविषये चित्तदार्ढ्याभावः सत्त्वहीनपरिणाम इत्यर्थः, **अत्तवं च पक्खलणं** ऋतौ भवमार्तवं प्रस्खलनं रक्तस्त्रणं, **सहसा** झटिति, मासे मासे दिनत्रयपर्यन्तं चित्तशुद्धविनाशको रक्तस्त्रवो भवतीत्यर्थः, **उप्पादो सुहममणुणआणं** उत्पाद उत्पत्तिः सूक्ष्मलब्ध्यपर्याप्तमनुष्याणामिति।।२५।।

अथोत्पत्तिस्थानानि कथयति-

लिंगम्हि य इत्थीणं थणंतरे णाहिकक्खपदेसेसु।
भणिदो सुहुमुप्पादो तासिं कह संजमो होदि।।२६।।

लिंगम्हि य इत्थीणं थणंतरे णाहिकक्खपदेसेसु स्त्रीणां लिङ्गे योनिप्रदेशे, स्तनान्तरे, नाभिप्रदेशे, कक्षप्रदेशे च, **भणिदो सुहुमुप्पादो** एतेषु स्थानेषु सूक्ष्ममनुष्यादिजीवोत्पादो भणितः। एते पूर्वोक्तदोषाः पुरुषाणां किं न भवन्तीति चेत्। एवं न वक्तव्यं, स्त्रीषु बाहुल्येन भवन्ति। न चास्तित्वमात्रेण समानत्वम्। एकस्य विषकणिकास्ति, द्वितीयस्य च विषपर्वतोऽस्ति, किं समानत्वं भवति। किंतु पुरुषाणां प्रथमसंहननबलेन दोषविनाशको मुक्तियोग्यविशेषसंयमोऽस्ति। **तासिं कह संजमो होदि** ततः कारणात्तासां कथं संयमो भवतीति।।२६।।

अथ स्त्रीणां तद्भवमुक्तियोग्या सकलकर्मनिर्जरां निषेधयति-

जदि दंसणेण सुद्धा सुत्तज्झयणेण चावि संजुत्ता।
घोरं चरदि व चरियं इत्थिस्स ण णिज्जरा भणिदा।।२७।।

जदि दंसणेण सुद्धा यद्यपि दर्शनेन सम्यक्त्वेन शुद्धा, **सुत्तज्झयणे चावि संजुत्ता** एकादशाङ्गसूत्राध्ययनेनापि संयुक्ता, **घोरं चरदि व चरियं** घोरं पक्षोपवासमासोपवासादि चरति वा चारित्रं, **इत्थिस्स ण णिज्जरा भणिदा** तथापि स्त्रीजनस्य तद्भवकर्मक्षययोग्या सकलनिर्जरा न भणितेति

भावः। किंच यथा प्रथमेसंहननाभावात्स्त्री सप्तमनरकं न गच्छति, तथा निर्वाणमपि। `पुंवेद वेदंता पुरिसा जे खवगसेढिमारूढा। सेसोदयेण वि तहा झाणुवजुत्ता य ते दु सिज्झंति'। इति गाथाकथितार्थाभिप्रायेण भावस्त्रीणां कथं निर्वाणमिति चेत्। तासां भावस्त्रीणां प्रथमसंहननमस्ति, द्रव्यस्त्रीवेदाभावात्तद्भवमोक्ष-परिणामप्रतिबन्धकतीव्रकामोद्रेकोऽपि नास्ति। द्रव्यस्त्रीणां प्रथमसंहननं नास्तीति कस्मिन्नागमे कथितमास्त इति चेत्। तत्रोदाहरणगाथा-`अंतिमतिगसंघडणं णियमेण य कम्मभूमिमहिलाणं। आदिमतिगसंघडणं णत्थि त्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं'।। अथ मतम्-यदि मोक्षो नास्ति तर्हि भवदीयमते किमर्थमर्जिकानां महाव्रतारोपणम्। परिहारमाह-तदुपचारेण कुलव्यवस्थानिमित्तम्। न चोपचारः साक्षाद्भवितुमर्हति, अग्निवत् क्रूरोऽयं देवदत्त इत्यादिवत्। तथाचोक्तम्-`मुख्याभावे सति प्रयोजने निमित्ते चोपचारः प्रवर्तते।' किंतु यदि तद्भवे मोक्षो भवति स्त्रीणां तर्हि शतवर्षदीक्षिताया अर्जिकाया अद्यदिने दीक्षितः साधुः कथं वन्द्यो भवति। सैव प्रथमतः किं न वन्द्या भवति साधोः। किंतु भवन्मते मल्लितीर्थकरः स्त्रीति कथ्यते, तदप्ययुक्तम्। तीर्थकरा हि सम्यग्दर्शनविशुद्ध्यादिषोडशभावनाः पूर्वभवे भावयित्वा पश्चाद्भवन्ति। सम्यग्दृष्टेः स्त्रीवेदकर्मणो बन्ध एव नास्ति, कथं स्त्री भविष्यतीति। किंच यदि मल्लितीर्थकरो वान्यः कोऽपि वा स्त्री भूत्वा निर्वाणं गतः तर्हि स्त्रीरूपप्रतिमाराधना किं न क्रियते भवद्भिः। यदि पूर्वोक्तदोषाः सन्ति स्त्रीणां तर्हि सीतारुक्मिणीकुन्तीद्रौपदीसुभद्राप्रभृतयो जिनदीक्षां गृहीत्वा विशिष्टतपश्चरणेन कथं षोडशस्वर्गे गता इति चेत्। परिहारमाह-तत्र दोषो नास्ति, तस्मात्स्वर्गादागत्य पुरुषवेदेन मोक्षं यास्यन्त्यग्रे। तद्भवमोक्षो नास्ति, भवान्तरे भवतु, को दोष इति। इदमत्र तात्पर्यम्-स्वयं वस्तुस्वरूपमेव ज्ञातव्यं, परं प्रति विवादो न कर्तव्यः। कस्मात्। विवादे रागद्वेषोत्पत्तिर्भवति, ततश्च शुद्धोत्मभावना नश्यतीति।।२७।।

अथोपसंहाररूपेण स्थितपक्षं दर्शयति-

तम्हा तं पडिरूवं लिंगं तासिं जिणेहिं णिद्दिट्ठं।
कुलरूववओजुत्ता समणीओ तस्समाचारा।।२८।।

तम्हा यस्मात्तद्भवे मोक्षो नास्ति तस्मात्कारणात् **तं पडिरूवं लिंगं तासिं जिणेहिं णिद्दट्ठं** तत्प्रतिरूपं वस्त्रप्रावरणसहितं लिङ्गं लाञ्छनं तासां स्त्रीणां जिनवरैः सर्वज्ञैर्निर्दिष्टं कथितम्। **कुलरूववओजुत्ता समणीओ** लोकदुगुच्छारहित्वेन जिनदीक्षायोग्यं कुलं भण्यते, अन्तरङ्गनिर्विकार-चित्शुद्धिज्ञापकं बहिरङ्गनिर्विकारं रूपं भण्यते, शरीरभङ्गरहितं वा अतिबालवृद्धबुद्धिवैकल्यरहितं वयो भण्यते, तैः कुलरूपवयोभिर्युक्ताः कुलरूपवयोयुक्ता भवन्ति। काः। श्रमण्योऽर्जिकाः। पुनरपि किंविशिष्टाः। **तस्समाचारा** तासां स्त्रीणां योग्यस्तद्योग्य आचारशास्त्रविहितः समाचार आचार आचरणं यासां तास्तत्समाचारा इति।।२८।।

अथेदानीं पुरुषाणां दीक्षाग्रहणे वर्णव्यवस्थां कथयति-

वण्णेसु तीसु एक्को कल्लाणंगो तवोसहो वयसा।
सुमुहो कुच्छारहिदो लिंगग्गहणे हवदि जोग्गो।।२९।।

वण्णेसु तीसु एक्को वर्णेषु त्रिष्वेकः ब्राह्मणक्षत्रियवैश्यवर्णेष्वेकः। **कल्लाणंगो** कल्याणङ्ग आरोग्यः। **तवोसहो वयसा** तपःसहः तपःक्षमः। केन। अतिवृद्धबालत्वरहितवयसा। **सुमुहो** निर्विकाराभ्यन्तरपरमचैतन्यपरिणतिविशुद्धिज्ञापकं गमकं बहिरङ्गनिर्विकारं मुखं यस्य, मुखावयवयभङ्ग-रहितं वा, स भवति सुमुखः। **कुच्छारहिदो** लोकमध्ये दुराचारद्यपवादरहितः। **लिंगग्गहणे हवदि जोग्गो** एवंगुणविशिष्टपुरुषो जिनदीक्षाग्रहणे योग्यो भवति। यथायोग्य सच्छूद्राद्यपि।।।२९।।

अथ निश्चयनयाभिप्रायं कथयति-

जो रयणत्तयणासो सो भंगो जिणवरेहिं णिद्दिट्ठो।
सेसं भंगेण पुणो ण होदि सल्लेहणाअहिरो।।३०।।

जो रयमत्तयणासो सो भंगो जिणवरेहिं णिद्दिट्ठो यो रत्नत्रयनाशः स भङ्गो जिनवरैर्निर्दिष्टैः। विशुद्धज्ञानदर्शनस्वभावनिजपरमात्मतत्त्वसम्यक्श्रद्धाज्ञानानुष्ठानरूपो योऽसौ निश्चयरत्नत्रयस्वभावस्तस्य विनाशः स एव निश्चयेन नाशो भङ्गो जिनवरैर्निर्दिष्टः। **सेसं भंगेण पुणो** शेषभङ्गेन पुनः शेषखण्डमुण्डवात-वृषणादिभङ्गेन **ण होदि सल्लेहणाअरिहो** न भवति सल्लेखनाईः। लोकदुगुञ्छाभयेन निर्ग्रन्थरूपयोग्यो न भवति। कौपीनग्रहणेन तु भावनायोग्यो भवतीत्यभिप्रायः।।३०।। एवं स्त्रीनिर्वाणनिराकरणव्याख्यान-मुख्यत्वेनैकादशगाथाभिस्तृतीयं स्थलं गतम्। अथ पूर्वोक्तस्योपकरण-रूपापवादव्याख्यानस्य विशेषविवरणं करोति-**इदि भणिदं** इति भणितं कथितम्। किम्। **उवयरणं** उपकरणम्। क्क। **जिणमग्गे** जिनोक्तमोक्षमार्गे। किमुपकरणम्। **लिंगं** शरीराकारपुद्गलपिण्डरूपं द्रव्यलिङ्गम्। किंविशिष्टम्। **जहजादरूवं** यथाजातरूपं, यथाजातरूपशब्देनात्र व्यवहारेण संगपरित्यागयुक्तं नग्नरूपं, निश्चयेनाभ्यन्तरेण शुद्धबुद्धैकस्वभावं परमात्मस्वरूपं। **गुरुवयणं पि य** गुरुवचनमपि, निर्विकारपरमचिज्जयोतिःस्वरूपपरमात्मतत्त्वप्रतिबोधकं सारभूतं सिद्धोपदेशरूपं गुरुपदेशवचनम्। न केवलं गुरुपदेशवचनम्, **सुत्तज्झयणं च** आदिमध्यान्तवर्जित-जातिजरामरणरहितनिजात्मद्रव्यप्रकाशकसूत्राध्ययनं च, परमागमवाचनमित्यर्थः। **णिद्दिट्ठं** उपकरणरूपेण निर्दिष्टं कथितम्। **विणओ** स्वकीयनिश्चयरत्नत्रयशुद्धिर्निश्चयविनयः, तदाधारपुरुषेषु भक्तिपरिणामो व्यवहारविनयः। उभयोऽपि विनयपरिणाम उपकरण भवतीति निर्दिष्टः। अनेन किमुक्तं भवति-निश्चयेन चतुर्विधमेवोपकरणम्। अन्यदुपकरणं व्यवहार इति।।२२५।।

अब, अपवाद के कौन से विशेष (भेद) हैं, सो कहते हैंः—

यथाजातरूप लिंग, वह है, उपकरण जिनमार्ग में।
गुरु का वचन, सूत्राध्ययन, अरु विनय भी उपकरण हैं॥२२५॥

अन्वयार्थ - **[यथाजातरूपं लिंगं]** यथाजातरूप (जन्मजात-नग्न) जो लिंग वह **[जिन-मार्गे]** जिनमार्ग में **[उपकरणं इति भणितम्]** उपकरण कहा गया है, **[गुरुवचनं]** गुरु के वचन, **[सूत्राध्ययनं च]** सूत्रों का अध्ययन **[च]** और **[विनयः अपि]** विनय भी **[निर्दिष्टम्]** उपकरण कही गयी है।

टीका - इसमें जो अनिषिद्ध उपधि अपवाद है, वह सभी वास्तव में ऐसा ही है कि जो श्रामण्यपर्याय के सहकारी कारण के रूप में उपकार करनेवाला होने से उपकरणभूत है, दूसरा नहीं। उसके विशेष (भेद) इस प्रकार हैं:—(१) सर्व [१]आहार्य रहित सहजरूप से अपेक्षित (सर्व आहार्य रहित) यथाजातरूपपने के कारण जो बहिरंग लिंगभूत हैं ऐसे कायपुद्गल; (२) जिनका श्रवण किया जाता है ऐसे [२]तत्कालबोधक, गुरु द्वारा कहे जाने पर [३]आत्मतत्त्व-बोधक, [४]सिद्ध उपदेशरूप वचनपुद्गल; तथा (३) जिनका अध्ययन किया जाता है ऐसे, नित्यबोधक, अनादिनिधन शुद्ध आत्मतत्त्व को प्रकाशित करने में समर्थ श्रुतज्ञान के साधनभूत शब्दात्मक सूत्र पुद्गल; और (४) शुद्ध आत्मतत्त्व को व्यक्त करनेवाली जो दर्शनादिक पर्यायें, उनरूप से परिणमित पुरुष के प्रति [५]विनीतता का अभिप्राय प्रवर्तित करनेवाले चित्रपुद्गल। (अपवादमार्ग में जिस उपकरणभूत उपधि का निषेध नहीं है, उसके उपरोक्त चार भेद हैं।)

यहाँ ऐसा तात्पर्य है कि काय की भाँति वचन और मन भी वस्तुधर्म नहीं है।

भावार्थ - जिस श्रमण की श्रामण्यपर्याय के सहकारी कारणभूत, सर्व कृत्रिमताओं से रहित यथाजातरूप के सम्मुख वृत्ति जाये, उसे काय का परिग्रह है; जिस श्रमण की गुरु-उपदेश के श्रवण में वृत्ति रुके, उसे वचनपुद्गलों का परिग्रह है; जिस श्रमण की

१. आहार्य=बाहर से लाया जानेवाला; कृत्रिम; औपाधिक (सर्व कृत्रिम-औपाधिक भावों से रहित मुनि के आत्मा का सहजरूप वस्त्राभूषणादि सर्व कृत्रिमताओं से रहित यथाजातरूपपने की अपेक्षा रखता है अर्थात् मुनि के आत्मा का रूप-दशा-सहज होने से शरीर भी यथाजात ही होना चाहिए; इसलिए यथाजातरूपपना वह मुनिपने का बाह्यलिंग है।]

२. तत्कालबोधक=उसी (उपदेश के) समय ही बोध देनेवाले।[शास्त्र शब्द सदा बोध के निमित्तभूत होने से नित्यबोधक कहे गये हैं, गुरुवचन उपदेश-काल में ही बोध के निमित्तभूत होने से तत्कालबोधक कहे गये हैं।]

३. आत्मतत्त्वद्योतक=आत्मतत्त्व को समझानेवाले-प्रकाशित करनेवाले।

४. सिद्ध=सफल; रामबाण; अमोघ=अचूक; [गुरु का उपदेश सिद्ध-सफल-रामबाण है।]

५. विनीतता=विनय; नम्रता; [सम्यग्दर्शनादि पर्याय में परिणमित पुरुष के प्रति विनयभाव से प्रवृत्त होने में मन के पुद्गल निमित्तभूत हैं।]

सूत्राध्ययन में वृत्ति रुके, उसके सुत्रपुद्गलों का परिग्रह है; और जिस श्रमण के योग्य पुरुष के विनयरूप परिणाम हों, उसके मन के पुद्गलों का परिग्रह है। यद्यपि यह परिग्रह उपकरणभूत हैं, इसलिए अपवादमार्ग में उनका निषेध नहीं है, तथापि वे वस्तुधर्म नहीं हैं ॥२२५॥

गाथा-२२५ पर प्रवचन

२२५ (गाथा) यह नाम आये, देखो! अब अपवादिक के नाम आये हैं। उत्सर्ग में तो यह नहीं होते। अब अपवाद में कितने उपकरण होते हैं, किस प्रकार के (होते हैं), उनकी व्याख्या (चलेगी)। आहा...हा...!

उवयरणं जिणमग्गे लिंगं जहजागरूपवमिदि भणिदं।
गुरुवयणं पि य विणओ सुत्तज्झयणं च णिद्दिट्ठं।।२२५।।

भाषा देखो, कुन्दकुन्दाचार्यदेव की! जैनमार्ग में इसे अपवाद और उपकरण कहा गया है। आहा..! जैनमार्ग में; जैनमार्ग के अतिरिक्त जितने वस्त्र और पात्र (सहित मानते हैं), वह जैनमार्ग ही नहीं है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव ने थोड़ा लिखा, वह जैन ही नहीं है। अर...र! कठिन पड़ता है भाई! वस्त्र-पात्र रखे, वह जैनमार्ग ही नहीं है, वह जैनदर्शन ही नहीं है। आहा...हा...! आहा...हा...! कठिन भाई! बड़ा भाग उस ओर रहा, उसे यह (बैठना) कठिन पड़ता है, क्या हो? बापू! परमेश्वर जिनेश्वरदेव का यह अभिप्राय व्यक्त-प्रगट है। आहा...हा...! तीन लोक के नाथ जिनेन्द्रदेव अरिहन्त जिनेन्द्र परमेश्वर का यह आशय / अभिप्राय व्यक्त / प्रगट है। आहा...हा...!

आहा...हा...! बापू! यह शरीर तो मिट्टी है, यह तो जगत की दूसरी चीज है, यह तो अपने आया नहीं था? द्वितीय। आत्मा एक और यह पुद्गल द्वितीय। यह तो दूसरी चीज है। यह आ गया। आहा...हा...! है न? कितनी (गाथा में) आया? (गाथा २२२) **आत्मद्रव्य को द्वितीय पुद्गलद्रव्य का अभाव होने से...** आहा...हा...! हमने यह पहले पढ़ी, इसके पहले। कल तो स्वाध्याय थी न, ओहो...हो...! दिगम्बर सन्तों की

कथनी गजब है! ऐसा मार्ग कहीं है नहीं। अभी दिगम्बर सम्प्रदाय में गड़बड़ उठी है। अरे...रे...! ऐ...ई..!

मुमुक्षु – .....

पूज्य गुरुदेवश्री – परन्तु सातवाँ न हो तो छठवाँ भी नहीं होता। छठवाँ न हो तो सातवाँ नहीं होता। दोनों एक क्षण में होते हैं, सातवाँ और छठा, क्षण में छठा और क्षण में सातवाँ। आहा...हा...! पहले सातवाँ आता है। चौथे, पाँचवें गुणस्थान से विकल्प से पंच महाव्रत ले परन्तु उसमें ध्यान में पहले सातवाँ आता है। फिर छठवाँ आवे, वह विकल्प आवे, वह व्यवहार हो गया। अभी सातवें-छठवें का पता नहीं होता। श्वेताम्बर ऐसा कहते हैं, छठवें का काल करोड़पूर्व का है, सातवें का काल अन्तर्मुहूर्त का है—ऐसा कहते हैं। भगवतीसूत्र, वह फिर सातवें का काल सब होकर अन्तर्मुहूर्त का कहता है, वह भी मिथ्या बात है। छठवें के काल से सातवें का काल आधा है। यह तो वीतराग त्रिलोकनाथ.... आहा...हा...! दिगम्बर धर्म और दिगम्बर शास्त्र, वह तो अलौकिक बात है, बापू! वह कोई पक्ष की बात नहीं। जिनेन्द्रदेव त्रिलोकनाथ के अभिप्राय से जो बात है, वह बात यह है। माने, न माने स्वतन्त्र जीव है। आहा...हा...! समझ में आया? बड़ा विभाग पड़ा। आहा...हा...!

पहले कहते हैं न कि लक्ष्मी जाये, माँ-बाप मर जाये, लक्ष्मी जाये, फिर लड़के विवाद करते हैं। यह मकान मुझे और यह मकान तुझे। यह अलमारी मुझे, इसी प्रकार भगवान परमात्मा का विरह पड़ा और केवलज्ञान की विद्यमानता रही नहीं। आ...हा...! पश्चात् इन लड़कों ने इकट्ठे होकर विवाद खड़ा किया है। ऐ..ई! आहा...हा...

मुमुक्षु – ......

पूज्य गुरुदेवश्री – व्यवहार से फिर छठवाँ कैसा? यह वह कहता था, वह ब्राह्मण... ब्राह्मण नहीं, श्वेताम्बर (साधु) कहता था। हमारे व्यवहार से... ऐसा कहता था। अभी सम्यग्दर्शन नहीं, वहाँ छठा आया कहाँ से? अरे! बापू! मार्ग कठिन, भाई! श्वेताम्बर मत की श्रद्धा करने से मिथ्यात्व होता है। गृहीत (मिथ्यात्व है) बापू! ऐसा है। मधुरता से कहें, धीमे से कहें, जैसे कहें परन्तु यह मार्ग है। आहा...हा...! स्थानकवासी और श्वेताम्बर दोनों भगवान के अभिप्राय से विरुद्ध मार्गवाले हैं।

मुमुक्षु – .....

पूज्य गुरुदेवश्री – नहीं, सातवाँ नहीं। छठवाँ है—ऐसा कहते हैं। वे कहते हैं हमारे अभी सातवाँ नहीं परन्तु छठवाँ है, किन्तु छठवाँ और सातवाँ अन्तर्मुहूर्त में आता है। (उनकी) यह बात ही मिथ्या है बापू! सातवाँ हो, उसे छठवाँ आये बिना रहता ही नहीं और छठवाँ हो, उसे सातवाँ आये बिना रहता ही नहीं। सातवाँ न आवे और छठा न आवे, तब तो मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा...!

मुमुक्षु – इसमें कालभेद....

पूज्य गुरुदेवश्री – अरे! पौन सैकेण्ड... मुनि किसे कहते हैं, भगवान! बापू! तुझे... भाई! मुनि को तो पौन सैकेण्ड के अन्दर निद्रा होती है। आहा...हा...! एक सैकेण्ड निद्रा आवे तो छठवाँ गुणस्थान नहीं रहता। ऐ...ई! ऐसा भगवान का लेख है। छहढाला में आता है, छहढाला में नहीं आता? क्या भाषा है? 'पिछली रैन में एकासन....' वह पौन सैकेण्ड निद्रा होती है, उड़ जाती है, फिर वापस (सातवाँ आता है ऐसे रात्रि के पिछले भाग में एक करवट एक ही पड़खे रहते हैं), हाँ! ऐसे सोते हों तो फिर ऐसे करवट नहीं बदलते, ऐसे हो रहे हों तो यह करवट नहीं बदलते। आहा...हा...! ऐसा मार्ग है, भाई! आहा...हा...! समझ में आया? यह आनन्ददायक मार्ग है। यह कष्टदायक मार्ग नहीं है। आहा...हा...! इसका ज्ञान तो सच्चा करे। आहा...हा...! विपरीत ज्ञान में उल्टी श्रद्धा होती है, इसलिए इसका सच्चा ज्ञान तो करे, भाई! आहा...हा...! है?

आत्मद्रव्य को द्वितीय पुद्‌गलद्रव्य है। उस द्वितीय पुद्‌गलद्रव्य का अर्थ (यह है कि) भगवान आत्मा में अभाव है। शरीर, कर्म, वाणी, कर्म इन सबका अभाव है। अब इसे दूसरा द्रव्य कहाँ से आ गया?

मुमुक्षु – .....

पूज्य गुरुदेवश्री – यह अपवाद के लिये... अपवाद में भी कितना अपवाद, यह कहेंगे। देखो! आहा...हा...!

इसमें जो अनिषिद्ध उपधि अपवाद है, वह सभी वास्तव में ऐसा ही है कि

जो श्रामण्यपर्याय के... साधुपने की दशा में, चारित्र की पर्याय में **सहकारी....** अर्थात् निमित्तरूप साथ में हो इतना। **रूप में उपकार करनेवाला होने से उपकरणभूत है,....** उसे उपकरण कहते हैं। **दूसरा नहीं।** वस्त्र-पात्र, वह उपकरण नहीं है। आहा...हा...! **उसके विशेष (भेद) इस प्रकार हैं:—(१) सर्व आहार्य रहित सहजरूप से अपेक्षित....** मूल ग्रन्थ में नीचे फुटनोट में आहार्य का अर्थ किया है। ***आहार्य=बाहर से लाया जानेवाला; कृत्रिम;....*** वस्त्र का टुकड़ा या पात्र तो बाहर से लाया जाता है ***कृत्रिम; औपाधिक (सर्व कृत्रिम-औपाधिक भावों से रहित मुनि के आत्मा का सहजरूप...)*** पहले तो सहजात्मस्वरूप वीतराग पर्यायवाला यथाजातरूप मुनि का स्वरूप है।

वस्त्राभूषणादि सर्व कृत्रिमताओं से रहित.... लो, है? वस्त्र और गहने, कपड़े या पात्र आदि। ***सर्व कृत्रिमताओं से रहित यथाजातरूपपने की अपेक्षा रखता है....*** अन्तर यथाजात जैसी वीतरागदशा है, वह यथार्थ आत्मा प्रगट हुआ, उसे यथाजात जैसा शरीर हो, उतना ही उसे होता है। बाहर में उपकरण एक (उसे) होता है, दूसरा हो नहीं सकता। आहा...हा...! ऐसी बातें ही लोगों को कभी-कभी सुनने मिलती है। यह मार्ग तो भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव (कहते हैं) आहा...हा...! ***[इसलिए यथाजातरूपपना, वह मुनिपने का बाह्यलिंग है।]*** देखा? क्या कहा? कि आत्मा यथाजात जैसा शुद्ध है, वैसा प्रगट हुआ। सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र में उसकी परिणति आयी तो यथाजात जैसा आत्मा है, ऐसा चारित्र प्रगट हुआ तो उसे शरीर भी यथाजात, उसके आश्रय बिना, पर की अपेक्षा बिना, यथाजात नग्न-दिगम्बर शरीर, जैसा माता ने जन्म दिया—ऐसा शरीर उसे होता है। आहा...हा...!

यहाँ तो अभी तेल चोपड़ते हैं और क्या ऐसा करते हैं? कुछ नवीन प्रकार के तेल आते हैं। अपने को तो कुछ पता नहीं (श्रोता : ब्राह्मी तेल) ब्राह्मी तेल और अमुक ऐसा कुछ आता है। अपने को नाम बहुत (पता नहीं) अरे... बापू! (श्रोता - शान्ति होती है)। धूल का शान्त होता है। एक बेचारा कल कहता था, हाँ! यहाँ आया है न, एन.सी.? एन.सी. का आया है न? क्या कहलाता है वह?.... उसके दो व्यक्ति आये थे, राजकाम

के दो व्यक्ति आये थे। यह देखने के लिये (आये थे), बेचारे बैठे थे, एक तो बेचारा जरा नरम था, वह कहता है महाराज! बाहर में कहीं शान्ति हमें तो दिखती नहीं, कहीं शान्ति (नहीं)। कहा–बापू! शान्ति बाहर में नहीं है; शान्ति आत्मा में है। इतना बेचारा (नरम) था। वह तो बेचारा आत्मा है न, शाम को दस मिनिट बैठा था। (वह कहे) शान्ति कहीं दिखती नहीं, मैंने कहा बापू! शान्ति कहाँ बाहर में थी? धूल में, पैसे में, इज्जत में, शान्ति है? शान्ति तो आत्मा में है। भाई! कहाँ शान्ति है?

आत्मा शान्त अनाकुल आनन्दस्वरूप प्रभु अकषायस्वरूप आत्मा है। वहाँ दृष्टि करने से शान्ति प्राप्त होती है। आहा...हा...! अर्थात्? कि वह आत्मा अकषायस्वरूप भगवान आत्मा है; रागादि उसका स्वरूप नहीं। अकषायस्वरूप है, प्रभु! अकषाय कहो या शान्त कहो, उस शान्त अकषायस्वरूप में दृष्टि पड़ने से आंशिक शान्ति बाहर आवे, तब शान्ति कहलाती है और चारित्र विशेष आवे, तब उसमें तो बहुत शान्ति उछलती है। आहा...हा...! समझ में आया? ऐसी बात है भाई! दुनिया से अलग प्रकार, बापू! वीतराग तीन लोक के नाथ का यह आशय है। यह अपने आया था न? आशय का नहीं आया था? तीर्थंकरदेवों का आशय व्यक्त ही है। है न? २२४ (गाथा में)। तीन लोक के नाथ जिनेन्द्रदेव का व्यक्त अभिप्राय यह है। अकेला आत्मा, जिसे दूसरी चीज के विकल्प और पर का सम्बन्ध ही नहीं है—ऐसा उत्सर्गमार्ग, वह भगवान के आशय का प्रगटपना है। अब भगवान के आशय में एक दूसरी चीज अपवादिक जो कही गयी है, वह क्या है?— उसे यहाँ कहते हैं। आहा...हा...!

(सर्व आहार्य रहित) यथाजातरूपपने के कारण जो बहिरंग लिंगभूत हैं ऐसे कायपुद्‌गल;.... लो, है? आहा...हा...! इस शरीर के पुद्‌गल निमित्तरूप उपकरण हैं। वह अपवादमार्ग में, हाँ! आहा...हा...! **(२) जिनका श्रवण किया जाता है, ऐसे तत्कालबोधक, गुरु द्वारा कहे जाने पर....** गुरु कहते हैं, वहाँ तत्काल बोधक / तुरन्त इसे ज्ञान में, भान में आता है। है न तत्कालबोधक का अर्थ ***उसी (उपदेश के) समय ही बोध देनेवाले।[शास्त्र शब्द सदा बोध के निमित्तभूत....]***शास्त्र के शब्द सदा बोध के निमित्तभूत (होने से) ***[नित्यबोधक कहे गये हैं। गुरुवचन उपदेश-काल में ही***

बोध के निमित्तभूत होने से तत्कालबोधक कहे गये हैं।] आहा...हा...! शास्त्र को पढ़ना और समझना, वह तो सदा बोध का निमित्तभूत है परन्तु यह जो पढ़ने-सुनने का विकल्प है, वह अपवादमार्ग है। आहा...हा...! छठे गुणस्थान में ऐसा भाव होता है। आहा...हा...!

गुरु द्वारा कहे जाने पर आत्मतत्त्व-द्योतक,.... भाषा देखो? वापस इन्होंने क्या कहा कि आत्मतत्त्व-द्योतक। अमुक द्वीप, समुद्र और अमुक इस बात की मुख्यता नहीं, कहते हैं। आहा...हा...! गुरु और शास्त्र दोनों। है न? **जिनका श्रवण किया जाता है ऐसे तत्कालबोधक, गुरु द्वारा कहे जाने पर आत्मतत्त्व-द्योतक, सिद्ध उपदेशरूप वचनपुद्गल;...** आहा...हा...! क्या कहा गया? आत्मत्त्व-द्योतक सिद्ध उपदेश (अर्थात्) सफल, रामबाण, अमोघ, अचूक, (गुरु का उपदेश सिद्ध-सफल-रामबाण है)। कहते हैं। आहा...हा...!

कैसे (हैं वचन)? आत्मतत्त्व के प्रकाशित करनेवाले। यह आत्मा आनन्दस्वरूप है, पूर्णानन्द का नाथ है—ऐसा बतलानेवाले वे शब्द हैं। आहा...हा...! दूसरा उपदेश न करे। यह जो बात है परन्तु मुख्य तो यह है, सब बताकर कहना तो है यह-आत्मतत्त्व का प्रकाश। अखण्डानन्द प्रभु चैतन्य कमल अन्दर भरा है, वह खिले कैसे? यह बतलानेवाला उपदेश गुरु का है। समझ में आया? ऐसा उपदेश किस प्रकार का? अन्य तो कहें, दया पालो, व्रत करो, उपवास करो, सामायिक (करो), बहुत तो मन्दिर बनाओ (ऐसा कहे तो) समझ में भी आवे कुछ? क्या समझ में आवे? वह परवस्तु कहाँ की जा सकती है, भाई! आहा...हा...!

(यहाँ) क्या कहा? **तत्कालबोधक, गुरु द्वारा कहे जाने पर आत्मतत्त्व-द्योतक,....** आत्मतत्त्व को समझानेवाले, आत्मतत्त्व को प्रकाशित करनेवाले। आहा...हा...! सिद्ध (अर्थात्) सफल उपदेश, इतनी भाषा प्रयोग की। सफल उपदेश। आहा...हा...! रामबाण, शब्द जहाँ सुना, वहाँ इसे भान हो जाये—ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! आहा...हा...! समझ में आया? आत्मा को प्रकाशित करनेवाले, आत्मा को समझानेवाले। आहा...हा...! गुरु का उपदेश ऐसा होता है। उसके बदले अभी तो कहीं कुछ बातें करने लगे। इसने ऐसा

किया और ऐसा किया और परदेश में अमुक दिया। आहा...हा...! देखो, दिगम्बर सन्तों के कथन कैसे होते हैं ? आहा...हा...!

मुमुक्षु – रामबाण लिखा है।

पूज्य गुरुदेवश्री – लिखा है न, आहा...हा...! सिद्ध का अर्थ यह किया। सफल, सिद्ध–इसकी वाणी सफल है, रामबाण है, अमोघ फलसहित है, अचूक है, चूके नहीं ऐसे उनके वचन हैं।

यहाँ तो वापस विशिष्टता (यह की है कि) आत्मतत्त्व के द्योतक, आत्मा के तत्त्व को प्रकाशित करनेवाले उनके वचन हैं। आहा...हा...! समझ में आया ? गुजराती समझते हैं थोड़ा–थोड़ा ? इन्दौर! यह गुजराती समझते हैं न ? यह भाषा तो सादी है, बहुत ऐसी (कठिन नहीं है)। आहा...हा...! अरे!

यह दिगम्बर सन्त कुन्दकुन्दाचार्य, अमृतचन्द्राचार्य! आहा...हा...! धर्म के धोरी, धर्म के धुरन्धर! भगवान का यह आशय है—ऐसा कहना चाहते हैं। आहा...हा...! भगवान का अभिप्राय यह है कि उत्सर्गमार्ग में तो पर का सम्बन्ध है ही नहीं। अपवादमार्ग में इस सूत्र का अध्ययन, गुरु–वचन सुनना, आत्मतत्त्व के प्रकाशित करनेवाले शब्द और वे शब्द रामबाण सफल हैं – ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! क्या शैली! आहा...हा...! सिद्धान्त की शैली तो देखो! यह सिद्धान्त! यह सिद्धान्त कहलाता है। आहा...हा...!

मुमुक्षु – यहाँ तो गुरु के वचन को तत्काल बोधक कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री – तत्काल बोधक कहा न, तुरन्त, तुरन्त सुनते–सुनते इसे बोध हो—ऐसा कहते हैं। होता ही है—ऐसा यहाँ तो लेना है न। प्रमाण करना, नहीं आया ? (समयसार की) पाँचवीं गाथा में '**तं एयत्तविहत्तं दाएहं अप्पणो सविहवेण। जिद दाएज्ज पमाणं**' आहा...हा...! भगवान कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैं एकत्व–विभक्त अर्थात् अपने स्वभाव से एकत्व और रागादि से भिन्न आत्मा की बात करूँगा परन्तु यदि करूँ तो प्रमाण करना, हाँ! आहा...हा...! अनुभव से प्रमाण करना। आहा...हा...! समझ में आया ? आहा...हा...! यह चरणानुयोग की शैली, देखो तो सही!

उपदेशरूप वचनपुद्गल;.... लो, देखा ? यह अपवाद में आता है, कहते हैं।

ऐसा आता है। सुनने में वचन के पुद्गल हुए, वे तो जड़ हैं न! परद्रव्य है। आहा...हा...! वे सुनने में आवें, वे वचन पुद्गल हैं। उस ओर लक्ष्य जाता है, विकल्प है, इसलिए उस पुद्गल को बाह्य उपकरण कहा गया है। अन्तर उपकरण तो ज्ञान-दर्शन और आनन्द है। वे (वचन) बाह्य उपकरण हैं। आहा...हा...! इसके अतिरिक्त वस्त्र, पात्र, डोरा और धागा (होता नहीं)।

पालीताणा में एक है, वहाँ आगम मन्दिर है, वह तो उनके बनाये हुए कल्पित शास्त्रों का आगम है। यह तो भगवान के कहे हुए आगम हैं। समयसार, प्रवचनसार, त्रिलोक के नाथ की वाणी सन्तों ने कही है, वह यह परमागम है। हमारे यह सेठ प्रसन्न हो गये हैं, यह ऐसा है, वहाँ हमारे ८७ वीं जयन्ती करनी है। लोग देखने तो आवें, उनकी प्रार्थना है। ऐसा कि ऐसी चीज है। पहले तो अभी होता था न, उद्घाटन के समय आये थे, तब अभी यह नहीं हुआ था, रंग नहीं हुआ था। भाई कहते थे कि यह बहुत अद्भुत है, इसलिए ऐसा कि ऐसी प्रसिद्धि के लिये ८७ वीं जयन्ती यहाँ मनाना, ऐसी इनकी माँग है—ऐसा कहते हैं कि हम सब आपके साथ हैं, आपकी माँग में हम साथ हैं ऐसा सब कहते हैं। फिर (प्रमुख के) साथ बात करेंगे।

कहते हैं, आहा...हा...! क्या वीतराग के कथन! अपवाद के उपकरणों में भी (कैसे कथन हैं) एक शरीर यथाजात, वह उपकरण-निमित्त; एक वचन पुद्गल जो गुरु के, वे भी एक उपकरण। आहा...हा...! विकल्प है न! आहा...हा...! **तथा (३) जिनका अध्ययन किया जाता है ऐसे, नित्यबोधक,....** सिद्धान्त हाथ में लेकर हमेशा पढ़ सकते हैं। **नित्यबोधक, अनादिनिधन....** आहा...हा...! वह भी क्या कहनेवाले हैं? कहते हैं **अनादिनिधन शुद्ध आत्मतत्त्व को प्रकाशित करने में समर्थ....** आहा...हा...! वह सिद्धान्त भी जो वीतरागता के शास्त्र हैं, वे आत्मा को प्रकाशित करनेवाले हैं। समझ में आया? भले जड़ की बात करे परन्तु वह जड़ तुझमें नहीं और तू नहीं, यह बतलाने के लिये, आत्मा बतलाने के लिये यह बात करते हैं। समझ में आया? आहा...हा...! कर्म की बात आवे, दूसरी (बात) आवे परन्तु उस सब बात में हेतु (यह है) कि वह जो चीज तुझे बतलायी, वह चीज जड़ है और तू उसमें नहीं और तुझमें वह नहीं। इसलिए बतलायी है, उसमें रहने के लिये नहीं। आहा...हा...!

प्रश्न – शास्त्र, सम्यग्दर्शन में निमित्त पड़ सकता है ?

समाधान – पहले तो उपदेश चाहिए, देशनालब्धि चाहिए, देशनालब्धि चाहिए। पहले सच्चे सन्त, गुरु के पास से सत् उपदेश मिलना चाहिए। उसमें इसमें पहले यह डाला है, देखो न! गुरु को पहले डाला और शास्त्र अध्ययन को बाद में डाला है। उपकरण की शैली में भी यह डाला है। समझ में आया ? उपकरण में भी यह डाला, पहले गुरु-वचन और फिर नित्यबोधक शास्त्र रखे हैं। यह तो इस टीका की सन्तों की शैली! ओहो...हो...! कोई गजब है! अमृतचन्द्राचार्यदेव, पूज्यपादस्वामी, कुन्दकुन्दाचार्यदेव आदि अलौकिक बातें हैं, बापू! आहा...हा...! यह तो जगत का भाग्य कि यह वस्तु रह गयी। आहा...हा...!

मुमुक्षु – रह तो गयी परन्तु सुनने मिली।

पूज्य गुरुदेवश्री – सुनने मिली। यह अपने आया था न, नहीं ? क्या कहा ? भाग्यवान, नहीं आया था ? सौभाग्य। यह बात सुननेवाले का सौभाग्य है, कहते हैं। ऐसा लिखा है। शास्त्र में आ गया परम सौभाग्य! आहा...हा...! तीन लोक के नाथ की, सन्तों की वाणी जो है, वह सुनने का सौभाग्य हो, उसे मिलती है। आहा...हा...! कहो, यह तुम्हारे पैसा-वैसा मिले, इसलिए सौभाग्य है—ऐसा नहीं है। अमेरिका में अरबोंपति हैं, जहाँ जाये वहाँ के पैसे ले आते हैं न! कहो समझ में आया ? आहा...हा...! शैली में भी पहले गुरु को रखा, फिर सूत्र अध्ययन रखा। आहा...हा...!

शुद्ध आत्मतत्त्व को प्रकाशित करने में समर्थ श्रुतज्ञान के साधनभूत.... श्रुतज्ञान जो भाव, उसका निमित्तभूत **शब्दात्मक सूत्र पुद्गल;....** शब्दस्वरूप यह पुद्गल कान में पड़ें, वाणी। आहा...हा...! उसे भी एक अपवादिक उपकरण कहा गया है। आहा...हा...! **(४) शुद्ध आत्मतत्त्व को व्यक्त करनेवाली जो दर्शनादिक पर्यायें, उनरूप से परिणमित पुरुष के प्रति विनीतता....** अब क्या कहते हैं ? विनीत-विनय, वह भी उपकरण है। शुद्ध आत्मतत्त्व को प्रगट करनेवाले **दर्शनादिक पर्यायें, उनरूप से परिणमित पुरुष....** है। आहा...हा...! उनका विनय—ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! शुद्ध आत्मतत्त्व को प्रगट करनेवाले। सम्यग्दर्शन, वह आत्मतत्त्व को प्रगट करनेवाला है; सम्यग्ज्ञान, आत्मा को प्रगट करनेवाला है; चारित्र, आत्मा की प्रसिद्धि करता है।

ऐसे **जो पर्यायें, उनरूप से परिणमित पुरुष के प्रति विनीतता का अभिप्राय....** है ? (विनीतता का अर्थात्) विनय; नम्रता। (सम्यग्दर्शनादि पर्यायों से परिणमित पुरुष के प्रति विनयभाव से प्रवर्तन करने में मन के पुद्गल निमित्तभूत हैं।) मन है न मन ? वह विनय करने में निमित्त आया न, वे भी मन के पुद्गल अपवादिक उपकरण हैं। आहा...हा... ! वह परचीज है न ? आहा...हा... ! **अभिप्राय प्रवर्तित करनेवाले चित्रपुद्गल। विनीतता का अभिप्राय प्रवर्तित करनेवाले....** वह भी वापस विनयभाव से करूँ, ऐसा। बैठ रूप से किसी की... रूप से ऐसा नहीं। **विनीतता का अभिप्राय प्रवर्तित करनेवाले चित्रपुद्गल। (अपवादमार्ग में जिस उपकरणभूत उपधि का निषेध नहीं है, उसके उपरोक्त चार भेद हैं।)** बस, इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपकरण हो (—ऐसा नहीं है)। अपवाद में भी यह होते हैं। अपवाद में वस्त्र रखना या पात्र रखना, वह अपवादमार्ग है ही नहीं, वह निर्ग्रन्थमार्ग ही नहीं है। आहा...हा... ! विशेष कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

गाथा - २२६

अथाप्रति षद्धिशरीरमात्रोपधिपालनविधानमुपदिशति -

इङलोगणिरावेक्खो अप्पडिबद्धो परम्हि लोयम्हि।
जुत्ताहारविहारो रहिदकसाओ हवे समणो।।२२६।।

इहलोकनिरापेक्षः अप्रतिबद्धः परस्मिन् लोके।
युक्ताहारविहारो रहितकषायो भवेत् श्रमणः।।२२६।।

अनादि निधनैकरुपशुद्धात्मत्त्वपरिणत्वादखिलकर्मपुद्गलविपाकात्यन्तविविक्तस्वभावत्वेन रहितकषायत्वात्तदात्वमनुष्यत्वेऽपि समस्तमनुष्यव्यवहारबहिर्मूतत्वेनेहलोकनिरापेक्षत्वात्तथा भविष्यदमर्त्यादिभावानुभूतितृष्णाशून्यत्वेन परलोकाप्रतिबद्धत्वाच्च, परिच्छेद्यार्थोपलम्भप्रसिद्धयर्थ-प्रदीपपूरणोत्सर्पणस्थानीयाभ्यां शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भप्रसिद्धयर्थतच्छरीरसम्भोजनसञ्चलनाभ्यां युक्ताहारविहारो हि स्यात् श्रमणः। इदमत्र तात्पर्यम् - यतो हि रहितकषायः ततो न तच्छरीरानुरागेण दिव्यशरीरानुरागेण बाहारविहारयोरयुक्त्या प्रवर्तेत। शुद्धात्मतत्त्वोपलम्भसाधकश्रामण्यपर्यायपालनायैव केवलं युक्ताहारविहारः स्यात्।।२२६।।

अथ युक्ताहारविहारलक्षणतपोधनस्य स्वरूपमाख्याति-**इहलोगणिरावेक्खो** अहलोकनिरापेक्षः, टङ्कीत्कीर्णज्ञायकैकस्वभावनिजात्मसंवित्तिविनाशकख्यातिपूजालाभरूपेहलोककाङ्क्षरहितः, **अप्पडिबद्धो परम्मि लोयम्हि** अप्रतिबद्धः परस्मिन् लोके, तपश्चरणे कृते दिव्यदेवस्त्रीपरिवारादिभोगा भवन्तीति, एवंविधपरलोके प्रतिबद्धो न भवति, **जुत्ताहारविहारो** हवे युक्ताहारविहारो भवेत्। स कः। **समणो** श्रमणः। पुनरपि कथभूतः। **रहिदकसाओ** निःकषाय स्वरूपसंवित्यवष्टम्भबलेन रहितकषायश्चेति। अयमत्र भावार्थः - योऽसो इहलोकपरलोकनिरपेक्षत्वेन निःकषायत्वेन च प्रदीपस्थानीयशरीरे तैलस्थानीयं ग्रासमात्रं दत्वा घटपटादिप्रकाश्यपदार्थस्थानीयं निजपरमात्मपदार्थमेव निरीक्षते स एव युक्ताहारविहारो भवति, न पुनरन्यः शरीरपोषणनिरत इति।।२२६।।

अब, अनिषिद्ध ऐसा जो शरीर मात्र उपधि उसके पालन की विधि का उपदेश करते हैं:—

इस लोक में निरपेक्ष अरु, परलोक में अप्रतिबद्ध हैं।
कषायरहित जो श्रमण हैं, वे युक्ताहार-विहारी हैं॥२२६॥

अन्वयार्थ - [**श्रमणः**] श्रमण [**रहितकषायः**] कषायरहित वर्तता हुआ [**इहलोक निरापेक्षः**] इस लोक में निरपेक्ष और [**परस्मिन् लोके**] परलोक में [**अप्रतिबद्धः**] अप्रतिबद्ध होने से [**युक्ताहारविहारः भवेत्**] [1]युक्ताहार-विहारी होता है।

टीका : अनादिनिधन एकरूप शुद्ध आत्मतत्त्व में परिणत होने से श्रमण समस्त कर्मपुद्गल के विपाक से अत्यन्त विविक्त (भिन्न) स्वभाव के द्वारा कषायरहित होने से, उस (वर्तमान) काल में मनुष्यत्व के होते हुए भी (स्वयं) समस्त मनुष्यव्यवहार से [2]बहिर्भूत होने के कारण इस लोक के प्रति निरपेक्ष (निस्पृह) है; तथा भविष्य में होनेवाले देवादि भावों के अनुभव की तृष्णा से शून्य होने के कारण परलोक के प्रति अप्रतिबद्ध है; इसलिए, जैसे ज्ञेय पदार्थों के ज्ञान की सिद्धि के लिये (घटपटादि पदार्थों को देखने के लिये ही) दीपक में तेल डाला जाता है और दीपक को हटाया जाता है, उसी प्रकार श्रमण शुद्ध आत्मतत्त्व की उपलब्धि की सिद्धि के लिये (शुद्धात्मा को प्राप्त करने के लिये ही) वह शरीर को खिलाता और चलाता है, इसलिए युक्ताहारविहारी होता है।

यहाँ ऐसा तात्पर्य है कि — श्रमण कषायरहित है इसलिए वह शरीर के (वर्तमान मनुष्य-शरीर के) अनुराग से या दिव्य शरीर के (भावी देवशरीर के) अनुराग से आहार-विहार में अयुक्तरूप से प्रवृत्त नहीं होता; किन्तु शुद्धात्मतत्त्व की उपलब्धि की साधकभूत श्रामण्यपर्याय के पालन के लिये ही केवल युक्ताहारविहारी होता है॥२२६॥

---

१. युक्ताहार-विहारी = (१) योग्य (उचित) आहार-विहारवाला; (२) युक्त अर्थात् योगी के आहार विहारवाला; योगपूर्वक (आत्मस्वभाव में युक्तता पूर्वक) आहार विहारवाला।

२. बहिर्भूत = बाहर, रहित, उदासीन।

गाथा - २२७

अथ युक्ताहारविहारः साक्षादनाहारविहार एवेत्युपदिशति -

जस्स अणेसणमप्पा तं पि तवो तप्पडिच्छगा समणा।
अण्णं भिक्खमणेसणमध ते समणा अणाहारा।।२२७।।

यस्यानेषण आत्मा तदपि तपः तत्प्रत्येषकाः श्रमणाः।
अन्यद्भैक्षमनेषणमथ ते श्रमणा अनाहाराः।।२२७।।

स्वयमनशनस्वभावत्वादेषणादोषशून्यभैक्ष्यत्वाच्च, युक्ताहारः साक्षादनाहार एव स्यात्। तथाहि- यस्य सकलकालमेव सकलपुद्गलाहरणशून्यमात्मानवबुद्धयमानस्य सकलाशनतृष्णाशून्यात्वात्स्वयमनशन एव स्वभावः, तदेव तस्यानशनं नाम तपोऽन्तरङ्गस्य बलीयस्त्वात्? इति कृत्वा ये तं स्वयमनशनस्वभावं भावयन्ति श्रमणाः, तत्प्रतिषिद्धये चैषणादोषशून्यमनय्द्भैक्षं चरन्ति, ते किलाहरन्तोऽप्यनारहन्त इव युक्ताहारत्वेन स्वभावपरभावप्रत्ययबन्धा भावात्साक्षादनाहारा एव भवन्ति। एवं स्वयमविहारस्वभावत्वात्समिति-शुद्धविहारत्वाच्च युक्तिविहारः साक्षादविहार एव स्यात् अत्यनुक्तमपि गम्येतेति।।२२७।।

अथ पञ्चदशप्रमादैस्तपोधनः प्रमत्तो भवतीति प्रतिपादयति -

कोहादिएहि चउहि वि विकहाहि तहिंदियाणमत्थेहिं।
समणो हवदि पमत्तो उवजुत्तो णेहणिद्दाहिं।।३१।।

हवदि क्रोधादिपञ्चदशप्रमादरहितचिच्चमत्कारमात्रात्मत्त्वभावनाच्युतः सन् भवति। स कः कर्ता। **समणो** सुखदुःखादिसमचितः श्रमणः। किंविशिष्टो भवति। **पमत्तो** प्रमत्तः प्रमादी। कैः कृत्वा। **कोहादिएहि** चउहि वि चतुर्भिरपि क्रोधादिभिः, **विकहाहि** स्त्रीभक्तचोरराजकथाभिः, **तहिंदियाणमत्थेहिं** तथैव पञ्चेन्द्रियाणामर्थैः स्पर्शादिविषयैः। पुनरपि किंरूपः। **उवजुत्तो** उपयुक्तः परिणतः। काभ्याम्। **णेहणिद्दाहिं** स्नेहनिद्राभ्यामिति।।३१।। अथ युक्ताहारविहारतपोधनस्वरूपमुपदिशति**जस्स** यस्य मुनेः संबन्धी **अप्पा** आत्मा। किंविशिष्टः। **अणेसणं** स्वकीयशुद्धात्मतत्त्वभावनोत्पन्नसुखामृताहारेण तृप्तत्वान्न

विद्यते एषणमाहाराकङ्क्षा यस्य स भवत्यनेषणः, **तं पि तवो** तस्य तदेव निश्चयेन निराहारात्मभावनारूपमुपवासलक्षणं तपः, **तप्पडिच्छगा समणा** तत्प्रत्येषकाः श्रमणाः, तन्निश्चयोपवासलक्षणं तपः प्रतीच्छन्ति तत्प्रत्येषकाः श्रमणाः। पुनरपि किं येषाम्। **अण्णं** निजपरमात्मतत्त्वादन्यद्भिन्नं हेयम्। किम्। अणेसणं अन्नस्याहारस्यैषणं वाच्छा अन्नेषणम्। कथंभूतम्। **भिक्खं** भिक्षायां भवं भैक्ष्यं। **अध** अथ अहो, **ते समणा अणाहारा** ते अनशनादिगुणविशिष्टाः श्रमणा आहारग्रहणेऽप्यनाहारा भवन्ति। तथैव च निःक्रियपरमात्मानं ये भावयन्ति, पञ्चसमितिसंहिता बिहरन्ति च, ते विहारेऽप्यविहारा भवन्तीत्यर्थः।।२२७।।

अब, युक्ताहारविहारी साक्षात् अनाहारविहारी (अनाहारी और अविहारी) ही है ऐसा उपदेश करते हैं:—

जो आत्मा एषणारहित, तप-सिद्धि में उद्यत रहे।
लें अन्य भिक्षा दोष बिन, वे अनाहारी श्रमण कहे॥२२७॥

अन्वयार्थ - [यस्य आत्मा अनेषणः] जिसका आत्मा एषणारहित है (अर्थात् जो अनशनस्वभावी आत्मा का ज्ञाता होने से स्वभाव से ही आहार की इच्छा से रहित है) **[तत् अपि तपः]** उसे वह भी तप है; (और) **[तत्प्रत्येषकाः]** उसे प्राप्त करने के लिये (अनशनस्वभाववाले आत्मा को परिपूर्णतया प्राप्त करने के लिये) प्रयत्न करनेवाले **[श्रमणाः]** श्रमणों के **[अन्यत् भैक्षम्]** अन्य (स्वरूप से पृथक्) भिक्षा **[अनेषणम्]** एषणारहित (एषणदोष से रहित) होती है; **[अथ]** इसलिए **[ते श्रमणाः]** वे श्रमण **[अनाहाराः]** अनाहारी हैं।

टीका : (१) स्वयं अनशनस्वभाववाला होने से (अपने आत्मा को स्वयं अनशनस्वभाववाला जानने से) और (२) एषणादोषशून्य भिक्षावाला होने से, युक्ताहारी (युक्ताहारवाला श्रमण) साक्षात् अनाहारी ही है। वह इस प्रकार — सदा ही समस्त पुद्‌गलाहार से शून्य ऐसे आत्मा को जानता हुआ समस्त अनशनतृष्णा रहित होने से जिसका [१]स्वयं अनशन ही स्वभाव है, वही उसके अनशन नामक तप है, क्योंकि अन्तरंग की विशेष बलवत्ता है; ऐसा समझकर जो श्रमण (१) आत्मा को स्वयं अनशनस्वभाव भाते हैं (समझते हैं, अनुभव करते हैं) और (२) उसकी सिद्धि के लिये (पूर्ण प्राप्ति के

---

१. स्वयं=अपने आप; अपने से; सहजता से (अपने आत्मा को स्वयं अनशनस्वभावी जानना वही अनशन नामक तप है।)

लिये एषणादोष शून्य ऐसी अन्य (पररूप) भिक्षा आचरते हैं; वे आहार करते हुए भी मानो आहार नहीं करते हों — ऐसे होने से साक्षात् अनाहारी ही हैं, क्योंकि युक्ताहारीपने के कारण उनके स्वभाव तथा परभाव के निमित्त से बन्ध नहीं होता।

इस प्रकार (जैसे युक्ताहारी साक्षात् अनाहारी ही है, ऐसा कहा गया है उसी प्रकार), (१) स्वयं अविहारस्वभाववाला होने से और (२) समितिशुद्ध (ईर्यासमिति से शुद्ध ऐसे) विहारवाला होने से युक्तविहारी (युक्तविहारवाला श्रमण) साक्षात् अविहारी ही है—ऐसा अनुक्त होने पर भी (गाथा में नहीं कहा जाने पर भी) समझना चाहिए॥२२७॥

गाथा – २२८

अथ कुतो युक्ताहारत्वं सिद्ध्यतीत्युपदिशति-

केवलदेहो समणो देहे ण मम त्ति रहिदपरिकम्मो।
आजुत्तो तं तवसा अणिगूहिय अप्पणो सत्तिं।।२२८।।

केवलदेहः श्रमणो देहे न ममेति रहितपरिकर्मा।
आयुक्तबांस्तं तपसा अनिगूह्यात्मनः शक्तिम्।।२२८।।

यतो हि श्रमणः श्रामण्यपर्यायसहकारिकारणत्वेन केवलदेहमात्रस्योपधेः प्रसहयाप्रतिषेधकत्वात्केवलदेहत्वे सत्यपि देहे `किं किंचण' इत्यादिप्राक्तनसूत्रद्योतितपरमेश्वराभिप्रायपरिग्रहणेण न नाम ममायं ततो नानुग्रहार्हः किन्तूपेक्ष्य एवेति परित्यक्तसमस्तसंस्कारत्वाद्रहितपरिकर्मा स्यात्। ततस्तन्ममत्वपूर्वकानुचिताहारग्रहणाभावाद्युक्ताहारत्वं सिद्ध्येत्। यतश्च समस्तामप्यात्मशक्तिं प्रकटन्ननन्तरसूत्रोदितेनानशनस्वभावलक्षणेन तपसा तं देहं सर्वारम्भेणाभियुक्तवान् स्यात्, तत आहारग्रहणपरिणामात्मकयोगध्वंसाभावाद्युक्तस्यैवाहारेण च युक्ताहारत्वं सिद्ध्येत्।।२२८।।

अथ तदेवानाहारकत्वं प्रकारान्तरेण प्राह-**केवलदेहो** केवलदेहोऽन्यपरिग्रहरहितो भवति। स कः कर्ता। **समणो** निन्दाप्रशंसादिसमचित्तः श्रमणः। तर्हि किं देहे ममत्वं भविष्यति। नैवं। **देहे वि ममत्तरहिदपरिकम्मो** देहेऽपि ममत्वरहितपरिकर्मा, `ममत्तिं परिवज्जामि णिम्ममत्तिं उवट्ठिदो। आलंबणं च मे आदा अवसेसाई वोसरे।।' इति श्लोककथितक्रमेण देहेऽपि ममत्वरहितः। **आजुत्तो तं तवसा** आयुक्तवान् आयोजितवांस्तं देहं तपसा। किं कृत्वा। **अणिगूहिण** अनिगूह्य प्रच्छादनमकृत्वा। कां। **अप्पणो सत्तिं** आत्मनः शक्तिमिति। अनेन किमुक्तं भवति-यः कोऽपि देहाच्छेषपरिग्रहं त्यक्त्वा देहेऽपि ममत्वरहितस्तथैव तं देहं तपसा योजयति स नियमेन युक्ताहारविहारो भवतीति।।२२८।।

अब, (श्रमण के) युक्ताहारीपना कैसे सिद्ध होता है, सो उपदेश करते हैं:—

केवल शरीरी श्रमण मानें, देह भी अपना नहीं।
तपयुक्त हों परिकर्म बिन तन, शक्ति का गोपन नहीं ॥२२८ ॥

अन्वयार्थ - [**केवलदेहः श्रमणः**] केवलदेही (जिसके मात्र देहरूप परिग्रह वर्तता है, ऐसे) श्रमण ने [**देहे**] शरीर में भी [**न मम इति**] 'मेरा नहीं है' ऐसा समझकर [**रहितपरिकर्मा**] परिकर्म[1] रहित वर्तते हुए, [**आत्मनः**] अपने आत्मा की [**शक्तिं**] शक्ति को [**अनिगूह्य**] छुपाये बिना [**तपसा**] तप के साथ [**तं**] उसे (शरीर को) [**आयुक्तवान्**] युक्त किया (जोड़ा) है।

टीका : श्रामण्यपर्याय के सहकारी कारण के रूप में केवल देहमात्र उपधि को श्रमण बलपूर्वक-हठ से निषेध नहीं करता इसलिए वह केवल देहवान् है; ऐसा (देहवान्) होने पर भी, 'किं किंचण' इत्यादि पूर्वसूत्र (गाथा २२४) द्वारा प्रकाशित किये गये परमेश्वर के अभिप्राय का ग्रहण करके 'यह (शरीर) वास्तव में मेरा नहीं है इसलिए यह अनुग्रह योग्य नहीं है किन्तु उपेक्षा योग्य ही है' इस प्रकार देह में समस्त संस्कार को छोड़ा होने से परिकर्मरहित है। इसलिए उसके देह के ममत्वपूर्वक अनुचित आहारग्रहण का अभाव होने से युक्ताहारीपना सिद्ध होता है। और (अन्य प्रकार से) उसने (आत्मशक्ति को किंचित्मात्र भी छुपाये बिना) समस्त ही आत्मशक्ति को प्रगट करके, अन्तिम सूत्र (गाथा २२७) द्वारा कहे गये अनशनस्वभावलक्षण[2] तप के साथ उस शरीर को सर्वारम्भ (उद्यम) से युक्त किया है (जोड़ा है); इसलिए आहारग्रहण के परिणामस्वरूप योगध्वंस[3] का अभाव होने से उसका आहार युक्त का (योगी का) आहार है; इसलिए उसके युक्ताहारीपना सिद्ध होता है।

भावार्थ : श्रमण दो प्रकार से युक्ताहारी सिद्ध होता है (१) शरीर पर ममत्व न होने से उसके उचित ही आहार होता है, इसलिए वह युक्ताहारी अर्थात् उचित आहारवाला है।

---

१. परिकर्म=शोभा; शृंगार; संस्कार; प्रतिकर्म।

२. अनशनस्वभावलक्षणतप=अनशनस्वभाव जिसका लक्षण है ऐसा तप। [जो आत्मा के अनशन स्वभाव को जानता है, उसके अनशनस्वभावलक्षण तप पाया जाता है।]

३. योगध्वंस=योग का नाश ['आहार ग्रहण करना आत्मा का स्वभाव है' ऐसे परिणाम से परिणमित होना योगध्वंस है। श्रमण के ऐसा योगध्वंस नहीं होता, इसलिए यह युक्त अर्थात् योगी है और इसलिए उसका आहार युक्ताहार अर्थात् योगी का आहार है।]

और (२) 'आहारग्रहण आत्मा का स्वभाव नहीं है' ऐसा परिणामस्वरूप योग श्रमण के वर्तता होने से वह श्रमण युक्त अर्थात् योगी है और इसलिए उसका आहार युक्ताहार अर्थात् योगी का आहार है ॥२२८॥

प्रवचन नं. २२१ **आषाढ़ कृष्ण ६, शनिवार, ५ जुलाई १९६९**

('प्रवचनसार', गाथा-२२८)। **अब, (श्रमण के) युक्ताहारीपना कैसे सिद्ध होता है, सो उपदेश करते हैं:—**

केवलदेहो समणो देहे ण मम त्ति रहिदपरिकम्मो।
आजुत्तो तं तवसा अणिगूहिय अप्पणो सत्तिं।।२२८।।

केवल शरीरी श्रमण मानें, देह भी अपना नहीं।
तपयुक्त हों परिकर्म बिन तन, शक्ति का गोपन नहीं॥२२८॥

आ...हा...हा...! देखो! चारित्रदशा तो आ...हा...हा...! समझ में आया? भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ परमात्मा ने जैसी चारित्र की—सन्तों की स्थिति है, उसे जैसा जाना, वैसा वर्णन भगवान ने कहा, ऐसा सन्तों वर्णन करते हैं तो उसको बराबर जानना चाहिए। २२८ (की) टीका।

श्रामण्यपर्याय के सहकारी कारण के रूप में.... क्या कहते हैं? भगवान आत्मा शुद्ध आनन्द और ज्ञायक का धाम प्रभु, ऐसी जिसको अन्तर रुचि, दृष्टि और स्वभाव का परिणमन हुआ है, तदुपरान्त जिसको वीतराग परिणति विशेष शुद्धदशा हुई है, उसे साधु कहते हैं। समझ में आया? इस साधु को सहकारी कारण / निमित्त कारण, शरीर सहकारी कारण है। आयुष्य हो तब तक शरीर तो छूटता नहीं। शरीर **सहकारी कारण के रूप में केवल देहमात्र....** क्या कहते हैं? मुनि को तो देहमात्र एक निमित्त है। दूसरी कोई चीज मुनि को होती नहीं। जैनदर्शन में, वीतरागमार्ग में केवलज्ञानी परमात्मा ने कहे हुए मार्ग में मुनि को वस्त्र का टुकड़ा और पात्र का एक टुकड़ा भी मुनि को होता नहीं। ऐसी वस्तु की स्थिति है, भाई! सम्प्रदाय की दृष्टि बात नहीं। समझ में आया?

भगवान परमेश्वर उसका नाम साधु कहते हैं कि जिसको आत्मा में पुण्य-पाप जो दया, दान, व्रत विकल्प है, उससे भिन्न अपना आत्मा है, उसका अन्तर में दृष्टि में अनुभव हुआ है। तदुपरान्त स्वरूप की शक्ति में जो वीतरागता पड़ी है, उसकी एकाग्रता से व्यक्तता में वीतरागता प्रगट हुई है। आहा...हा... ! समझ में आया ? इसका एक निमित्तकारण, सहकारीकारण यह शरीर है। दूसरी कोई चीज मुनि को होती नहीं। समझ में आया ?

अभी वहाँ 'पालीताणा' में बात हुई थी, 'पालीताणा' गये थे न, वहाँ बात हुई थी। सब लोक इकट्ठे हुए थे। माया करके 'मल्लिनाथ' भगवान तीर्थंकर हुए थे—ऐसा प्रश्न किया था। सब लोग इकट्ठे हुए थे। हम तो बीस मिनट बोले थे। भाई ! तीर्थंकर माया करके स्त्री हो—ऐसा बनता नहीं। 'मल्लिनाथ' को स्त्री कहते हैं न ? ऐसा बनता नहीं। वह सम्प्रदाय की दृष्टि की बात है, तत्त्व की बात नहीं। पचास-साठ आदमी थे। स्त्री जितनी होवे, वह कपट-माया के साथ स्त्री होवे। तो (उन्होंने कहा), 'मल्लिनाथ' ने भी माया की थी।' भगवान ! 'मल्लिनाथ' तीर्थंकर के जो भक्त हैं, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, इन्द्र कोई स्त्री हुए हैं ? उन्हें जो पूजनेवाले हैं, वे कोई स्त्री हुए हैं ? तो पूजने लायक स्त्री हो, ऐसा नहीं होता। वैसे तो सब सुनते थे, हमारा तो बहुमान करे। बीस मिनट बैठे थे। आ...हा... ! किसे बात कहना ? लोगों को ऐसा लगे कि अपने सम्प्रदाय में ऐसा है, उनके सम्प्रदाय में ऐसा है। ऐसा नहीं है, भाई ! वस्तु की स्थिति है।

तीन लोक के नाथ तीर्थंकर स्त्री हो, तीन काल में बने नहीं। उनको पूजनेवाले बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती और इन्द्र कभी स्त्री नहीं होते, उनके पूज्य पुरुष-स्त्री हो, विरुद्ध है, तत्त्व से विरुद्ध है, भाई ! सम्प्रदाय को ठीक नहीं पड़े, हम सम्प्रदाय की बात नहीं करते। हम तो सत्य बात है, ऐसी करते हैं। भाई ! दृष्टान्त नहीं दिया था ? हमने परिवर्तन किया है, यह तो तुम्हें मालूम है। वस्तुस्थिति हमको अनुकूल नहीं लगी, अन्तर से हमको दूसरी चीज लगी है; इसीलिए यह बात कही है। समझ में आया ?

वैसे साधुपद में कोई कहे कि शास्त्र में तो वस्त्र का उपकरण चला है, पात्र चला है... बिल्कुल नहीं, वह शास्त्र ही नहीं। जिस शास्त्र में मुनि को वस्त्र-पात्र बताया, वह शास्त्र ही भगवान ने कहा हुए सन्तों का नहीं किन्तु समकिती का नहीं। आहा...हा... ! ऐसा

कठिन काम है। हमारे एक भाई कहते थे, ये सब आये थे, फिर लोग यहाँ देखने आये। (तो उनको कोई कहता था), वहाँ जाना नहीं, वहाँ जाना नहीं। वहाँ दूसरी बात है। यहाँ तो बहुत (लोग) देखते थे, बहुत देखते थे। देखे तो भी क्या है? यहाँ कहाँ कोई दूसरी बात है? अरे...! भगवान! तुझे पक्ष का काम है या सत्य का काम है? यहाँ तो मुनिपना, परमेश्वर केवलज्ञानी महाराज त्रिलोकनाथ परमात्मा ने वाणी में ऐसा कहा, ऐसा सन्तों वर्णन करते हैं। उसमें किंचित् फेरफार नहीं।

कहते हैं, **श्रामण्यपर्याय के सहकारी कारण के रूप में केवल देहमात्र उपधि....** 'केवल' भाषा टीका में प्रयोग की है और 'श्रीमद्' ने भी वही शब्द प्रयोग किया है न! *'उदासीन वृत्ती हो सब परभाव से,'* देखो! 'श्रीमद्' पहले तो श्वेताम्बर में थे। फिर 'अपूर्व अवसर' बनाया उसमें तो यह लिया है। *'उदासीन वृत्ती हो सब परभाव से, यह तन केवल संयम हेतु होय जब। किसी हेतु से अन्य वस्तु चाहूँ नहीं,'* देह के अलावा दूसरी चीज की कल्पना नहीं (होती)। *'किसी हेतु से अन्य वस्तु चाहूँ नहीं, तन में किञ्चित भी मूर्छा नहिं होय जब। अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा?'* आ...हा...हा...!

कहते हैं, भाई! **केवल देहमात्र उपधि को श्रमण बलपूर्वक-हठ से निषेध नहीं करता....** क्या कहते हैं? बलपूर्वक हठ से निषेध क्यों करे? छोड़ दे। उसका आयुष्य पूर्ण हुए बिना छूटे नहीं। आहार छोड़कर बैठे तो ऐसे आयुष्य पूरा नहीं होगा। हठ से काम लेते नहीं—ऐसा कहते हैं। भाषा देखो टीका की! **श्रमण बलपूर्वक-हठ से निषेध नहीं करता, इसलिए वह केवल देहवान् है;....** केवल देहवान कहने में आते हैं। निमित्त। **ऐसा (देहवान्) होने पर भी, 'किं किंचण' इत्यादि पूर्वसूत्र (गाथा २२४) द्वारा प्रकाशित किये गये परमेश्वर के अभिप्राय का ग्रहण करके....** देखो! अरिहन्त तीर्थंकर परमात्मा का अभिप्राय पहले से मुनि हुए तो सब छोड़कर हुआ। समझ में आया? ऐसा अभिप्राय भगवान का है। परमेश्वर का, देखो! आचार्य महाराज परमेश्वर की आड में बात करते हैं। आ...हा...! हम अकेले कहते हैं, ऐसा नहीं; परमेश्वर ने कहा वह हम कहते हैं।

परमेश्वर सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ वीतराग का वह अभिप्राय है कि, **'यह**

(शरीर) वास्तव में मेरा नहीं है, इसलिए यह अनुग्रह योग्य नहीं है....' शरीर की सुश्रूषा करना, रखना वह योग्य नहीं। आ...हा... ! यह तो मुनि की दशा की बात है न। श्रावक हो, समकिती हो दूसरी बात है, उसमें राग है। यहाँ तो वीतरागी सन्त, पंच परमेष्ठी में मिले हैं। आ...हा...हा... ! तो कहते हैं कि शरीर का हठपूर्वक तो निषेध हो सके नहीं तो उसकी ममता भी करना नहीं। सुश्रुषा करना, ऐसा खाना, ऐसा पीना—ऐसा नहीं (करना)। विशेष आगे लेगें।

'यह (शरीर) वास्तव में मेरा नहीं है, इसलिए यह अनुग्रह योग्य नहीं....' अनुग्रह अर्थात् संभाल करने के, सुश्रूषा करने के योग्य नहीं। **'किन्तु उपेक्षा योग्य ही है'** इस शरीर की पर्याय (जो) बननी है, ऐसी बने। ममत्व तो है नहीं। ऐसी मुनियों को शरीर के प्रति भी उपेक्षा है, अपेक्षा नहीं। आहा...हा... ! समझ में आया ? ऐसी चारित्र की दशा, मुक्ति का कारण है। समझ में आया ? अपने से पालन हो सके नहीं, इसलिए ढीला करना या विपरीत करना, वह कोई मार्ग का स्वरूप है नहीं। समझ में आया ?

सर्वज्ञ परमात्मा का अभिप्राय ग्रहण करके, वास्तव में शरीर मेरा नहीं, अनुग्रह योग्य नहीं परन्तु उपेक्षा योग्य है। **इस प्रकार देह में समस्त संस्कार को छोड़ा होने से परिकर्मरहित है।** लो। (परिकर्म अर्थात्) शोभा, श्रृंगार, संस्कार, प्रतिकर्म। पानी से साफ करना, चमड़ी अच्छी लगे, चेहरा अच्छा लगे, नाक अच्छा दिखे, आँख अच्छी दिखे, कान अच्छे दिखे—ऐसी कोई सुश्रूषा होती नहीं। ओ...हो...हो... ! भगवान आत्मा अपने वीतराग स्वरूप में, मुनि तो वीतराग स्वरूप में रमते हैं न ! तो शरीर का ऐसा श्रृंगार, शोभा मुनि को होता नहीं। समझ में आया ? शरीर के संस्कार को छोड़ा होने से परिकर्म रहित हैं।

इसलिए उसके देह के ममत्वपूर्वक अनुचित आहारग्रहण का अभाव होने से.... इसलिए देह के योग्य नहीं है—उसके लिये बनाया पानी—जल, आहार लेने योग्य नहीं। मुनि को लेने के योग्य नहीं। मात्र बाहर का आहार-पानी नहीं लेते हैं, इसलिए मुनि हैं—ऐसा भी नहीं। अन्तर में वीतरागता प्रणीत दशा हुई है, एक शरीरमात्र छूटा नहीं, छूट सकता नहीं, तो उसका आहार, पानी निर्दोष... निर्दोष (होता है)। कुछ भी मान से लेना, क्रोध से लेना की लोभ से लेना इत्यादि ४२ दोष हैं। ४२ दोष रहित ऐसा आहार (होता है)।

उसके देह के ममत्वपूर्वक अनुचित आहारग्रहण का अभाव होने से युक्ताहारीपना सिद्ध होता है। मुनि तो समुचित आहार करते हैं, इसका युक्त अर्थात् यथार्थपना उसमें है, ऐसा सिद्ध होता है। समझ में आया? ओ...हो...हो...!

और (अन्य प्रकार से) उसने (आत्मशक्ति को किंचित्मात्र भी छुपाये बिना).... देखो! अन्दर आत्मवीर्य है। भगवान आत्मा में पूर्ण बल पड़ा है, तो आत्मशक्ति को व्यक्त करने में गोपन नहीं। महापुरुषार्थ करते हैं। समझ में आया? 'अपूर्व अवसर' में आता है न, *'एकाकी विचरूँगा जब शमशान में, गिरि पर होगा बाघ सिंह संयोग जब। अडोल आसन और न मन में क्षोभ हो, जानूँ पाया परम मित्र संयोग जब॥ अपूर्व अवसर ऐसा किस दिन आयेगा?'* शरीर लेनेवाला सिंह आदि आवे तो मुझे शरीर रखना नहीं (है तो) वह मेरा मित्र हो गया। आ...हा...हा...! देखो, मुनि की दशा! समझ में आया? शरीर जिसको चाहिए वह ले, मुझे शरीर रखना नहीं, उसको लेना है (तो) लो। वह तो मेरा मित्र है। आ...हा...हा...! वीतरागता तो देखो! समझ में आया? ऐसी वीतरागता हुए बिना मुक्ति होगी, मोक्ष होगा (—ऐसा) तीन काल में बने नहीं। समझ में आया? वस्त्र का पोटला रखे, ओढ़ने का अलग, पहनने का अलग, ऐसा अलग—ये सब मुनि के व्यवहार से विपरीत मान्यता है। समझ में आया?

कहते हैं, **समस्त ही आत्मशक्ति को प्रगट करके,....** लो, यहाँ तो छट्ठे गुणस्थान में समस्त वीर्य को प्रगट करे, ऐसा कहा। कोई उसमें से निकाले कि समस्त वीर्य को प्रगट किया तो केवली हुआ। भाई! उसके योग्य पुरुषार्थ अन्तर में जो शक्तिरूप है, सारा पुरुषार्थ स्वभावरूप है, उसमें पर्याय में प्रयत्न इतना चलता है कि शक्ति में एकाकार होकर पुरुषार्थ करके अपने पुरुषार्थ को गुप्त रखते नहीं। शक्ति में जो पुरुषार्थ पड़ा है, वह तो परिपूर्ण है, शक्ति तो परिपूर्ण है। गुण हाँ! उसमें एकाकार होकर पुरुषार्थ से अपने से शक्ति को व्यक्त करते हैं। समझ में आया? आ...हा...! कोई कहे कि, ऐसी ऊँची-ऊँची बात (कैसे समझ में आये?) बापू! ऊँची नहीं है, भाई! ये चारित्र की दशा की स्थिति ऐसी है, भगवान! आ...हा...! तुझे भी जब मुक्ति होगी, तब ऐसा करे बिना कभी मुक्ति होगी नहीं। श्रावकपना में भले समकित हो, ज्ञान हो। गृहस्थाश्रम में तीन ज्ञान हो जाये—मति, श्रुत, अवधि;

जातिस्मरण हो जाये, अनेक भव का (ज्ञान) गृहस्थाश्रम में समकिती को भी (हो जाये)। समझ में आया? परन्तु चारित्र बिना, ऐसी वीतराग दशा बिना मुक्ति होगी (नहीं), तीन काल में होगी नहीं। समझ में आया?

कहते हैं न कि काँच भवन में 'भरत' चक्रवर्ती को सब वस्त्र थे, दागीना था... दागीना समझे? जेवर। जेवर थे और ध्यान करते-करते केवलज्ञान हो गया! ऐसा होता नहीं, भाई! समझ में आया?

मुमुक्षु – बहुत पेढ़ी तक हुआ।

पूज्य गुरुदेवश्री – सात-आठ पेढ़ी चल गई। आठ पीढ़ी काँच भवन जाये (उन) सबको केवलज्ञान हुआ—ऐसा श्वेताम्बर में आता है। पेढ़ी (अर्थात्) परम्परा। 'भरत' का पुत्र, उसका पुत्र (ऐसे) आठ पेढ़ी। काँच भवन था। दर्पण में देखते हैं, ऐसे देखते हैं तो केवलज्ञान हो जाता है। वस्त्रसहित! जेवर सहित! हमारी तो बड़ी दीक्षा हुई थी न! उसमें बहुत लोग इकट्ठे हुए थे। छोटा गाँव, दो हजार लोग थे, छोटे गाँव में हाथी (आया था)।

प्रश्न – कितनी उम्र थी?

समाधान – तेईस, साढ़े तेईस वर्ष। (संवत्) १९७० की साल। सुन्दर शरीर था, अभी तो ८० हुए। तो शाम को बोले, 'भरतजी घर में वैरागी' समझे न? इन्द्र ने आकर उनको वस्त्र दिया। वेश ले लो। तुमको केवलज्ञान हुआ किन्तु वन्दन नहीं करेंगे। केवलज्ञान हुआ किन्तु वन्दन नहीं करेंगे। क्योंकि वेश नहीं। फिर इन्द्र ने वेश दिया। फिर जय भगवान (कहा)। अरे... भगवान! केवली को भी वेश! तब वन्दन योग्य है!! अभी बहुत (बातें) आती हैं, हमारे सामने विरोध करते हैं। देखो! केवली को भी विनय करते हैं। 'श्रीमद्' ने भी लिया है, 'गुरु रह्या छद्मस्थ पण विनय करे भगवान' लो, 'आत्मसिद्धि' में १९ वी (गाथा) है।

एक लड़के ने हमको पूछा, महाराज! छोटी उम्र का है, १० साल का है। 'जामनगर'! वहाँ प्रश्न किया था न? महाराज! छोटी उम्र का था, ८-१० साल का (था)। सुनते-सुनते सभा में खड़ा हो गया, महाराज! तुम आत्मा को देखो-देखो करते हो, परन्तु आँख बन्द करते हैं तो अन्धेरा दिखता है। बाहर ये दिखता है, हमें कहाँ देखना? ऐ...ई...! ऐसा प्रश्न

किया। अब बड़ा हो गया, यहाँ आता है। छोटी उम्र में सभा में प्रश्न किया। तुम कहते हो कि आत्मा को जानो, अन्दर देखो। आँख बन्द करते हैं तो अन्धेरा दिखता है, बाहर देखते हैं तो ये दिखता है, हमें क्या देखना? भाई! अन्धेरा देखनेवाला अन्धेरारूप है? यह अन्धेरा है... अन्धेरा समझते हैं न? यह अन्धेरा देखनेवाला अन्धेरारूप है? अन्धेरा में दिखता है या प्रकाश में दिखता है? अन्दर प्रकाश में दिखता है कि यह अन्धेरा है। अन्धेरा, अन्धेरे द्वारा नहीं, अन्धेरा प्रकाश द्वारा दिखता है। प्रकाशमूर्ति भगवान है, उसमें अन्धेरा दिखता है।

उसने १९ गाथा (का) प्रश्न किया था। महाराज! 'श्रीमद्' ने तो ऐसा कहा है न (कि), केवली, छद्मस्थ का विनय करे। केवलज्ञान हुआ, बाद में गुरु छद्मस्थ हो। छद्मस्थ समझे? केवलज्ञान नहीं हुआ। भाई! ऐसा सिद्धान्त नहीं। वह तो ऐसा उस समय लिख दिया, श्वेताम्बर की शैली में थे तो ऐसा लिख दिया। सर्वज्ञ परमेश्वर किसका विनय करे? क्या अपने से कोई बड़ा है? और वहाँ विकल्प है? छट्ठे गुणस्थान तक वन्द्य-वन्दक भाव होता है, बस! छट्ठे गुणस्थान तक विकल्प उठता है—मैं वन्दन करनेवाला, परमेश्वर वन्दन योग्य हैं। ऐसा विकल्प छट्ठे तक होता है। फिर केवली को तो कहाँ; सप्तम (गुणस्थानवाले) को भी होता नहीं।

आ...हा...हा...! मुनि कहते हैं, किंचित्मात्र भी वीर्य छुपाये बिना। देखो! मुनि है तो छट्ठे गुणस्थान में, हाँ! फिर भी अपना पुरुषार्थ, ज्ञान में रमणता करने की उग्रता का पुरुषार्थ अन्तर में करते हैं। **अन्तिम सूत्र (गाथा २२७) द्वारा कहे गये अनशनस्वभावलक्षण तप के साथ....** देखो! मैं तो अनशनस्वभावी आत्मा हूँ। मैं रागस्वभावी नहीं, लेकिन आहार स्वभावी नहीं, जलस्वभावी नहीं, औषधस्वभावी नहीं; मैं तो उससे रहित अनशनस्वभावी हूँ। मेरे में कोई रजकण भी है, ऐसा मैं नहीं। ऐसा अनशनस्वभावी आत्मा **तप के साथ उस शरीर को सर्वारम्भ (उद्यम) से युक्त किया है....** लो। समझ में आया? वह तो (मूल ग्रन्थ में नीचे फुटनोट में) लिखा है न? अनशनस्वभावलक्षणतप (अर्थात्) अनशनस्वभाव जिसका लक्षण है ऐसा तप। (जो आत्मा के अनशनस्वभाव को जानता है...) ओ...हो...! जिसके ज्ञान में आत्मा अशन से रहित है। आहार का कण और पानी की बूँद तो जड़ है। उससे तो आत्मा रहित है। ऐसा

अनशनस्वभावी अपने दृष्टि-ज्ञान और रमणता में लिया, वही तप है। समझ में आया? भाई! केवलज्ञान पाने का पन्थ यह है। समझ में आया?

शरीर को सर्वारम्भ (उद्यम) से युक्त.... देखो! सर्व आरम्भ अर्थात् उद्यम से **युक्त किया है (जोड़ा है); इसलिए आहारग्रहण के परिणामस्वरूप....** मुनि को **आहारग्रहण के परिणामस्वरूप योगध्वंस का अभाव होने से....** योगध्वंस का अभाव होने से, भाषा तो देखो! योगध्वंस (अर्थात्) 'योग का नाश। 'आहार ग्रहण करना आत्मा का स्वभाव है'—ऐसे परिणाम से परिणमित होना, योगध्वंस है।' आहार लेना, परमाणु लेना, जल का लेना, यह मेरा स्वभाव (है), ऐसे मिथ्यात्व के भाव से सम्यग्दर्शन का नाश होता है। योगध्वंस है। अपने शुद्ध व्यापार का ध्वंसपना है। आहा...हा...! समझ में आया? योगध्वंस, एक बात (हुई)। 'श्रमण के ऐसा योगध्वंस नहीं होता, इसलिए यह युक्त अर्थात् योगी है और इसलिए उसका आहार युक्ताहार अर्थात् योगी का आहार है।' आहा...हा...! ये योगी! योगी का अर्थ, ये कुम्भक, रेचक रोके, ऐसा योगी हो, वह योगी नहीं।

अपने आनन्दस्वरूप में जिसने वीर्य को जोड़ा है, योग—अन्दर में स्थिर हुआ है, उसको योग करनेवाला योगी कहने में आता है। आहा...हा...! समझ में आया? (लोग कहते हैं), यह साधु, योगी है, ये जोगी है। बापू! वह जोगी नहीं। समझ में आया? ऐसे वीतराग के सन्त हैं, वे योगी हैं। दूसरा कोई योगी होता नहीं। चाहे तो नग्न रहे... समझ में आया? परन्तु अपना आत्मा पूर्ण अनन्त ज्ञान का धनी, शक्तिसम्पन्न पूर्ण (है), उसमें जुड़ान करके पर्याय प्रगट की नहीं तो योगी नहीं। समझ में आया? इस समय जगत में भ्रमणा बहुत है। अन्यमत में बाहर से ऐसा देखे, साधु है। वह साधु है नहीं, भाई! समझ में आया? आहा...हा...! कोई कहे कि जैन के अतिरिक्त अन्यमत में किसी का मोक्ष नहीं होगा? अन्यमत का अर्थ क्या? वस्तु के स्वरूप से उल्टा मत, वह अन्यमत है। समझ में आया?

सर्वज्ञ परमेश्वर ने आत्मा अनन्त आनन्दकन्द देखा है, पूर्णानन्द अनन्त गुण का पिण्ड (देखा है)। वह कितने गुण? अनन्तानन्त! अनन्तानन्त गुण एक द्रव्य में! समझ

में आया ? ऐसी संख्या (है)। अनन्त आनन्द सहित आत्मा, सर्वज्ञ परमेश्वर के अतिरिक्त किसी ने जाना नहीं। समझ में आया ? सर्वज्ञ परमात्मा ने ऐसा कहा। कितना अनन्तानन्त, समझ में आया ? छह माह और आठ महीने में ६०८ (जीव) सिद्ध होते हैं। छह माह और आठ महीने में ६०८ सिद्ध होते हैं। इतना अनन्त पूर्व काल चला गया तो जितने अनन्त सिद्ध हैं, उससे निगोद के एक शरीर में अनन्त गुने जीव हैं। और जीव से अनन्त गुने परमाणु हैं और उससे अनन्त गुना तीन काल के समय हैं, उससे अनन्त गुना आकाश का प्रदेश है और उससे अनन्त गुना एक जीव में गुण हैं। ऐसा आत्मा सर्वज्ञ अलावा और सर्वज्ञ द्वारा कहा (हुआ) आत्मा सम्यग्दृष्टि के अलावा किसी को अनुभव में आता है, ऐसा है नहीं। समझ में आया ? समझे ? यह जवान है। ऐ...ई... ! दादा कहाँ गये ? नहीं आये ? क्या है ? सर्दी (है)। समझ में आया ?

आत्मा, परमेश्वर सर्वज्ञ ने कहा ऐसा, द्रव्य एक, क्षेत्र असंख्य प्रदेशी, गुण अनन्तानन्त। आकाशा के प्रदेश से अनन्तानन्त गुना गुण। ऐसे इतने गुण एक परमाणु में हैं। एक परमाणु में भी इतने गुण हैं। (वह) जड़ (है), यह चैतन्य (है)। गुण की संख्या दोनों की समान (है)। आहा...हा... ! समझ में आया ? ऐसे अनन्तानन्त गुण में जुड़ान करना। जो राग में जुड़ान है... जुड़ान समझे न ? वह अन्तर में जुड़ान करना—रागरहित निर्विकल्प दृष्टि, ज्ञान और रमणता, ऐसा जुड़ान करके रमते हैं, उसको योग का साधक योगी कहने में आता है। इसके अतिरिक्त योगी-जोगी दूसरे को माने वह मिथ्यादृष्टि अज्ञानी है। आहा...हा... ! वस्तु के स्वरूप की खबर नहीं, भाई ! समझ में आया ? जंगल में कितने ऐसे जोगी नग्न है और आधा भाग कन्दमूल खाये। आधा भाग, हाँ ! पन्द्रह दिन तक पानी न पीवे, आहार भी नहीं। ऐसा कन्दमूल आता है, वह एक रुपया भार ले तो पानी, आहार की जरूरत नहीं पड़े। ऐसे परमाणु (होते हैं)। लोग ऐसा कहे, आ...हा...हा... ! कितना योग साधते हैं ! जंगल में रहते हैं, बरसों तक मौन रहते हैं ! वह नहीं, भाई ! वह योग नहीं, और यह योगी नहीं। समझ में आया ?

यह योगी (है), देखो ! जिसके **योगध्वंस का अभाव होने से उसका आहार युक्त का (योगी का) आहार है; इसलिए उसके युक्ताहारीपना सिद्ध होता है।**

युक्त आहारवाला। समझ में आया ? इसलिए योगी कहा। युक्त आहार, वाजबी आहारवाले (को) योगी कहा। योग का साधनेवाला, अपना स्वरूप। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र योग है। अपने में साधते हैं, वह योगी है। समझ में आया ?

भावार्थ - **श्रमण दो प्रकार से युक्ताहारी सिद्ध होता है....** श्रमण दो प्रकार से युक्ताहारी सिद्ध होते हैं। समुचित आहार करनेवाला साधु दो प्रकार से सिद्ध होता है। **(१) शरीर पर ममत्व न होने से उसके उचित ही आहार होता है,....** उसके योग्य निर्दोष, पानी की बूँद भी बिल्कुल निर्दोष। उसके लिये थोड़ा भी करवाया और घर में दस शेर पानी हो और दो शेर कच्चा (पानी) डाल दे, वह भी सदोष है। समझ में आया ? बिल्कुल निर्दोष आहार। **युक्ताहारी अर्थात् उचित आहारवाला है।**

और (२) 'आहारग्रहण आत्मा का स्वभाव नहीं है' ऐसा परिणामस्वरूप.... ऐसा परिणामस्वरूप। आहार ग्रहण करने का जीव का स्वभाव ही नहीं। कौन आहार करे ? आहार कौन खाये ? आहार कौन छोड़े ? निहार कौन करे ? जल कौन पीये ? समझ में आया ? ऐसा अशनस्वभावी है न ? अशन के चार प्रकार आये न ? असणं, पाणं, खायमं, साईमं सब आता है।

यह तत्त्व का साधुपद कैसा है, उसकी बात चलती है। कोई ऐसा कहे कि ऐसी बात का हमें क्या (काम है ?) तुझे सम्यक् श्रद्धान, सम्यग्ज्ञान करना है या नहीं ? तो चारित्र जो मुक्ति का कारण है, वह चारित्र की ऐसी दशा होनी चाहिए। ऐसा उसको निर्णय में लाना चाहिए। आगे-पीछे विपरीत श्रद्धा करे तो दृष्टि में मिथ्यात्व आ जायेगा—ऐसा कहते हैं। तेरे दोष का निराकरण के लिये यह बात है। समझ में आया ? आहा...हा...! दूसरे को देखना है, दूसरे के कारण नहीं। अपनी श्रद्धा में विपरीतपना न आ जाये... समझ में आया ? उस कारण से यह (बात है)। यह साधु है यह निर्दोष है या सदोष है, वह अपनी परीक्षा में, श्रद्धा में विरोध न हो जाये, इस कारण से है। पर के कारण नहीं। पर की क्या (बात है) ? वह तो दूसरी (चीज है)। समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म, भाई !

(वर्तमान में) तो साधु भी ऐसे हैं कि कपड़े (रखे), सबेरे चाय, दोपहर को आहार, दोपहर को चाय, नाश्ता और शाम को खिचड़ी और कढ़ी। वह आयेगा, एक आहार के

अलावा दूसरा आहार लेना, (वह) शरीर का अनुराग, तीव्र राग बताता है। वह गाथा में आयेगा। मुनिदशा अन्दर में वीतराग है। उसके एक ही बार आहार, शरीर को टिकाने के लिये बराबर है और वह भी पूर्ण उदर (भर के) नहीं। आयेगा, अभी आयेगा। उणोदरी यही शरीर को टिकाने के लिये बस है। और उससे अधिक ले जाये, मैं पानी विशेष पी लूँ, तृषा नहीं लगे, ऐसे पेट भर के नहीं (पीते)। शरीर के प्रति तीव्र अनुराग है, वहाँ मुनिपना रहता नहीं। आहा...हा...! समझ में आया?

श्रमण युक्त अर्थात् योगी है। **ऐसा परिणामस्वरूप योग श्रमण के वर्तता होने से वह श्रमण युक्त अर्थात् योगी है और इसलिए उसका आहार युक्ताहार अर्थात् योगी का आहार है।** लो।

गाथा - २२९

अथ युक्ताहारस्वरूपं विस्तरेणोपदिशति-

एक्कं खलु तं भत्तं अप्पडिपुण्णोदरं जहालद्धं।
चरणं भिक्खेण दिवा ण रसावेक्खं ण मधुमंसं।।२२९।।

एकः खवु स भक्तः अप्रतिपूर्णोदरो यथालब्धः।
भैक्षाचरणेन दिवा न रसापेक्षो न मधुमांसः।।२२९।।

एककाल एवाहारो युक्ताहारः, तावतैव श्रामण्यपर्यायसहकारिकारणशरीरस्य धारणत्वात्। अनेककालस्तु शरीरानुरागसेव्यमान्त्वेन प्रसह्य हिंसायतनीक्रियमाणो न युक्तः, शरीरानुरागसेवकत्वेन न च युक्तस्य। अप्रतिपूर्णोदर एवाहारो युक्ताहारः, तस्यैवाप्रतिहतयोगत्वात्। प्रतिपूर्णोदरस्तु प्रतिहतयोगत्वेन कथञ्चित् हिंसायतनीभवन् न युक्तः, प्रतिहतयोगत्वेन न च युक्तस्य। यथालब्ध एवाहारो युक्ताहारः, तस्यैव विशेषप्रियत्वलक्षणानुरागशून्यत्वात्। अयथालब्धस्तु विशेषप्रियत्वलक्ष-णानुरागसेव्यमानत्वेन प्रसह्य हिंसायतनीक्रियमाणो न युक्तः, विशेषप्रियत्वलक्षणानुरागसेवकत्वेन न च युक्तस्य। भिक्षाचरणेनैवाहारो युक्ताहारः, तस्यैवारम्भशून्यत्वात्। अभैक्षाचरणेन त्वारम्भस-म्भवात्प्रसिद्धहिंसायतनत्वेन न युक्तः, एवंविधाहारसेवनव्यक्तान्तरशुद्धित्वान्न च युक्तस्य। दिवस एवाहारो युक्ताहारः, तदेव सम्यगवलोकनात्। अदिवसे तु सम्यगवलोकनाभावादनिवार्यहिंसायतनत्वेन न युक्तः, एवंविधाहारसेवनव्यक्तान्तरशुद्धित्वान्न च युक्तस्य। अरसापेक्ष एवाहारो युक्ताहारः, तस्यैवान्तः-शुद्धिसुन्दरत्वात्। रसापेक्षस्तु अन्तरशुद्ध्या प्रसह्य हिंसायतनीक्रियमाणो न युक्तः, अन्तरशुद्धिसेवकत्वेन न च युक्तस्य। अमधुमांस एवाहारो युक्ताहारः, तस्यैवाहिंसायतनत्वात्। समधुमांसस्तु हिंसायतनत्वान्न युक्तः, एवंविधाहारसेवन-व्यक्तान्तरशुद्धित्वान्न च युक्तस्य। मधुमांसमत्र हिंसायतनोपलक्षणं, तेन समस्तहिंसायतनशून्य एवाहारो युक्ताहारः।।२२९।।

अथ युक्ताहारत्वं विस्तरेणाख्याति-**एक्कं खलु तं भत्तं** एककाल एव खलु हि स्फुटं स भक्त आहारो युक्ताहारः। कस्मात्। एकभक्तेमेव निर्विकल्पसमाधिसहकारिकारणभूतशरीरस्थितिसंभवात्।

स च कथंभूतः। **अप्पडिपुण्णोदरं** यथाशक्त्या न्यूनोदरः। **जहालद्धं** यथालब्धो, न च स्वेच्छालब्धः। **चरणं भिक्खेण** भिक्षाचरणेनैव लब्धो, न च स्वपाकेन। **दिवा** दिवैव, न च रात्रौ। **ण रसावेक्खं** रसापेक्षो न भवति, किंतु सरसविरसादौ समचित्तः। **ण मधुमंसं** अमधुमांसः, अमधुमांस इत्युपलक्षणेन आचारशास्त्रकथितपिण्डशुद्धिक्रमेण समस्तायोग्याहाररहित इति। एतावता किमुक्तं भवति।एवंविशिष्ट-विशेषणयुक्त एवाहारस्तपोधनानां युक्ताहारः। कस्मादिति चेत्। चिदानन्दैकलक्षणनिश्चयप्राणरक्षणभूता रागादिविकल्पोपाधिरहिता या तु निश्चयनयेनाहिंसा, तत्साधकरूपा बहिरङ्गपरजीवप्राणव्यपरोपण-निवृत्तिरूपा द्रव्याहिंसा च, सा द्विविधापि तत्र युक्ताहारे संभवति। यस्तु तद्विपरीतः स युक्ताहारो न भवति। कस्मादिति चेत्। तद्विलक्षणभूताया द्रव्यभावरूपाया हिंसायाः सद्भावदिति।।२२९।।

अब, युक्ताहार का स्वरूप सविस्तार से उपदेश करते हैं :—

आहार है इक बार दिन में, ऊनोदर यथालब्ध है।
बिन माँस-मधु, भिक्षाचरण से, और रस निरपेक्ष है॥२२९॥

अन्वयार्थ - **[खलु]** वास्तव में **[सः भक्तः]** वह आहार (युक्ताहार) **[एकः]** एक बार **[अप्रतिपूर्णोदरः]** ऊनोदर **[यथालब्धः]** यथालब्ध (जैसा प्राप्त हो वैसा), **[भैक्षाचरणेन]** भिक्षाचरण से, **[दिवा]** दिन में **[न रसापेक्षः]** रस की अपेक्षा से रहित और **[न मधुमांसः]** मधु-माँस रहित होता है।

टीका : एक बार आहार ही युक्ताहार है, क्योंकि उतने से ही श्रामण्य पर्याय का सहकारी कारणभूत शरीर टिका रहता है। [एक से अधिक बार आहार लेना युक्ताहार नहीं है, ऐसा निम्नानुसार दो प्रकार से सिद्ध होता है:—] (१) शरीर के अनुराग से ही अनेक बार आहार का सेवन किया जाता है, इसलिए अत्यन्तरूप से हिंसायतन[१] किया जाने के कारण युक्त (योग्य) नहीं है; (अर्थात् वह युक्ताहार नहीं है); और (२) अनेक बार आहार का सेवन करनेवाला शरीरानुराग से सेवन करनेवाला होने से वह आहार युक्त[२] (योगी) का नहीं है (अर्थात् वह युक्ताहार नहीं है।)

अपूर्णोदर[१] आहार ही युक्ताहार है, क्योंकि वही प्रतिहत[२] योग[३] रहित है। [पूर्णोदर

---

१. हिंसायतन=हिंसा का स्थान [एक से अधिक बार आहार करने में शरीर का अनुराग होता है, इसलिए वह आहार आत्यन्तिक हिंसा का स्थान होता है, क्योंकि शरीर का अनुराग ही स्व-हिंसा है।]

२. युक्त=आत्मस्वभाव में लगा हुआ; योगी।

आहार युक्ताहार नहीं है, ऐसा निम्नानुसार दो प्रकार से सिद्ध होता है:—] (१) पूर्णोदर आहार तो प्रतिहत योगवाला होने से कथंचित् हिंसायतन होता हुआ युक्त (योग्य) नहीं है; और (२) पूर्णोदर आहार करनेवाला प्रतिहत योगवाला होने से वह आहार युक्त (योगी) का आहार नहीं है।

यथालब्ध आहार ही युक्ताहार है, क्योंकि वही (आहार) विशेषप्रियतास्वरूप अनुराग से शून्य है। (१) अयथालब्ध[४] आहार तो विशेषप्रियतास्वरूप अनुराग से सेवन किया जाता है, इसलिए अत्यन्तरूप से हिंसायतन किया जाने के कारण युक्त (योग्य) नहीं है और अयथालब्ध आहार का सेवन करनेवाला विशेषप्रियतास्वरूप अनुराग द्वारा सेवन करनेवाला होने से वह आहार युक्त (योगी) का नहीं है।

भिक्षाचरण से आहार ही युक्ताहार है, क्योंकि वही आरम्भशून्य है। (१) अभिक्षाचरण से (भिक्षाचरण रहित) जो आहार उसमें आरम्भ का सम्भव होने से हिंसायतनपना प्रसिद्ध है, अतः वह आहार युक्त (योग्य) नहीं है; और (२) ऐसे आहार के सेवन में (सेवन करनेवाले की) अन्तरंग अशुद्धि व्यक्त (प्रगट) होने से वह आहार युक्त (योगी) का नहीं है।

दिन का आहार ही युक्ताहार है, क्योंकि वही सम्यक् (बराबर) देखा जा सकता है। (१) अदिवस (दिन के अतिरिक्त समय में) आहार तो सम्यक् नहीं देखा जा सकता, इसलिए उसके हिंसायतनपना अनिवार्य होने से वह आहार युक्त (योग्य) नहीं है; और (२) ऐसे आहार के सेवन में अन्तरंग अशुद्धि व्यक्त होने से आहार युक्त (योगी) का नहीं है।

रस की अपेक्षा से रहित आहार ही युक्ताहार है। क्योंकि वही अन्तरंग शुद्धि से सुन्दर है। (१) रस की अपेक्षावाला आहार तो अन्तरंग अशुद्धि द्वारा अत्यन्तरूप से हिंसायतन किया जाने के कारण युक्त (योग्य) नहीं है; और (२) उसका सेवन करनेवाला

---

१. अपूर्णोदर=पूरा पेट न भरकर; ऊनोदर करना।
२. प्रतिहत=हनित, नष्ट, रुका हुआ, विघ्न को प्राप्त।
३. योग=आत्मस्वभाव में जुड़ना।
४. अयथालब्ध=जैसा मिल जाये वैसा नहीं, किन्तु अपनी पसंदगी का; स्वेच्छालब्ध।

अन्तरंग अशुद्धि पूर्वक सेवन करता है इसलिए वह आहार युक्त (योगी) का नहीं है।

मधु-माँस रहित आहार ही युक्ताहार है, क्योंकि उसी के हिंसायतनपने का अभाव है। (१) मधु-माँस सहित आहार तो हिंसायतन होने से युक्त (योग्य) नहीं है; और (२) ऐसे आहार के सेवन में अन्तरंग अशुद्धि व्यक्त होने से वह आहार युक्त (योगी) का नहीं है। यहाँ मधु-माँस हिंसायतन का उपलक्षण है इसलिए ('मधु-माँस रहित आहार युक्ताहार है' इस कथन से ऐसा समझना चाहिए कि) समस्त हिंसायतनशून्य आहार ही युक्ताहार है ॥२२९॥

प्रवचन नं. २२१ का शेष **आषाढ़ कृष्ण ६, शनिवार, ५ जुलाई १९६९**

अब, युक्ताहार का स्वरूप सविस्तार से उपदेश करते हैं :— देखो!

प्रश्न – युक्ताहार का स्वरूप क्या है?

समाधान – युक्ताहार, उचित आहार किसको कहना? ओ...हो...हो...! (अभी तो ऐसा करते हैं?) सबेरे उठे (और कहे), लाओ दूध, मसाला। ले आओ पात्र भरकर। आहार के समय आम का रस, (आम के) टुकड़े और रोटी। दोपहर को ममरा... क्या कहते हैं? पोहे! पोहे... पोहे! सेके हुए पोहे। पोहे आते हैं न? चावल होता है न, उससे पोहे बनता है। चीवड़ा... चीवड़ा! चीवड़ा बनाते हैं। दोपहर को चीवड़ा, शाम को खिचड़ी, कढ़ी और पापड़। भजिया ले। भजिया को क्या कहते हैं? पकोड़ी... पकोड़ी! अरे... भाई! वह तो भोगी का भोग है। योगी का वह (आहार) है नहीं। आहा...हा...! भोगी, वह तो भोगी है। गृहस्थ है, साधु नहीं। आहा...हा...!

अन्तर की दृष्टि के अनुभवसहित की वीतराग परिणति की बात अन्तर की है। समझ में आया? ऐसे तो महीने-महीने के उपवास भी अनन्त बार किये। उससे कोई सम्बन्ध है नहीं। एक बार में ही सब छोड़ दिया। दो-दो महीने का संथारा किया। संथारा समझे? संल्लेखना! ...वह तो क्रिया है। दृष्टि का अनुभव तो नहीं। समझ में आया?

अपना आत्मा ज्ञानानन्दस्वभाव का अनुभव होकर अन्तर में रागरहित वीतराग की

दशा—परिणति में एक शरीरमात्र छूटता नहीं तो उसमें युक्त आहार, निर्दोष आहार लेते हैं। उसकी व्याख्या विशेष करते हैं।

एक्कं खलु तं भत्तं अप्पडिपुण्णोदरं जहालद्धं।
चरणं भिक्खेण दिवा ण रसावेक्खं ण मधुमंसं।।२२९।।

आहार है इक बार दिन में, ऊनोदर यथालब्ध है।
बिन माँस-मधु, भिक्षाचरण से, और रस निरपेक्ष है॥२२९॥

आहा...हा...! 'भर्तुहरि' का नाटक आता है न? भाई! 'भर्तुहरि' (का नाटक) देखा है न। नाटक भी देखा है। 'भर्तुहरि' हुआ न, 'भर्तुहरि'! 'भर्तुहरि' की 'पींगला' रानी थी। 'पींगला' रानी को 'अश्वकुमार' अश्वपाण था, उसके साथ चलती थी। यह ब्यानवे लाख मालवे का अधिपति (था)। उसकी रानी उसके साथ चलती थी। उसको एक वेश्या ने आकार दरबार को अमरफल दिया। उसने अमरफल अपनी पत्नी को दिया। प्रेम उसका था। वह अमरफल पत्नी ने अश्वपाल को दिया। अश्वपाल ने अमरफल वेश्या को दिया। और अश्वपाल ने अमरफल वेश्या को दिया। फिर वेश्या देने को आयी। अरे...! ये फल कहाँ से (आया)? यह फल तो मैंने पींगला को दिया था। तुम्हारे पास आया कहाँ से? मेरी स्त्री व्यभिचारी है।....

'देख्या नहीं कुछ सार जगत में, देख्या नहीं कुछ सार' चले जाते हैं। गुरु कहते हैं, अरे...! 'भर्तुहरि' 'पींगला' के यहाँ आहार (के लिये) जाओ, तुम्हारी रानी के पास आहार लेने जाओ। जिसको तुमने पत्नी रूप से सैंकड़ों वर्ष (रखा)। गये, आहार नहीं था। वैरागी साधु हो गया न! सारा राज छोड़ (दिया) तो वह तो रोती थी। 'भर्तुहरि' कहे, 'माता! जो आहार घर में हो मुझे दो।' देखो! मिथ्यादृष्टि था, हाँ! 'माता! घर में आहार हो तो दो! मेरी साधु की जमात चली जाती है। गुरु ने मुझे फरमान किया है।' राजा को कहती है, 'रहो राजाजी तो रसोई करूँ, जमता जाओ, जोगीराजजी...' हे योगी! कहो तो खीर बनाऊँ। 'खीर बनाऊँ क्षण एक में' मारे धरे देवा कांई नथी। आप छोड़कर चले गये, मैं तो सारा दिन रोती हूँ। महाराज! योगीराज! एक क्षण तो रहो। मैं खीर बना दूँ। खीर समझे? दूध की (बनती है)। दूसरी चीज तो जल्दी बने नहीं। अरे...! रानी! खीर भोजन का मैं क्या करूँ?

तैयार हो तो दे दो, नहीं तो मैं चला जाता हूँ। वैरागी था न! पर दृष्टि तत्त्व की खबर नहीं। समझ में आया? ऐसा वैरागी! रानी को माता (कहकर बुलाये)। 'महाराज! मुझे माता न कहो।' 'माता! मेरा गुरु का हुक्म है, तुम्हारी रानी के पास जाकर आहार लो।' 'प्रभु! मेरे यहाँ आज आहार नहीं है, मैं तो रुदन में सारा दिन बिता रही हूँ।' 'लाओ, कुछ नहीं तो मैं तो चला जाता हूँ।' आ...हा...! ऐसा वैराग्य का दृश्य नाटक में करते हैं। हमने तो सब देखा है न! बहुत वैराग्य, लेकिन तत्त्वदृष्टि बिना का वैराग्य। समझ में आया? ऐसे वैरागी तो जगत में बहुत होते हैं। वह तो नास्ति से हुआ।

यहाँ तो अस्ति अपना आत्मा पूर्णानन्द अखण्डानन्द अनन्त गुण का पिण्ड के अस्तित्व का अनुभव करके राग का अभाव करते हैं, उसको वैरागी कहने में आता है। समझ में आया?

कहते हैं २२९, २२९ न? **एक बार आहार ही युक्ताहार है,....** लो। भगवान 'अमृतचन्द्राचार्यदेव' 'कुन्दकुन्दाचार्यदेव' का स्पष्टीकरण करते हैं। परमेश्वर हैं। आचार्य परमेश्वर हैं। **एक बार आहार ही युक्ताहार है,....** मुनि को तो एक बार आहार (होता है)। गाड़ी को रींघणा (चिकनाई) देते हैं न! शरीर की गाड़ी चले, तो कहते हैं कि एक बार आहार बस। **क्योंकि उतने से ही श्रामण्य पर्याय का सहकारी कारणभूत शरीर टिका रहता है।** देखो! समझ में आया? मुनि की वीतरागदशा में एक बार आहार लेने का ही विकल्प आता है, बस! **(एक से अधिक बार आहार लेना युक्ताहार नहीं है,....)** वह उचित आहार नहीं। देखो! भगवान के मार्ग में मुनि की दशा! सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ के पंथ में यह मार्ग है। सम्यग्दर्शनपूर्वक वीतरागदशा जहाँ प्रगट हुई, ऐसे मुनि को एकबार शरीर को टिकाने को आहार बस (है)। **(ऐसा निम्नानुसार दो प्रकार से सिद्ध होता है:—)**

(१) शरीर के अनुराग से ही अनेक बार आहार का सेवन किया जाता है,.... देखो! दो बार (आहार करने में) तो शरीर का राग—अनुराग प्रसिद्ध होता है। मुनिपना वहाँ होता नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? **इसलिए अत्यन्तरूप से हिंसायतन किया....** जाता है। लो, वह तो हिंसा का स्थान है। एक से अधिक बार आहार करने में

शरीर का अनुराग होता है। देखो! यह अनुराग ही हिंसा है, ऐसा कहते हैं। इसलिए आहार अत्यन्त हिंसा का स्थान है। क्योंकि शरीर का अनुराग ही स्व-हिंसा है। पर की हिंसा हो न हो उसके साथ सम्बन्ध है नहीं। आहा...हा...! देखो! वीतराग मार्ग की हिंसा और अहिंसा! शरीर को दूसरी बार आहार करने का भाव और राग की हिंसा में अपनी अहिंसा टूट जाती है। आहा...हा...! समझ में आया?

मुमुक्षु - .....

पूज्य गुरुदेवश्री - यहाँ तो मुनि को दो बार आहार (लेने) में अनुराग विशेष होता है। इतना है। दशा के योग्य नहीं है, इतनी बात (है)। कोई एक ही (बार) आहार ले, इसलिए दशा वीतरागी है—ऐसा नहीं है। समझ में आया?

मुमुक्षु - .... हो सकता है।

पूज्य गुरुदेवश्री - एक चावल पर नभावे, मात्र चावल, मात्र दूध, मात्र दही, मात्र मूँग का पानी। उसमें क्या?

यहाँ तो आत्मा भगवानस्वरूप परमेश्वर परमपारिणामिक स्वभाव का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन हुआ है और उसके आश्रय में वीतरागता, उसके आश्रय से वीतरागता विशेष प्रगट हुई है। ऐसी दशा में शरीर को एक बार आहार बस। दूसरी बार आहार लेना, वह राग की प्रसिद्धि करता है। उस भूमिका के योग्य राग नहीं तो वह भूमिका रहती नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? (यहाँ तो वर्तमान में) वस्त्र का पोटला और आहार का ढेर (होता है)। घर में रखे।

मुमुक्षु - महाराज के लिये डिब्बा लेकर आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री - लाते हैं। हम 'बोटाद' में थे (तब) एक व्यक्ति पकवान का डिब्बा लेकर आया था। लो, महाराज! पकवान, आपके लिये। (हमने कहा), हमें होता नहीं। हम तो साधु है। हमारे लिये किया हुआ कोई देता नहीं। बड़ा डिब्बा था, पकवान... पकवान, मिष्ठान था। उपाश्रय में आया, 'लो महाराज! आप के लिये पकवान (लाया हूँ)।' (हमने कहा), 'हमें नहीं होता।' अरे... भगवान! कहाँ मुनिपना क्या, अभी श्रद्धा

की खबर नहीं। मुनिपना कैसा है, किसको कहते हैं? कुसाधु को साधु माने तो मिथ्यात्व और साधु को कुसाधु माने तो मिथ्यात्व, ऐसा बोले सही लेकिन भान नहीं। क्यों भाई? आता है न? पचीस मिथ्यात्व में (आता है)। आता है न प्रतिक्रमण में? पचीस मिथ्यात्व। खबर नहीं होती कुसाधु किसको कहते हैं। जय नारायण! भाई! आ...हा...!

कहते हैं, दो प्रकार से आहार से अत्यन्त हिंसायतन। देखो भाषा! ओ...हो...! शरीर में एक ही बार (लेना ऐसा) सन्तों की वीतराग दशा में ऐसा होता है। ऐसी वीतरागता में से दो बार आहार करने का अनुराग (होने से) वीतरागता की हिंसा होती है, वहाँ वीतरागता रहती नहीं, ऐसा बताते हैं। समझ में आया? **(अर्थात् वह युक्ताहार नहीं है);....** उसे योग्य आहार कहने में नहीं आता।

(२) अनेक बार आहार का सेवन करनेवाला शरीरानुराग से सेवन करनेवाला.... है। उसके योग्य नहीं है, ऐसा शरीर का प्रेम करते हैं तो दूसरी बार आहार करने का भाव उसको आता है। आहा...हा...! समझ में आया? मुनिपने की व्याख्या (चलती है), भाई! ये सब व्याख्या ऐसी हैं। सम्यग्दर्शन की व्याख्या आये, तब ठीक पड़ता है परन्तु साधुपने की व्याख्या (आये तो कहे कि) ऐसी साधुपना की दशा!

मुमुक्षु - यह बराबर ठीक पड़े ऐसी है।

पूज्य गुरुदेवश्री - बराबर ठीक पड़ता है। साधुपद कैसा होना चाहिए, उसका निर्णय पहले ज्ञान में आना चाहिए न? सम्यग्दर्शन किसको कहना, उसकी पहिचान होनी चाहिए। चारित्र की दशा पीछे (होती है) उसकी भी पहिचान होनी चाहिए। भाई! उल्टी श्रद्धा से अपना धन लूट न जाये। उस कारण से चारित्र की दशा कैसी है, उसको समझाते हैं।

शरीरानुराग से सेवन करनेवाला होने से वह आहार युक्त(योगी) का नहीं है.... कहो। आत्मस्वभाव में लगा हुआ योगी का आहार नहीं। दो बार आहार लेना, अरे...! दो बार पानी लेना... समझ में आया? वह योगी का आहार नहीं। आ...हा...हा...! आहार शब्द से जल भी आया, हाँ! आ...हा...!

मुमुक्षु - या, दूध...

पूज्य गुरुदेवश्री – चाय, दूध तो कहीं रह गये, यह तो पानी भी दो बार (नहीं लेते)। समझ में आया ? वह मुनि के योग्य नहीं, मुनि के लायक रहा नहीं। कोई कहे कि, वह तो आपके दिगम्बर धर्म में ऐसा मार्ग होगा, हमारे में (दूसरा है)। अरे... भगवान! दिगम्बर धर्म अर्थात् वस्तु का स्वभाव धर्म। समझ में आया ? मार्ग तो सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने ऐसा देखा है और ऐसा कहा है, ऐसा है। समझ में आया ? महाविदेहक्षेत्र में अभी सन्तों का समूह है। हजारो साधु... हजारो साधु। वे सब इस स्थितिवाले हैं। **(अर्थात् वह युक्ताहार नहीं है।)** एक बात हुई। अब, अपूर्णोदर की बात विशेष लेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

प्रवचन नं. २२२ **आषाढ़ कृष्ण ७, रविवार, ६ जुलाई १९६९**

('प्रवचनसार', २२९ गाथा चलती है)। उसमें साधु कैसा होना चाहिए ? और वह साधु, मुक्ति के कारणरूप मार्ग को चाहते हैं तो उसको भोजन की विधि की रीत क्या है ? वह बताते हैं। २२९ (गाथा) चलती है, देखो!

पहले तो वह (कहते) हैं कि जो साधु होते हैं, वे तो अपने आनन्द का अनुभव करके फिर साधु होते हैं। समझ में आया ? वह पहले आ गया है—ज्ञानज्योति प्रगट हो गयी है। जिसको चैतन्यमूर्ति आत्मा अनुभव में प्रगट हो गया है। समझ में आया ? आत्मा ज्ञानानन्द परिपूर्ण शुद्ध आनन्द, ऐसा भगवान ने देखा है, ऐसा यह आत्मा है। ऐसा आनन्द का अनुभव ज्ञानज्योति प्रगट (हुई है)। वस्तु शक्तिरूप तो ज्ञान है ही, आनन्द आदि शक्तिरूप तो है ही, ध्रुव त्रिकाल आनन्द है। उसमें ज्ञानज्योति पर्याय में—अवस्था में आनन्द सहित ज्ञान का स्वसंवेदन भान होना, उसे प्रथम सम्यग्दर्शन कहने में आता है। सम्यग्दर्शनसहित मुनि कैसे होते हैं, उसकी बात चलती है। उनको अट्ठाईस मूलगुण होते हैं, स्वरूप की परिणति वीतराग होती है, अट्ठाईस मूलगुण होते हैं, शरीर नग्न होता है और उनको भोजन किस प्रकार का (होता है), वह (बात) चलती है।

एक बार भोजन। समझ में आया ? मुनि को एक बार भोजन होता है। दो बार ले तो मुनिपना वहाँ रहता नहीं। योग से भ्रष्ट होता है। अपना व्यापार जो आनन्द का है, उस योग

से भ्रष्ट होता है। समझ में आया? ऐसी स्थिति मुनिपना की है, ऐसी भगवान ने देखी है। मुनि स्वयं कहते हैं कि हम भी ऐसा अनुभूत मार्ग अनुभवते हैं। ऐसा अनुभव में यह आत्मा है, ज्ञान है, आनन्द है, पर्याय में राग है, निमित्त ऐसा है, ये सब हमारे में वर्तता है, यह हम तुम्हें कहते हैं। समझ में आया?

एक वचन। दो बार आहार लेने से राग की अनुरागता, तीव्रता विशेष प्रगट होती है और उसमें हिंसा होती है। किसकी? अपनी। पर की तो हो न हो, उसके साथ (कोई सम्बन्ध नहीं)। भाई! दो बार आहार करने से आत्मा की हिंसा होती है—ऐसा कहते हैं। मुनि को ऐसा होता नहीं। मार्ग ऐसा है।

मुमुक्षु - एक बार लघु भोजन होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री - वह पीछे आयेगा। यह तो एक बार (आहार की बात है), बस। वह तो एक बात कही। अब आया।

अपूर्णोदर आहार.... अब दूसरा बोल आया, कल दूसरा नहीं आया था। कल तो एक बार भोजन (की बात) आयी थी। एक बार आहार, बस। दूसरी बार मुनि को कभी होता नहीं। समझ में आया? अब, **अपूर्णोदर आहार ही युक्ताहार है,....** पेट भरकर पानी, आहार मुनि लेते नहीं। आ...हा...!

मुमुक्षु - भूख तो लगे।

पूज्य गुरुदेवश्री - भूख तो लगे तो क्या है? युक्त—वाजबी आहार तो उसको कहते हैं, अपूर्ण आहार। देखो! पूरा पेट न भरकर ऊनोदर करना। है, नीचे फुटनोट में है। ऐसी स्थिति है। पानी से पेट भर दे या आहार से भर दे तो योग नष्ट होता है। आहा...हा...! कठिन बात, भाई! समझ में आया? वीतरागी मुनि ऐसा होता है और वह मोक्ष का कारण है। वास्तव में ऐसी दशा बिना मोक्ष होता नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? क्या कहते हैं? देखो!

अपूर्ण आहार, **अपूर्णोदर....** पेट में पूर्ण नहीं भर दे, ऐसा **आहार ही युक्ताहार है,....** इस आहार को उचित आहार कहने में आता है। **क्योंकि वही प्रतिहत योग रहित है।** अपूर्ण—पूर्ण उदर न भरना, वही धर्मी का धर्मयोग जो है, उसका नाश नहीं होता,

उसका नाम अपूर्ण उदर कहने में आता है। **प्रतिहत योग रहित....** (अर्थात्) नाश योग रहित इतना व्यापार है। यदि पेट भरकर ले तो योग नाश होता है। अपनी स्वरूप की दशा में प्रमाद, आलस, रागादि तीव्र होता है। कठिन बात, भाई! समझ में आया? देखो! प्रतिहत (अर्थात्) हीनत, नष्ट, रुका हुआ, विघ्न को प्राप्त। प्रतिहत विघ्न को प्राप्त योग, ऐसा योगरहित, अपूर्ण आहार हो तो। **(पूर्णोदर आहार युक्ताहार नहीं है,....)** पेट भर के आहार खाये वह युक्त — वाजबी मुनि का आहार है नहीं। **(ऐसा निम्नानुसार दो प्रकार से सिद्ध होता है: —)**

(१) पूर्णोदर आहार तो प्रतिहत योगवाला होने से.... पेट भरकर आहार, पानी। समझ में आया?

मुमुक्षु – पानी तो....

पूज्य गुरुदेवश्री – आहार में पानी आया न। वह आहार है। असंज्ञ आहार, असंण, खायमं, खायमं, सायमं। कोई औषध ले ले। औषध होता है न? तो वह भी कोई मीठा औषध हो, मीठी (हो इसलिए) विशेष—पेट भरकर ले ले। ऐसी औषध आती है न? खोपरा कहते हैं न? नारियल... नारियल, खोपरा! उसकी भी औषध होता है। वह औषध तो मीठी बहुत है। रोटी के बदले औषध विशेष (ले ले)। वह 'परमात्मप्रकाश' में लिखा है। दवा खाकर... उसका भी अजीर्ण कर देते हैं। ए... वैद्यराज कहाँ गये? वैद्य आये हैं न?

ऐसा 'परमात्मप्रकाश' में चला है, हाँ? मुनि को कोई औषध दे लेकिन उसमें कोई मीठी चीज हो, खोपरा... खोपरा, उसका बनाते हैं, ऐसी कोई मीठी बनाये तो उसका भी अजीर्ण कर दे। विशेष ले ले, वह भी है अजीर्ण। वह भी पूर्णादर हो जाता है। वह भी मुनि की योग्यता से रहित है, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

(१) पूर्णोदर आहार तो प्रतिहत योगवाला होने से.... पूर्ण अर्थात् पूर्ण पेट भरने से। आहार में तो आहार, पानी, औषध सब आया। प्रतिहत अर्थात् नाश योगवाला होने से **कथंचित् हिंसायतन....** होने से। आत्मा में वह हिंसा का स्थान है। राग की तीव्रता होती है तो आत्मा की पर्याय में हिंसा होती है। कठिन मार्ग, भाई! समझ में आया? **युक्त (योग्य) नहीं है;....** वह आहार उचित नहीं।

(२) पूर्णोदर आहार करनेवाला प्रतिहत योगवाला होने से वह आहार युक्त (योगी) का आहार नहीं है। योगी का आहार नहीं। युक्त नहीं, योगी का नहीं। आ...हा...! आत्मा अनाकुल आनन्दस्वरूप, मुनि दशा में उसके अनुभव में जो साधन करते हैं, उसको पूर्ण उदर आहारहीन योगवाला होने से, नष्ट योगवाला होने से वह योगी का आहार नहीं, सन्तों का आहार नहीं। आहा...हा...! कोई कहता था, (बात को) बहुत खींची। भाई! बहुत खींचा, आचार्य (बात को) कितनी खींचते हैं। ऐसा नहीं है, भाई! वस्तु की ऐसी स्थिति है। समझ में आया?

मुमुक्षु – प्रतिहत....

पूज्य गुरुदेवश्री – नष्ट, नष्ट। नीचे कहा है। प्रतिहत (अर्थात्) हनित, नष्ट, रुका हुआ, विघ्न को प्राप्त है न? रुका हुआ, विघ्न को प्राप्त। समझ में आया? देखो, योगस्थित मुनिदशा का वर्णन! भाई! (अभी तो) मुनि दो-दो, तीन-तीन बार खाये। सबेरे खाये, दोपहर को खाये, शाम को खाये। आम का मौसम हो तो दोपहर को टुकड़े ले। अरे...! बापू! वह मुनिपना तो है नहीं। ज्ञानी उसको तो मिथ्यादृष्टि कहते हैं। ऐसी बात है, भाई! मुनिपना है नहीं और मुनिपना मानते हैं, (वह मिथ्यात्व है)। भाई! देखो! यह परमेश्वर वीतराग सर्वज्ञ ने कही हुई मुनिपना की स्थिति! त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव परमात्मा ने केवलज्ञान में देखी है, ऐसी कही बात यह है। दूसरे ने अपनी कल्पना से शास्त्र में कल्पना से साधुपना की स्थिति बाँधी है। समझ में आया? साधु को वस्त्र चले, वस्त्र हो, दो बार आहार (ले), ये सब कल्पित बात मिथ्यादृष्टि होकर बनाया है। वह शास्त्र है नहीं, वह शास्त्र, कुशास्त्र है—ऐसा कहते हैं। आ...हा...हा...! कठिन लगे। समझ में आया?

ओ...हो...! आनन्दस्वरूप भगवान, उसकी पूर्णानन्द की प्राप्ति का कारण जो चारित्र है, वह चारित्र की दशा तो ऐसी होती है। समझ में आया? **प्रतिहत योगवाला होने से वह....** योगी का आहार नहीं, वह भोगी का आहार है। पेट भरकर आहार-पानी ले, वह भोगी का आहार है, योगी का आहार नहीं—ऐसा कहते हैं। आहा...हा...!

अब (कहते हैं), **यथालब्ध आहार ही युक्ताहार है,....** क्या कहते हैं? तीसरा (बोल)। जैसा मिले, ऐसा भिक्षा में ले लेना। **क्योंकि वही (आहार) विशेषप्रियतास्वरूप**

अनुराग से शून्य है। यथालब्ध आहार। समझे ? जैसा मिल जाये, वैसा लेना, इसका नाम यथालब्ध आहार। यथालब्ध आहार युक्त आहार है। क्योंकि **विशेषप्रियतास्वरूप अनुराग से शून्य है।** अयथालब्ध आहार (अर्थात्) जैसा मिल जाये वैसा नहीं, किन्तु अपनी पसन्दगी का आहार। चलो भाई, आज यह गृहस्थ के घर भिक्षा के लिये जाना। वहाँ आहार-पानी अच्छे मिलेंगे। शादी हो वहाँ लड्डू-बड्डू हो, जलेबी हो... समझ में आया ? ओ...हो...हो... !

कहते हैं, **अयथालब्ध आहार तो विशेषप्रियतास्वरूप अनुराग से सेवन किया जाता है, इसलिए अत्यन्तरूप से हिंसायतन किया जाने के कारण....** वह योग नहीं, वह युक्त आहार नहीं। समझ में आया ? जैसे .... यहाँ घर में आम है, उस घर में पूड़ी बनी हैं, उस घर में हमेशा लड्डू बनते हैं तो चलो वहाँ! समझ में आया ? वह यथालब्ध आहार नहीं, वह योगी का आहार नहीं, वह भोगी का आहार है। आहा...हा... ! भाई ! इन्होंने नौकरी छोड़ दी, सुना है। ठीक किया, मुफ्त में हैरान होते थे। उनकी माँ के लिये रुके थे। ये तो उसमें थे न, क्या कहते हैं ? प्लेन में नौकरी (थी)। ग्यारह सौ रुपये की नौकरी (थी)। आजीवन ब्रह्मचारी (है)। छोड़ दी, नौकरी छोड़ दी। भाई ने कहा। अच्छा किया। मैंने तो कहा, ठीक किया। माँजी वृद्ध है न इसलिए (नौकरी करते थे)। लेकिन नौकरी छोड़ दी। ग्यारह सौ का वेतन, बाल ब्रह्मचारी है, नौकरी छोड़ दी। ब्रह्मचर्य लिया नहीं है परन्तु है ब्रह्मचारी। कहो, समझ में आया ?

यहाँ कहते हैं, अयथालब्ध आहार, पसन्दगी का आहार। पसन्दगी समझे ? नीचे बहुत अच्छा अच्छा अर्थ है, देखो ! स्वेच्छा लब्ध। इच्छा अनुसार कुछ मिले, ऐसा जाना, ऐसे लेना। ऐसा लेकर आना या खाना। बिल्कुल योगभ्रष्ट होता है। आहा...हा... ! समझ में आया ? एक साधु हमें कहता था, स्थानकवासी साधु 'पालेज' में था। उसने कहा, हमें तो जरूरत हो तो हम 'उमराला' में कह देते हैं कि आज पकोड़ी खानी है, तो पकोड़ी कर दे। हमारी तो छोटी उम्र थी। हमें कुछ मालूम नहीं पड़ता था, जैनधर्म क्या है, सम्प्रदाय में पड़े हैं। वे कहते थे कि हमें तो यदि आहार चाहिए तो हम जान-पहचानेवाले को कह देते हैं कि आज भजिया (खाना है)। भजिया समझते हैं ? पकोड़ी ! शाम को पकोड़ी करे। हम तो कह देते हैं। ऐसा कहकर यहाँ कहते थे कोई जाने, लेकिन यहाँ कोई नहीं बनायेगा,

हमने कहा। ऐसा कहकर हमें सुनाते हो। उस समय हमें कोई तर्क नहीं उत्पन्न हुआ था। ऐसा कहकर मानो यहाँ कुछ बनाये। यहाँ हम बनाते नहीं। हमारे घर तो तीस आदमी थे। सब रसोई तैयार होती है। बिल्कुल निर्दोष। लेकिन ऐसा कहे, ये साधु! भगवान!

यहाँ तो कहते हैं, नग्न मुनि होता है, दिगम्बर हो, वस्त्ररहित हो, अट्ठाईस मूलगुण हो, वीतराग परिणति हो, उसको भी आहार ऐसा होता नहीं। दूसरे तो कोई मुनि है ही नहीं, उसको मुनि मानना तो अज्ञान है। आहा...हा...! भाई! यह तो बहुत फेरफार निकला।

मुमुक्षु - समय-समय में फेरफार होना चाहिए न?

पूज्य गुरुदेवश्री - कुछ फेरफार हो सकता है? समय में फर्क है तो लड्डू के बदले अभी कोई जहर खाता है? समय का फर्क अर्थात् क्या?

मुमुक्षु - समय वर्ते सावधानी।

पूज्य गुरुदेवश्री : समय वर्ते सावधान का अर्थ वह है कि, जैसी उसकी योग्यता है, उस अनुसार — समय अनुसार करना, उसका नाम समय वर्ते सावधान। जरूरत करे, वह समय वर्ते सावधान (ऐसा) कहाँ से आया? अधिक स्पष्ट करवाते हैं। मार्ग तो एक ही है। 'एक होय तीन काल में परमार्थ का पंथ' भाई! ऐसा मार्ग है, बापू! देखो, न आचार्य, जंगल में रहनेवाले इतना स्पष्ट करके बताते हैं, मार्ग तो ऐसा है, भगवान! साधुपद की दशा कोई ऐसी अलौकिक है। अपने में न हो और पल सके नहीं, इसलिए कुछ विपरीत करना ऐसी बात है? समझ में आया? हम जैसा पाले, इतना साधुपना है—ऐसा होता नहीं। समझ में आया?

कहते हैं, **अयथालब्ध आहार का सेवन करनेवाला विशेषप्रियतास्वरूप....** विशेष राग है। भूमिका के योग्य राग-विकल्प उसको साधारण आता है, ऐसा नहीं। एकबार आहार लेने का जो साधारण विकल्प, ऐसा नहीं है। वह तो गृद्धि आहार हो गया। पसन्दगी का आहार (हुआ)। समझ में आया? हलुवा मिले, ऐसा मिले ऐसी कल्पना की।

मुमुक्षु - तबियत नरम हो तो क्या करे?

पूज्य गुरुदेवश्री - तबियत नरम हो तो भी यथालब्ध आहार होता है। नरम तो शरीर जड़ है, उसमें क्या है? उसकी अवस्था होनेवाली है, वैसी रहेगी। परमात्मा का मार्ग

ऐसा है। इससे विरुद्ध जो शास्त्र में कल्पित किया, वह शास्त्र ही शास्त्र नहीं।

श्रोता – शस्त्र है।

पूज्य गुरुदेवश्री – शस्त्र है। वह तो विरुद्ध है। मुनिपना ऐसा कपड़ा रखे, पात्र रखे, दो-तीन बार आहार ले और आठ-आठ घण्टे सोवे, वह मुनि कैसा? समझ में आया? मुनि को तो पोन सेकण्ड के अन्दर निद्रा आती है। पिछली रात्रि... क्या कहते हैं? 'छहढाला' में आता है न? पिछली रात्रि में थोड़ा। (भूमाहिं पिछली रयनि में कुछ शयन एकासन करन)। एक पौन सेकण्ड। फिर जग जाये, फिर आगे जाते हैं। मुनिपना बापू! केवलज्ञान का कारण, साक्षात परमानन्द की मूर्ति को प्रगट करने का हेतु (है)। दशा तो ऐसी होती है, भाई!

मुमुक्षु – गणधरों द्वारा वन्दनीय है।

पूज्य गुरुदेवश्री – हाँ, गणधरों द्वारा वन्दनीय है। गणधर णमो लोए सव्व साहूणं (कहकर) नमस्कार करते हैं। भाई! जैसी स्थिति है, ऐसी जाननी चाहिए। हीन, अधिक और विपरीत उसे माने तो उसको मिथ्यात्व लग जायेगा। ऐसी बात है। समझ में आया? आ...हा...! लो।

विशेषप्रियतास्वरूप अनुराग द्वारा सेवन करनेवाला होने से वह आहार युक्त (योगी) का नहीं है। योगी का नहीं। वह युक्ताहार नहीं और योगी का नहीं। दो बात करते हैं न। युक्त आहार नहीं, योगी का नहीं, भोगी का है। भाई! ऐसा सब सुना था? वहाँ 'कलकत्ता' में सुनने का नहीं था।

दूसरा बोल। **भिक्षाचरण से आहार ही युक्ताहार है,....** भिक्षा लेने जाना, वह युक्त आहार है। **क्योंकि वही आरम्भशून्य है।(१) अभिक्षाचरण से (भिक्षाचरण रहित) जो आहार उसमें आरम्भ का सम्भव होने से....** देखो! हमारे लिये बनाओ तो हम वहाँ आयेंगे, ऐसा बनाओ, गरम पानी बनाओ, मोसम्बी बनाओ, आम का रस निकालो, हम आप के यहाँ आयेंगे। वह तो भिक्षाचरण नहीं है।

मुनि तो, ओ...हो...हो...! ऐसा नग्न शरीर, एक मोरपिच्छी, कमण्डल। आ...हा...हा...!

राजकुमार हो, आठ साल के राजकुमार, हाँ! वे जंगल से चले आते हों। मणिरत्न की पुतली जैसा सुन्दर शरीर हो! भिक्षा मिले तो आहार ले। अन्दर में लीन हो जाते हैं। आ...हा...! सिंहवृत्ति जिनकी है! घर पर पलंग में पोढ़ते थे, मच्छरदानी रखते थे और सिपाही (रहते थे), खम्मा अन्नदाता! (ऐसे) राजकुमार भी आठ साल की उम्र में (दीक्षा लेकन जंगल में चले जाते हैं)। आठ साल, हाँ! शास्त्र तो कहते हैं, सवा नौ महीने पेट में रहने का और सवा सात वर्ष बाहर के, (ऐसे) आठ वर्ष में केवलज्ञान होता है। सवा नव महीने पेट में रहते हैं, वह यहाँ का आयुष्य है न! इस भव का आयुष्य है। सवा नव महीना सहित। गर्भ में आया, वह सवा नव महीना और बाहर के सवा सात वर्ष। आठ वर्ष में केवलज्ञान हो जाये! आठ वर्ष में मुनिपना भावलिंग! आ...हा...हा...! यहाँ कहते हैं ऐसी वीतरागदशा हो जाये। आहा...हा...! समझ में आया?

कल पलंग में पोढ़ते हो, हाथी के होदे पर चलते हो, वे ऐसे निकले। 'सोवे संवर काय...' धीरे-धीरे जीव की रक्षा (हेतु) प्रमाद छोड़कर ऐसे पग धरे, डग धरे। आ...हा...हा...! अन्तर वीतरागदशा है। आनन्दकन्द का प्रगट का अनुभव छट्ठे-सातवें (गुणस्थान में) हजारों बार आता है। छोटी पिच्छी-मोरपिच्छी और कमण्डल। चले आते हैं, जंगल में जैसे सिंह चले आताा हो, ऐसे चले आते हैं। किसी की दरकार नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? ऐसा है, बापू! भाई! मुनिपना तो, बापू! ऐसा है। उसे भगवान मुनि कहते हैं। परमेश्वर गणधरों तीर्थंकरों सर्वज्ञ (ऐसा मुनिपना कहते हैं)। समझ में आया? उसकी पहचान तो करनी पड़े या नहीं? भाई! जैसा हो वैसा सभी को जय नारायण (करना क्या?)

अभिक्षाचरण से (भिक्षाचरण रहित) जो आहार उसमें आरम्भ का सम्भव होने से हिंसायतनपना.... हिंसा का स्थान है। बनाने को कहे, अरे...! बनाया हो तो अनुमोदे, वह भी भिक्षाचरण नहीं। समझ में आया? उसके लिये बनाया हो और ले तो वह भिक्षाचरण नहीं। ओ...हो...हो...! **ऐसे आहार के सेवन में (सेवन करनेवाले की) अन्तरंग अशुद्धि व्यक्त (प्रगट) होने से....** है। देखो! है न? ऐसा आहार हिंसायतन है, (इसलिए) वह युक्त आहार नहीं। ऐसे आहार सेवन में (आरम्भ का सम्भव है)। सहज

मिला हो, भिक्षा करने में यदि कोई रोटी मिले, दाल मिले, एक सब्जी ही मिले, दूसरा कुछ नहीं मिले। उसके लिये बनायी हो तो सब रसोई होती है, दाल, चावल, सब्जी परन्तु जहाँ गये हो, वहाँ रोटी आदि समाप्त हो गये हो, मात्र सब्जी हो (तो) मात्र सब्जी मिले। सब्जी और जल दो ही (चीज) मिले। मात्र रोटी और जल मिले, सब्जी नहीं मिले।

मुमुक्षु – मात्र गन्ने का रस मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री – हाँ, प्रभु 'ऋषभदेव' भगवान को मात्र गन्ने का रस मिला। बस! रोटी नहीं, कुछ नहीं। परन्तु यथालब्ध भिक्षाचरण से मिला है। समझ में आया? देखो! यह साधुपद, परमात्मा इसको कहते हैं। उससे विरुद्ध जो है, वह तो साधु है नहीं। आ...हा...! लो, वह आहार योगी का नहीं। भिक्षाचरण सिवा किसी को कहे कि ऐसा हो तो ठीक। मुझे रोग है, बहुत गरमी है तो थोड़ा मोसम्बी का रस हो तो ठीक, ऐसा इशारा कर दे। वह अभिक्षाचर है, भिक्षाचर है नहीं। आहा...हा...!

दिन का आहार ही युक्ताहार है,.... दिन में एक बार आहार लेना। दिन में भी दो बार नहीं। देखो! **दिन का आहार ही युक्ताहार है, क्योंकि वही सम्यक् (बराबर) देखा जा सकता है।** दिन में देखा जा सकता है कि यह जीव है, कोई चींटी, कोई मकड़ी, कोई वनस्पति का अन्दर अनाज में टुकड़ा हो, कच्ची वनस्पति होती है न? लीलोतरी कहते हैं न? हरितकाय। उसका टुकड़ा भी हो तो उसमें असंख्य जीव हैं। दाल होने के बाद उसमें गिर गया हो, रोटी तैयार हो जाने के बाद ऊपर गिर गया हो, लेकिन दिन में नजर पड़ती है। वह नहीं (लेते)। रोटी लेते हैं, उसमें हरा कोई कण रह गया हो, कण, जीव है, असंख्य जीव हैं।

मुमुक्षु – कंकर... कंकर।

पूज्य गुरुदेवश्री – कंकर नहीं। कटकी को क्या कहते हैं? टुकड़ा। वनस्पति का टुकड़ा।

मुमुक्षु : कंकर भी होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कंकर तो पत्थर (है)। उसकी बात नहीं, यहाँ तो जीव की

बात है। इतना टुकड़ा एकेन्द्रिय जीव है न! गुवार नहीं कहते? गुवार को क्या कहते हैं? गुवार की सब्जी बनती है न? ग्वार! उसको साफ करने में इतना टुकड़ा पड़ा हो न, तो उड़ते-उड़ते कोई रोटी में गिर गया, दाल में गिर गया, पानी में गिर गयी और पानी देने को आये वहाँ उस टुकड़ों को देखा, तो दिन में देखने में आता है। दातार को भी खबर नहीं। गुवार ऐसा करते हैं न, गुवार। घिंसुरा होता है, धिंसार (समझे)? तूरिया। तूरिया को छुरी से ऐसे करते-करते पानी में गिर गया। गिर गया हो तो दिन में नजर में आता है, पानी दे (तो दिखे) कि उसमें टुकड़ा है। मौन (रहते हैं), बोले तो नहीं। निकल जाते हैं। आ...हा...हा...! ऐसा मार्ग है, भाई! एक इतना टुकड़ा हो तो असंख्य जीव हैं।

कच्चा दाना हो, कच्ची हरी का दाना होता है न? ज्वार, बाजरा आता है न? होला... होला! होला करते हैं न? कच्चा दाना हो, उसमें असंख्य जीव हैं। एक दाना भी पानी में आ गया तो दिन में नजर आता है, रात्रि को मालूम नहीं पड़ता। इसलिए दिन को आहार होता है, रात्रि को आहार होता नहीं। आहा...हा...! ऐसी बात है, भैया! पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति ये पाँच एकेन्द्रिय जीव हैं। एकेन्द्रिय जीव है, तो एकेन्द्रिय जीव के इतने टुकड़े में भी असंख्य जीव हैं, तो दिन में दिखने में आयो। हमने तो ऐसी भिक्षा बहुत की है न! इतना टुकड़ा होता तो हम लेते नहीं। ऐसी भिक्षा पन्द्रह साल ली। समझे? हम भिक्षा के लिये जाते थे, वहाँ जमीन पर इतना टुकड़ा पड़ा हो, निर्दोष आहार हो, बड़े सेठ पाँच-पाँच लाख, दस लाख हो, उसके यहाँ टुकड़ा दिखे, उसका पैर आ जाये तो समाप्त...! उस घर में आहार नहीं लेते थे। भाई!

मुमुक्षु - कपासिया का दाना.....

पूज्य गुरुदेवश्री - कपासिया का दाणो। कपसिया समझते हैं? कपासिया समझते हैं? वह भी जीव है, उसमें एक जीव है। वह भी वहाँ पड़ा हो, पानी में गिरा हो और देखे तो समाप्त! मुनि नजर से देखे तो ले नहीं। ऐसी बात है, भाई! नौ-नौ कोटि से हिंसा का त्याग है। करना नहीं, कराना नहीं, करते को अनुमोदना नहीं, मन-वचन और काया से। ऐसी बात है, भाई! देखो!

दिन का आहार ही युक्ताहार है, क्योंकि वही सम्यक् (बराबर) देखा जा सकता है। पके हुए चावल हो, उसमें भी कोई हरितकाय गिर गया हो, कोई हरितकाय गिर गया हो, कोई हरितकाय का टुकड़ा बाहर से गिरकर रह गया हो, समाप्त... ! समझ में आया ? **दिन का आहार ही युक्ताहार है, क्योंकि वही सम्यक् (बराबर) देखा जा सकता है। (१) अदिवस (दिन के अतिरिक्त समय में) आहार तो सम्यक् नहीं देखा जा सकता, इसलिए उसके हिंसायतनपना....** हिंसा का स्थान **अनिवार्य होने से वह आहार युक्त (योग्य) नहीं है;....** रात्रि, सन्ध्या आदि में आहार लेना, वह योग्य नहीं।

(२) ऐसे आहार के सेवन में अन्तरंग अशुद्धि व्यक्त होने से.... वह तो अशुद्धि प्रगट दिखती है। लो, कितने तो रात्रि को खाते हैं। ये साधु नाम धराते हैं न, ये साधु सब रात्रि को खाते हैं। समझ में आया ? कन्दमूल खाये, ऐसा खाये, लीलोतरी... लीलोतरी अर्थात् हरितकाय खाय, अमरुद खाये, अमरुद नहीं होते ? अमरुद कहते हैं न ? जामफल (–अमरुद)। वह भी रात्रि को खाये, वह साधु नहीं, ऐसा कहते हैं। परमेश्वर की आज्ञा में वह नहीं, वह आज्ञा के बाहर (चलनेवाला) अज्ञानी है। समझ में आया ?

रस की अपेक्षा से रहित आहार ही युक्ताहार है। अच्छा आहार मिले, मोसम्बी का रस (मिले क्योंकि) गर्मी है। गर्मी का दिन है, सारा दिन निकालना है, चौबीस घण्टे (निकालने हैं), कल सबेरे दस बजे आहार मिलेगा तो थोड़ा मोसम्बी का रस हो, गन्ने का रस हो और ऐसी आम का रस हो, और कोई ठण्डी चीज हो, अंगुर! अंगुर का रस हो अथवा दाडम होता है न, अनार! उसका रस हो, उसकी अपेक्षा हुई, वह धर्मी नहीं। आहा...हा... ! धर्मी की बात करते हैं, देखो न!

रस की अपेक्षा से रहित आहार ही युक्ताहार है। क्योंकि वही अन्तरंग शुद्धि से सुन्दर है। (१) रस की अपेक्षावाला आहार तो अन्तरंग अशुद्धि द्वारा अत्यन्तरूप से हिंसायतन किया जाने के कारण युक्त (योग्य) नहीं है;.... ऐसी रस की अपेक्षा रखे (तो वह हिंसायतन है)। आ...हा...हा... ! गजब बात है न! रस कहाँ से लाना ? भिक्षा के लिये साधु को दे, रस तो होता (नहीं), वे तो दाल, चावल, रोटी लेते हैं। रस तो तैयार

करके लाया हो। मोसम्बी, अनार (का रस बनाया हो वह) सब उद्देशिक और सब दोषित है। समझ में आया? रस की अपेक्षावाला आहार, वह युक्त आहार नहीं; हिंसा का स्थान है।

और (२) उसका सेवन करनेवाला अन्तरंग अशुद्धिपूर्वक सेवन करता है.... लो। रस की अपेक्षा रखकर जो सेवन कर पीते हैं, वह आहार योगी का नहीं। समझ में आया? घर जाकर तो ले नहीं। वहाँ भोजन है न, कोई पात्र नहीं है कि घर जाकर ले। देखो! साधु को कुसाधु, माने तो मिथ्यात्व (और) कुसाधु को साधु माने तो मिथ्यात्व। ऐसे गडिया (पहाड़ा) बोल लेते हैं। गडिया समझे? (पहाड़े)। कुछ भान नहीं।

यहाँ तो परमेश्वर वीतरागदेव केवलज्ञानी ऐसा कहते हैं कि रस की अपेक्षा का सेवन करनेवाले को अन्तरंग अशुद्धि-मैल है। इसलिए योगी नहीं। वह योगी का आहार नहीं।

मुमुक्षु - इस रस में घी वगैरह भी आ गया।

पूज्य गुरुदेवश्री - सब, सब। घी आता है। घी, तेल। रस आता है। घी मिले तो ठीक, ऐसा तेल मिले तो ठीक। कहाँ मिले? आ जाये तो आ जाओ। परन्तु उसमें अपेक्षा रहे कि इतना तेल हो तो ठीक, इतना घी हो तो ठीक, इतना उसमें रस हो तो ठीक। ओ...हो...हो....! (ऐसा आहार) योगी का नहीं।

अब, अन्तिम बोल। **मधु-माँस रहित आहार ही युक्ताहार है, क्योंकि उसी के हिंसायतनपने का अभाव है।** यह मधु-माँस तो साथ में ले लिया है, हाँ! मधु-माँस तो होता नहीं, समकिती को होता नहीं। पहले से होता नहीं। अभक्ष, ... ऐसा तो चौथे गुणस्थान में भी होता नहीं। सम्यग्दर्शन में भी माँस, दारू, होते नहीं। **(२) ऐसे आहार के सेवन में अन्तरंग अशुद्धि व्यक्त होने से वह आहार युक्त (योगी) का नहीं है।**

यहाँ मधु-माँस हिंसायतन का उपलक्षण है इसलिए.... उपलक्षण अर्थात् सब ले लेना। **('मधु-माँस रहित आहार युक्ताहार है' इस कथन से ऐसा समझना चाहिए कि) समस्त हिंसायतनशून्य आहार ही युक्ताहार है।** जिसमें थोड़ा भी आहार का राग आता है या पर में एकेन्द्रियादि की हिंसा होती है, वह सब आहार, युक्त आहार नहीं, योगी का आहार नहीं। लो, २२९ (गाथा पूरी) हो गयी।

गाथा - २३०

अथोत्सर्गापवादमैत्रीसौस्थित्यमाचरणस्योपदिशति-

बालो वा वुड्ढो वा समभिहदो वा पुणो गिलाणो वा।
चरियं चरदु सजोग्गं मूलच्छेदो जधा ण हवदि।।२३०।।

बालो वा वृद्धो वा श्रमाभिहतो वा पुनर्ग्लानो वा।
चर्यां चरतु स्वयोग्यां मूलच्छेदो यथा न भवति।।२३०।।

बालवृद्धश्रान्तग्लानेनापि संयमस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथा स्यात्तथा संयतस्य स्वस्य योग्यमतिकर्कशमेवाचरणमाचरणीयमित्युत्सर्गः। बालवृद्धश्रान्तग्लानेन शरीरस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनभूतसंयमसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथा स्यात्तथा बालवृद्धश्रातन्ग्लानस्य स्वस्य योग्यं मृद्वेवाचरणमाचरणीयमित्यपवादः। बालवृद्धश्रान्तग्लानेन संयमस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथा स्यात्तथा संयतस्य स्वस्य योग्यमतिकर्कशमाचरणमाचरता शरीरस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनभूत-संयमसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथा स्यात् तथा बालवृद्धश्रान्तग्लानस्य स्वस्य योग्यं मृद्वप्याचरणमा-चरणीयमित्यपवादसापेक्ष उत्सर्गः। बालवृद्धश्रान्तग्लानेन शरीरस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधन-भूतसंयमसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथा स्यात्तथा बालवृद्धश्रान्तग्लानस्य स्वस्य योग्यं मृद्वाचरणमाचरता संयमस्य शुद्धात्मतत्त्वसाधनत्वेन मूलभूतस्य छेदो न यथा स्यात्तथा संयतस्य स्वस्य योग्यमतिकर्कशमप्याचरण-माचरणीय-मित्युत्सर्गसापेक्षोऽपवादः। अतः सर्वथोत्सगापवादमैत्र्या सौस्थित्यमाचरणस्य विधेयम्।। २३०।।

अथ विशेषेण मांसदूषणं कथयति -

पक्केसु अ आमेसु अ विपच्चमाणासु मंसपेसीसु।
संतत्तियमुववादो तज्जादीणं णिगोदाणं।।३२।।

जो पक्कमपक्कं वा पेसीं मंसस्स खादि फासदि वा।
सो किल णिहणदि पिंडं जीवाणमणेगकोडीणं।।३३।। (जुम्मं)

भणित इत्यध्याहारः। स कः। **उववादो** व्यवहारनयेनोत्पादः। किंविशिष्टः। **संतत्तियं** सान्ततिको निरन्तरः। केषां संबन्धी। **णिगोदाणं** निश्चयेन शुद्धबुद्धैकस्वभावानामनादिनिधनत्वेनोत्पादव्यय-रहितानामपि। पुनरपि कथंभूतानाम। **तज्जादीणं** तद्वर्णतद्गन्धतद्रसतत्स्पर्शत्वेन तज्जातीनां मांसजातीनाम्। कास्वधिकरण-भूतासु। **मंसपेसीसु** मांसपेशीषु मांसखण्डेषु। कथंभूतासु। **पक्केसु अ आमेसु अ विपच्चमाणासु** पक्कासु चामासु च विपच्यमानास्विति प्रथमगाथा। **जो पक्कमपक्कं वा** यः कर्ता पक्कामपक्कां वा **पेसीं** पेशीं खण्डम्। कस्य। **मंसस्स** मांसस्य। **खादि** निजशुद्धात्म-भावनोत्पन्नसुखसुधाहारमलभमानः सन् खादति भक्षति, **फासदि वा** स्पर्शति वा, **सो किन्न णिहणदि पिंडं** स कर्ता किल लोकोक्त्या परमागमोक्त्या वा निहन्ति पिण्डम्। केषाम्। **जीवाणं** जीवानाम्। कतिसंख्योपेतानाम्। **अणेगकोडीणं** अनेककोटीनामिति। अत्रेदुमुक्तं भवति-शेषकन्दमूलाद्याहाराः केचनानन्तकाया अप्यग्निपाक्काः सन्तः प्रासुका भवन्ति, मांसं पुनरनन्तकायं भवति तथैव चाग्निप्कमपक्कं पच्यामानं वा प्रासुकं न भवति। तेन कारणेनाभोज्यमभक्षणीयमिति। ।३२-३३।। अथ पाणिगताहारः प्रासकोऽप्यन्यस्मै न दातव्य इत्युपादिशति -

अप्पडिकुट्टं पिंडं पाणिगयं णेव देयमण्णस्स।
दत्ता भोत्तुमजोग्गं भुत्तो वा होदि पडिकुट्टो।।३४।।

अप्पडिकुट्टं पिंडं पाणिगयं णेव देयमण्णस्स अप्रतिकृष्ट आगमाविरुद्ध आहारः पाणिगतो हस्तगतो नैव देयो, न दातव्योऽन्यस्मै, **दत्ता भोत्तुमजोग्गं** दत्वा पश्चाद्भोक्तुमयोग्यं, **भुत्तो वा होदि पडिकुट्टो** कथंचित् भुक्तो वा, भोजनं कृतवान्, तर्हि प्रतिकृष्टो भवति, प्रायश्चित्तयोग्यो भवतीति। अयमत्र भावः - हस्तगताहारं योऽसावन्यस्मै न ददाति तस्य निर्मोहात्मतत्त्वभावनारूपं निर्मोहत्वं ज्ञायत इति।। ३४।। अथ निश्चयव्यवहारसंज्ञयोरुत्सर्गापवादयोः कथंचित्परस्परसापेक्षभावं स्थापयन् चारित्रस्य रक्षां दर्शयति-**चरदु** चरतु, आचरतु। किम्। **चरियं** चारित्रमनुष्ठानम्। कथंभूतम्। **सजोग्गं** स्वयोग्यं, स्वकीयावस्थायोग्यम्। कथं यथा भवति। **मूलच्छेदो जधा ण हवदि** मूलच्छेदो यथा न भवति। स कः कर्ता चरति। **बालो वा वुड्ढो वा समभिहदो वा पुणो गिलाणो वा** बालो वा, वृद्धो वा, श्रमणाभिहतः पीडितः श्रमाभिहतो वा, ग्लानो व्याधिस्थो वेति। तद्यथा-उत्सर्गापवादलक्षणं कथ्यते तावत्। स्वशुद्धात्मनः सकाशादन्यद्बाह्याभ्यन्तरपरिग्रहरूपं सर्वं त्याजमित्युत्सर्गो निश्चयनयः सर्वपरित्यागः परमोपेक्षासंयमो वीतरागचारित्रं शुद्धोपयोग इति यावदेकार्थः। तत्रासमर्थः पुरुषः शुद्धात्मभावनासहकारिभूतं किमपि प्रासुकाहारज्ञानोपकरणादिकं गृह्णातीत्यपवादो व्यवहारनय एकदेशपरित्यागः तथाचापहृतसंयमः सरागचारित्रं शुभोपयोग इति यावदेकार्थः। तत्र शुद्धात्मभावनानिमित्तं सर्वत्यागलक्षणोत्सर्गे दुर्धरानुष्ठाने प्रवर्तमानस्तपोधनः शुद्धात्मतत्त्वसाधकत्वेन मूलभूतसंयमस्य संयमसाधनकत्वेन मूलभूतशरीरस्य वा यथा छेदो विनाशो न भवति तथा किमपि प्रासुकाहारादिकं गृह्णातीत्यपवादसापेक्ष उत्सर्गो भण्यते। यदा पुनरपवादलक्षणेऽपहृतसंयमे प्रवर्तते तदापि शुद्धात्मतत्त्वसाधकत्वेन मूलभूतसंयमस्य संयमसाधकत्वेन मूलभूतशरीरस्य वा यथोच्छेदो विनाशो न भवति तथोत्सर्गसापेक्षत्वेन प्रवर्तते। तथा प्रवर्तत इति कोऽर्थः। यथा संयमविराधना न भवति तथेत्युत्सर्गसापेक्षोऽपवाद इत्यभिप्रायः।।२३०।।

अब, उत्सर्ग और अपवाद की मैत्री द्वारा आचरण के सुस्थितपने का उपदेश करते हैं:—

बाल हों या वृद्ध हों, अरु श्रान्त-ग्लानदशा विषें।
हो मूल जिससे नष्ट ना, निज योग्य चर्चा आचरें॥२३०॥

अन्वयार्थ - [**बालः वा**] बाल, [**वृद्धः वा**] वृद्ध, [**श्रमाभिहतः वा**] श्रान्त[१] [**पुनः ग्लानः वा**] या ग्लान[२] श्रमण [**मूलच्छेदः**] मूल का छेद [**यथा न भवति**] जैसा न हो, उस प्रकार से [**स्वयोग्यां**] अपने योग्य [**चर्यां चरतु**] आचरण आचरो।

टीका : बाल, वृद्ध, श्रमित या ग्लान (श्रमण) को भी संयम का-जो कि शुद्धात्मतत्त्व का साधन होने से मूलभूत है, उसका-छेद जैसे न हो उस प्रकार, संयत ऐसे अपने योग्य अति कर्कश (कठोर) आचरण ही आचरना; इस प्रकार उत्सर्ग है।

बाल, वृद्ध, श्रमित या ग्लान (श्रमण) को शरीर का-जो कि शुद्धात्मतत्त्व के साधनभूत संयम का साधन होने से मूलभूत है उसका-छेद जैसे न हो, उस प्रकार बाल-वृद्ध-श्रान्त-ग्लान को अपने योग्य मृदु आचरण ही आचरना; इस प्रकार अपवाद है।

बाल-वृद्ध-श्रान्त-ग्लान के संयम का—जो कि शुद्धात्मतत्त्व का साधन होने से मूलभूत है उसका-छेद जैसे न हो, उस प्रकार का संयत ऐसा अपने योग्य अति कठोर आचरण आचरते हुए, (उसके) शरीर का-जो कि शुद्धात्मतत्त्व के साधनभूत संयम का साधन होने से मूलभूत है उसका (भी)-छेद जैसे न हो, उस प्रकार बाल-वृद्ध-श्रान्त-ग्लान ऐसे अपने योग्य मृदु आचरण भी आचरना। इस प्रकार अपवादसापेक्ष[३] उत्सर्ग है।

बाल-वृद्ध-श्रान्त-ग्लान को शरीर का—जो कि शुद्धात्मतत्त्व के साधनभूत संयम का साधन होने से मूलभूत है उसका-छेद जैसे न हो, उस प्रकार से बाल-वृद्ध-श्रान्त-ग्लान ऐसे अपने योग्य मृदु आचरण आचरते हुए, (उसके) संयम का-जो कि शुद्धात्मतत्त्व का साधन होने से मूलभूत है उसका (भी)-छेद जैसे न हो उस प्रकार से संयत ऐसा अपने योग्य अतिकर्कश आचरण भी आचरना; इस प्रकार उत्सर्गसापेक्ष अपवाद है।

---

१. श्रान्त=श्रमित; परिश्रमी थका; हुआ।
२. ग्लान=व्याधिग्रस्त; रोगी; दुर्बल।
३. अपवादसापेक्ष=अपवाद की अपेक्षा सहित।

इससे (ऐसा कहा है कि) सर्वथा (सर्व प्रकार से) उत्सर्ग और अपवाद की मैत्री द्वारा आचरण का सुस्थितपना करना चाहिए॥२३०॥

प्रवचन नं. २२२ का शेष **आषाढ़ कृष्ण ७, रविवार, ६ जुलाई १९६९**

अब, उत्सर्ग और अपवाद की मैत्री द्वारा आचरण के सुस्थितपने का उपदेश करते हैं:—

बालो वा वुड्ढो वा समभिहदो वा पुणो गिलाणो वा।
चरियं चरदु सजोग्गं मूलच्छेदो जधा ण हवदि।।२३०।।

बाल हों या वृद्ध हों, अरु श्रान्त-ग्लानदशा विषें।
हो मूल जिससे नष्ट ना, निज योग्य चर्या आचरें॥२३०॥

गुजराती है। उसकी टीका। मुनि तो कोई बालक भी होते हैं, आठ वर्ष की उम्रवाले राजकुमार, आठ साल का सेठिया का लड़का भी होता है, सम्यग्दर्शनपूर्वक चारित्रदशा में कोई बालक भी होता है, कोई वृद्ध भी होता है, लाखों वर्ष की उम्र हो गयी, करोड़ों वर्ष की उम्र हो गयी (फिर) मुनि होते हैं। पहले के आयुष्य बड़े थे न? बाल हो, वृद्ध हो, श्रमित-थकान लगी हो। इतना चला हो तो शरीर में श्रम लगा हो। थाक समझते हैं? श्रम हुआ हो। **श्रमित या ग्लान....** रोगी हो। कोई रोग हुआ हो।

(ऐसे श्रमण को) **संयम का-जो कि शुद्धात्मतत्त्व के साधनभूत संयम का साधन होने से मूलभूत है....** होने पर भी **संयम का-जो कि शुद्धात्मतत्त्व का साधन....** कौन? संयम। **संयम का-जो कि शुद्धात्मतत्त्व का साधन होने से मूलभूत है....** संयम तो मूलभूत है। आहा...हा...! शुद्धात्मतत्त्व भगवान आत्मा पूर्णानन्द प्रभु, उसकी प्राप्ति में मूलभूत साधन संयम है। निश्चय से (कहा), बाद में व्यवहार (से) शरीर भी मूलभूत कहेंगे। समझ में आया? पहले संयम से (बात) शुरु की है।

बाल, वृद्ध, श्रमित या ग्लान (श्रमण) को भी संयम का-जो कि शुद्धात्मतत्त्व का साधन.... चारित्र जो वीतराग पर्याय अन्दर है, वह तो शुद्धात्मतत्त्व का

साधन है, वह मूलभूत है। **उसका-छेद जैसे न हो उस प्रकार, संयत ऐसे अपने योग्य अति कर्कश (कठोर) आचरण ही आचरना;....** यह उत्सर्ग कहा। समझ में आया? शुद्ध उपयोग में रहने का प्रयत्न करना। समझ में आया? बाल हो, वृद्ध हो, ग्लान हो और थका हुआ हो। एक बात (हुई)। तो भी उसमें कठोर आचरण करना। शुद्ध उपयोग भूमिका में जाने का प्रयत्न करना। यह बात कहते हैं।

बाल, वृद्ध, श्रमित या ग्लान (श्रमण) को शरीर का.... अब शरीर लिया। शरीर निमित्त है न? शुद्धात्मतत्त्व का साधन संयम कहा था। अब यहाँ शुद्धात्मतत्त्व का साधनभूत संयम का साधन शरीर भी निमित्त है। देखो! चरणानुयोग की कथन शैली है न, (इसलिए ऐसा कहा)। बाल, वृद्ध, थका हुआ और रोगी, ऐसे **शरीर का-जो कि शुद्धात्मतत्त्व के साधनभूत संयम का साधन....** कौन? शरीर। शरीर साधन (कहा)। पहले उत्सर्ग में संयम साधन कहा था। अब अपवाद में शरीर निमित्त है तो कहते हैं कि **संयम का साधन होने से मूलभूत है उसका-छेद जैसे न हो....** शरीर का छेद जैसे न हो। शरीर में ऐसी स्थिति हो जाये, गिर जाने की (स्थिति) न हो **उस प्रकार बाल-वृद्ध-श्रान्त-ग्लान को अपने योग्य मृदु आचरण ही आचरना;....** उसमें शुभयोगरूपी विकल्प आता है तो मृदु आचरण आचरना। है तो ... समझ में आया? लेकिन शरीर भी गिर न जाये और छूट न जाये, ऐसी सम्भाल करने में मृदु आचरण करना। मृदु का अर्थ शुभ उपयोगरूप रहना। शुद्ध में जा सके नहीं तो ऐसे आचरना, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? कैसी बात कही है!

शुद्धात्म भगवान आत्मा, उसका पूर्णानन्द साधन में साधन तो वास्तव में संयम है, तो संयम में जैसे चारित्र में छेद न हो, ऐसा उसका उत्सर्गमार्ग — निश्चय मार्ग रखना। स्वरूप में रहने का कठोर आचरण करना। परन्तु शरीर भी संयम साधन में एक निमित्त है तो शरीर में भी छेद न हो अर्थात् शरीर का नाश न हो, उस प्रकार उसको शुद्ध उपयोग में रह सके नहीं तो शुभ उपयोग (में रहना)। समझ में आया? आहार, पानी लेने का भाव होता है। वह तो निर्दोष, हाँ! जैसा है उस प्रकार से। परन्तु यह भाव आता है कि ऐसा लूँ, वह अपवादमार्ग है। समझ में आया? निर्दोष आहार लेने का (विकल्प),

अट्ठाईस मूलगुण का विकल्प भी अपवादमार्ग है, ऐसा कहते हैं। उत्सर्गमार्ग नहीं। आ...हा...!

साधुपद कैसा है?—लोगों ने सुना नहीं और जहाँ-तहाँ मान ले। भाई! यति आवे तो जय महाराज! महाराज आये थे न तो रखो डेढ़ सौ रुपये। कितने रखे थे? ये सब सेठ लोग हैं न, साधु वहाँ जाये नहीं, इसलिए यति आये थे। क्या कहते हैं? चरण करवाते हैं। कितने रखे थे? डेढ़ सौ, सुना था। १५१/- रुपये। आ...हा...! देखो, कुछ मालूम नहीं। साधु किसको कहते हैं? वेश पहन लिया इसलिए साधु हो गया? यह तो वेश भी साधु का नहीं। समझ में आया? वेश तो द्रव्यलिंग नग्न होता है। बाह्य द्रव्यलिंगी का दूसरा वेश होता नहीं। उसमें भी अन्दर स्वरूप का साधन, आनन्द सहित का साधन चारित्र में करते हैं तो कहते हैं कि उसमें-उत्सर्गमार्ग में-शुद्ध उपयोग रह सके नहीं तो शुभभाव में आना, वह अपवादमार्ग है। समझ में आया? आहा...हा...! ऐ...ई...! तुमने अपवादमार्ग कहा था न? ये स्थानकवासी साधु थे। यहाँ का पढ़ा था वह कहे। फिर उन्होंने कहा, वस्त्र रखना, यह अपवादमार्ग है। यहाँ आये थे। स्थानकवासी (साधु को) कहा था। हमने ना कहा था। वस्त्र रखना वह अपवादमार्ग नहीं, वह तो मिथ्यादृष्टि है कि वस्त्र रखकर मुनिपना मानते हैं।

यहाँ तो अपवाद में तो शुद्ध उपयोग में रह सके नहीं तो शुभ उपयोग में आना, वह अपवादमार्ग कहने में आया है। बहुत वृद्ध शरीर है, बालपना है और रोगी हो गया है तो उसमें बहुत कठोर शुद्ध उपयोग में जाना चाहे तो वह जा सकते नहीं, तो उस समय आहार की इच्छा होती है, ऐसा शुभभाव अपवादमार्ग है। भाई! ऐसा कभी जिन्दगी में सुना नहीं होगा। वीतराग मार्ग में ही ऐसी बात है। परमेश्वर त्रिलोकनाथ तीर्थंकर भगवान के मार्ग में ऐसा मार्ग है। समझ में आया?

इस प्रकार अपवाद है। मृदु आचरण की व्याख्या — उसके लिये बनाया, वह लेना यह मृदु आचरण की व्याख्या है ही नहीं। स्वरूप के शुद्ध उपयोग में जाना न हो सके तो शुभ उपयोग में आना, वह मृदु आचरण है। भाई! ए...ई...! देवानुप्रिया! मृदु आचरण का अर्थ, थोड़ा कुछ दोष लगे और कोई दिक्कत नहीं, मृदु आचरण वैसा है नहीं। आहा...हा...! देखो, पहले ऊपर कहा न? शुद्धात्मतत्त्व का मूलभूत आचरण उत्सर्ग है, यह अपवाद है।

अपवाद अर्थात् दोष है तो सही, परन्तु वह अल्प दोष है। शुभभाव है न! लेने का शुभ भाव आया वह अल्प दोष है-लेप है। आहा...हा...! लेकिन वह बहुत वृद्ध है। बिल्कुल आहार बिना चले नहीं ऐसी वृत्ति होगी तो आहार लेने को जाते हैं। (ऐसा) शुभभाव मृदु आचरण है। समझ में आया? रोग बहुत है, समझ में आया? तो आहार लेने को, पानी लेने को गये, पानी-जल लेने को गये तो इतना शुभभाव है न, अल्प लेप हैं, वह मृदु आचरण है। नहीं तो अन्तर में स्थिर हो जाना, कठोर आचरण-शुद्ध उपयोग है। समझ में आया?

भाई! (कोई) ऐसा कहते हैं कि हमें धर्म करना है, हमें ऐसा सुनाने का क्या है? भाई! धर्म की व्याख्या — चारित्र जैसा है, सम्यग्दर्शन जैसा है, ऐसी पहिचान बिना उसकी यथार्थ प्रतीति कहाँ से होगी? समझ में आया? देव कैसा है? गुरु कैसा है? शास्त्र कैसा है? धर्म कैसा है? ऐसी जो स्थिति है, उसकी प्रतीति, यथार्थ ज्ञान बिना उसको प्रतीति कैसे होगी? गड़बड़ कर देगा। समझ में आया? अनादि से गड़बड़ चलती है, वैसी गड़बड़ रहेगी। तेरा मिथ्यात्व भाव जायेगा नहीं—ऐसा कहते हैं, भाई! आ...हा...! कहते हैं कि यह अपवादमार्ग है। समझ में आया?

तीसरा बोल। पहले उत्सर्ग कहा, दूसरा अपवाद कहा। अब, अपवाद सापेक्ष उत्सर्ग—तीसरा बोल यह लेते हैं। **बाल-वृद्ध-श्रान्त-ग्लान....** रोगी और श्रमित **संयम का - जो कि शुद्धात्मतत्त्व का साधन....** संयम। शुद्धात्मतत्त्व चारित्र वीतरागभाव साधन होने से **मूलभूत है उसका-छेद जैसे न हो, उस प्रकार का संयत ऐसा अपने योग्य अति कठोर आचरण आचरते हुए,....** ऐसा अति कठोर शुद्धभाव में रहने का आचरण करते हुए, **शरीर का-जो कि शुद्धात्मतत्त्व के साधनभूत संयम का....** शरीर जो कि शरीर निमित्त है, अब तो ऐसा कहते हैं। **शुद्धात्मतत्त्व के साधनभूत संयम का साधन....** शरीर है, निमित्त, **होने से मूलभूत....** निमित्त है। देखो! यहाँ भी मूलभूत कहा। शरीर को भी मूलभूत कहा और शुद्धात्मतत्त्व का संयम भी मूलभूत कहा। तो मूलभूत उत्सर्ग निश्चय मार्ग है। समझ में आया?

शरीर का-जो कि शुद्धात्मतत्त्व के साधनभूत संयम का साधन होने से....

कौन संयम का साधन? शरीर। **उसका (भी)-छेद जैसे न हो,....** ऐसे शुद्ध उपयोग में आकर कठोर आचरण आचरते हुए परन्तु शरीर का लक्ष्य जाता है कि शरीर ऐसा नहीं टिकेगा। समझ में आया? **बाल-वृद्ध-श्रान्त-ग्लान ऐसे अपने योग्य मृदु आचरण भी आचरना।** शुभभाव में आता है। इतना मृदु आचरण है। आहा...हा...!

मुमुक्षु - उत्सर्ग।

पूज्य गुरुदेवश्री - पहले उत्सर्ग कहा न कि, आचरण—कठोर आचरण आचरते हुए, वह उत्सर्ग हुआ और शरीर के लक्ष्य में शुभ उपयोग आया, वह अपवाद हुआ। तो उत्सर्गसापेक्ष अपवाद। वह अपवादसापेक्ष उत्सर्ग आया। अपवादसापेक्ष उत्सर्ग आया। कठिन बात, भाई! समझ में आता है? पहले अकेला उत्सर्गमार्ग कहा। शुद्ध उपयोग में अन्दर जाना और प्रयत्न करना, वही मुनि का मार्ग है। दूसरा शरीर निमित्त है, उसमें कोई छेद न होय, ऐसा रखकर शुभ उपयोग में आना, इतना अपवादमार्ग है। दो बात (हुई)।

एक — उत्सर्गमार्ग साधते हुए, इतने में रह सके नहीं तो अपवादसापेक्ष उत्सर्ग लेना। बाल, वृद्ध दशा में शुभभाव आता है तो अपवादसापेक्ष (उत्सर्ग हुआ)। शुभभाव आया वह अपवाद है, वह सापेक्ष उत्सर्ग है। समझ में आया? चरणानुयोग की बात भी कैसी करते हैं! आ...हा...हा...! भाई! पढ़ते हो या नहीं? अपवादसापेक्ष का (अर्थ मूलग्रन्थ में नीचे फुटनोट में दिया है)। अपवादसापेक्ष (अर्थात्) अपवाद की अपेक्षासहित उत्सर्ग है। मृदु आचरण में शुभभाव आया तो शुभभाव अपवाद है। उसको सापेक्ष रखकर निश्चय को रखते हैं।

अब, (कहते हैं), **बाल-वृद्ध-श्रान्त-ग्लान को शरीर का - जो कि शुद्धात्मतत्त्व के साधनभूत संयम का साधन होने से मूलभूत है....** कौन? शरीर। उसमें संयम कहा था, यहाँ शरीर (कहा)। यहाँ उत्सर्गसापेक्ष अपवाद कहेंगे। पहले अपवादसापेक्ष उत्सर्ग कहा। अब, **बाल-वृद्ध-श्रान्त-ग्लान को शरीर का—जो कि शुद्धात्मतत्त्व के साधनभूत संयम का साधन होने से....** कौन? शरीर। संयम का साधन होने से शरीर। शुद्धात्मतत्त्व का साधन संयम, उसका साधन होने से शरीर। समझ

में आया ? शुद्धात्मतत्त्व का साधन संयम, उसका साधन शरीर। अपवाद बताना है न! आहा...हा... ! समझ में आया ?

आ...हा... ! मुनियों ने जंगल में रहकर कितनी चारित्र की स्पष्टता की है ! सुननेवाले को उकताहट आ जाये कि यह क्या कहते हैं ? भाई ! यथार्थ वस्तु का स्वरूप कहते हैं। जो वस्तु स्वभाव तत्त्व का उपयोग, शुद्ध उपयोग आचरण करते हैं परन्तु उसमें रह नहीं सके तो मृदु शुभ उपयोग में आना, वह अपवादसापेक्ष उत्सर्ग है। और अब तो उत्सर्गसापेक्ष अपवाद कहते हैं।

शरीर का—जो कि शुद्धात्मतत्त्व के साधनभूत संयम का साधन होने से मूलभूत है उसका-छेद जैसे न हो.... किसका ? शरीर का। **उस प्रकार से बाल-वृद्ध-श्रान्त-ग्लान ऐसे अपने योग्य मृदु आचरण आचरते हुए,....** शुभभाव में आते हैं। ऐसा **आचरण आचरते हुए, (उसके) संयम का-जो कि शुद्धात्मतत्त्व का साधन होने से मूलभूत है....** संयम का लक्ष्य न छोड़ना। वास्तव में तो संयम साधन है। आहा...हा... ! शुद्धात्मतत्त्व का साधन मूलभूत ऐसा संयम—चारित्र / वीतराग परिणति। **उसका (भी)-छेद जैसे न हो, उस प्रकार से संयत ऐसा अपने योग्य अतिकर्कश आचरण भी....** आचरता है। शुभ उपयोग की दरकार छोड़ देता है। जैसे पानी-जल लेने का शुभ विकल्प है, उसको छोड़ देता है। समझ में आया ?

इस प्रकार उत्सर्गसापेक्ष अपवाद है। निश्चय की शुद्ध उपयोग की भूमिका सापेक्ष में ऐसे शुभ उपयोग का अपवाद कहने में आता है। अपने आप पढ़ा आपने पढ़ा होगा तो कुछ समझ में आया ? नहीं ? ठीक, लो। स्वीकार करते हैं। बहुत सूक्ष्म बात है। अपेक्षित बात है। दोनों बात ली। शुद्धात्म तत्त्व भगवान, उसका साधन तो संयम ही है, यह उत्सर्गमार्ग हुआ परन्तु संयम का साधन में निमित्त शरीर भी है तो शरीर में भी ध्यान रखना। शुभ उपयोग (में) आकर मृदु आचरण में आ जाना। न जाये और मात्र कठोर आचरण में जायेगा तो शरीर गिर जायेगा, शरीर (का) छेद हो जायेगा, शरीर का नाश हो जायेगा। यहाँ चरणानुयोग की कथन की पद्धति है न। नहीं तो (ऐसा कहे कि) शरीर का जो होना होगा, होगा। लेकिन यहाँ तो व्यवहार से सावधानी उत्सर्गसापेक्ष अपवाद और अपवादसापेक्ष

उत्सर्ग का भेद बताते हैं। कठिन बातें, भाई! समझ में आया? उत्सर्ग क्या और अपवाद क्या? कौन जाने, छोड़ न, (ऐसा कोई कहता है)।

मुमुक्षु - .....

पूज्य गुरुदेवश्री - क्या करता है, अज्ञान करता है। क्या करता है? भाई! सन्त की दशा, उसकी योग्यता कैसी है—उसको ज्ञानी को या धर्मात्मा को निर्णय करना पड़ेगा। नहीं तो उसकी दृष्टि में यथार्थता होगी नहीं। समझ में आया?

इससे (ऐसा कहा है कि) सर्वथा (सर्व प्रकार से) उत्सर्ग और अपवाद की मैत्री द्वारा आचरण का सुस्थितपना करना चाहिए। लो, ठीक! भगवान आत्मा शुद्ध आनन्दकन्द प्रभु, उसकी प्राप्ति में साधनभूत तो संयम / चारित्र / वीतराग दशा है, तो उसमें—शुद्ध उपयोग में रहना, वही वास्तव में धोख और उत्सर्ग / निश्चय मार्ग है। परन्तु उसमें रह सके नहीं तो बाल, वृद्ध आदि शरीर, ग्लान हुआ है तो शुभ उपयोग में आना, मृदु आचरण में आना। शुभ में आना, वह मृदु आचरण है। शुभ में आना, इसके अलावा कोई मृदु अर्थात् दूसरी चीज में फेरफार हो जाये, हिंसा (हो जाये), कुछ ले ले, ऐसी चीज की बात यहाँ है नहीं। यहाँ तो शुद्ध उपयोग और शुभ उपयोग की दो बात है। शुद्ध उपयोग का आचरण, कठोर आचरण है और शुभ उपयोग का आचरण, मृदु आचरण है। आहा...हा...! समझ में आया?

कोई तो कहे कि यह किसके घर की बात है? परमेश्वर केवली ने ऐसा कहा होगा? हमने तो इतने साल में कभी सुना नहीं था कि ऐसे साधु होते हैं। आहा...हा...! बापू! वीतराग का मार्ग, ऐसा है। तुमने सुना नहीं हो, इसलिए मार्ग दूसरा हो जाये ऐसा है नहीं। वीतराग परमेश्वर त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ की आज्ञा का सन्त ऐसा है, ऐसी बात परमात्मा, सन्तों फरमाते हैं। उसकी यथार्थ पहिचान और प्रतीत करनी चाहिए। आहा...हा...! लो, २३० (गाथा पूरी) हुई। समझ में आया?

अब, उत्सर्ग और अपवाद के विरोध (अमैत्री) से आचरण का दुःस्थितपना होता है,.... उत्सर्ग और अपवाद में बराबर होने से सुस्थितता होती है, वह पहले कहा। अब दुःस्थितता होती है, वह २३१ (गाथा में) कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

गाथा - २३१

अथोत्सर्गापवादविरोधदौःस्थमाचरणस्योपदिशति-

आहारे व विहारे देसं कालं समं खमं उवधिं।
जाणित्ता ते समणो वट्टदि जदि अप्पलेवी सो।।२३१।।

आहारे वा विहारे देशं कालं श्रमं क्षमामुपधिम्।
ज्ञात्वा तान् श्रमणो वर्तते यद्यल्पलेपी सः।।२३१।।

अत्र क्षमाग्लानत्वहेतुरूपवासः, बालवृद्धत्वाधिष्ठानं शरीरमुपधिः, ततो बालवृद्धश्रान्तग्लाना एव त्वाकृष्यन्ते। अथ देशकालज्ञस्यापि बालवृद्धश्रान्तग्लानत्वानुरोधेनाहारविहारयोः प्रवर्तमानस्य मृद्वाचरणप्रवृत्तत्वादल्पो लेपो भवत्येव, तद्वरमुत्सर्गः। देशकालज्ञस्यापि बालवृद्धश्रान्तग्लानत्वानुरोधेनाहारविहारयोः प्रवर्तमानस्य मृद्वाचरणप्रवृत्तत्वादल्प एव लेपो भवति, तद्वरमपवादः। देशकालज्ञस्यापि बालवृद्धाश्रान्तग्लानत्वानुरोधेनाहारविहारयोरल्पलेपभयेनाप्रवर्तमानस्यातिकर्कशाचरणीभूयाक्रमेण शरीरं पातयित्वा सुरलोकं प्राप्योद्वान्तसमस्तसंयमामृतभारस्य तपसोऽनवकाशतयाशक्यप्रतिकारो महान् लेपो भवति, तन्न श्रेयानपवादनिरपेक्ष उत्सर्गः। देशकालज्ञस्यापि बालवृद्धश्रान्तग्लानत्वानुरोधेनाहारविहारयोरल्पलेपत्वं विगणय्य यथेष्टं प्रवर्तमानस्य मृद्वाचरणमीभूय संयमं विराध्यासंयतजनसमानीभूतस्य तदात्वे तपसोऽनवकाशतयाशक्यप्रतिकारो महान् लेपो भवति, तन्न श्रेयानुत्सर्गनिरपेक्षोऽपवादः। अतः सर्वथोत्सर्गापवादविरोधदौस्थित्यमाचारणस्य प्रतिषेध्यं, तदर्थमेव सर्वथानुगम्यश्च परस्परसापेक्षोत्सर्गावादविजृम्भितवृत्तिः स्याद्वादः।।२३१।।

अथापवादनिरपेक्षमुत्सर्गं तथैवोत्सर्गनिरपेक्षमपवादं च निशेधयंश्चारित्ररक्षणाय व्यतिरेकद्वारेण तमेवार्थं द्रढयति-**वट्टदि** वर्तते प्रवर्तते। स कः कर्ता। **समणो** शत्रुमित्रादिसमचित्तः श्रमणः। यदि किम्। **जदि अप्पलेवी सो** यदि चेदल्पलेपी स्तोकसावद्यो भवति। कयोर्विषययोर्वर्तते। **आहारे व विहारे** तपोधनयोग्याहारविहारयोः। किं कृत्वा पूर्वं। **जाणित्ता** ज्ञात्वा। कान्। ते तान् कर्मतापन्नान्; **देसं कालं समं खमं उवधिं** देशं, कालं, मार्गादिश्रमं, क्षमां, क्षमतामुपवासादिविषये शक्तिं, उपधिं बालवृद्धश्रान्त-

ग्लानसंबन्धिनं शरीरमात्रोपधिं परिग्रहमिति पञ्च देशादीन् तपोधना-चरणसहकारिभूतानिति। तथाहिपूर्वकथितक्रमेण तावदुर्धरानुष्ठानरूपोत्सर्गे वर्तते; तत्र च प्रासुकाहारादिग्रहणनिमित्तमल्पलेपं दृष्ट्वा यदि न प्रवर्तते तदा आर्तध्यानसंक्लेशेन शरीरत्यागं कृत्वा पूर्वकृतपुण्येन देवलोके समुत्पद्यते। तत्र संयमाभावान्महान् लेपो भवति। ततः कारणादपवादनिरपेक्षमुत्सर्गं त्यजति, शुद्धात्मभावनासाधकमल्पलेपं बहुलाभमपवादसापेक्षमुत्सर्गं स्वीकरोति। तथैव च पूर्वसूत्रोक्तक्रमेणापहृतसंयमशब्दवाच्येऽपवादे प्रवर्तते तत्र च प्रवर्तमानः सन् यदि कथंचिदौषधपथ्यादिसावद्यभयेन व्याधिव्यथादिप्रतीकारमकृत्वा शुद्धात्मभावनां न करोति तर्हि महान् लेपो भवति; अथवा प्रतीकारे प्रवर्तमानोऽपि हरीतकीव्याजेन गुडभक्षण-वदिन्द्रियसुखलाम्पट्येन संयमविराधनां करोति तदापि महान् लेपो भवति। ततः कारणादुत्सर्गनिरपेक्षमपवादं त्यक्त्वा शुद्धात्मभावनारूपं शुभोपयोगरूपं वा संयममविराधयन्नौषधपथ्यादिनिमित्तोत्पन्नाल्पसावद्यमपि बहुगुणराशिमुत्सर्गसापेक्षमपवादं स्वीकरोतीत्यभिप्रायः।।२३१।।

अब, उत्सर्ग और अपवाद के विरोध (अमैत्री) से आचरण का दुःस्थितपना[१] होता है, ऐसा उपदेश करते हैं:—

देश-काल-श्रम-क्षमता को, उपधि को भी जानकर।
वर्ते आहार-विहार में, वो श्रमण लेपी अल्प हैं॥२३१॥

अन्वयार्थ - **[यदि]** यदि **[श्रमणः]** श्रमण **[आहारे वा विहारे]** आहार अथवा विहार में **[देशं]** देश, **[कालं]** काल, **[श्रमं]** श्रम, **[क्षमां]** क्षमता तथा **[उपधिं]** उपधि, **[तान् ज्ञात्वा]** इनको जानकर **[वर्तते]** प्रवर्ते **[सः अल्पलेपी]** तो वह अल्पलेपी होता है।

टीका : क्षमता तथा ग्लानता का हेतु उपवास है और बाल तथा वृद्धत्व का अधिष्ठान उपधि-शरीर है, इसलिए यहाँ (टीका में) बाल-वृद्ध-श्रान्त-ग्लान ही लिये गये हैं। (अर्थात् मूल गाथा में जो क्षमा, उपधि इत्यादि शब्द हैं, उनका आशय खींचकर टीका में 'बाल, वृद्ध, श्रान्त, ग्लान' शब्द ही प्रयुक्त किये गये हैं।)

देशकालज्ञ[२] को भी, यदि वह बाल-वृद्ध-श्रान्त-ग्लानत्व के अनुरोध से (अर्थात् बालत्व, वृद्धत्व, श्रान्तत्व अथवा ग्लानत्व का अनुसरण करके) आहार-विहार में प्रवृत्ति

---

१. दुःस्थित=खराब स्थितिवाला; नष्ट।
२. देशकालज्ञ=देश-काल को जाननेवाला।

करे तो मृदु आचरण में प्रवृत्त होने से अल्प लेप होता ही है, (लेप का सर्वथा अभाव नहीं होता), इसलिए उत्सर्ग अच्छा है।

देशकालज्ञ को भी, यदि वह बाल-वृद्ध-श्रान्त-ग्लानत्व के अनुरोध से आहार-विहार में प्रवृत्ति करे तो मृदु आचरण में प्रवृत्त होने से अल्प ही लेप होता है। (विशेष लेप नहीं होता), इसलिए अपवाद अच्छा है।

देशकालज्ञ को भी, यदि वह बाल-वृद्ध-श्रान्त-ग्लानत्व के अनुरोध से, जो आहार-विहार है, उससे होनेवाले अल्पलेप के भय से उसमें प्रवृत्ति न करे तो (अर्थात् अपवाद के आश्रय से होनेवाले अल्पबन्ध के भय से उत्सर्ग का हठ करके अपवाद में प्रवृत्त न हो तो), अति कर्कश आचरणरूप होकर अक्रम से शरीरपात करके, देवलोक प्राप्त करके, जिसने समस्त संयमामृत का समूह वमन कर डाला है, उसे तप का अवकाश न रहने से, जिसका प्रतिकार अशक्य है—ऐसा महान लेप होता है, इसलिए अपवादनिरपेक्ष उत्सर्ग श्रेयस्कर नहीं है।

देशकालज्ञ को भी, यदि वह बाल-वृद्ध-श्रान्त-ग्लानत्व के अनुरोध से जो आहार-विहार है, उससे होनेवाले अल्पलेप को न गिनकर, उसमें यथेष्ट[१] प्रवृत्ति न करे तो (अर्थात् अपवाद से होनेवाले अल्पबन्ध के प्रति असावधान होकर उत्सर्गरूप ध्येय को चूककर अपवाद में स्वच्छन्दपूर्वक प्रवर्ते तो), मृदु आचरणरूप होकर संयम विरोधी को-असंयतजन के समान हुए उसको—उस समय तप का अवकाश न रहने से, जिसका प्रतिकार अशक्य है, ऐसा महान लेप होता है। इसलिए उत्सर्गनिरपेक्ष अपवाद श्रेयस्कर नहीं है।

इससे (ऐसा कहा गया है कि) उत्सर्ग और अपवाद के विरोध में होनेवाला जो आचरण का दुःस्थितपना, वह सर्वथा निषेध्य (त्याज्य) है, और इसीलिए परस्पर सापेक्ष उत्सर्ग और अपवाद से जिसकी वृत्ति (अस्तित्व, कार्य) प्रगट होती है, ऐसा स्याद्वाद सर्वथा अनुगम्य (अनुसरण करने योग्य) है।

भावार्थ : जब तक शुद्धोपयोग में ही लीन न हो जाया जाय, तब तक श्रमण को आचरण की सुस्थिति के लिये उत्सर्ग और अपवाद की मैत्री साधनी चाहिए। उसे अपनी

१. यथेष्ट=स्वच्छन्दतया, इच्छा के अनुसार।

निर्बलता का लक्ष्य रखे बिना मात्र उत्सर्ग का आग्रह रखकर केवल अति कर्कश आचरण का हठ नहीं करना चाहिए; तथा उत्सर्गरूप ध्येय को चूककर मात्र अपवाद के आश्रय से केवल मृदु आचरणरूप शिथिलता का भी सेवन नहीं करना चाहिए। किन्तु इस प्रकार का वर्तन करना चाहिए जिसमें हठ भी न हो और शिथिलता का भी सेवन न हो। सर्वज्ञ भगवान का मार्ग अनेकान्त है। अपनी दशा की जाँच करके जैसे भी लाभ हो, उस प्रकार से वर्तन करने का भगवान का उपदेश है।

अपनी चाहे जो (सबल या निर्बल) स्थिति हो, तथापि एक ही प्रकार से वर्तना, ऐसा जिनमार्ग नहीं है ॥२३१ ॥

प्रवचन नं. २२३ **आषाढ़ कृष्ण ८, मंगलवार, ८ जुलाई १९६९**

('प्रवचनसार'), 'चरणानुयोगसूचक चूलिका' २३१ गाथा। **अब, उत्सर्ग और अपवाद के विरोध (अमैत्री) से आचरण का दुःस्थितपना होता है, ऐसा उपदेश करते हैं: —** आखिर की गाथा है, पीछे २३२ (गाथा) में मोक्षमार्ग चलेगा। यहाँ आचरण प्रज्ञापन (बताते) हैं। क्या कहते हैं? साधु अपनी ज्ञानज्योति का भान, अनुभव हुआ, आनन्द का स्वाद आया परन्तु जब तक चारित्र की वीतराग दशा न हो, तब तक उसको मुक्ति होगी नहीं। समझ में आया? ज्ञानज्योति प्रगट हुई, वह क्या कहा? वह तो चौथे गुणस्थान की बात है। मुनि तो बाद में होते हैं, ऐसा पहले आया या नहीं? ज्ञानज्योति प्रगट हुई। यह तो साधुपना (है), उसमें ज्ञानज्योति कहाँ है? वह तो पहले आयी। ज्ञानज्योति तो प्रगट हुई है, ऐसा आया या नहीं? भाई! गुरु के पास जाये तब ज्ञानज्योति आयी? गुरु के पास जाये, तब भावलिंग, द्रव्यलिंग माँगते हैं। अभी साधुपद आया नहीं, साधुपद को माँगा नहीं, उसके पहले तो ज्ञानज्योति प्रगट हुई है। बाद में तो वह साधुपद माँगते हैं। तो चौथे गुणस्थान की बात है कि क्या? या छठे-सातवें की (बात) है?

मुमुक्षु - पाँचवें की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री - पाँचवें की भले हो परन्तु चौथे और पाँचवें में एक ही है न।

छठे गुणस्थान में, सातवें गुणस्थान में निर्विकल्प सम्यग्दर्शन होता है। कहो! ऐसा कहते हैं न? कल आया है। पदार्थ की स्थिति क्या है, अन्तर की खबर नहीं और साधारण श्रद्धा करो। भगवान की श्रद्धा, देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, नौ तत्त्व की श्रद्धा करो, बस! सम्यग्दर्शन हुआ, अब व्रत ले लो, चारित्र ले लो। ऐसा है नहीं, भाई! समझ में आया? अकेला नव तत्त्व का अनुभव तो भेदरूप है, वह तो मिथ्यात्व है।

प्रश्न – वर्तमान में नव तत्त्व की श्रद्धा नहीं है? वह नहीं बतायी जाती है?

समाधान – वह बतायी जाती है।

मुमुक्षु – नौ तत्त्व की श्रद्धा, वह भी नहीं बतायी जाती है।

पूज्य गुरुदेवश्री – वह भी नहीं बतायी जाती है, सच्ची बात है। एक को पूछा, दर्शनप्रतिमा किसको कहते हैं? (उसने कहा), भगवान का दर्शन करना, वह दर्शनप्रतिमा। अरे... भगवान! क्या करता है? पदार्थ की व्यवस्था क्या है, (वह मालूम नहीं)। समझ में आया? सबेरे थोड़ी बात कही थी। थोड़ी सूक्ष्म कल आयेगी।

एक आकाश के प्रदेश में अनन्त खण्ड हैं और एक आकाश के प्रदेश में जीव के अनन्त जीव के असंख्य प्रदेश, देखो! यह बात तो देखो, बापू! सूक्ष्म बात है, भाई! सर्वज्ञ परमात्मा के अलावा कहीं होती नहीं। कल विशेष आयेगा, सबेरे आयी थी न। वह प्रश्न तो हमारे पास बहुत पहले ५१ वर्ष पहले आ गया था कि यह क्या है? भाई! पदार्थ व्यवस्था ऐसी है कि एक-एक आकाश प्रदेश, हाँ! इस लोक में असंख्य प्रदेश है न, उसमें एक-एक प्रदेश में, अनन्त परमाणु हैं, दो परमाणु के स्कन्ध अनन्त, तीन के अनन्त, चार का अनन्त (वैसे) अनन्त के स्कन्ध हैं। और एक प्रदेश में एक जीव पूरा नहीं रह सकता। निगोद का एक शरीर होता है न, निगोद का; एक शरीर आकाश के असंख्य प्रदेश में रहे, एक प्रदेश में नहीं रह सके, वह उसका स्वभाव है। आ...हा...! इतनी सूक्ष्मता चैतन्य तत्त्व की, देखो!

एक शरीर भी असंख्य प्रदेश में रहे तो एक शरीर में अनन्त जीव हैं और उस असंख्य प्रदेश में अनन्त जीव का असंख्यवाँ भाग, एक-एक जीव का असंख्यवाँ भाग, ऐसे असंख्य प्रदेश एक-एक प्रदेश में है। ऐसे अनन्त जीव के अनन्त प्रदेश हैं और अनन्त

स्कन्ध हैं। अपनी मर्यादा स्वतन्त्र है। आ...हा...हा... ! समझ में आया ? एक क्षेत्र होने पर भी, प्रत्येक आत्मा के प्रदेश की और प्रत्येक परमाणु की अपनी अचलित मर्यादा अपने में वर्तती है। सामान्य और विशेष में वर्तती है। कोई पर का सम्बन्ध कुछ है नहीं। आहा...हा... ! देखो ! यह भगवान का मार्ग तो देखो, भाई ! परन्तु वह सूक्ष्म विचार भी करे नहीं। वह तो भाई, ९१ (गाथा) में आता है न, ९१ गाथा इसमें आ गई न ? कि भगवान ने कहे हुए पदार्थ की जो व्यवस्था है, उस प्रकार से नहीं मानते हैं, उसको धर्म का उद्भव नहीं होता। ९१ वीं गाथा में है।

९१ (गाथा में) धूणधोया का दृष्टान्त दिया है। धूणधोया समझते हैं ? धूल धोते हैं न ? सुवर्णकार की दुकान के पास धूल में सोना धोते हैं। हमारे यहाँ है, आपके यहाँ नहीं होगा। ऐसा दृष्टान्त है। ९१ गाथा में है, ९१ में है, देखो ! ९१ है। ९१ में पहले ज्ञान तत्त्व (प्रज्ञापन) हैं न। ९१ है, नव और एक। टीका — **जो (जीव) इन द्रव्यों की — कि जो (द्रव्य) सादृश्य-अस्तित्व के द्वारा समानता को धारण करते हुए स्वरूप— अस्तित्व के द्वारा विशेषयुक्त हैं उन्हें—स्व-पर के भेदपूर्वक न जानता हुआ और श्रद्धा न करता हुआ यों ही (ज्ञान-श्रद्धा के बिना) मात्र श्रमणता से (द्रव्यमुनित्व से) आत्मा का दमन करता है, वह वास्तव में श्रमण नहीं है;....** ९१ में है। वास्तव में श्रमण नहीं है।

जैसी पदार्थ व्यवस्था सर्वज्ञ भगवान ने, छह द्रव्य की, उसके क्षेत्र की, उसके काल की और उसके भाव की, जैसी पदार्थ की व्यवस्था है, ऐसा माने नहीं, श्रद्धे नहीं तो उसको सम्यग्दर्शन होता नहीं, धर्म उद्भव होता ही नहीं—ऐसा कहते हैं। ज्ञान अधिकार है न, वह ज्ञान की अन्तिम ९१-९२ (गाथा) है। समझ में आया ? **आत्मा का दमन करता है, वह वास्तव में श्रमण नहीं है; इसलिए, जैसे जिसे रेती और स्वर्णकणों का अन्तर ज्ञात नहीं है,...** देखो ! उसमें पीछे दृष्टान्त है। रेती और स्वर्णकण। सोनी होता है न, सोनी ! उसकी दुकान के पास धूलधोया धोते हैं। (धूल में) थोड़े सोने के कण भी हो और धूल भी हो। धूल — रेती, तो रेती और सोने के कण की खबर नहीं, वह सोने कैसे निकालेगा ? वह कहते हैं, देखो !

रेती और स्वर्णकणों का अन्तर ज्ञात नहीं है, उसे धूल के धाने से—उसमें से स्वर्ण लाभ नहीं होता,.... यह सोना है और यह रेती है या धूल है, उसकी तो खबर नहीं। वैसे यह आत्मा आनन्दकन्द ज्ञायक है, यह राग है, साथ में रहे अनन्त आत्मा भिन्न हैं, साथ में रहे अनन्त परमाणु भिन्न हैं, ऐसी तो जिसको स्व-पर विवेक की खबर नहीं, समझ में आया ? देखो ! **इसी प्रकार उसमें से (श्रमणाभास में से) निरूपराग आत्मतत्त्व की उपलब्धि (प्राप्ति) लक्षणवाले धर्म लाभ का उद्भव नहीं होता।** समझ में आया ? सूक्ष्म है, भाई !

वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर... छह द्रव्य हैं न, अपने अलावा छह द्रव्य (हैं)। छह द्रव्य को ज्ञान की एक समय की पर्याय जानने की ताकत रखती है। छह द्रव्य को जानना तो एक द्रव्य की एक समय की पर्याय की ताकत है। जो छह द्रव्य नहीं मानते हैं, वह तो एक समय की पर्याय को ही नहीं मानते। समझ में आया ? सूक्ष्म बात है, भगवान ! एक समय की पर्याय में छह द्रव्य और छह द्रव्य भी आकाश के एक प्रदेश में सब रहते हैं। धर्मास्तिकाय (का) एक प्रदेश है, अधर्मास्तिकाय का एक है, कालाणु का एक है, जीव के अनन्त हैं और पुद्गल के अनन्त हैं। अब क्या रहा ? आकाश तो स्वयं है। समझ में आया ?

आकाश का यहाँ एक प्रदेश है। सारा लोक में जितना है उतना। तो एक प्रदेश में अनन्त जीव के असंख्य प्रदेश हैं, अनन्त स्कन्ध हैं, एक धर्मास्ति है, एक अधर्मास्ति है, एक कालाणु है और आकाश स्वयं, एक प्रदेश में छहों द्रव्य आ गये, देखो ! आहा...हा... ! समझ में आया ? ऐसे असंख्य प्रदेश सारे लोक में भरे हैं। किसी जगह आत्मा के प्रदेश थोड़े भी हो, परन्तु अनन्त से थोड़े तो होते ही नहीं। समझे ? एक-एक प्रदेश में अनन्त जीव के अनन्त प्रदेश हैं तो किसी जगह अनन्त हैं तो थोड़े अनन्त हो, किसी जगह आकाश का प्रदेश आखिर का है, लोक के अन्त का आखिर के (भाग में) थोड़े प्रदेश हैं। परन्तु उसमें भी हैं तो अनन्त...

यहाँ तो कहते हैं कि ऐसे परपदार्थ में आत्मा भिन्न रहता है। आकाश के एक-एक प्रदेश में (भिन्न रहते हैं)। इसके अस्तित्व की खबर नहीं, पर के अस्तित्व की खबर नहीं,

अपनी चीज से पर भिन्न है, पर से अपना (स्वरूप) भिन्न है, ऐसी खबर नहीं, उसको ज्ञान में धर्मबुद्धि उद्भवती नहीं। आहा...हा...! समझ में आया? रेती का दृष्टान्त आया न, रेती... रेती का आया न? रेती और सुवर्ण, रेती और सुवर्ण।

अपने यहाँ आये (हैं), २३१ (गाथा) देखो! उत्सर्ग और अपवाद। मुनि हुए, उसके पहले ऐसा ज्ञान, भान तो हुआ है, ऐसा कहना है। आहा...हा...! नहीं तो धर्म का उद्भव होता नहीं। अब, धर्म तो यहाँ चारित्र की पर्याय प्रगट हुई, उसकी बात चलती है। समझ में आया? उसमें (गाथा ९१ में) तो ऐसा कहते हैं कि धर्म की—आत्मतत्त्व की प्राप्ति नहीं।

आत्मा पर से, राग से भिन्न और शरीर के रजकण से और उस समय अनन्त आत्मा अथवा अनन्त प्रदेश हैं उससे भिन्न, परमाणु से भिन्न, आकाश से भिन्न, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश सबसे भिन्न। ऐसी अपनी चीज ज्ञायकमूर्ति भगवान अपने में है और पर की चीज में है नहीं अथवा परचीज नहीं। ऐसे वहाँ कहा न? सादृश अस्तित्व में वह लिया, भाई! ९४-९५ (गाथा में) शुरुआत में लिया है। सादृश अस्तित्व सब है। उसमें स्वरूप अस्तित्व प्रत्येक का भिन्न है, प्रत्येक का भिन्न है। सादृश्य अस्तित्व है सब, इतना। ऐसे स्वरूप का अन्तर में स्व-पर विभाग का भान नहीं। इतना बड़ा आत्मा कि जिसकी एक समय की पर्याय में इतने छह द्रव्य-गुण-पर्याय जितने हैं, उसको एक पर्याय में जानने की ताकत है। तो छह द्रव्य को माने, उसने एक समय की पर्याय मानी। एक समय की पर्याय मानी, उसने छह द्रव्य माने। उसमें आत्मद्रव्य तो दूर रह गया। पूर्ण स्वरूप, हाँ!

एक समय की पर्याय और छह द्रव्य आये। जो छह द्रव्य को मानते नहीं, वे तो आत्मा की पर्याय को ही मानते नहीं, ऐसा हुआ। समझ में आया? जिस मत में या सम्प्रदाय में छह द्रव्य नहीं, ऐसे (छह द्रव्य को) माना नहीं, उसने तो आत्मा की एक समय की पर्याय भी मानी नहीं। समझ में आया? ऐसा मानकर भी एक समय की पर्याय, ऐसी अनन्त पर्याय का पिण्ड ज्ञानगुण है और ऐसा अनन्त गुण का पिण्ड भगवान ज्ञायकस्वभाव है। ऐसी ज्ञानज्योति प्रगट हुई, फिर मुनिपना लेते हैं। मुनिपना लिया तो उसमें उत्सर्ग (और)

अपवाद, दोनों सापेक्ष चारित्र में रहना। नहीं तो अमैत्री होने से दुःस्थितपना (अर्थात्) खराब स्थितिवाला हो जायेगा। वह २३१ (गाथा) में कहते हैं, देखो!

आहारे व विहारे देसं कालं समं खमं उवधिं।
जाणित्ता ते समणो वट्टदि जदि अप्पलेवी सो।।२३१।।

देश-काल-श्रम-क्षमता को, उपधि को भी जानकर।
वर्ते आहार-विहार में, वो श्रमण लेपी अल्प हैं॥२३१॥

देखो! उसकी टीका। **क्षमता....** (अर्थात्) सहनशक्ति, धैर्य, धीरज, आदि। **तथा ग्लानता....** रोग मुनि को होता है। ऐसी कोई क्षमता, शक्तिहीन हो गया और थकान लग गई, कोई रोग आया, उस **हेतु उपवास है... क्षमता तथा ग्लानता का हेतु उपवास है....** पाठ में दो शब्द रखे हैं। **और बाल तथा वृद्धत्व का अधिष्ठान उपधि-शरीर है,....** बालपना और वृद्ध, उसका कारण यह शरीर है।

इसलिए यहाँ (टीका में) बाल-वृद्ध-श्रान्त-ग्लान ही लिये गये हैं। चार। **(अर्थात् मूल गाथा में जो क्षमा, उपधि इत्यादि शब्द हैं उनका आशय खींचकर टीका में 'बाल, वृद्ध, श्रान्त, ग्लान' शब्द ही प्रयुक्त किये गये हैं।)** चार लिये। पाठ में दो हैं, उसमें से चार निकाले। उपधि में से दो और श्रम में से दो, (इस प्रकार) चार (शब्द) निकाले। समझ में आया?

देशकालज्ञ को भी,.... देखो! देश-काल को जाननेवाला साधु, नग्न दिगम्बर वन में रहनेवाला, अपना आनन्द सहित चारित्र की रमणता में रहनेवाला। देश-काल को जाननेवाला। देखो! कालज्ञ — क्षेत्र का जाननेवाला है, काल का (जाननेवाला है)। कैसा क्षेत्र है, कैसा काल है, (उसका जाननेवाला)। **यदि वह बाल-वृद्ध-श्रान्त-ग्लानत्व के अनुरोध से (अर्थात् बालत्व, वृद्धत्व, श्रान्तत्व अथवा ग्लानत्व का अनुसरण करके) आहार-विहार में प्रवृत्ति करे तो मृदु आचरण में प्रवृत्त होने से...** शुभभाव है न, जितना लक्ष्य जाता है, उतना दोष लगता है। **अल्प लेप होता ही है,....** समझ में आया? चलने-फिरने में थोड़ा ... पड़ते हैं, ऐसा कहते हैं। शुभभाव तो है ही परन्तु उसमें थोड़ा-अल्प लेप होता है। **(लेप का सर्वथा अभाव नहीं**

होता), इसलिए उत्सर्ग अच्छा है। उस कारण से तो अन्तर में रहना, वही अच्छा है। समझ में आया?

देखो! चारित्र की दशा! वीतराग मार्ग की, सर्वज्ञ से सिद्ध हुई (ऐसी दशा)! सम्यग्दर्शनपूर्वक, सम्यग्ज्ञानपूर्वक चारित्र की रमणता में मुनि को देश, काल का जाननेवाला कहकर, उसको यथाशक्ति उत्सर्गमार्ग का लक्ष्य रखना। यदि अल्प शुभ में, अपवाद में आया (तो) अल्प लेप होगा। समझ में आया? वैसे तो वहाँ ना कही थी, ऐ...ई...! लेकिन यहाँ तो अपेक्षा (से बात है)। (बाहर में) आते हैं उसमें कोई थोड़ा अतिचार आदि लग जाये, ऐसा कहते हैं। **(लेप का सर्वथा अभाव नहीं होता), इसलिए उत्सर्ग अच्छा है।** अन्दर में रहना, स्वरूप के आनन्द में रहना अच्छा है।

दूसरी बात, **देशकालज्ञ को भी, यदि वह बाल-वृद्ध-श्रान्त-ग्लानत्व के अनुरोध से आहार-विहार में प्रवृत्ति करे तो मृदु आचरण में प्रवृत्त होने से अल्प ही लेप होता है।** अल्प ही लेप होता है—ऐसा कहकर, उत्सर्ग में रह सके नहीं, शरीर दुर्बल हो गया है, कृश हो गया है, ग्लान हो गया है तो उस समय उसको मृदु आचरण में प्रवर्तने से अल्प लेप होता है। उसको अपवाद में आना, ऐसा कहते हैं। **(विशेष लेप नहीं होता), इसलिए अपवाद अच्छा है।** अन्दर में शुद्ध उपयोग में हठ तो नहीं होती। हठ से शुद्ध उपयोग करने जाये तो हठ से होता नहीं। अशुद्ध हो जाये, राग आ जाये और हठ हो जाये; इसलिए शुद्ध उपयोग में नहीं रह सके तो ऐसे अपवाद — मृदु आचरण में आना। मृदु आचरण में अल्प लेप तो है, परन्तु उसकी भूमिका को विरोध है नहीं। आहा...हा...! अपवाद अच्छा कहा, देखो! मृदु आचरण अल्प ले लेवे तो अच्छा कहा। प्रमाद भाव है, आया। अन्तर में रह सके नहीं और हठ करे तो भी रह सकते नहीं। समझे? हठ (से) तो फिर आग्रह हो जाये। आहा...हा...! कैसा मार्ग है प्रभु का! दो बात कही।

अब, दोनों की सापेक्षता कहते हैं। पहले भिन्न-भिन्न बात कही। (पहले) उत्सर्ग की, बाद में अपवाद की। अब, उत्सर्गसापेक्ष (की बात करते हैं)। देखो! **अपवाद निरपेक्ष उत्सर्ग श्रेयस्कर नहीं है।** बाद में **उत्सर्ग निरपेक्ष अपवाद श्रेयस्कर नहीं है।** ऐसा कहेंगे। भाषा भी सब (कठिन लगे)। **देशकालज्ञ को....** मुनि आत्मज्ञानी, आत्मदर्शी,

वीतरागी चारित्रवन्त हैं। आ...हा...हा... ! स्वरूप का प्रचुर स्वसंवेदन—आनन्द की दशा जिसको प्रगट हुई है, ऐसे **देशकालज्ञ को भी, यदि वह बाल-वृद्ध-श्रान्त-ग्लानत्व के अनुरोध से, जो आहार-विहार है, उससे होनेवाले अल्पलेप के भय से....** अल्प लेप के भय से **उसमें प्रवृत्ति न करे....** (अर्थात्) अरे... ! ऐसा लेंगे तो ऐसा होगा।

(अर्थात् अपवाद के आश्रय से होनेवाले अल्पबन्ध के भय से उत्सर्ग का हठ करके अपवाद में प्रवृत्त न हो तो), अति कर्कश आचरणरूप होकर अक्रम से शरीरपात करके देवलोक प्राप्त.... करे। अब आया, सुनो ! 'अक्रम' यह शब्द तो हमें बहुत वर्ष पहले चलता था। पैंतीस, छत्तीस, सैंतीस वर्ष पहले से चलता था। देखो ! अक्रम से शरीर छूटता है; इसलिए हमें ध्यान रखना। (ऐसा कोई कहता था)। बड़ी उम्र में स्थानकवासी साधु हुए थे। अधिक चल सके नहीं और दूसरा आहार लिया। शरीर जल्दी छूट नहीं जाये इसलिए यह पाठ लेते थे। सम्प्रदाय में हमने सब शास्त्र को देखे थे न। सम्प्रदाय में भी 'समयसार', 'प्रवचनसार' देखे थे। (संवत) १९७८ की साल से सब देखा था। १९७८ की साल, ४७ वर्ष हुए। ४७ को क्या कहते हैं ? चालीस और सात। तब से सब शास्त्र देखे थे। 'समयसार', 'प्रवचनसार', 'नियमसार', 'आदिपुराण' सब देखे थे। हमारे साथ थे, उसके शास्त्र भी देखे थे। वे यह कहते थे कि देखो ! अक्रम से शरीरपात नहीं करना और खाने-पीने और लहेर करना। शरीर ऐसा रह जाये, ऐसा कहते थे, हाँ ! लहेर करना ऐसा नहीं कहे, लेकिन शरीर को गिराना नहीं, वृद्ध भले हुआ। शरीर बहुत मोटा था। आहार, पानी लेकर बराबर रखना, नहीं तो अक्रम से शरीर (गिर जायेगा)। अरे... भाई ! वह बात ही कहाँ है, यहाँ तो मुनि की बात है।

यह तो द्रव्यलिंगी नहीं लेकिन भावलिंगी सन्त नग्न दिगम्बर, उसकी सम्यग्दर्शनपूर्वक चारित्र की दशा है, उसमें उसको बहुत कर्कश आचरण करेगा तो शरीर छूट जायेगा और बहुत लेप हो जायेगा। अक्रम से शरीर (छूटना अर्थात्) शरीर तो जिस समय छूटनेवाला है, उसी समय ही छूटेगा, अक्रम शब्द का आरोप दिया है। क्योंकि यहाँ विवेक नहीं रहा, विवेक नहीं रहा, उसका आरोप शरीर में दिया। अक्रम शरीर, ऐसे अक्रम है। हम तो उस समय कहते थे। समझ में आया ?

प्रश्न – अक्रम से शरीर नहीं गिरता ?

समाधान – है ही नहीं। जिस समय शरीर छूटनेवाला है, उसी समय शरीर छूटेगा। आगे-पीछे तीन काल-तीन लोक में होता ही नहीं। भाई ! क्रमबद्ध का बड़ा विरोध है न जगत में ! पर्याय तो जहाँ जिस समय जिसकी होनेवाली है, वही होगी। आत्मा की और जड़ की जहाँ-जहाँ जैसी होगी, वैसी होगी। परन्तु ऐसा होनेवाले की दृष्टि सम्यक् अन्तर ज्ञायकभाव पर पड़ी है; इसलिए क्रमबद्ध को ज्ञाता-दृष्टा के रूप में जानते हैं। बहुत कठिन बात। समझ में आया ? अक्रम से छूटता है, वह तो आचार्य कहते हैं कि अक्रम से छूटता है। वह तो तेरा विवेक नहीं, हठ करके अन्तर आचरण में रह सके नहीं और हठ करके मृदु आचरण में आते नहीं। समझ में आया ? शुभ उपयोग में आहार लेना, ऐसे विकल्प में आता नहीं तो शरीर छूट गिर जाायेगा। ऐसा विवेक बताते हैं। बाकी तो शरीर तो जिस समय छूटेगा, (उसी समय छूटेगा), अक्रम से छूटता नहीं। आहा...हा... ! कठिन बात, भाई ! देखो ! यह शास्त्र का लेख। परन्तु अर्थ समझना चाहिए न। यह तो हमारे बहुत वर्ष से चर्चा होती थी। सम्प्रदाय में थे (तब से)। मैंने कहा, अक्रम से शरीर छूटता नहीं। (तो उन्होंने कहा), लिखा है न। (तो हमने कहा), लिखा है क्या ? वह तो विवेक करते हैं।

(अधूरी) दशा में मुनि की जो दशा है, अन्तर में रह सके नहीं और हठ करके बैठ जाये कि नहीं, आहार भी नहीं लेना है, ग्लानि शरीर जीर्ण हो गया, अन्तर में आ सके नहीं, नहीं लेना है, बिल्कुल नहीं लेना है। पानी नहीं लेना है, आहार नहीं लेना है (ऐसे हठ नहीं चलती)। समझ में आया ? अकाल देह छूट जायेगा। अकाल का अर्थ तेरा विवेक नहीं, विवेक बिना देह छूट जायेगा, ऐसा। समझ में आया ? अरे... भगवान क्या करे ? मार्ग ऐसी कोई चीज है। तत्त्वज्ञान सहित, दृष्टि सहित, क्या ज्ञान और चारित्र और व्यवहार और विकल्प और निमित्त, अलौकिक बात है। जैन वीतराग कि अलावा यह कहीं होता नहीं, तीन काल में है नहीं।

यहाँ कहते हैं कि उत्सर्ग की हठ करके अपवाद में प्रवर्ते नहीं। समझ में आया ? कितने तो ऐसा करते हैं, श्वांस ले न, श्वांस, बहुत श्वांस लेने से ऐसा हो जायेगा। ऐसे श्वांस को रोक लेते हैं। (लेकिन) ऐसी हठ में से रोग हो जायेगा। समझ में आया ? अपने

यहाँ बना है न, नाम लेते नहीं। कहो, समझ में आता है? श्वांस नहीं लेते तो ऐसा लगता है कि मानो ज्ञान में एकाग्र होता है—ऐसा लगता है। श्वांस की क्रिया चलती नहीं (इसलिए ऐसा लगता है)। श्वांस की क्रिया आये बिना रहती नहीं। वह तो जड़ की क्रिया है। उसको रोकने से आत्मा में एकाग्रता होती है? और रोक सकता है? आहा...हा...!

मुमुक्षु – ....

पूज्य गुरुदेवश्री – वह बात ही झूठी है। श्वांस पर आयुष्य की स्थिति है? जितनी आयुष्य की स्थिति बाँधी है, उतने प्रमाण में देह रहेगा। बहुत श्वांस लेना तो अल्प काल में देह छूट जायेगा। इसलिए धीरे-धीरे, थोड़ी श्वांस लेनी। सब झूठ बात। हमको तो चर्चा में बहुत (लोग) मिलते हैं न!

एक वृद्ध आदमी था। वह धीरे-धीरे चले। शरीर निरोगी था, बहुत निरोग। चमड़े का जोड़ा पहनता था। जोड़ा समझे? जूता। धीरे-धीरे चले। मैंने कहा, ऐसा क्यों चलता है? निरोग शरीर है, श्वांस नहीं, कफ नहीं। (तो उसने कहा), श्वांस धीरे-धीरे लेने से आयुष्य बढ़ता है। कहो, समझ में आया? सब गलत मिथ्या भ्रम है अज्ञानी का। समझ में आया?

ऐसे यहाँ कहते हैं कि हठ करके अपवाद में न आना और मृदु कोमल आचरण में न आना (ऐसा करने से) देह छूट जायेगा। विवेक नहीं आयेगा तो देह छूट जायेगी। देवलोक में जायेगा। वहाँ तो मात्र असंयम है। ऐसा कहते हैं। आ...हा...हा...! समझ में आया?

अक्रम से शरीरपात करके देवलोक प्राप्त करके जिसने समस्त संयमामृत का समूह वमन कर डाला है.... लो। संयमामृत का समूह। संयम-अमृत—आनन्दस्वरूप चारित्र है। ऐ...ई...! क्या कहते थे? कहते थे न कि चारित्र दुःखरूप है—ऐसा हमने सुना है। चारित्र तो दुःखरूप है। यहाँ देखो! **संयमामृत का....** (कहा है)। संयम तो अमृत है। आहा...हा...! दुःख कैसा? चारित्र में दुःख कैसा? चारित्र में दुःख हो तो धर्म में दुःख का अर्थ क्या? समझ में आया?

मुमुक्षु – कष्ट से प्राप्त होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री – कष्ट से प्राप्त होता है अर्थात् महापुरुषार्थ से प्राप्त होता है। कष्ट का अर्थ वह है। 'समाधिशतक' में आता है, 'समाधिशतक' में आता है, महाकष्ट से प्राप्त हुआ है। सम्यग्दर्शन महाकष्ट से प्राप्त (होता है)। कष्ट अर्थात् महापुरुषार्थ। ऐसी बात है। कष्ट अर्थात् दुःख है? 'छहढाला' में लिया नहीं? 'आतमहित हेतु वैराग्य ज्ञान ते लखे कष्टदान' 'छहढाला' में आता है। (कोई) कहे, दुःखदान। मूढ़ है। 'छहढाला' में आया या नहीं? हमको बराबर शब्द नहीं आते। कौन-सी पंक्ति है? 'आतमहेतु .... कष्ट दान' आत्म (के हित) का हेतु सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र को दुःखदायक माने। महादुःख है (ऐसा कहे वह) मूढ़ है, तुझे तत्त्व की खबर नहीं। उसमें लिखा है। समझ में आया? कौन-सी है मालूम है? दूसरी ढाल।

संयम, सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र तो आनन्ददायक है। देखो! **संयमामृत....** (कहा है)। वह तो अमृतस्वरूप है। आहा...हा...! अन्तर आनन्दमूर्ति आनन्द का उभरा आता है। उभरा समझे? उफान! उसका नाम संयम है। दुःखदायक (नहीं है)। अरे...! उसमें कष्ट सहन करना पड़े, चलना पड़े, खुले पैर धूप में रहना पड़े। समझ में आया? 'आतमहित हेतु वैराग्य ज्ञान' देखो! ज्ञान और वैराग्य अर्थात् चारित्र। 'आतमहित हेतु विराग ज्ञान ते लखे आपको कष्टदान' मिथ्या है, तत्त्व की बड़ी भूल है। 'शुभ-अशुभ बन्ध के फलमंझार, रतिअरति करै निज पदविसार' वह बन्ध की व्याख्या। 'आतमहित हेतु विराग-ज्ञान' रागरहित चारित्र और ज्ञान—अपना शुद्ध स्वरूप, वह आनन्ददायक है। 'ते लखै आपकूं कष्टदान' कष्टदान माने कि, आ...हा...! बापू! चारित्र बालू का ग्रास है। (अर्थात् रेत के ग्रास हैं)। वेणु समझते हैं? बालू। दूध के दाँत से बालू के ग्रास लेना महा (दुःखरूप), चारित्र महादुःख है। मूढ़ है, तुझे मिथ्यात्व भाव है। चारित्र में आनन्द है, उसकी तो तुझे खबर नहीं। चारित्र तो उसको कहते हैं। देखो, 'छहढाला' में (ढाल-२, गाथा-६) ऐसा लिया है। समझ में आया?

यहाँ वह कहते हैं, **जिसने समस्त संयमामृत का समूह वमन कर डाला है....** आहा...हा...! जो कर्कश आचरण करके... शक्ति नहीं, ग्लानि हो, शरीर में रोग हो और उस अनुसार आहार, पानी लेना का भाव भी न लावे, मृदु आचरण न करे (तो) शरीर छूट

जायेगा। समझ में आया ? छूट जायेगा का अर्थ तुझे विवेक रहेगा नहीं और देह छोड़कर असंयम में तेरा जन्म होगा। संयमामृत का तो वमन हो जायेगा। कठिन बात, भाई ! समझ में आया ? शरीर तो जिस समय छूटना होगा, छूटेगा। आगे-पीछे समय होता नहीं। लेकिन यहाँ विवेक नहीं है तो विवेक बिना गया तो अक्रम में छूटा—ऐसा कहने में आया है। समझ में आया ? वास्तव में तो उसे विवेक में क्रम रहा नहीं। भाई ! विवेक में क्रम रहा नहीं। उत्सर्ग में एकाकार जाता है, अपवाद लिया नहीं तो क्रम रहा नहीं। उत्सर्ग की अपेक्षा से अपवाद न करके, क्रम न रहा। अपवाद में आना चाहिए। समझ में आया ? ऐसा क्रम न रहा तो शरीर छूट जायेगा तो शरीर अक्रम से छूटा—ऐसा कहने में आता है। बात ऐसी है। कठिन मार्ग, भाई ! समझ में आया ?

कर्कश आचरणरूप होकर अक्रम से शरीरपात करके देवलोक प्राप्त करके.... देवलोक में जायेगा, वहाँ तो असंयम है; वहाँ चारित्र है नहीं। चारित्र अमृतरूप का तो वमन हो जायेगा। आहा...हा... ! समझ में आया ? उस कारण से **उसे तप का अवकाश न रहने से,....** वहाँ चारित्र का अवकाश है नहीं। तप अर्थात् मुनिपना। मुनिपना का (अवकाश) स्वर्ग में तो है नहीं। स्वर्ग में जायेगा (वहाँ) मुनिपना है नहीं। **जिसका प्रतिकार अशक्य है....** जिसका... उल्लंघन करना (अशक्य है)। **ऐसा महान लेप....** होगा। स्वर्ग में जायेगा (तो) महान लेप-बन्ध होगा। **इसलिए अपवादनिरपेक्ष उत्सर्ग श्रेयस्कर नहीं है।** मात्र अन्दर में जाना और अपवाद की अपेक्षा न रखे तो वह मार्ग श्रेयस्कर नहीं। समझ में आया ? बहुत ही गड़बड़ निकाली है, इसमें तो कितनी गड़बड़ (करते हैं)। कोई (कहे), अक्रम, कोई कहे (शरीर) बराबर रखना, कोई कहे अपवाद से बराबर खाना। अरे...रे... !

यहाँ तो उपयोगभूमि में जाना हो सके नहीं तो हठ नहीं करना। आहार-पानी लेने का विकल्प हो तो वह मृदु आचरण है, अल्प लेप है। परन्तु वह अपवादसापेक्ष उत्सर्ग ठीक है। अपवाद छोड़ दे और मात्र उत्सर्ग करे तो हठ हो जायेगी, ऐसा कहते हैं। उत्सर्ग कहाँ से रहेगा ? नाश हो जायेगा—संयम का नाश हो जायेगा। ओ...हो...हो... ! आचार्यों ने ऐसी टीका करके कितना (स्पष्ट करते हैं) ! पर्याय की योग्यता छठे गुणस्थान में कैसी है,

उसका विवेक कराया। सम्यग्दर्शन में तो द्रव्यदृष्टि है, उसमें तो पर्यायदृष्टि का विषय है नहीं। परन्तु पर्याय की भूमिका में छठे (गुणस्थान की) चारित्र की दशा हो तो कैसी हो, उसका स्पष्टीकरण अलौकिक रीति से करते हैं। समझ में आया? **अपवादनिरपेक्ष उत्सर्ग श्रेयस्कर नहीं है।** दुःस्थिति हो जायेगी, खराब हो जायेगा—ऐसा पहले कहा न।

अब, (कहते हैं), **देशकालज्ञ को भी, यदि वह बाल-वृद्ध-श्रान्त-ग्लानत्व के अनुरोध से.....** अनुसरने से। (कोई) रोग हुआ है, वृद्ध अवस्था है, मुझे बालपना है, ऐसे अनुसरने से **जो आहार-विहार है, उससे होनेवाले अल्पलेप को न गिनकर....** (अर्थात्) कुछ नहीं, कुछ नहीं, उसमें क्या है? उसमें क्या है? हम तो छद्मस्थ है, कालफेर है, क्षेत्रफेर है, ऐसा गिनकर **अल्पलेप को न गिनकर उसमें यथेष्ट प्रवृत्ति न करे....** स्वच्छन्दतया इच्छा के अनुसार प्रवृत्ति करे तो **(अर्थात् अपवाद से होनेवाले अल्पबन्ध के प्रति असावधान होकर उत्सर्गरूप ध्येय को चूककर अपवाद में स्वच्छन्दपूर्वक प्रवर्ते तो), मृदु आचरणरूप होकर संयम विरोधी को-असंयतजन के समान हुए.....** देखो! है? **असंयतजन के समान हुए उसको....** उस समय खाने-पीने की लहर, अनुकूलता लेनी, ऐसा आहार-पानी (लेना), मोसम्बी, गर्मी में ऐसा ठण्डा लेना, ठण्डी में गरम-गरम हलवा आदि लेना, ऐसी इच्छा हो जाये। भाव तो अल्प हो लेकिन उसमें ऐसा स्वेच्छाचार हो जाये तो असंयम हो जायेगा। आहा...हा...! देखो, मुनिपना! उत्सर्गसापेक्ष दशा।

जिसका प्रतिकार अशक्य है ऐसा महान लेप होता है। इसलिए उत्सर्गनिरपेक्ष अपवाद श्रेयस्कर नहीं है। लो। अर्थात् मात्र अपवाद में रहे और उत्सर्ग का ध्येय और लक्ष्य न रखे तो मिथ्यादृष्टि हो जायेगा। आहा...हा...! कठिन बातें, भाई! बस, ये २३१ गाथा (तक यह विषय है), बाद में २३२ से मोक्षमार्ग आयेगा। अनजाने को ये सब गाथा सूक्ष्म लगे।

इससे (ऐसा कहा गया है कि) उत्सर्ग और अपवाद के विरोध में होनेवाला जो आचरण का दुःस्थितपना वह सर्वथा निषेध्य (त्याज्य) है,.... लो। शुद्ध उपयोग में रहने की हठ करके अपवाद न रहे और अपवाद में आकर शुद्ध उपयोग का लक्ष्य न

रखे, ध्येय न रखे तो दु:स्थितपना हो जायेगी। उसका निषेध है। **और इसीलिए परस्पर सापेक्ष उत्सर्ग और अपवाद से जिसकी वृत्ति (अस्तित्व, कार्य)....** लो, वृत्ति आयी। सभी जगह आता है न? **जिसकी वृत्ति (अस्तित्व, कार्य) प्रगट होती है ऐसा स्याद्वाद सर्वथा अनुगम्य (अनुसरण करने योग्य) है।** भूमिका के योग्य अपवाद, हाँ! भूमिका के आगे (का नहीं)। समाप्त हो गया, हमारा शरीर ऐसा ग्लान, वृद्ध है तो हमें थोड़ा सीरा (हलुआ) मिले वहाँ जाना। सीरा समझे? हलुआ! जहाँ मोसम्बी का पानी मिले वहाँ जाना, जहाँ ठण्डा पानी मिले (वहाँ जाना) वह बात यहाँ नहीं। उसके लिए बनाया हो वह लेना, अल्प लेते हैं, वह बात है नहीं। तब तो असंयम हो जायेगा।

यहाँ तो अन्तर में रह सके नहीं और हठ करे और अपवाद में आये नहीं तो दोष आ जायेगा, असंयम हो जायेगा और मात्र अपवाद में रहकर उत्सर्ग का ध्यान न रखे तो शरीर छूट जायेगा। मात्र उत्सर्ग रखे, ध्यान (रखे) तो अपवाद का दुर्लक्ष्य (होगा) और मात्र उत्सर्ग में रहकर हठ करे तो शरीर छूट जायेगा, देवलोक में जायेगा। संयमामृत का नाश हो जायेगा। और यहाँ मात्र अपवाद में रहकर उत्सर्ग का ध्यान न रखे तो असंयम हो जायेगा। यहीं असंयम हो जायेगा, ऐसा कहते हैं। अरे...! कठिन बात, भाई! किसे ऐसी फुरसत है? ऐसा उत्सर्ग का पालन नहीं होता। अरे... भाई! साधुपना है। ये साधुपना ले लिया, जाओ! (ऐसा नहीं है)। आहा...हा...! भाई! लो!

भावार्थ - जब तक शुद्धोपयोग में ही लीन न हो.... देखो! आनन्द में ज्ञाता-ज्ञायक-ज्ञेय को भूलकर स्वरूप में एकाकार चारित्र सप्तम गुणस्थान योग्य उपयोग, देखो! शुद्ध उपयोग में लीन न हो, यहाँ तो वर्तमान साधु की बात करते हैं। (कोई कहता है), शुद्ध उपयोग नीचे नहीं होता है, आठवें (गुणस्थान में) होता है। **तब तक श्रमण को आचरण की सुस्थिति के लिये....** आचरण की उचित स्थिति की मर्यादा के लिये **उत्सर्ग और अपवाद की मैत्री साधनी चाहिए।** उसे आचरण का हठ नहीं करना चाहिए। समझ में आया? **उसे अपनी निर्बलता का लक्ष्य रखे बिना मात्र उत्सर्ग का आग्रह रखकर केवल अति कर्कश आचरण का हठ नहीं करना चाहिए; तथा उत्सर्गरूप ध्येय को चूककर मात्र अपवाद के आश्रय से केवल मृदु आचरणरूप शिथिलता**

का भी सेवन नहीं करना चाहिए। किन्तु इस प्रकार का वर्तन करना चाहिए जिसमें हठ भी न हो और शिथिलता का भी सेवन न हो।

सर्वज्ञ भगवान का मार्ग अनेकान्त है। इस प्रकार अनेकान्त है। (उसमें) गोटा करना, उसके लिये करे, बनाया, लेना वह मार्ग सर्वज्ञ का है नहीं। वह अपवाद कहाँ है? वह तो अनाचार हो गया, वह तो अनाचार हो गया। समझ में आया? आहा...हा...! ऐसी साधु की दशा, सर्वज्ञ परमेश्वर के सिवा कोई ठिकाने होती नहीं। चाहे तो नग्न फिरे और जंगल में वैरागी होकर जंगल में चला जाये। एक तो तत्त्व, छह द्रव्य क्या है? कितने क्षेत्र में है? कितने काल में है? कैसी स्थिति है? उसका भान नहीं तो उसको सम्यग्दर्शन भी होता नहीं, चारित्र तो कहाँ से हो? समझ में आया? **उस प्रकार से वर्तन करने का भगवान का उपदेश है।** लो। जैसे योग्यत्व का लाभ हो, जैसे भी योगत्व, योगत्व है न? क्या शब्द है? इसमें वह शब्द नहीं है। जैसे भी योगत्व का लाभ हो, ऐसा क्यों किया? जैसे भी योगत्व का लाभ हो, उस प्रकार वर्तन करना चाहिए। जैसे अपनी योग्यता से अपने को लाभ हो ऐसा (वर्तन करना ऐसा) भगवान का उपदेश है। लो।

अपनी चाहे जो (सबल या निर्बल) स्थिति हो, तथापि एक ही प्रकार से वर्तना—ऐसा जिनमार्ग नहीं है। लो!

श्लोक - १५

इत्येवं चरणं पुराणपुरुषैर्जुष्टं विशिष्टादरै-
रुत्सर्गादपवादतश्च विचरद्बह्वीः पृथग्भूमिकाः।
आक्रम्य क्रमतो निवृत्तिमतुलां कृत्वा यतिः सर्वत-
श्चित्सामान्यविशेषभासिनि निजद्रव्ये करोतु स्थितिम्।।१५।।

-इत्याचरणप्रज्ञापनं समाप्तम्।

अब श्लोक द्वारा आत्मद्रव्य में स्थिर होने की बात कहकर 'आचरण प्रज्ञापन' पूर्ण किया जाता है।

अर्थ : इस प्रकार विशेष आदरपूर्वक पुराण पुरुषों के द्वारा सेवित, उत्सर्ग और अपवाद द्वारा अनेक पृथक्-पृथक् भूमिकाओं में व्याप्त जो चारित्र उसको यति प्राप्त करके, क्रमशः अतुल निवृत्ति करके, चैतन्यसामान्य और चैतन्यविशेषरूप जिसका प्रकाश है ऐसे निजद्रव्य में सर्वतः स्थिति करो।

इस प्रकार 'आचरण प्रज्ञापन' समाप्त हुआ।

श्लोक-१५ पर प्रवचन

अब श्लोक द्वारा आत्मद्रव्य में स्थिर होने की बात कहकर 'आचरण प्रज्ञापन' पूर्ण किया जाता है। लो।

इत्येवं चरणं पुराणपुरुषैर्जुष्टं विशिष्टादरै-
रुत्सर्गादपवादतश्च विचरद्बह्वीः पृथग्भूमिकाः।
आक्रम्य क्रमतो निवृत्तिमतुलां कृत्वा यतिः सर्वत-
श्चित्सामान्यविशेषभासिनि निजद्रव्ये करोतु स्थितिम्।।१५।।

ओहो...हो...! देखो! अर्थ : **इस प्रकार विशेष आदरपूर्वक पुराण पुरुषों के द्वारा सेवित,....** महा सन्तों, मुनियों (उनके द्वारा) सेवित **उत्सर्ग और अपवाद द्वारा अनेक पृथक्-पृथक् भूमिका....** उत्सर्ग में भी आते हैं, अपवाद में भी आते हैं। जहाँ-जहाँ योग अनुसार **पृथक्-पृथक् भूमिकाओं में व्याप्त जो चारित्र उसको यति प्राप्त करके, क्रमशः अतुल निवृत्ति करके,....** देखो! पीछे क्रमशः अतुल निवृत्ति करके बाद में समाना है अन्दर में—ऐसा कहते हैं।

चैतन्यसामान्य और चैतन्यविशेषरूप जिसका प्रकाश है.... देखो! निजद्रव्य भगवान कैसा है? निज द्रव्य—निज वस्तु, कि जिसका चैतन्यसामान्य अर्थात् दर्शन, चैतन्यविशेष अर्थात् ज्ञान—ऐसा **जिसका प्रकाश है, ऐसे निजद्रव्य में सर्वतः स्थिति करो।** ऐसे ज्ञान-दर्शन भगवान आत्मा, उसमें स्थिति करो, यह मोक्ष का मार्ग है। लो, यह कहते हैं। उत्सर्ग और अपवाद करते... करते... करते... करते... क्रमशः सामान्य दर्शनप्रकाश

और ज्ञानप्रकाश ऐसा भगवान आत्मा वस्तु है न! तो सामान्य अर्थात् दर्शन और विशेष अर्थात् ज्ञान। विशेष अर्थात् पर्याय यहाँ लेना नहीं है। सामान्य अर्थात् द्रव्य और विशेष अर्थात् पर्याय, ऐसा नहीं लेना है। सामान्य-विशेष प्रकाश। जो सत्तास्वरूप सामान्य द्रव्य को देखे, वह दर्शन। विशेष ऐसा ज्ञान। ऐसे दर्शन और ज्ञानप्रकाशरूप निजद्रव्य। देखो, यह निजद्रव्य की व्याख्या! उसमें राग और पुण्य और व्यवहार है, उससे यहाँ इनकार किया। आहा...हा...! देखो, क्या कहते हैं?

चैतन्य सामान्य भगवान आत्मा, दर्शन से दर्शनरूप और **चैतन्यविशेषरूप जिसका प्रकाश है ऐसे निजद्रव्य में....** दर्शन और ज्ञान त्रिकाली स्वभाव, जिसका प्रकाश है ऐसा निज आत्मा। देखो! निज आत्मा। परमात्मा... परमात्मा उसके पास रहे। **सर्वतः....** सर्व प्रकार से **स्थिति करो।** अन्तर में लीन हो, वह मोक्ष का मार्ग है। आहा...हा...! कहो, समझ में आया? **इस प्रकार 'आचरण प्रज्ञापन' समाप्त हुआ।** लो!

नोट—मोक्षमार्ग प्रज्ञापन अधिकार,
प्रवचन सुधा, भाग-१० में लिया जाएगा।